रीतिकालीन काव्य में लक्षणा का प्रयोग

एक आलोचनात्मक अध्ययन

[आगरा विश्वविद्यालय, आगरा की पी-एच० डी०
उपाधि के लिए प्रस्तुत 'शोध-प्रबन्धसार']

डॉ० अरविन्द पाण्डेय
एम. ए., पी-एच. डी.
बृजमोहन लक्ष्मीनारायण रुइया हाईस्कूल,
बम्बई

ज वा ह र पु स्त का ल य,
मथुरा

प्रस्तावना

हिन्दी के विशाल साहित्य के वैज्ञानिक अनुशीलन की प्रथा ने ज्यों-ज्यों आत्म-विस्तार किया है त्यों-त्यो अध्ययन का क्षेत्र व्यापक, गम्भीर और सूक्ष्म-सूक्ष्मतर होता गया है। साहित्य सृष्टि के मूल मे कार्य करने वाली स्वरूप-विधायक मानवीय प्रवृत्तियों और वाह्य परिवेश की बहुविध प्रभविष्णु परिस्थितियों के माध्यम से साहित्य देवता की आत्मा के दर्शन करने के प्रयत्न प्रबुद्ध अध्येताओ द्वारा प्रचुर परिमाण में किये गये हैं और बराबर किये जा रहे हैं। अध्ययन परम्परा के विकास काल मे विद्वानो का ध्यान वाह्य कला-पक्ष की ओर भी कैसे न जाता। साहित्य के आचार्य कोटि के शास्त्रीय अध्ययन के श्री गणेश मे ही कला-पक्ष आचार्यों की दृष्टि मे जम गया था और वे शब्दों को काव्य-पुरुष का स्थूल शरीर कहने लगे थे। वस्तुतः सूक्ष्म अन्तर्तत्व की प्रमूर्तिनिमितक अथवा व्यावहारिक अभिव्यक्ति स्थूल वहिरग का आश्रय लिये विना होती भी नही है। इसी कारण आचार्य शुक्ल जैसे अग्रगामी मनीषियो ने वैज्ञानिक एवं आलोचनात्मक अध्ययन के इस युग मे शब्द शक्तियों के समुचित अध्ययन की आवश्यकता का संकेत किया और फलतः समर्थ शोधार्थी इस दिशा में उन्मुख हुए।

प्राचीन भारतीय साहित्य शास्त्र मे ही नही अपितु अन्य शास्त्रों की विचारणा प्रपंच में भी शब्द और उसकी अर्थ सामर्थ्य पर पर्याप्त पर्यालोचन किया गया है। शब्द समस्त लौकिक व्यवहारो का मूल है और इसीलिए उसे ब्रह्म माना गया है। आचार्यो ने उसकी अर्थ-सम्पत्ति का विश्लेषण करते हुए अभिधा, लक्षणा, व्यंजना, तात्पर्य आदि अनेक कोटियाँ प्रतिपादित की है। साहित्येत्तर शास्त्रों में केवल अभिधा और लक्षणा को ही शक्ति और भक्ति के नाम से अगीकार किया है। साहित्य-शास्त्र के महामहिम आचार्यो ने जैसे आनन्दवर्द्धनाचार्य, अभिनवगुप्तपादाचार्य, मम्मट, विश्वनाथ, पडितराज जगन्नाथ आदि साहित्य शास्त्र की विशेष दृष्टि से व्यंजना को सर्वोपरि माना है और तन्निष्ठ काव्य को उत्तम काव्य। यद्यपि भारतीय काव्य क्षेत्र मे व्यंजना को सर्वोपरि चमत्कार विधायक और रसास्वादन का हेतु माना गया है,

लेखक-परिचय

जन्म स्थान—तुलसीदासपुर (वाराणसी)

जन्म तिथि—१४ फरवरी १९३२ ई०

वनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से १९६२ में हिन्दी में एम० ए० करने के पश्चात् आगरा विश्वविद्यालय में पी-एच० डी० के लिए १९६३ ई० में .पंजीकरण कराया। शोध प्रवन्ध के निर्देशक थे श्रीयुत डा० विश्वनाथ गौड़, वी० एस० एस० डी० कालिज, कानपुर के हिन्दी विभाग के अध्यक्षी। मई १९६५ ई० मे शोध प्रवन्ध विश्व-विद्यालय मे जमा कर दिया और १८ अगस्त १९६६ ई० को उपाधि की घोषणा विश्वविद्यालय के सीनेट ने कर दी। आप १९६१ ई० से वृजमोहन लक्ष्मी-नारायण रुइया हाई स्कूल, वम्वई मे अध्यापन कार्य करते हैं। अब तक आपकी संक्षिप्त हिन्दी व्याकरण और रचना तथा आदर्श हिन्दी निवन्ध नामक दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इस समय 'कथा साहित्य का आलो-चनात्मक इतिहास' (१९४०-१९७७) नामक पुस्तक के लिए कार्य कर रहे हैं। इसके साथ ही साथ एक कहानी संग्रह और साहित्यिक निवन्ध संग्रह प्रकाशनाधीन है।

—प्रकाशक

आमुख

सम्पूर्ण वाड्मय शब्द और अर्थ की सत्ता से ही प्रतिभासित है। वस्तुत: दोनों प्रकृति और पुरुष की तरह अभिन्न और एक है। विशेष रूप से साहित्य मे शब्द का प्रयोग विविध भाव भगिमाओ को अभिव्यक्त करने के लिए होता है। कवि की कारयित्री जब अर्थ की मनोरम झाँकियाँ प्रस्तुत करने लगती है तब शब्द-शक्तियों का स्वरूप निखरने लगता है। इस प्रकार के प्रयोगो के माध्यम से ही भावक की हृदय वृत्ति रसानुभूति प्राप्त करती है। सस्कृत साहित्य शास्त्र मे शब्द-शक्तियो का विवेचन पर्याप्त मात्रा मे हुआ है। हिन्दी साहित्य-शास्त्र मे ऐसे विवेचन विरल है। ऐसे प्रयत्न जो हुए भी है वे शब्द-शक्तियो के स्वरूप-निरूपण तक ही सीमित हैं। आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' मे 'घनानन्द' और 'सुमित्रा नन्दन पन्त' की रचनाओं मे, आए हुए लाक्षणिक प्रयोगो के अध्ययन की ओर सकेत किया था। किन्तु इस दिशा मे कोई विशेष प्रयत्न नही हुआ। इसी अभाव का अनुभव ही इस शोध-प्रबन्ध की प्रेरणा का स्रोत है। आगरा विश्व-विद्यालय की हिन्दी शोध समिति ने इस विषय पर अनुसधान करने की अनुमति देकर इसके महत्व को स्वीकार किया है। रीतिकाल हिन्दी साहित्य मे काव्य की दृष्टि से एक समृद्ध युग है। लाक्षणिक प्रयोगो की दृष्टि से इसका अध्ययन आवश्यक था क्योकि अर्थ के समृद्ध स्वरूप के सामर्थ्य विस्तार की परख इसी तरह सम्भव है। इसी अर्थ सामर्थ्य की परख का प्रयत्न ही इस शोध-प्रबन्ध मे किया गया है।

रीतिकालीन ग्रन्थो का भांडार बड़ा समृद्ध है, किन्तु इन ग्रन्थो की सहज प्राप्ति असम्भव नही तो दुर्लभ अवश्य है। इस क्षेत्र मे वर्तमान समय में सबसे अधिक समृद्ध पुस्तकालय काशी नागरी प्रचारिणी सभा का है, फिर भी कई ऐसे ग्रन्थ है, जिनका संग्रह वहाँ भी नही हो पाया है। ऐसे ग्रन्थों मे आचार्य श्रीपति के ग्रन्थ और लघु प्रबन्ध काव्य-काव्यलीला, दीपलीला आदि आते है। यद्यपि पुस्तकालय मे 'ध्रुवदास ग्रन्थावली' मे बयालीस लीलाओ का सग्रह प्राप्य है, पर आचार्य शुक्ल ने ध्रुवदास को सन्त साहित्य के फुटकल कवियो मे स्थान देकर इनका समय स० १६४०-१७०० वि० के मध्य ठहराया है। इसी कारण ध्रुवदास रचित 'लीलाओ' को इस

विषय पृष्ठ

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

विषय पृष्ठ

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

विषय | पृष्ठ

पंचम अध्याय

षष्ठम अध्याय

प्रथम अध्याय

शब्द शक्ति विशेषकर लक्षणा का शास्त्रीय विवेचन

व्यंजकतावाद', प्रतीकवाद आदि कई मत प्रचलित है। किन्तु इस स्थल पर हमारा अभिप्राय शब्द तथा अर्थ के पारस्परिक सम्बन्ध का अनुशीलन करना है। अतः शब्द तथा अर्थ के सम्बन्ध के विषय में विभिन्न विचारों को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अति प्राचीन भारतीय मत—

भारतीय शास्त्रों के अनुसार सृष्टि रचना से पूर्व ही शब्द की उत्पत्ति होती है। इसीलिए वेदो को अपौरुषेय कहा गया है। वृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार "समस्त भूत प्राणि-मात्र वाणी से जाने जाते हैं, वाणी ही ब्रह्म है।[१] छान्दोग्य उपनिषद् मे तो यहाँ तक कहा गया है कि—"जो वाणी को ब्रह्म समझ कर, उपासना करता है, वह वाणी के द्वारा जितने अर्थ व्यक्त किए जाते है, उन सभी पर स्वेच्छा पूर्वक अधिकार प्राप्त कर लेता है।"[२] इसी तरह श्रुति स्मृतियाँ स्पष्ट सकेत करती है कि—"उसने भूः शब्द के उच्चारण से पृथ्वी की सृष्टि की।"[३]

छान्दोग्य उपनिषद् वाणी की नैतिक महत्ता का उद्घोष करते हुए कहता है कि—"यदि वाणी न होती तो धर्म-अधर्म, सत्यासत्य का ज्ञान असंभव था।"[४]

भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में वाणी की बौद्धिक महत्ता का मूल्याकन करते हुए कहा है—"शब्दो से सबद्ध रूप में ही समस्त ज्ञान प्रतिभासित होता है।"[५] वास्तव मे जिस प्रकार विस्तृत जगत का दर्शन आँखों द्वारा होता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण पदार्थो का पर्यवेक्षण शब्द के द्वारा ही होता है। इसी प्रकार यूरोपीय विद्वान जे. एस. मिल कहते है—"तर्क के क्षेत्र मे वाणी का इतना महत्व है जितना कि सामान्य नियमों का, वाणी अथवा उसकी समकक्ष किसी अन्य वस्तु के विना, अनुभव से तर्क करना असम्भव है।"[६]

---

१. "सर्वाणि च भूतानि वाचैव सम्राड्ज्ञायन्ते, वाग्वै सम्राट परमंब्रह्म।"
[वृ० उ० ४, १, २]

२. स यो वाचं ब्रह्मेति उपास्ते यावद् वाचोगतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति।"
[छा० उ० ७, २, २]

३. स भूरिति व्याहरत्, स भूमिमसृजत्। [तै० आ० २, २, ४, २]

४. यद्वै वाङ् नाभविष्यन्न धर्मो नाधर्मो व्यज्ञापयिष्यन्न सत्यं नानृतम्।
[छा० उ० ७, २, १]

५. न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके य शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते॥ [वाक्यपदीय १, १२४]

6. Without language, or something equivalent to it, there could only be as much of reason from experience, as can take place without the aid of general proposition.
[J. S. Mill. A system of logic. B. IV. Ch. III. para 3.]

काव्य के तो एक मात्र साधन शब्द और अर्थ ही होते है। इन्हीं से कलाकार की कला का परिचय प्राप्त होता है। अतः काव्य शास्त्र के विद्यार्थी के लिए शब्द की उत्पत्ति, शब्द तथा अर्थ का सम्बन्ध और इनकी महत्ता उतनी ही आकर्षक, खोज-पूर्ण, महत्वशाली है जितनी कि दार्शनिक, भाषाशास्त्री अथवा वैयाकरण के लिए।

शब्द तथा अर्थ का सम्बन्ध—

शब्द मन मे उद्भूत होने वाली अनेक प्रक्रियाओं का अभिव्यक्त-प्रतीक है। अभिव्यक्ति का आधार मन:स्थिति है, जिसके माध्यम से अनुभवो का विश्लेषण किया जाता है। शतपथ ब्राह्मण के एक प्रसग मे मन और वाणी का पद (स्थान) विषयक विवाद हुआ है। इसमे मन अपने को बड़ा कहता है और वाणी अपने को। दोनो प्रजापति के पास जाते है। प्रजापति मन के पक्ष में अपना निर्णय देते हैं।[1] छान्दोग्य उपनिषद् में भी मन के श्रेष्ठ होने की घोषणा की गई है।[2] इस तरह मन (अर्थ) के आधीन वाणी (शब्द) का अस्तित्व स्वीकार किया गया है। किन्तु वृहदारण्यक मे अर्थ को शब्द से उद्भूत कहा गया है। एक रूपक शैली मे कहा गया है कि—"उस वाणी (गौ) का प्राण बैल है तथा मन बछड़ा है।"[3] अन्ततोगत्वा दोनो मत इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि शब्द और अर्थ मे परस्पर प्रगाढ़ सम्बन्ध है। प्राच्य दार्शनिक दोनों को एक ही वस्तु का अङ्ग मानते हैं। भर्तृहरि कहते है—"एक ही आत्मा के भेद, शब्द और अर्थ अपृथक् होकर स्थित है।"[4] ध्वनि सम्प्रदाय के विद्वान लेखक डॉ० भोलाशंकर व्यास ने शब्द और अर्थ का विवेचन करते हुए अपने ग्रन्थ में इस विषय के आविकारिक विद्वान् जर्मन भाषा-शास्त्री हुम्बोल्ट का मत उद्धृत करते हुए कहा है—"जर्मन भाषा शास्त्री हुम्बोल्ट ने आभ्यांतरिक शब्द की कल्पना की है जो वस्तुतः अर्थ की मानसिक स्थिति है।"[5]

शब्द तथा अर्थ के सम्बन्ध मे तीन मत प्रचलित रहे है। प्रथम मत है कि—'शब्द अर्थ से उत्पन्न होता है', द्वितीय मत है कि—'शब्द अर्थ की व्यंजना करता है, तृतीय मत के अनुसार शब्द अर्थ का ज्ञान करा देता है।' ऋग्वेद मे कहा गया है कि—"विद्वानो ने मन के द्वारा वाणी को बनाया।"[6] महाभाष्यकार कहते है—"शब्द

---

१. शतपथ ब्रह्मण। [१, ४, ५, ८]

२. मनो वाव वाचो भूय:। [छा० उ० ७, ३, १]

३. तस्याः प्राण ऋषभो मनो वत्सः। [वृ० उ० ५, ८, १]

४. एकस्यैवात्मनो भेदौ शब्दार्थावपृथक् स्थितौ। [वाक्यपदीय २, ३१]

५. ध्वनि सम्प्रदाय, डॉ० भोलाशंकर व्यास, प्र० सं०, पृ० ५१ पाद टिप्पणी

६. मना धीरा मनसा वाचमक्रत। [ऋ० १०, ७१, २]

वह है, जो कान से सुना जाता है जिसका ग्रहण वुद्धि करती है, जिसका स्थान आकाश है तथा जो प्रयोग से अभिज्वलित होता है।"[१] यहाँ यह शंका उत्पन्न होती है कि शव्द व्यग्य होगा, व्यंजक नही। शंकराचार्य ने एक स्थल पर शब्द को अर्थ का चरण-कहा है। वाजसनेय प्रातिशाख्य के टीकाकार ने पद की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है—"इससे अर्थ का गमन या ज्ञान होता है, अतः यह पद है।"[२]

उपर्युक्त प्रयोग को दृष्टिगत रखते हुए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि शब्द और पद का साधारण भेद क्या है ? स्पष्ट कर दिया जाए। अतः शब्द केवल रूपमात्र (प्रकृत) का परिचायक है, जबकि पद-विभक्तियुक्त होता है।

भारतीय विद्वानो की तरह पश्चिमी विद्वान "प्लातो" ने शब्द तथा अर्थ के सम्वन्ध में अपना विचार व्यक्त किया है—"वाणी वह स्रोत है, जो मन से मुख के द्वारा निःसृत होती है।" अरस्तू की मान्यता भी सम्भवतः ऐसी ही है, उनका कथन है कि—"शब्द आत्मा के अनुभवो के प्रतीक है।"[3]

शब्द और अर्थ के सम्वन्ध पर विचार करते हुए यह नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है कि यह भी समझ लिया जाय कि इनमे कोई वास्तविक सम्वन्ध है, अथवा नही। इससे अभिप्राय यह कि—"शब्द अपने अर्थ का प्रतीक मात्र है, उसमें वास्तव मे उस भाव का वोध कराने की पूर्ण क्षमता नही है।"[४] वाक्यपदीय में भर्तृहरि ने कहा है—"जव शब्दों का उच्चारण होता है तो उनका सम्वन्ध, ज्ञान (भाव), वक्ता के द्वारा अभिप्रेत वाह्य पदार्थ (वस्तु) और शब्द के स्वरूप से होता है।"[५] यहाँ एक प्रश्न उठ खड़ा होता है कि भाव तथा वस्तु में क्या भेद है ? वस्तु का अभिप्राय यहाँ अर्थ से है। प्रायः यह कहा जाता है कि भाव ही वह वस्तु है जिसकी प्रतीति कराई जाती

---

१. श्रोत्रोपलव्धिर्बुद्धि निर्ग्राह्यः प्रयोगेनाभिज्वलित आकाशदेशः शब्दः।

[महाभाष्य १, १, २]

२. पद्यते गम्यते ज्ञायतेऽर्थोऽनेनेति पदम्।

[शुक्ल यजुः प्रातिशाख्य, अध्याय ३, सू० २, पृ० ६]

3. All speech is intended to serve for the communication of ideas 'Poletics' Aristotle

4. Words, as every one knows, 'mean' nothing by themselves, although the belief that they did···—was equally universal."

—"The Meaning of Meaning." Ch. I, P. 9-10

५. ज्ञानं प्रयोक्तुर्बाह्योऽर्थः स्वरूपं च प्रतीयते। (वाक्यपदीय ३, ३, १)

है। शब्द अर्थ का वहन करते है। इस प्रसंग को स्पष्ट करने के लिए ऑग्डन तथा रिचर्डस का एक उद्धारण प्रस्तुत करना आवश्यक प्रतीत हो रहा है। एक स्थल पर लेखक कहते हैं कि—"माली दूब काट रहा है।" जब हम वास्तविक स्थिति पर विचार करते है तो ज्ञात होता है कि—दूब काटने का काम माली नही अपितु यन्त्र कर रहा है, फिर भी हम कहते यही है कि—"माली दूब काट रहा रहा है।" इस प्रकार के शब्दों के प्रयोग के कारण हमारे अन्तर के भाव है जिनकी उद्भावना मन में हो रही है। उपर्युक्त कथन के साथ हमारे मन मे जड़ यन्त्र और माली की स्थिति स्पष्ट रहती है। यन्त्र का सचालक माली है, इसलिए वह अधिक महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार हम यह जानते हुए भी कि शब्दो का प्रत्यक्ष सम्बन्ध भावो से है, फिर भी यही कहते है कि—प्रतीक (शब्द) घटनाओं का उल्लेखन करते है, तथा तथ्यो का वहन करते हैं।"[1] इस तरह प्रथम सम्बन्ध शब्द तथा भाव मे, दूसरा भाव तथा वस्तु मे कल्पित किया गया है। वास्तविकता यह है कि—जिस शब्द का हम प्रयोग करते है, उसका अंशत: आधार भाव और अंशत: सामाजिक एव मनोवैज्ञानिक तत्व है। अत. भाव तथा शब्द का सम्बन्ध आकस्मिक कहा जा सकता है। भाव तथा *वस्तु का पारस्परिक सम्बन्ध कभी मुख्य और कभी गौण होता है। अभिधा में* यह सम्बन्ध मुख्य और लक्षण में गौण होता है। शब्द और अर्थ का सम्बन्ध भी गौण है।

इस प्रतीकात्मक सिद्धान्त का सम्बन्ध इस विचार पर निर्भर है कि—समस्त भावों के बोध कराने की क्षमता शब्दो मे नही होती, इसीलिए बात-चीत के दौरान मे हाव-भाव, चेष्टादि का भी प्रयोग किया जाता है। शब्द की इसी अपूर्णता पर प्रकाश डालते हुए साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ कहते है कि "गौ." शब्द से "गच्छतीति गौ:" (जो जाता है वह गौ है) इस व्युत्पत्ति वाले अर्थ मे ही मुख्यार्थ प्रतिपत्ति मानी जाएगी तो 'गौ. शेते" (गौ सोती है) आदि स्थलों पर लक्षण शक्ति माननी पड़ेगी क्योकि लेटे हुए सास्नादिमान् पशु विशेष के लिए "गौ:" (चलता हुआ) साक्षात्प्रति-पादक शब्द न होगा।[२]

---

1 "But just as we say that the gradener mows the lawn when we know that ıt is the lawn mower which actually does the cutting, so though we know that the dırect relation of symbols is with thought, we also say that symbols record events and commu- nicate facts."

—"The Meanıng of Meaning" Ch. I. P. 9.

२. "व्युत्पत्तिलभ्यास्य मुख्यार्थत्वे 'गौ: शेते' इत्यत्रावि लक्षणा स्यात्—" [सा० द० द्वि० परि० का० ५ पर वृत्ति पृ० ३१] (शालिग्राम शास्त्री) सं० २०१३।

ऐसे शब्द भी प्रयोग मे प्रचलित है जिनके भाव तथा अभिप्रेत अर्थ में वड़ा अन्तर है, ऐसे स्थलों में अभिप्रेत अर्थ की स्थिति ही नही होती—'शशविपाण', 'वन्ध्यापुत्र' आदि इसी कोटि के प्रयोग हैं जो किसी अभावात्मक वस्तु का बोध कराते हैं। न्याय तथा वैशेषिक दार्शनिको ने 'घटाभाव' 'पटाभाव' आदि शब्दों की स्वतन्त्र सद्या स्थापित की है और "अभाव को अलग से पथार्थ मानकर इससे अर्थ प्रतीति भी मानी है।"[१] इसलिए घट से भिन्न वस्तु 'घटाभाव' मानी गई है।

अर्थ बोध वाक्य द्वारा होता है। महाभाष्यकार के अनुसार 'शब्दो' का वह समूह जो पूर्ण अर्थ की प्रतीति कराता है उसे वाक्य कहते है।' भर्तृहरि ने वाक्य में क्रिया का होना अनिवार्य माना है। साहित्यदर्पण सार के अनुसार—'वाक्य वह शब्द समूह है, जिसमें योग्यता, आकांक्षा तथा सन्निधि हो।"[२] वाक्य के अतिरिक्त महावाक्य भी माने गए हैं जो वाक्य के समूह द्वारा एक उद्देश्य का वोध कराते हैं—रामायण, महाभारत, रघुवंश इसके उदाहरण हैं।

शब्द के भौतिक स्वरूप के सम्बन्ध में भारतीय दार्शनिकों के विचार व्यक्त करते हुए 'कदम्वमुकुलन्याय' [जिस प्रकार कदम्ब का मुकुल चारों ओर से विकसित होता है] तथा 'वीतिरंगन्याय' [जिस प्रकार जल में तरंग उत्पन्न होकर चक्राकार घूमती हुई सभी ओर जाती हैं तथा जिस प्रकार जल मे एक लहर से दूसरी निकलती है और अन्त मे तट से जाकर टकराती है] का आश्रय लिया है। इस तरह इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि शब्द के उच्चरित होने पर उससे दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवा······शब्द उद्भूत होता जाता है। अतः श्रोता जिस शब्द को सुनता है, वह ठीक वही नही है, जिसे वक्ता ने उच्चारण किया है। शब्द के इसी भौतिक गुण और प्रकृति के कारण 'ट्रांसमीटर' तथा रेडियो का आविष्कार हुआ है। शब्द वड़ा द्रुतिगामी है। इसके सम्बन्ध मे आधुनिक विज्ञान का मत है कि वक्ता शब्द को सबके वाद में सुनता है।

शब्द को मीमांसक 'नित्य', नैयायिक 'अनित्य' तथा वैयाकरण 'नित्यानित्य' कहते हैं। व्याकरण मे शब्द को दो वर्गों मे विभक्त किया गया है, एक नित्य, दूसरा अनित्य। ध्वन्यात्मक शब्द 'नित्य' और वर्णात्मक शब्दअनित्य माने गए हैं।

शब्द मे संकेत ग्रह होता है। मीमांसक शब्द से केवल 'जाति' का बोध मानते हैं, 'व्यक्ति' का वोध आक्षेप से मानते हैं। नैयायिक 'जातिविशिष्ट व्यक्ति' में

---

१. "द्रव्यगुणकर्मसामान्य विशेषसमवायाभावाः सप्तपदार्थः।"

—तर्क संग्रह, प्रत्यक्ष परिच्छेद २ सं० १९९० वि०

२. "वाक्यं स्यात् योग्यताकांक्षासत्तियुक्तः पदोच्चयः।"

सा० द० परि० २. का० १.

शब्दबोध मानते हैं, वैयाकरण उपाधि अर्थात् जाति, गुण, क्रिया, द्रव्य (व्यक्ति) इन चारों के सम्मिलित स्वरूप में संकेत मानते है। इसका विस्तार से विवेचन आगे यथा स्थान किया जाएगा।

यास्क ने सार्थक शब्द के चार प्रकार बताए है—नाम, आख्यात, निपात तथा उपसर्ग। महाभाष्यकार पातञ्जलि ने ऋग्वेद के एक उद्धरण 'चत्वारि शृङ्गः' का अर्थ नाम, आख्यात, निपात तथा उपसर्ग किया है।[1] नैयायिको ने शब्द के तीन ही प्रकार—प्रकृति, प्रत्यय और निपात को स्वीकार किया है।[2]

'प्रकृति' शब्द किसी अर्थ की प्रतीति का हेतु होता है तथा प्रतिपाद्य अर्थ का निश्चित बोध कराता है। 'प्रत्यय' का अर्थ सभी प्रतीत होता है जब वह किसी अन्य शब्द से सबद्ध होकर वाक्य में प्रयुक्त होता है। उदाहरण के लिए 'राम की गाय' वाक्यांश को लीजिए—'राम' प्रकृति है, जो अपने आप अर्थ व्यक्त करने मे समर्थ है, 'का' कारक प्रत्यय है, यह तभी अर्थ व्यक्त करा सकता है, जब किसी प्रकृति से सबद्ध हो। समुच्चय बोधक अव्ययादि तथा सम्बन्धबोधक अव्ययादि का ग्रहण 'निपात' के अन्तर्गत होता है, जो अपना अन्वयबोध कराने मे समर्थ न हो उसे 'निपात' कहते हैं। ये तीनो प्रकार के शब्द तभी अर्थ प्रतीति करा सकते हैं जब कि वाक्य में प्रयुक्त हो अन्यथा अपने आप में शब्दबोध कराने की सामर्थ्य नहीं रखते हैं।

एक शब्द से ही एक ही निश्चित भाव का बोध न होकर कई भावो का बोध होता है, इसलिये एक से अधिक शब्द शक्तियाँ मानी गई हैं। जिन शक्तियो के द्वारा विभिन्न अर्थों का बोध होता है। प्रसिद्ध वाक्य "गगायाब घोपः" मे प्रवाह (वाच्यार्थ) तट (लक्ष्यार्थ) शीतत्व, पावनत्व (व्यग्यार्थ) की प्रतीति होती है, इन्ही संबन्धो को क्रमशः अभिधा, लक्षण तथा व्यंजना व्यापार के नाम से अभिहित किया जाता है। प्राचीन वैयाकरण शब्द की दो शक्तियाँ मानते है, नव्य वैयाकरण व्यंजना को अलग से शब्द शक्ति मानने के पक्ष में है। मीमासक अभिधा, लक्षण दो ही शक्तियाँ मानते है, नैयायिक तथा भाट्टमीमासक 'तात्पर्य वृत्ति' नाम की एक शक्ति आवश्यक मानते हैं जो वास्तव मे वाक्य की शक्ति है।

व्यक्ति शक्ति वादियो (कैयर आदि) का कथन है कि—शब्द से व्यक्ति का ही बोध होता है, चाहे वह शब्द भले ही जातिवाचक हो।[3] शक्तिवाद के रचयिता

---

१. चत्वारि शृङ्गाणि चत्वारि पदजातानि नामाख्यातोपसर्गनिपाता.। महा० १,१,१.

२. प्रकृतिः प्रत्ययश्चेति निपातश्चेति स त्रिधा।

—शब्द-शक्ति पु० कारका ६ पृ० २६

३. "व्यक्तिवादिनस्तु आहुः—शब्दस्य व्यक्तिरेव वाच्या।"

कैयर, महाभाष्य-प्रदीप पृ० ५७ पं० ३ सं० १६५१।

गदाधरजी ने शब्द का संकेत जाति अथवा व्यक्ति में न मानकर ज्ञान में माना है। इनकी मान्यता थी कि पद के प्रयोग से जिस कार्य की उत्पत्ति होती है वह केवल ज्ञानमात्र है। इनका अभिप्राय यह है कि—कारण से कार्य उत्पन्न होता है, उस कार्य में व्यक्ति का अन्तर्भाव नही होता है।[1] नैयायिको ने भी संकेतग्रह के संवन्ध में अपने मत व्यक्त किए है। महर्षि गौतम ने कहा है कि—"किसी पद का अर्थ वस्तुतः किसी वस्तु की व्यक्ति, आकृति तथा जाति सभी मे है।[2] नैयायिको का यह मत अनुमान सिद्धान्त पर निर्भर है, जैसे—जहा धुआँ होता है वहाँ आग भी होती है। इस प्रकार शब्द से अर्थ का सकेत होते ही जाति के साथ व्यक्ति का भी ग्रहण मानना पड़ेगा। शक्ति में व्यक्ति और जाति दोनो वर्तमान रहते है।

लक्षण-शक्ति के सम्बन्ध में नैयादिक अपना विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि प्रत्येक शब्द मे वाच्यार्थ बोध कराने की शक्ति होती है, शब्द की इसी शक्ति को उसका विशिष्ट धर्म मान सकते हैं। यह शक्ति कभी-कभी किसी दूसरी से भी संवद्ध होती है। अतः जब शब्द दूसरी शक्ति तथा उसके धर्म का ज्ञान बोध कराता है तो वह लक्षक होता है।[3]

तात्पर्य वृत्ति और वाक्यार्थ के प्रसंग में वात्स्यायन अपना मत व्यक्त करते है कि वाक्य मे स्थित वर्णों का उच्चारण किये जाने पर श्रोता उनको श्रवण करता है। एक या अनेक सुने हुए वर्ण पद-रूप में—संवद्ध नही होते, अतः सुनने वाला उन्हे संवद्ध करके पद व्यापार और स्मृति के द्वारा अन्य पदो के अर्थों का सम्बन्ध जोड़ लेता है।[4] नव्य नैयायिक—व्यजना शक्ति को नही मानते। तत्वचिन्तामणि के

---

१. "ज्ञाने पदानां शक्तिरित्येतन्मते……" शक्तिवाद, परिशिष्ट काण्ड
पृ० १७७, पं० १२ वीं सं० १९८६

२. "जात्याकृतिव्यक्तयस्तु पदार्थः।" न्यायदर्शन (गौतम)
द्वि० अध्याय, द्वि० आ० प्र० ४, सूत्र ६४।

३. "यादृशानुपूर्व्यवच्छिन्नं यद्धर्मविशिष्टयन्निरूपितशक्तिशून्यत्वे सति, यद्धर्मविशिष्ट यन्निरूपपित सम्बन्ध वन्निरूपितशक्ति निरूपकं तद्धर्मप्रकारतद्विशेष्यकबोधता-दृशानुपूर्व्यवच्छिन्नं लक्षकमिति पर्यवसितम्।"
—कृष्णकांती टीका (श० श० प्र०) पृ० १५१ पं० ७, प्र० सं०

४. "वाक्यस्थेषुखलु वर्णपूच्चारत्सु तावच्छ्रवणं भवति श्रुतं वर्णमेकमनेकं वा पदभावेन न प्रतिसन्ध्यायपद व्यवस्यति पदव्यसानेनस्मृत्या पदार्थंप्रतिपदयते पदसमूह प्रतिसन्धानाच्च वाक्यं व्यवस्यति सम्बद्धर्दाश्च पदार्थान्गृहीत्वा वाक्यार्थं प्रतिपदयते।"—न्यायसूत्र-वात्स्यायन भाष्य, ३, २, ६२।

प्रसिद्ध टीकाकार गदाधर ग्रन्थ के प्रारम्भ मे "संकेत तथा लक्षण को पद के अर्थ की प्रवृत्ति के रूप मे स्वीकार करते हैं।[1]

मीमासको के मतानुसार "पदो से जाति का ही सकेत होता है।[2] वे कहते हैं कि जब हम 'घट' कहते हैं तो उसमे सभी घटो मे पाई जाने वाली घट जाति का ही अर्थ अभीष्ट होता है, घट विशेष किसी लाल या काले का नहीं। इनका मत है कि-व्यवहार में व्यक्ति का ज्ञान 'आक्षेप' (अनुमान या अर्थापत्ति) द्वारा होता है। यह 'आक्षेप' सिद्धान्त भाट्टमीमासको का है। पार्थ सारथि मिश्र ने 'न्याय रत्नमाला' मे प्रतिपादित किया है कि—"शब्द से सर्वप्रथम जाति का ही अर्थ प्रतीत होता है, उसके बाद वह किसी व्यक्ति विशेष का आरोप कर लेता है।"[3] श्रीकर का कथन है कि—पद का सकेत तो जाति मे ही होता है, पर उपादान से व्यक्ति बोध हो जाता है। मण्डन मिश्र पद से सर्व-प्रथम जाति का बोध फिर लक्षण से व्यक्ति विशेप का बोध स्वीकार करते हैं।[4] व्यक्ति विषयक शब्दबोध के लिए 'प्रभाकर' 'आक्षेप', उपादन या लक्षण को नही स्वीकार करते। उनके मतानुसार जाति से व्यक्ति का स्मरण हो जाने परअर्थ-प्रतीति हो जाती है।

लक्षण वृत्ति की मान्यता एक प्राचीन मान्यता है। मीमासा सूत्र-भाष्यकार आचार्य शवर स्वामी (ईसा की प्रथम शती) मे स्पष्ट कहा है—"ऐसा किस तरह हो सकता है कि शब्द अपने अर्थ के अतिरिक्त किसी दूसरे अर्थ मे प्रयुक्त किया जाए ? इस दृष्टि से कि वह अपने अर्थ के अभिधान के द्वारा किसी न किसी हेतु

---

१. "संकेतो लक्षणा चार्थे पदवृत्तिः।"—शक्तिवाद, सामान्य खण्ड, पृ० १, पं० १ सं० १९८६

२. "मीमांसकास्तु गवादि पदानां जातिरेव वाच्या, न तु व्यक्तिः।" शक्तिवाद, परि० का० पृ० १७३ पं० १, सं० १९८६

३. व्यक्ति प्रतीतिरस्माकं जातिरेव तु शब्दतः।
प्रथमावगता पश्चाद् व्यक्तिं यां काचिदाक्षिपेत्। न्यायरत्नमाला, वाक्यनिर्णय का० ५, ३८ पृ० ९९।

४. जातेरस्तित्वनास्तित्वे न हि कश्चिद् विवक्षति। नित्यत्वाल्लक्षणीयायां व्यक्ते-स्तेहि विशेषणे।—मण्डन मिश्र (उद्धृत ध्वनि संप्रदाय) डॉ० भोला शंकर व्यास, प्र० सं० पृ० ८२,

५. प्रभाकरास्तु—जातिज्ञानादेव जाति प्रकारेण व्यक्तेः स्मरणं शाब्दबोधश्च, न तु निर्विकल्पकरूपं जातिस्मरणं, निर्विकल्पकानभ्युपगमात्। शक्तिवाद, १० का० पृ० २१६

वश अपने अर्थ से भिन्न किसी अन्य अर्थ का प्रतिपादन करना चाहता है।"[1] इसके अतिरिक्त लक्षणा की मान्यता के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है कि—"लक्षणा इसलिए मान्य है क्योंकि लोक में जो वाग्व्यवहार है उसी में यह अनुस्यूत है।"[2]

महामीमांसक कुमारिल भट्ट ने इसीलिए "रूढ़ि और प्रयोजन को लक्षणा का द्विविध हेतु माना है।"[3] गौणी लक्षणा के सम्बन्ध में वे कहते हैं कि—"लक्षणा मे मुख्यार्थ तथा लक्ष्यार्थ मे अविनाभाव की प्रतीति होती है। जिस लक्षणा मे लक्षित होते हुए गुणो का योग होता है, वहाँ गौणी वृत्ति होती है।"[4] प्राभाकर मीमासकों के मतानुसार गौणी शक्ति लक्षणा से भिन्न है।[5] इसका उल्लेख 'प्रतापरुद्रीय' के रचयिता विद्यानाथ ने किया है।

तात्पर्यवृत्ति और वाक्यार्थ के सम्बन्ध मे प्रभाकर का मत 'अन्विताभिधानवाद' प्रसिद्ध है—इनके मतानुसार जिसे वाक्यार्थ कहा जाता है वह वस्तु अभिधा-वृत्ति-विषय भूत ही अर्थ है क्योकि पद आकाक्षा, योग्यता और सामीप्य के कारण सर्व प्रथम अन्वित होते है, तत्पश्चात् अभिधा द्वारा अर्थ की प्रतीति होती है। भाट्ट मीमांसको को अभिहितान्वयवादी कहा जाता है—क्योकि इनके अनुसार पद प्रथम वाच्यार्थ को प्रस्तुत करता है, फिर अन्वित होकर वाक्यार्थ की प्रतीति कराता है। यह अर्थ वस्तुतः वाच्यार्थ न होकर तात्पर्यार्थ है। अत. यह अर्थ तात्पर्य नामक अलग शक्ति के द्वारा प्रतीत होता है। ये मीमांसक प्रतीयमान अर्थ को अभिधा के द्वारा प्रतीत-वाच्यार्थ की कोटि मे रखते हैं। ये लोग शब्द से विशिष्ट अर्थ का सकेत नहीं मानते, पदो का सकेत सामान्य अर्थ मे मानते है, फिर आकांक्षा, योग्यता और सामीप्य के द्वारा विशिष्ट अर्थ की प्रतीति मानते है।

प्राभाकर मीमासक तात्पर्य शक्ति को भी नही मानते, इनके मतानुसार वाच्यार्थ ज्ञान (संकेत ग्रहण) वाक्य के ही रूप मे होता है। इनका कथन है—"समस्त व्यवहार वाक्यार्थ से ही होता है।"[6]

---

१. 'कथं पुनः परशब्दः परत्र वर्तते ? स्वार्थाभिधानेनेति ब्रूमः'—
मी० भा०, शबर स्वामी ३।३

२. लक्षणाऽपि हि लौकिक्येव—मीमांसा भाष्य............ ।

३. निरूढाः लक्षणाः काश्चित सामर्थ्यादभिधानवत्। क्रियन्ते साम्प्रतंकाश्चित्—काश्चिनैवत्वशक्तितः ॥ —'तंत्रवार्तिकः !............

४. अभिधेयाविनाभावप्रतीतिर्लक्षणोच्यते। लक्ष्यमाणगुणैर्योगाद वृत्तेरिष्टा तु गौणता।
तंत्रवार्तिक. का० प्र० सं० स० सिह सं० १८५५ पृ० ३६

५. गौणवृत्तिर्लक्षणातो भिन्नेति प्रभाकराः।
—प्रतापरुद्रीय (के० पी० त्रिवेदी सं० पृ० ४४)

६. वाक्यार्थेन व्यवहारः—बृहती पृ०१६६ (बृ० टीका ऋजुविमला, शालिकनाथ मिश्र)।

इस प्रकार मीमांसक, शब्द की तृतीय शक्ति व्यजना को नही स्वीकार करते वल्कि उसे अभिधा या तात्पर्य वृत्ति के अन्तर्गत ही मानते है।

मुकुल भट्ट ने अपनी 'अभिधावृत्ति मातृका' में अभिधा शक्ति का विवेचन किया है और लक्षणा को भी अभिधा का ही अङ्ग माना है।[1] फिर भी लक्षणा का विशद विवेचन उनकी पुस्तक मे प्राप्त होता है। वे लक्षणा के—वक्ता, वाक्य तथा वाच्य तीन भेदक तत्व मानते है। इन्ही तीनो भेदक तत्वो के आधार पर शुद्धा तथा उपचार दोनों प्रकार की लक्षणाओ के तीन-तीन भेद भी वे करते है। वे इस प्रकार लक्षणा के कुल ६ भेद करते हैं।[2] इनके अनुसार वक्ता, वाक्य और वाच्य का जव तक ज्ञान नही हो जाता, तव तक लक्ष्यार्थ की प्रतीति नही होती। अत लाक्षणिक शब्दों मे अपने आप अर्थ वोधन की क्षमता नही है। इनकी वक्तृनिवन्धना लक्षणा वस्तुध्वनि के समान है, वाक्यनिवन्धना अलकार ध्वनि के सदृश और वाच्यनिवन्धना रसध्वनि के सदृश है। इस तरह लक्षणा के नाम पर व्यजना का अन्तर्भाव किया गया है।

कुतंक भी अभिधा जैसी एक ही शक्ति मानते है। इनकी वक्रोक्ति प्रसिद्ध अभिधान से भिन्न विलक्षण और विचित्र अभिधा ही है।[3] इनके अनुसार लक्षणा शक्ति अभिधा का ही एक अङ्ग है और व्यंजना को भी वे लक्षणा के अन्तर्भूत मानते हैं। उन्होंने उपचार वक्रता के अन्तर्गत आशिक-व्यजना का, पर्यायवक्रता के अन्तर्गत शब्द शक्तिमूला व्यजना का, और अन्य प्रकार की वक्रताओ मे कई ध्वनि भेदों का अन्तर्भाव कर लिया है।[4]

व्यंजना शक्ति के विरोधी आचार्यों मे सवसे प्रमुख स्थान महिम भट्ट का है। अपने 'व्यक्ति विवेक' नामक ग्रन्थ मे इन्होने व्यजना का खण्डन किया है। वे व्यग्यार्थ को व्यजना के द्वारा प्रतीयमान अर्थ न मानकर अनुमेय मानते है। अत. उनके मत में अनुमान द्वारा ही व्यंग्यार्थ की उपलब्धि होती है। उनका कथन है कि—शब्द तथा अर्थ मे से कोई भी व्यजक नही हो सकता। शब्द में केवल अभिधा होने से वह सदा वाचक ही होगा, तथा अर्थ मे केवल लिंगता होने से सदा हेतु होगा।[5]

---

१. इत्येतदभिधावृत्तं दशधात्र विवेचितम्। —अभिधा वृ० मा० का० १२

२. वक्तुर्वाक्यस्य वाच्यस्य रूपभेदावधारणात।
लक्षणा त्रिप्रकारैव विवेक्तव्या मनोषिभिः। —अभिधा वृ० मा० का० ६

३. वक्रोक्तिः प्रसिद्धाभिधानव्यतिरेकिणी विचित्रैवाभिधा।
—वक्रोक्तिजीवित, पृ० २१, डा० डे द्वारा सं० १९२५

४. एष शब्दशक्तिमूलानुरणनरूपव्यंग्यस्य पदध्वनेर्विषयः॥
वक्रोक्तिजीवित, पृ० ७ डॉ० डे द्वारा सं० १९२५

५. शब्दस्यैकाभिधा शक्तिरर्थस्यैकैव लिंगता।
न व्यंजकत्वमनयोः समस्तीत्युपपादितम्॥—व्यक्ति वि० १, २६ पृ० १०५

अपोहवादियो के मतानुसार शब्द का सकेत 'अपोह' या अतद्व्यावृत्ति मे होता है। इन बौद्ध दार्शनिकों ने शब्द का सकेत जाति मे नही स्वीकार किया क्योंकि जाति नित्य पदार्थ है और किसी पदार्थ की नित्यता इनके मत से अनुपपन्न है। व्यक्ति भी क्षणभंगुर है, इसलिए उसमे भी शाब्द-बोध नही माना जा सकता है। इसी कारण से इनका कथन है कि अन्य पदार्थ के निराकरण पर जो अवशेष पदार्थ रहते हैं, यद्यपि उनमे भी क्षणिकता वर्तमान रहती है फिर भी दीपकलिका या नदी प्रवाह की तरह उनमे अखण्डता होने के कारण स्थिरता की भ्रांति हो जाती है।[1]

धनिक का कथन है कि—"प्रतीयमान अर्थ तात्पर्य से भिन्न नही होता है और काव्य ध्वनि भी उसका व्यंजक नही है। वस्तुत. इनकी तात्पर्यवृत्ति को जहाँ तक कार्य होता है वहाँ तक फैलाया जा सकता है।[2]

भट्ट लोल्लट के मतानुसार अभिधा एक अर्थ बोध कराने के बाद क्षीण नही होती है, अपितु दूसरे अर्थों को भी द्योतित करती रहती है। —अतः वाक्य से जितने भी अर्थो की प्रतीति होती है, उन सभी व्यापारो में अभिधा ही इनके मतानुसार वर्तमान रहती है। इसीलिए वे इस व्यापार को दीर्घ दीर्घतर मानते है।[3]

ध्वनिकार, अभिनव गुप्त तथा मम्मट आदि आचार्यों द्वारा प्रतिपादित व्यंजना व्यापार :—

"महाकवियो की वाणी मे प्रतीयमान अर्थ जैसा एक विशेष ही तत्व पाया जाता है। जिस प्रकार कामिनियो के अङ्गो मे लावण्य जैसी एक सर्वथा विलक्षण ही वस्तु होती है, ठीक वैसे ही काव्य मे भी यह प्रतीयमान अर्थ काव्य के अन्य अङ्गों से सर्वथा भिन्न तथा अतिशय चमत्कारकारी होता है।"[4] उदाहरण के लिए 'न स संकुचितः पन्था येन वाली हतो गत.' मे अभिधा तो इतना कहकर ही मौन हो जाती

---

१. "वक्तावानन्त्यादिदोषाद् भावस्य च देशकालानुगमाभावात् तदनुगताया अतद्-व्यावृत्तौ संकेत इति सौगताः।"–गोविन्द ठक्कुर :–प्रदीप, द्वितीय उ०, पृ० ३६ सन् १९२९

२. तात्पर्य व्यतिरिक्तत्वात् व्यंजकत्वस्य न ध्वनिः।
यावत् कार्य प्रसारित्वाद् तात्पर्य न तुलधृतम्॥ दशरूपक, प्र० ४, श्लोक ३७ अवलोक टीका में

३. "सोऽयमिषो रिवदीर्घदीर्घतरोऽभिधाव्यापारः।"
–सा० दर्पण, सं० शालिग्राम शास्त्री, द्वि० अ०, पृ० २१६, प० ३, सं० १९९१.

४. प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यद्यत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवांगनासु॥
—ध्वन्यालोक का० ४ उ० १

है कि—जिस पथ से वाली यमपुर गया है, वह संकुचित नही हुआ है। लक्षणा संकुचित का आशय स्पष्ट कर सकती है किन्तु वास्तविक अर्थ की कि 'जिस प्रकार वाली मारा गया है उसी प्रकार तुम भी मारे जा सकते हो' की प्रतीति कैसे होती है ? इसके लिए व्यंजना की सत्ता मानना अनिवार्य है। कन्हैयालाल पोद्दार के शब्दो मे उपर्युक्त मतों का सारांश यहाँ द्रष्टव्य है:—

१—जैसा कि ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट है, लक्षणा मे जो प्रयोजन रूप व्यंग्यार्थ होता है, जिसके लिए लक्षणा की जाती है, उसका बोध लक्षणा द्वारा न होकर केवल व्यंजना द्वारा ही हो सकता है।

२—असंलक्ष्य-क्रम-व्यंग्य मे रस-भावादि व्यंग्य रहते है जो न तो अभिधा के वाच्यार्थ हैं, न लक्षणा के लक्ष्यार्थ।

३—समान अर्थ के बोधक शब्दो का अभिधेयार्थ सर्वदा एक ही होता है परन्तु व्यंग्यार्थ भिन्न हो सकते है।

४—प्रकरण, वक्ता, बोधक, स्वरूप, काल, आश्रय, निमित्त कार्य, सख्या और विषय आदि के अनुसार व्यग्यार्थ प्रायः वाच्यार्थ से भिन्न हो जाता है। उदाहरण के लिए 'सूर्यास्त हो गया' इस वाक्य का वाच्यार्थ तो सभी के लिए एक होगा परन्तु व्यग्यार्थ प्रकरण आदि के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप मे प्रतीत होगा।

५—वाच्यार्थ और व्यग्यार्थ मे कालभेद सर्वत्र रहता है। अर्थात् वाच्यार्थ —का बोध प्रथम और व्यंग्यार्थ का बाद मे होता है।

६—वाच्यार्थ केवल शब्द मे ही रहता है पर व्यग्यार्थ शब्द के एक अ श शब्द के अर्थ और वर्णों की स्थापना-विशेष मे भी रहता है।

७—वाच्यार्थ केवल व्याकरण आदि के ज्ञान मात्र से हो सकता है, परन्तु व्यंग्यार्थ केवल विशुद्ध प्रतिमा द्वारा काव्य मार्मिकों को ही भासित होता है।

८—वाच्यार्थ से केवल वस्तु का ही ज्ञान होता है, पर व्यग्यार्थ से चमत्कार (आनन्द का आस्वादन) उत्पन्न होता है।

प्राचीन व्याकरण ग्रन्थ और शब्द-शक्ति

वैयाकरण शब्द दो प्रकार के मानते हैं (१) कार्य (अनित्य) और (२) नित्य।[1] अनित्य से उनका अभिप्राय है, श्रोत्रग्राह्य अथवा उच्चारणजन्य ध्वनि। इसी को नाद भी कहा गया है। नित्य से उनका तात्पर्य मूल शब्द तत्व से है, जो न उच्चारण जन्य है, और न श्रोत्रग्राह्य ही। इसे ही वे स्फोट कहते है।[2] अतः

---

१. तत्र त्वेष निर्णयः। यद्येव नित्यः। अथापि कार्यः उभयथापि लक्षणंप्रवर्त्यमिति।
महाभाष्य १ म० आ० पृ० १३

२. स्फुटत्यर्थोऽस्मादिति स्फोटः—महाभाष्य १ म० आ० पृ० १३

अर्थ की जिससे प्रतीति हो उसे स्फोट कहते हैं। इस प्रकार शब्द के दो भेद— पहला ध्वनि और दूसरा स्फोट हुआ। ध्वनि से व्यक्त होने पर ही स्फोट, अर्थ प्रत्यायक होता है। वास्तव मे यह स्फोट व्यग्य और ध्वनि—व्यंजक है।[1] स्फोट सदैव एक रूप रहता है। यह अभिन्न, कालिक, निरवयव, पूर्ण और नित्य है।[2] यही अर्थ प्रत्यायन का मूल हेतु है। इसके अभाव मे पूर्वा पर क्रम की अवतारणा भी सम्भव नही होती है।[3]

सिद्धान्त-रूप मे वैयाकरण अखड वाक्य स्फोट को ही स्वीकार करते हैं। उनके कथनानुसार न तो पद है, न ही पद निर्माता वर्ण समूह ही है। वर्ण का निर्माता वर्णावयव भी कोई नही है।[4] पद और वाक्य के सम्बन्ध मे उनके विचार इस प्रकार है -पद और अर्थ मे मूलतः कोई भेद नही होता है।

शब्द तथा अर्थ के सम्बन्ध को वे नित्य मानते हैं।[5] इसकी पुष्टि महाभाष्य-कार पतजलि ने भी की है। भर्तृहरि ने अर्थ के समूह को शब्द पर ही अवलम्बित माना है। शब्द उच्चारण से जिस अर्थ की प्रतीति होती है वह उस शब्द का अर्थ है। इनके मत से 'वाक्य उस पद को कहते हैं, जो एक ही क्रिया के द्वारा अभिहित अर्थ का बोध कराता है।[6] 'कैयट' के अनुसार इसका एक ही अर्थ है, प्रत्येक शब्द मे अर्थावयव के बोध की योग्यता होती है। ये लोग नित्यता के बल पर शब्द और अर्थ को एक ही आत्मा के दो रूप मानते हैं।[7] स्फोटवादी स्फोट को समझाने के लिए कहते हैं कि स्फोट तो अंधेरे मे रखे हुए घड़े के सदृश्य है, जिसकी ज्ञप्ति दीपक से होती है। घड़ा तो पहले से ही रहता है। दीपक मात्र उसे प्रकाशित कर देता है। उसी तरह स्फोट तो नित्य तथा अखण्ड तत्व है, वर्ण, पद तथा वाक्य केवल उसे

---

१. ग्रहण ग्राह्ययोः सिद्धा योग्यता नियता यथा।
व्यंग्य व्यंजक भावेन तथैव स्फोटनादयोः॥ —वा० प० १।९८

२. स्फोटस्याभिन्नकालस्य ध्वनिकालानुपातिनः।
ग्रहणोपाधिभेदेन वृत्तिभेदं तु वैकृतः॥ —वा० प० १।७८

३. नादस्य-क्रमजातत्वन्न पूर्वोनापरश्च सः। —वा० प० १।४९

४. पदे न वर्णा विद्यन्ते वर्णेष्वयवा न च।
वाक्यात्पदानात्यन्तं प्रविवेको न कश्चन॥ —वा० प० १।७४

५. "सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे" —कात्यायन—म० भा० १।१

६. वाक्यं तदपि मन्यन्ते यत्पदं चरितक्रियम्'''तदप्येकं समासार्थं वाक्यमित्यभिधी-यते॥ —वा० प० २, ३२६-२७

७. "एकस्यैवात्मनोभेदौ शब्दार्थावपृथक्स्थितौ"। —वा० प० २।३१

व्यंजित करते हैं।[1] अभिधा के सम्बन्ध में भर्तृहरि कहते है कि—शब्दों में अभिधान (वाचक) तथा अभिधेय (वाच्य) का सम्बन्ध अभिधा द्वारा नियमबद्ध किया जाता है।[2] अभिधेयार्थ की प्राप्ति के सम्बन्ध मे यह मत द्रष्टव्य है कि अभिधेयार्थ लोक-व्यवहार से जाना जाता है।[3] सकेत के सम्बन्ध मे वैयाकरणों का कथन है कि–जब हम किसी पदार्थ का बोध कराते है, तो केवल जाति या व्यक्ति का ही बोध न करा कर पदार्थ के जाति, गुण क्रिया तथा द्रव्य (व्यक्ति) चारो का बोध कराते है। अत. इन चारो की सम्मिलित शक्ति (उपाधि) मे सकेत मानना उचित है। वे इसे स्पष्ट करते हुए कहते है कि—यदि गोःशुक्लश्चलो डित्थ. (गाय, सफेद, जाता हुआ, डित्थ) को ले, तो यदि व्यक्ति मे शक्ति माने तो चारो शब्दो का अर्थ एक ही गो व्यक्ति होगा, फिर तत्तत् भाव का बोध न हो सकेगा। अतः शब्द का सकेत उपाधि मे होता है।[4] लक्षणा के सम्बन्ध मे पातजलि ने पाणिन के सूत्र मे व्याख्या के प्रसंग में एक प्रश्न उठाया है।[5] इसके उत्तर मे उन्होने चार प्रकारो का निर्देश किया है–१–तात्स्थ्य–मचान हँसते हैं। २—ताद्धर्म्य–ब्रह्मदत्त जटी है। ३—तात्सा-मीप्य—गंगा मे घोष है। ४—तात्साहचर्य—कुन्तो को अन्दर भेज दो। मम्मट प्रभृति विद्वानो ने शक्ति प्रकरण मे इनको आधार रूप मे स्वीकार किया है। वैया-करण जो मम्मट से प्रथम हुए, वे शब्द शक्ति के दो ही भेद अभिधा और लक्षणा को मानते थे।

नागेश ने शब्द शक्तियों के विषय में वैयाकरणो के सिद्धान्तो का प्रतिपादन करते हुए "वैयाकरण सिद्धान्त मंजूषा नामक ग्रन्थ की रचना की हैं। इस ग्रन्थ को नागेश ने "वृहन्मजूषा", "लघुमजूषा" तथा "परमलघुमंजूषा" ये तीन रूप दिए हैं। शक्ति सम्बन्धी सिद्धान्तो का ज्ञान "लघुमंजूषा" से पर्याप्त रूप मे हो जाता है। उनका कथन है कि "वाक्य मे मुख्यार्थबाध के बाद भी अर्थ की प्रतीति होती है। यह

---

१. यदि कश्चिदेवमाह न वर्णत्रयमयंस्य वाचकम् स्फोटव्यतिरिक्तत्वात्घटवदिति ॥
उम्बेकः श्लोकवार्तिक टीका स्फोटप्रकरण. १३१

२. क्रियाव्यवेतः सम्बन्धो दृष्टः करण कर्मणोः।
अभिधा नियमस्तस्मादभिधानाभिधेययो. ॥ —वा० प० ३।४०

३. लोकतोऽर्थप्रयुक्ते शब्दप्रयोगे शास्त्रेण धर्म नियमः। म० भा० प्रथम आ० पृ० १७

४. यद्यप्यर्थक्रियाकारितया प्रवृत्तिनिवृत्तियोग्या व्यक्तिरेव तथाप्यानन्त्याद–व्यभि-चाराच्च तत्र संकेतः कर्तुं न युज्यते इति गौः शुक्लश्चलो डित्थ इत्यादीनां विषय विभागो न प्राप्नोतीति च तदुपाधावेव संकेतः।
[काव्य-प्रकाश, व्या० डॉ० सत्यव्रतसिंह सं० १९५५ द्वितीय उल्लास पृ० २६]

५. 'पुंयोगादाख्यायाम' –अष्टाध्यायी–४, १, ४८.

अर्थ या तो प्रसिद्ध अर्थ होता है या अप्रसिद्ध। यह कभी तो मुख्यार्थ से—सम्बद्ध होता है, कभी नही भी होता है। इस प्रकार का अर्थ जिस शक्ति के द्वारा व्यक्त होता है, वही व्यंजना है'।[1] उन्होने कहा है "कटाक्ष से अभिलाषा की व्यंजना होती है, इस प्रकार की प्रतीत अनुभव सिद्ध तथा प्रसिद्ध है। अतः चेष्टा में भी व्यजना मानना आवश्यक है।"[2] उनके मत से पद और अर्थ दोनों व्यंजक होते है। जहाँ अर्थादि व्यजक होते है, वहाँ व्यंग्यार्थ बोध वक्तृबोद्धव्यवाच्यादि—वैशिष्ट्य ज्ञान के द्वारा ही होता है। श्रोता की 'प्रतिभा' भी इस प्रतीति मे सहकारी कारण होती है।[3] वे व्यजना को पूर्वजन्म के संस्कार से भी सबद्ध मानते है।[4] इसका अभिप्राय यह है कि वाच्यार्थ के जान लेने पर ही व्यग्यार्थ का ग्रहण होता है। अतः ऐसे प्रकरण मे मुख्यार्थ बाघ नही होता। इसलिए यह अर्थ लक्षणा से उपपादित नही होता, फिर लक्षणा मे व्यंजना को कैसे अन्तर्भावित किया जा सकता है?[5] पदो की तरह अव्यय उपसर्गादि भी व्यजक होते हैं। स्फोट तो व्यंग्य ही माना गया है। नागेश के मत से निपात पदशक्ति के द्वारा व्यग्यार्थ का बोध कराते है। उनका कथन है कि—वैयाकरणो के लिए भी व्यजनावृत्ति का मानना आवश्यक है।[6]

---

१. "मुख्यार्थबाधग्रह निरपेक्षण बोधजनको मुख्यार्थसम्बद्धा-सम्बद्ध साधारण प्रसिद्ध प्रसिद्धार्थ विषयको वक्त्रादि वैशिष्ट्य ज्ञानप्रतिभाद्युद्बुद्धः संस्कार विशेषो व्यंजना।" [वै० सि० लघुमंजूषा स० सभापति शर्मा उपाध्याय सं० १९८६, पृ० १३३, व्यंजनानिरूपणम्]

२. "एषा च शब्द-तदर्थ-पद पदैकदेश वर्ण-रचना चेष्टादिषु सर्वत्रतथैवानुभवात्।' [वै० सि० मं० सं० १९८६ पृ० १३३ व्यंजना निरूपणम् सं० सभापति शर्मा उपाध्याय]

३. "वक्त्रादिवैशिष्ट्याविज्ञानं व्यंग्यविशेषबोधे सहकारीति न सर्वत्र तदपेक्षेत्यन्यत्र-विस्तारः।" [वै० सि० म०, सं० सभापति शर्मा उपाध्याय, सं० १९८६ पृ० १३३ व्य० नि०]

४. "एवञ्च शक्तिरेतज्जन्मानुभूतंवबोध जनिका व्यञ्जनातु जन्मान्तरगृहीताऽपीत्यपि-विशेषोऽत्र।" [वै० सि० मं०, सं० सभापति शर्मा उपाध्याय सं० १९८६ पृ० १३३ व्यं० वि०]

५. "तेषां मुख्यार्थाभावेन लक्षणायां असम्भवाद द्योतकत्वंवति भावः।" [वै० सि० मं० सं० सभापति शर्मा उपाध्याय, सं० १९८६ पृ० १३४]

६. '......वैयाकरणानामव्येतत्स्वीकार आवश्यकः।" [वै० सि० मं० सभापति शर्मा उपाध्याय, सं० १९८६ पृ० १३३]

संस्कृत-काव्य-शास्त्र में शब्द शक्ति का विवेचन

शब्द शक्तियो के सम्बन्ध मे साहित्य-शास्त्र के आचार्यो ने पर्याप्त मात्रा मे विचार किया है। यदि सच पूछा जाए तो काव्य-शास्त्र के भिन्न-भिन्न अङ्गो और उपाङ्गो मे शब्द-शक्ति एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अङ्ग है। भारतीय काव्य-शास्त्र के अनुसार व्यजना शक्ति ही काव्य का मूल आधार है। मम्मट जैसे प्रकाण्ड मनीषी आचार्य व्यंजना युक्त काव्य को ही सर्व श्रेष्ठ मानते है।[1] अतः साहित्य-शास्त्र के आचार्यो के सामने व्यजना-शक्ति को मानने और मनवाने का एक बडा महत्वपूर्ण कार्य था। इस कार्य में उन्हे अन्य शास्त्रो के उद्भट विद्वान आचार्यो से बहुत गम्भीर शास्त्रार्थ करना पडा है। इस कार्य मे उनकी सफलता इतनी मूल्यवान समझी गई थी कि मम्मट और विश्वनाथ ने 'ध्वनि प्रस्थापन परमाचार्य' की गौरव-पूर्ण उपाधि से अपने को विभूषित किया। शब्द-शक्तियो का अभिधा, लक्षण और व्यंजना के रूप मे विविधि विभाजन काव्य-शास्त्र मे ही पूर्णतया स्पष्ट हुआ है और वस्तुतः वही से इसका सार्वत्रिक प्रचार भी हुआ है। यहाँ हम साहित्य-शास्त्र मे किए गए शब्द-शक्ति विचार का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर रहे है।

इस प्रकरण को प्रारम्भ करते हुए आचार्य मम्मट ने वाचक लाक्षणिक और व्यजक तीन प्रकार के शब्द तथा वाच्य, लक्ष्य और व्यग्य तीन प्रकार के अर्थ बताए है।[2] इसी प्रकार शब्द व्यापार भी अभिधा, लक्षणा और व्यजना के रूप मे तीन प्रकार का होता है। यही तीनो शब्द की शक्तियाँ है। शब्द के उच्चारण के साथ जिस अर्थ का बोध होता है, वह उस शब्द का मुख्य अथवा वाच्य अर्थ है। मुख्य अर्थ और उसके बोधक अर्थ मे वाच्य-वाचक सम्बन्ध होता है और जिस वृत्ति के कारण इन दोनो में वाच्य-वाचक सम्बन्ध उत्पन्न होता है उसे अभिधा व्यापार कहते हैं।[3] उदाहरणार्थ पुरुष से मानववशान्तर्गत नर का बोध होता है, यही इसका मुख्यार्थ है। मानव वंश के अन्तर्गत नर-व्यक्ति अथवा जाति यह पदार्थ और पुरुष शब्द इन दोनो मे वाच्य-वाचक सम्बन्य है और यह सम्बन्ध अभिधा से ज्ञात होता है। किन्तु व्यवहार मे शब्द के मुख्य अर्थ से ही निर्वाह नही होता है। बहुत जगह मुख्य अर्थ से भिन्न किन्तु उससे सम्बन्धित अर्थ भी लेना पड़ता है जो लक्षणा और व्यंजना के क्षेत्र में आ जाते है।[4]

---

१. इदमुत्तममति शयिनि व्यंग्ये वाच्याद्ध्वनिर्बुधैः कथितः।

का० प्र० प्रथम उल्लास का० ४

२. स्याद्वाचको लाक्षणिकः शब्दोऽत्र व्यंजक स्त्रिधा। का० प्र० उ० २, का० ५

३. 'स मुख्योऽर्थस्तत्र मुख्यो व्यापारोऽस्याभिधोच्यते।' का० प्र० उ० २, का० ११

४. शब्द व्यापारतो यस्य प्रतीतिस्तस्य मुख्यता।
अर्थावसेयस्य पुनः लक्ष्यमाणत्व मुच्यते॥ अभिधा वृत्तिमातृका

जब अभिधा शक्ति के द्वारा प्राप्त होने वाला अर्थ बाधित हो जाता है तब यदि उसी से संबद्ध कोई अन्य अर्थ लिया जाए और उसे लेने मे कोई रूढ़ि [प्रयोग परम्परा] अथवा प्रयोजन विशेष हो तो इस प्रकार उपलब्ध होने वाला अर्थ लक्ष्य अर्थ होता है। लक्ष्यार्थ की प्रतीति कराने वाला शब्द लाक्षणिक कहलाता है और शब्द-व्यापार लक्षणा।

नैयायिक शब्द की केवल अभिधा वृत्ति को स्वीकार करते है और लक्षणा को अनुमान के अन्तर्गत स्वीकार कर लेते हैं।

मीमांसक अभिधा और लक्षणा दोनो वृत्तियों को स्वीकार करते हैं।

व्यंजना साहित्य शास्त्रियो ने एक तीसरा अर्थ भी माना है जिसे व्यंग्यार्थ कहते हैं। जिस शब्द से व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है उसे व्यंजक कहते हैं। अर्थ और शब्द मे व्यंग्य-व्यंजक भाव सम्बन्ध होता है। जिस व्यापार से इस सम्बन्ध का ज्ञान होता है उसे व्यंजना व्यापार कहते हैं। उत्तर रामचरित का एक उदाहरण देखिए :—

हे हस्त दक्षिणा मृतस्य शिशोर्द्विजस्य
जीवातवे विसृज शूद्रमुनौ कृपाणम्।
रामस्य बाहुरसि निर्भर गर्भ खिन्न—
सीताविवासनपटो करुणा कुतस्ते॥ उत्तर०—२।१०

यहाँ राम शब्द का अर्थ 'दशरथ पुत्र' रूप मुख्यार्थ को प्रकट नही करता वरन् यहाँ इसका लक्ष्यार्थ है। बिना किसी हिचकिचाहट के क्रूर कर्म करने वाला ही प्रमुख है। किन्तु यह अर्थ यही शान्त नही होता, क्योकि राम की यह आत्म-भर्त्सना सीता के प्रति अपने द्वारा किए गए की प्रतीति करती है। इस कथन से राम के अन्तर मे छिपे हुये दुःखादि के भाव व्यक्त होते है।

साहित्य-शास्त्र ने व्यंजक शब्द, व्यंग्यार्थ, व्यंग्य व्यजक भाव सम्बन्ध और व्यंजना व्यापार को स्वीकृत किया है। यही साहित्य-शास्त्र की विशेष उपलब्धि है। इस सम्बन्ध में मम्मट का अभिप्राय यह है कि—वाचक, लाक्षणिक और व्यंजक ये तीनों भेद काव्य में ही हो सकते है। वृत्ति भेद से एक ही शब्द वाचक, लक्षक और व्यंजक तीनों हो सकता है।

व्यंग्यार्थ ही काव्य का परमार्थ है, इस कथन का अभिप्राय यह नही है कि अभिधा और लक्षणा का काव्य मे कोई स्थान ही नही है। काव्यगत शब्द-व्यापार केवल अभिधा या लक्षणा में ही न रुक कर आगे भी बढ़ता है, तथा व्यंजना में जा कर विश्रान्त होता है। इसी को काव्य में शब्दार्थ के सहभाव का चरम पर्यवसान कहते हैं। आनन्दवर्धन इसी को ध्वनि कहते हैं और कुन्तक इसी को साहित्य का परमार्थ कहते हैं।

अभिधा और वाच्य-वाचक सम्बन्ध

अभिधा शक्ति के द्वारा शब्द और अर्थ मे वाच्य-वाचक भाव सम्बन्ध निष्पन्न होता है। मम्मट का कथन है कि उच्चारण होते ही जो शब्द साक्षात् साकेतिक अर्थ का बोध कराने में समर्थ होता है वह वाचक शब्द होता है।[1]

संकेत क्या है ?

नैयायिकों का मत है कि शब्द का सकेत ईश्वरेच्छा से उत्पन्न होता है। इसी का विरोध करते हुए नव्य नैयायिको ने कहा—"इच्छामात्र सकेत:"। नैयायिको के इस मत का खण्डन करते हुइ नागेशभट्ट ने 'परमलघुमंजूपा' में लिखा है—इच्छा चाहे वह ईश्वर की हो या नर की, शब्द और अर्थ का पारस्परिक सम्बन्ध नही स्थिर कर सकती।

सकेत निर्धारण के सम्बन्ध मे नागेश भट्ट का कथन है कि—पद और पदार्थ मे वाच्य-वाचक भाव सम्बन्ध पाया जाता है। इतरेतराध्यास के द्वारा उत्पन्न हुए तादात्म्य के कारण इस वाच्य-वाचक सम्बन्ध का निर्माण होता है। "शब्दार्थो का इतरेतराध्यास ही सकेत का स्वरूप है।"[2] इस इतरेतराध्यास के कारण होने वाला तादाम्य ही शब्दार्थगत् सम्बन्ध है जो वास्तव मे एक दूसरे से भिन्न हैं, उनकी अभेद से प्रतीति होना ही तादात्म्य है। शब्द और अर्थ परस्पर भिन्न होने पर भी अभिन्न रूप मे प्रतीत होते है। यहाँ भेद वास्तविक होता है और अभेद अध्यस्त। अतएव भेद और अभेद के एकस्थ होने पर भी विरोध नही होता।

शब्दार्थों का इतरेतराध्यास ही सकेत है। जो शब्द है वही अर्थ है या जो अर्थ है वही शब्द है, इसी प्रकार का इसका स्वरूप है। इतरेतराध्यास के साथ सकेत स्मृत रूप होता है।[3] वैयाकरणो का मत है कि—सकेत यदि पहले से ज्ञात हो तभी शब्द से अर्थ का बोध होता है। संकेत ज्ञान ही पर्याप्त नही है बल्कि शब्द के साथ संकेत स्मरण भी होना चाहिए। वाच्यार्थ के समान लक्ष्यार्थ मे भी एक दृष्टि से शब्द का सकेत रहता है। पर इन दोनो मे सकेत भेद है। लक्ष्यार्थ मे शब्द का व्यवहित संकेत रहता है। वाच्यार्थ मे अव्यवहित संकेत होता है। अव्यवहित सकेत ही साक्षात् संकेत है। जिस शब्द का जिस अर्थ से सकेत सम्बन्ध रहता है वह शब्द उस अर्थ का वाचक है, वह अर्थ उस शब्द का वाच्य है। अत: दोनो मे वाच्य-वाचक सम्बन्ध ही होता है।

---

१. "साक्षात् संकेतितं योऽर्थमभिधत्ते स वाचक:।" काव्यप्रकाश, उ० २, क० ७

२. शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्संकर:। पतंजलिसूत्र ३।१७

३. तदुक्तं पातञ्जलभाष्य-संकेतस्तु पद पदार्थयोरितरेतराध्यासरूप: स्मृत्यात्मक:, योऽय शब्द. सोऽर्थो योऽर्थ स शब्द: इति।
[वै० सि० लघुमंजूषा, टीका० सभापति शर्मा, सं० १९८६ पृ० २५ शक्तिनिरूप०]

संकेत अर्थ का भेद—

वैयाकरणों के मत से संकेतित अर्थ के चार भेद है—जाति, गुण, क्रिया तथा यदृच्छा। मीमांसकों के मत के अनुसार संकेतितार्थ का एक ही भेद 'जाति' है। नैयायिको के अनुसार सकेत जाति विशिष्ट व्यक्ति में निहित है। बौद्धो के मतानुसार सकेत 'अन्यापोह' रूप है। कुछ नैयायिक संकेत को केवल व्यक्ति मे निहित मानते है। इन विभिन्न मतो के होते हुए भी साहित्य-शास्त्रियो ने वैयाकरणो का अनुसरण किया है।

वैयाकरणों के अनुसार संकेत—

उनका मत है कि—"शब्दो का सकेत व्यक्ति मे न होकर व्यक्ति की उपाधि मे होता है। उपाधि का अर्थ है व्यवच्छेदक धर्म। व्यक्ति के उपाधि धर्म के चार शब्द भेद है—
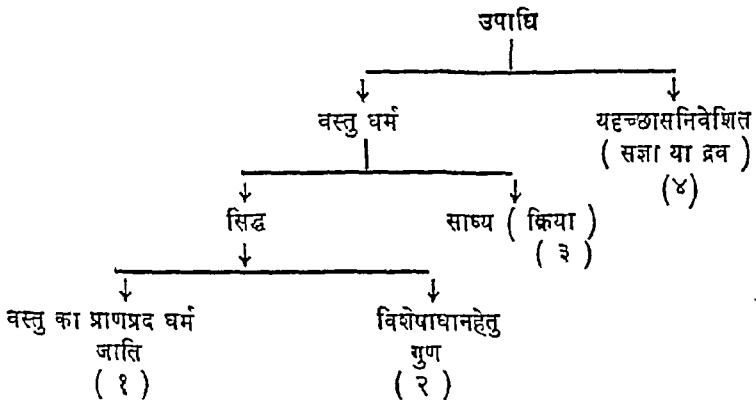
[यह सजरा 'भारतीय साहित्य शास्त्र के पृ० १७२ से उद्धृत किया गया है] उपाधि धर्म के चार भेद है—(१) जाति, (२) गुण, (३) क्रिया और (४) यदृच्छा। व्यक्ति में पाए जाने वाले धर्म के दो भेद होते है। कुछ धर्म व्यक्ति में मूलतः होते है। (वस्तु धर्म) कुछ धर्म हम उस व्यक्ति पर अपनी इच्छा से आरोपित करते हैं (यदृच्छासनिवेशित)। यदृच्छासनिवेशित धर्म ही संज्ञा है। वस्तु धर्म के भी दो भेद हैं। इसी साध्य धर्म को क्रिया कहते हैं। सिद्ध धर्म के दो भेद होते हैं—एक उस वस्तु का प्राणप्रद [व्यवहार की योग्यता देने वाले] धर्म है। यह धर्म ही जाति है। दूसरा धर्म व्यवहार योग्य व्यक्ति की कुछ विशेषता दर्शाता है। यही धर्म गुण है। जाति का धर्म व्यक्ति को व्यवहार योग्यता देता है। इसीलिए इसे प्राण प्रद कहा गया है।[1]

---

१. अयं च जातिरूपः शब्दार्थः प्राणदः इत्युच्यते। प्राणं व्यवहारयोग्यतां ददाति संपादयतीति व्युत्पत्तेः। [रस गंगाधर द्वि० आनने, बाम्बे सं० १९३९ पृ० १८२]

गो व्यक्ति के विषय में 'गौः' व्यवहार व्यक्ति आकार एवं रूप के कारण नही किया जाता है, वल्कि इसलिए ऐसा किया जाता है कि व्यक्ति मे गोत्व-धर्म होता है। पडितराज जगन्नाथ इस सम्वन्ध मे यह मत व्यक्त करते है —

"व्यक्ति मे गोत्व है। यह ज्ञान उस व्यक्ति के विषय मे गोत्व से प्राप्त होता है। इसलिए उस व्यक्ति के विषय में "गौः' व्यवहार हो सकता है। जाति, धर्म व्यक्ति को व्यवहार योग्यता देता है, गुण धर्म व्यक्ति की विशेषता दिखलाता है। जाति-धर्म जिसका सिद्ध हो चुका है, ऐसे व्यक्ति का सजातीय से व्यावर्तन करने वाला धर्म है गुण।"[1]

वैयाकरणों के मत से शब्दो का साक्षात् संकेत जाति, गुण, क्रिया तथा यदृच्छा इन चार उपाधियों में होना है। कुछ शब्द जाति वाचक, कुछ गुण वाचक कुछ क्रिया वाचक और कुछ यदृच्छा व्यवहृत होते है।

मीमांसकों का संकेत विषयक मतः—

इनके मतानुसार सकेत केवल जाति रूप में होता है। इनका कहना है 'गो' व्यक्ति परस्पर भिन्न होते हैं, किन्तु उनका प्राणप्रद धर्म गोत्वजाति ही है। शख, हिम, दुग्ध आदि में शुक्ल गुण होता है पर सभी भिन्न होते है। किन्तु इनका सामान्य धर्म शुक्लता ही है। इस तरह क्रिया वाचक शब्द भी जातिवाचक है। मीमांसको ने यदृचा शब्द को भी जातिवाचक बनाने की चेष्टा की है। उनका कहना है कि—'डित्थः' शब्द का उच्चारण वाल, वृद्ध, नारी एव तोते सभी अपने ढङ्ग से करते हैं, जिनमे भिन्नता तो अवश्य है पर समन्वय रूप से सव मे डित्थत्व तो वर्तमान ही है। अतः यदृच्छात्मक सज्ञा शब्द भी जाति का ही वोध कराते है।

मीमासको को व्याकरण का स्फोटवाद स्वीकार नही था। इसलिए उन्हे इस प्रकार की युक्तियों का सहारा लेना पडा, किन्तु आलकारिकों ने—वैयाकरणों के जात्यादिवाद को ही स्वीकार किया। इसकी विस्तृत व्याख्या मम्मटाचार्य ने "शब्द व्यापार विचार" मे की है। इसी प्रसग में उन्होने नैयायिकों और वौद्धो का मत भी दिया है।

---

१. "गौः सास्नादिमान् धर्मी स्वरूपेण अज्ञातगोत्वकत्वेन धर्मिस्वरूपमात्रेण न गौः न गोव्यव्यवहार निर्वाहकः। नापि अगौः न गोभिन्नः इति व्यवहारस्य निर्वाहकः। तथा सति दूरादनभिव्यक्तसंस्थानतया गोत्वाग्रहदशायां गविगौः इतिवा, गोभिन्नः इति वा व्यवहार स्यादिति भावः। गोत्वाभिसम्वन्धात् गोत्ववत्तया ज्ञानात् गौः शब्द व्यवहार्यः।

रसगंगाधर—चौखम्वा विद्याभवन, सं० २०११ वि० पृ० १४४

व्यक्तिबोध से सम्बन्धित विचार—

१. वैयाकरण और मीमांसक दोनों स्वीकार करते हैं कि शब्द का सकेत व्यक्ति मे नही होता। किन्तु व्यक्ति ही व्यवहार के लिए उपयुक्त होता है फिर भी शब्द का साक्षात् सकेत जाति मे होता है।

२. जातिवाचक शब्द के द्वारा व्यक्ति का बोध कैसे होता है ? इस बात पर दोनो अलग-अलग विचार व्यक्त करते है।

३. मीमांसक कहते हैं—जाति से व्यक्ति लक्षित होता है । इसलिए वे उपादान लक्षण का सहारा लेते है।

४. वैयाकरण और आलंकारिक उपर्युक्त मत को नही स्वीकार करते है। उनके मतानुसार जाति और व्यक्ति में अविनाभाव होने के कारण जाति से व्यक्ति का आक्षेप होता है। नागेशभट्ट के मत से सकेत ज्ञान निम्नलिखित आधार पर होता है—

१. व्याकरणगत विभक्तियाँ शब्द का अर्थ समझाने मे सहायक होती है जैसे—रामः गच्छति (राम जाता है) में रामः शब्द की सुप् विभक्ति से हम समझते हैं कि यह कर्त्ता कारक है।

२. उपमान—कभी-कभी उपमान से अर्थबोध होता है—गो सदृशो गवयः।

३. कोष—कोष से भी अर्थ का बोध होता है।

४. आप्तवाक्य—गुरुमुख से अर्थ बोध होता है, इसे आप्तोपदेश कहते हैं।

५. व्यवहार—व्यहार से भी अर्थ बोध होता है।

६. वाक्यशेष से अर्थ का बोध होता है (अर्थ के विषय मे सन्देह होने पर आगे आने वाले संदर्भ से अर्थ व्यक्त होता है)

७. विवृत्ति—शब्द की विवृत्ति से भी अर्थबोध होता है। विवृत्ति का अर्थ है—विवरण।

८. सन्निधि—अन्य जाति की सन्निधि से यदा-कदा अर्थ बोध होता है। 'रामकृष्णौ' में राम का अर्थ सन्निधि से ही बलराम हुआ है।[2]

मुख्यार्थ और अभिधा—

शब्द के संकेतित अर्थ को उसका मुख्य अर्थ कहते हैं। मुख्यार्थ वह अर्थ है

---

१. व्यक्त्यविनाभावात् जात्या व्यक्तिः आक्षिप्यते—

का० प्र० उ० द्वितीय का १० परवृत्ति पृ० ४५, वामनीटीका सं० १९३३

२. शक्तिग्रहं व्याकरणोपमान कोषाप्तवाक्याद्व्यवहारतश्च ।
वाक्यस्य शेषाद्विवृत्तेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः ॥

कारिकावली, मुक्तावली, रामरुद्री दिनकरी सहित पृ० २६६

जो सर्व प्रथम शब्द द्वारा व्यक्त होता है।[1] जिस मुख्य व्यापार के कारण मुख्यार्थ बोध होता है उस व्यापार को ही अभिधा कहते है।[2] यहाँ मुख्य व्यापार शब्द महत्वपूर्ण है। इसी से अभिधा और अभिधामूला व्यजना का हमे भेद प्रकट होता है। अभिधामूला व्यंजना मे मुख्य अर्थ प्रकृत अर्थ मुख्य व्यापार द्वारा ज्ञात होते है। दूसरा अर्थ भी शब्द का मुख्य अर्थ ही है किन्तु प्रकृत न होने के कारण अमुख्य होता है। श्लेष और अभिधामूला व्यंजना में यही भेद है, देखिए—

प्रवर्तयन क्रियाः साध्वी मालिन्य हरिता हरन् ।
महसा भूयसा दीप्तो विराजति विभाकरः ।।

(भा० सा० शा० प्र० सं० १९६० पृ० १७५ लेखक गणेश त्र्यम्बक देशपाडेय)

[सत्कर्मो को प्रवर्तित करते हुए एव दिशाओ की मलिनता को नष्ट करते हुए विभाकर आकाश मे प्रदीप्त है—(विभाकर=(१) सूर्य (२) राजा)।

यहाँ कवि को सूर्य और राजा दोनो का वर्णन अभिप्रेत है, अतः दोनों मुख्यार्थ हुए। दूसरा उदाहरण देखिए:—

उन्नतः प्रोल्लसद्धारः कालागुरु मलीमस· ।
पयोधर भरस्तन्व्याः क न चक्रेऽभिलाषिणाम् ।।

(ध्वन्या० द्वि० उ० का० २१ की वृत्ति में लोचन टीका सहित सं० १९९७ पृ० २४१]

(प्रथम अर्थ—गगन में ऊँचा उठने वाला, धारा की वर्षा करने वाला तथा कृष्ण चन्दन के समान यह मेघ प्रिया की कामना किसके हृदय मे नही पैदा करता, द्वितीय अर्थ—हार के कारण सुन्दर प्रतीत होने वाला, कृष्ण चन्दन के अङ्ग-राग से युक्त उस तन्वी का उन्नत उर प्रदेश किसके मनमे कामना नही पैदा करता ?) प्रथम अर्थ प्रकृत है। अतः मुख्यार्थ है और द्वितीय अर्थ प्रकृत नही है, अतः अमुख्य व्यापार से अर्थ बोध हुआ है। वहाँ अमुख्य व्यापार ही व्यंजना व्यापार है।

उपर्युक्त प्रथम उदाहरण मे श्लेष है और दोनो अर्थो मे अभिधा ही प्रवृत होती है। किन्तु दूसरे में अभिधामूला ध्वनि है। यह प्रकृत अर्थ मे अभिधा और अप्रकृत अर्थ मे अभिधामूला व्यंजना है।

वाचक शब्द तीन प्रकार के होते है—(१) योगिक, (२) रूढ और (३) योगरूढ।[3] योगिक शब्द का अर्थ उसके प्रकृति और प्रत्यय के अनुसार ही

---

१. शब्द व्यापाराद्यस्यावगतिस्तस्य (अर्थस्य) मुख्यत्वम्। [अभिधावृत्ति मातृका]

२. स मुख्योऽर्थस्तत्र मुख्यो व्यापारोऽस्याभिधोच्यते।
—काव्यप्रकाश द्वि० उ० का० ८

३. विभक्त्युत्पत्तये योग्यः शास्त्रीयः शब्द उच्यते।
रूढियौगिकतन्मिश्रैः प्रभेदैः स पुनस्त्रिधा ।। चन्द्रालोक १।६

होता है। पाठक, याचक, गांगेय आदि शब्द इसी प्रकार के है। रूढ़ शब्द अपने प्रकृति-प्रत्ययजन्य अर्थ के स्थान पर अन्य अर्थ में रूढ़ हो जाता है, जैसे—मण्डप शब्द का प्रकृति-प्रत्यय जन्य अर्थ 'मांड़ का पीने वाला' है परन्तु यह शब्द इससे एक सर्वथा भिन्न अर्थ मे रूढ हो गया है। योग रूढ शब्द वे शब्द होते है जो अपने प्रकृति-प्रत्यय से सबद्ध अर्थ को देते हुए भी एक विशेष अर्थ मे रूढ अथवा सीमित हो जाते है जैसे—नीरधि, पकज, सागर, भूरुह, शशी आदि। इन शब्दों में जो अर्थ रूढ़ है उसके साथ इनका यौगिक अर्थ भी घटित हो जाता है, लेकिन ये शब्द अपने योग से उत्पन्न होने वाले सभी अर्थों को प्रकट नही करते। पकज अर्थात् कमल (रूढ़ अर्थ) पक से उत्पन्न (यौगिक अर्थ) होता है, परन्तु कीचड़ से उत्पन्न होने वाली कमल से अतिरिक्त अन्य वस्तुएँ पंकज नही होती।

लक्षण शक्ति

अभिधा शक्ति के वाच्यार्थ व्यापार को समझाने के पश्चात्—साहित्यिक मनीषियों ने अभिधा-व्यापार के बाध हो जाने पर अर्थबोध की सामर्थ्य पर अपना विचार व्यक्त करते हुए लक्षण-शक्ति की विवेचना की है। इस सम्बन्ध मे आचार्य मम्मट का मत द्रष्टव्य है—

"मुख्यार्थ के बाध होने पर रूढि या प्रयोजन को लेकर जिस शक्ति के द्वारा मुख्यार्थ से सम्बन्ध रखने वाला अन्य अर्थ लक्षित होता है, उसे लक्षण कहते है।"[1]

इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि जिस शब्द के द्वारा मुख्यार्थ से भिन्न अर्थ लक्षित होता है उस वृत्ति को लक्षण कहते है। लक्षण के तीन निमित्त है—(१) मुख्यार्थ बाध, (२) तद्योग और (३) रूढ़ि अथवा प्रयोजन।

दैनिक व्यवहार में जब मुख्यार्थ से काम नही चलता अर्थात् शब्द के व्युत्पत्तिगत अर्थ की सामर्थ्य अभिप्राय व्यक्त करने मे असमर्थ हो जाती है तो 'लक्षण' का प्रयोग होता है, जैसे—"सामाजिक भेड़ियो से बचो।' इस कथन मे सामाजिक भेड़ियो का मुख्यार्थ बाध हो गया है क्योकि भेड़िया और उसका सामाजिक होना असम्भव है। अतः यहाँ भेड़िया का अर्थ खतरनाक अथवा दुष्ट व्यक्ति ग्रहण किया जाता है। इस प्रकार की अनुपपत्ति वक्ता के तात्पर्य एवं उसके प्रयुक्त शब्दो के मुख्यार्थ में हो सकती है। जब किसी मूर्ख के आगमन पर हम कह उठते है—"पधारिए महाशय" तो यहाँ मुख्यार्थ बाध नही होता क्योकि वाक्यार्थ मे कोई आपत्ति नही है। किन्तु वक्ता के उद्देश्य से विरोध होता है। अतः वक्ता के उद्देश्य एव मुख्यार्थ दोनों मे 'योग्यता विरह' होने से 'महाशय' का विपरीत अर्थ 'मूर्ख' ग्रहण किया जाता है।

---

१. मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात्।
अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणारोपिता क्रिया॥ का० पु०, उ० २, का० ९.

मुख्यार्थयोग—मुख्यार्थ की अनुपपत्ति होने पर हम भिन्न अर्थ लेते है। किन्तु मन चाहा अर्थ नही ले सकते। यह अर्थ मुख्यार्थ से भिन्न होने पर भी इससे संवद्ध होना चाहिए। इसी को तद्योग मुख्यार्थयोग कहते है। मुकुल भट्ट ने इसके पाच भेद बताये है'—

(१) सामीप्य सम्बन्ध—"गंगायाघोष." यहाँ मुख्यार्थ गगाप्रवाह से लक्ष्यार्थ गगा के किनारे ग्रहण किया गया है।

(२) सादृश्य सम्बन्ध—"यह बालक तो साक्षात गऊ है।"

(३) समवाय: साहचर्य—"कुन्ता; प्रविशन्ति।"

(४) विपरीत सम्बन्ध—'पधारिए महाशय।

(५) क्रियायोग सम्बन्ध—'महति समरे शत्रुघ्न त्वम्।'[1]

रूढ़ि और प्रयोजन—मुख्यार्थ से लक्ष्यार्थ भिन्न होता है। लक्ष्यार्थ या तो रूढि से अर्थात् लोक प्रसिद्धि से प्राप्त होना चाहिए या उसकी पृष्ठभूमि मे वक्ता का कुछ विशेष अभिप्राय (प्रयोजन) होना चाहिए। यह शर्त बडी महत्वपूर्ण है। एक दृष्टि से लक्षण स्वाभाविक अर्थ का त्याग कर अस्वाभाविक अर्थ को ग्रहण करती है। इसी दृष्टिकोण से लक्षण के दो भेद (१) रूढ और (२) प्रयोजनवती होते हैं। रूढ़ लक्षणा मे भी आरम्भ मे प्रयोजन ही था।

आचार्य मम्मट ने रूढ लक्षणा का उदाहरण—'कर्मणि कुशल:' दिया है। कुशल का आरम्भिक अर्थ कुश काटने वाला था। अव हम कुशल का चतुर अर्थ ग्रहण करते हैं और इसी अर्थ मे कुशल रूढ हो गया है। मूलतः इस शब्द का चतुर के अर्थ मे प्रयोग लक्षणा से ही हुआ होगा। अत. आज की रूढ लक्षणाएँ कभी अवश्य प्रयोजनवती रही होगी। इसी प्रकार 'देवानाम् प्रिय इति मूर्खे' यह प्रयोग भी आरम्भ मे प्रयोजन युक्त था, वाद मे रूढ़ हो गया है।

इन स्वरूपों से यह सहज ज्ञान होता है कि—जब तक अर्थो की पृष्ठभूमि मे प्रयोजन था तब तक ये अर्थ मुख्यार्थ से भिन्न थे। किन्तु इनका आधारभूत प्रयोजन नष्ट हो जाने से अब ये उन शब्दो के मुख्यार्थ बन गए है। इसीलिए हेमचन्द्र रूढ़ लक्षणा को स्वीकार नही करते।

विश्वनाथ जी भी कुशल आदि शब्दो के सम्बन्ध में यही कहते हैं। किन्तु वे रूढ लक्षणा को अस्वीकार नही करते है।

---

१. अभिधेयेन सम्बन्धात् सादृश्यात् समवायतः।
वैपरीत्यात् क्रियायोगात् लक्षण पंचधामता॥

[ध्वन्यालोक की लोचनटीका, सं० १९४०, चौखम्भा, पृ० २८

हेमचन्द्र और विश्वनाथ मम्मट की आलोचना करते हुए कहते है कि भले ही ये शब्द कभी लाक्षणिक रहे हो पर आज तो इनके अर्थ रूढ हो गए है। अतः इनकी पृष्ठभूमि मे अभिधा ही है, न कि लक्षणा आगे वे कहते है ऐसे उदाहरणो मे लक्षणा मानना भी हो तो केवल व्युत्पत्ति के द्वारा मानना होगा। विश्वनाथ ने कहा है—अन्यद्धि शब्दानां व्युत्पत्ति निमित्तम् अन्यच्चप्रवृत्तिनिमित्तम् ।[1] [सा० द०]

लक्षणा सान्तरार्थनिष्ठ व्यापार है—

"मुख्येन अमुख्यः अर्थ लक्ष्यते यत् स अरोपितः शब्द व्यापारः सान्तरार्थनिष्ठो लक्षणा।" [मम्मट ना० प्र०, व्या० डॉ० सत्यव्रतसिंह, सं० १९५५ ई०]।

अमुख्य अर्थ (लक्षण) मुख्यार्थ के द्वारा लक्षित होता है। इस अर्थ को लक्षित करने वाला व्यापार लक्षण है। वास्तव मे अभिधा शब्द की साक्षात् अर्थ प्रदायनी शक्ति है और लक्षणा उसकी व्यवहितार्थप्रदायिनी शक्ति है।

यदि उदाहरण स्वरूप 'गंगायाम् घोपः' को ले तो पता चलेगा कि पहले इस वाक्य से गंगाप्रवाह रूप अर्थ उपस्थित होता है। किन्तु वहीं हम मुख्यार्थ बोध पाते है तब 'बाध' के कारण 'तीर' अर्थ ग्रहण करते है। अतः इस प्रकार यह हुआ कि—शब्द—मुख्यार्थ—लक्ष्यार्थ। इससे यह निष्कर्ष निकला कि—शब्द से लक्ष्यार्थ का सम्बन्ध मुख्यार्थ द्वारा सम्पादित होता है। यहाँ मुख्यार्थ मध्यमत है। अतः लक्षणा व्यापार शब्द पर आरोपित होता है।

इसके अनन्तर आचार्य मम्मट ने शुद्धा लक्षणा के दो रूपो उपादान लक्षणा और लक्षण-लक्षणा की विवेचना की है। उपादान लक्षणा को उन्होंने समझाते हुए कहा है कि जब शब्द वाक्यस्थान मे अपने आपको सगत बनाने के लिये अमुख्यार्थ का आक्षेप करता है और मुख्य अर्थ अपना समर्पण इसलिए अमुख्यार्थ को करता है कि अमुख्यार्थ संगत हो जाय तब उस पद मे उपादान लक्षण होती है।[1] उपादान लक्षण का उदाहरण काव्य प्रकाराकार—"कुन्त. प्रविशन्ति"[2] देते है। इस वाक्य में कहा गया है कि 'भाले प्रवेश करते हैं।'[3] किन्तु भाले निर्जीव हैं। उनका प्रवेश करना सम्भव नही है। अतः मुख्यार्थ लक्ष्यार्थ को अपना समर्पण कर देता है। इस प्रकार लक्ष्यार्थ भाला लिये हुए व्यक्ति ग्रहण किया जाता है। लक्षण-लक्षणा मे शब्द अपने मुख्यार्थ का लक्षणार्थ के प्रत्यायन के लिये त्याग करता है। जैसे—'गंगाया घोपः।' 'गंगा मे अहीरों की बस्ती है।' गंगा शब्द से प्रवाह अर्थ ग्रहण होता है किन्तु प्रवाह मे बस्ती का होना सम्भव नही। इसलिये मुख्यार्थ का त्याग करके 'गंगातट' लक्ष्यार्थ ग्रहण

---

१. स्वसिद्धये पराक्षेपः परार्थे स्वसमर्पणम्।
उपादानं लक्षणं चेत्युक्ता शुद्धैव सा द्विधा ॥ का० प्र०, का० १०, उ० २।

२. का० प्र० व्या० डा० सत्यव्रतसिंह, सं० १५५ ई० ३३।

किया जाता है। यहाँ शब्द अपने मुख्यार्थ का सर्वथा त्याग करता है। इन दोनों प्रकार की लक्षणाओं को शुद्धा लक्षणा कहते है क्योकि इनमे उपचार का मिश्रण नही होना है।[1] सादृश्याख्या सम्बन्ध से दो परस्पर भिन्न वस्तुओ मे, अभेदावबोध उपचार कहलाता है।

इन उपर्युक्त लक्षण प्रकारों के अतिरिक्त आचार्य मम्मट ने एक सारोपा-प्रकार की लक्षणा बताई है। वे कहते है कि—जब विषयी (आरोप्यमाण) और विषय (आरोप्य) दोनों शब्दतः प्रतिपाद्य रहा करते है तब सारोपा लक्षणा होती है।[2] इसे सारोपा इसलिये कहते है क्योकि इसमे आरोप्यमाण और आरोप्य दोनों अपने-अपने पृथक् स्वरूप और स्वभाव मे ही विराजमान रहते हुये 'सामनाधिकरण्य'—पूर्वक अर्थात् समान विभक्तियुक्त अपने-अपने पदों के रूप मे स्पष्टतया निर्दिष्ट रहा करते है।

इसके अतिरिक्त उन्होने बतलाया कि जब आरोप्य अपने बोधक-पद के रूप में निर्दिष्ट नही होता और आरोप्यमाण उसका निगीर्ण कर जाता है अर्थात् आरोप्य तिरोभूत हो जाता है, तब साध्यवसाना लक्षणा होती है।[3] इन उपर्युक्त 'सारोपा' और 'साध्यवसाना' दोनो लक्षणा प्रकारो के भी दो-दो भेद होते है। जैसे—शुद्धा सारोपा और गौणी सारोपा। शुद्धा साध्यवसाना तथा गौणी साध्यवसाना। गौण रूप भेद में तो सादृश्य सम्बन्ध नियामक रहा करता है और शुद्ध रूप भेद मे जो नियामक रहा करता है वह है सादृश्यभिन्न अन्यविध सम्बन्ध।[4]

आचार्य मम्मट ने गौणी सारोपा लक्षणा का उदाहरण—'गौर्वाहीकः' दिया है। [यह हरवाहा बैल है।] इसमे गो' पद की लक्षणा शक्ति स्पष्टतया 'वाहीक' रूप अर्थ को लक्षित कर देती है और ऐसा इसलिए कर देती है कि यहाँ 'गो' रूप विपयी और 'वाहीक' रूप विपय में सादृश्य-नियामक आरोप का यही रहस्य है। यहाँ 'गो' पद से लक्षित वाहीक ऐसा पद है जो जाड्य-मान्द्यादि रूप ऐसे गुणों का आश्रय है जो न तो 'गो'—गत ही कहे जा सकते है और न 'वाहीक'-गत अपितु दोनों

---

१. उभयरूपा चेयं शुद्धा उपचारेणामिश्रितत्वात्। का० प्र० डा० सत्यव्रतसिंह स० १९५५, पृ० ३५।

२. 'सारोपाऽन्या तु यत्रोक्तौ विषयी विषयस्तथा।' का० प्र० १४, व्या० डा० स० व्र० सिं० सम्वत् १९५५ पृ० ३६।

३. "विषय्यन्त. कृतेऽन्यस्मिन् सा स्यात्साध्यवसानिका।" का० प्र० का० ११. उ० २.

४. भेदाविमौ च सादृश्यात्सम्बन्धान्तरतस्तथा।
गौणौ शुद्धौ च विज्ञेयौ॥
का० प्र०, व्या० डा० स० व्र० सिंह सं० १९५५, पृ० ३७

में समवेत साधारण गुण हैं। इसी प्रकार गौणी साध्यवसाना का उदाहरण उन्होने 'गौरयम्' दिया है। [यह तो बैल ही है।] इसमें भी 'गो' पद की लक्षणा शक्ति स्पष्ट रूप से 'वाहीक' पद को लक्षित कर देती है। ऐसा इसलिए कर देती है कि यहाँ 'गो' रूप विषयी और 'वाहीक' रूप विषय मे सादृश्य-नियामक अध्यवसान का यही रहस्य है कि यहाँ 'गो' पद से लक्षित 'वाहीक' जिसमें जाड्य-मान्द्याादि रूप गुणों का आश्रय है जो न तो गो-गत है और न ही वाहीक-गत; अपितु दोनों में समवेत साधारण गुण हैं।[1]

शुद्धा सारोपा और साध्यवसाना के सम्बन्ध मे वे कहते है कि सादृश्य-भिन्न कार्य कारण भावादि रूप सम्बन्ध-निबन्ध जो आरोप गर्भ और अध्यवसान-गर्भ लक्षणा प्रयोग हैं, उन्हे इन प्रयोगो मे देखा जा सकता है—'आयुर्घृतम्' 'घी ही जिन्दगी है' (आरोप), 'आयुरेवेदम्' यही (घी ही) बस जिन्दगी है' (अध्यवसान) आदि।[2] यहाँ यह स्पष्ट है कि आयु और घृत मे किसी सादृश्य की कोई विवक्षा नही है। यहाँ तो आयु और घृत मे कार्य कारण भाव रूप सम्बन्ध है। इसी कारण आरोप और अध्यवसान विवक्षित प्रतीत हो रहे है।

इस उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि लक्षणा की ६ विधाएँ हैं।[3]

लक्षणा का आधारभूत प्रयोजन व्यंग्य है—

साहित्य शास्त्र मे जो लक्षणा का विवेचन पाया जाता है, वह प्रयोजनवती लक्षणा का है। मम्मट का कहना है—लक्षणा का प्रयोजन व्यंग्य अर्थात् ध्वनि है। लक्षणा की पृष्ठभूमि मे यदि आधारभूत प्रयोजन नष्ट हो गया हो तो निरूढ़ा लक्षणा होती है। "व्यंगेन रहिता रूढ़ौ सहिता तु प्रयोजने।" [का० प्र०] का० १३ उ० २ प्रयोजन की दृष्टि से लक्षणा का वर्गीकरण इस प्रकार हो सकता है।

---
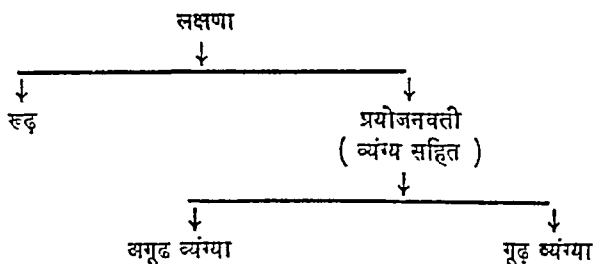
१. इमावारोपाध्यवसानरूपौ सादृश्यहेतू भेदौ गौर्वाहीक इत्यत्र गौरयमित्यत्र च।
[का० प्र० व्या० डा० स० व्र० सिंह, सं० १९५५, पृ० ३८]

२. आयुर्घृतम्, आयुरेवेदमित्यादौ च सादृश्यान्यत्कार्यकारणभावादि सम्बन्धान्तरम्।
[का० प्र० व्या० डा० स० व्र० सिंह, सं० १९५५, पृ० ३९]

३. 'लक्षणा तेन षड्विधा।' का० प्र०, का० १२, उ० २.

आचार्य मम्मट ने सव्यंग्या लक्षणा के उदाहरण प्रस्तुत किए है—

(अ) अगूढ़ व्यंग्या—

'श्रीपरिचयाज्जडा अपि भवन्त्यभिज्ञा विदग्धचरितानाम ।
उपदिशति कामिनीनां यौवनमद एव ललितानि ॥"

का० प्र० पृ० ४३ सं० १९५५ सं० डा० स० प्र० सिह,

[लक्ष्मी की प्राप्ति हो जाने पर मूर्ख भी चतुरो के व्यवहार को समझने वाले हो जाते है। यौवन का मद ही तो कामिनी स्त्रियो को विलास की शिक्षा देता है। यहाँ उपदिशति 'शिक्षा देता है'—शब्द का लक्ष्यार्थ में प्रयोग हुआ है। यहाँ वाच्यार्थ की तरह व्यग्य भी स्पष्ट है। अतः यहाँ अगूढ व्यग्य है।

गूढ़ व्यंग्या—

"मुख विकसितस्मितं वशितवक्रिम प्रेक्षितं
समुच्छलितविभ्रमा गतिरपास्तसंस्था मति ।
उरो मुकुलितस्तनं जघनमं सम्बन्धोद्धुरं
वतेन्दु वदनातनौ तरुणिमोद्गमो मोदते ॥"

[का० प्र० पृ० ४२, सं० डा० स० प्र० सिह सं० १९५५]

[मुख पर हास्य छाया हुआ है, बाँकपन दृष्टि का दास हो रहा है। चलने में हाव-भाव छलक रहे है। गति में विलास छलक रहा है, चित्त मे स्थिरता का त्याग किया है, वक्षःस्थल पर स्तन मुकुलित हो रहे है, अवयवो की पुष्टि से जघन रति योग्य हुए है। आह! इस चन्द्रमुखी के शरीर मे यौवन की तो आनन्द क्रीड़ा ही चल रही है।]

इसमें विकसित, वशित, समुच्छलित, अपास्त, मुकुलित, उद्धुर, उद्गम तथा मोदते सभी लाक्षणिक प्रयोग हैं।

उपर्युक्त दोनो पदो में सव्यग्या प्रयोजनवती लक्षणा है। प्रथम पद्य मे प्रयोजन व्यंग्य है, परन्तु अत्यन्त स्पष्ट है और वह यह है कि—यौवन के कारण नारियो मे मादक विलास चेष्टाएँ अपने आप उत्पन्न हो जाती हैं। दूसरे उदाहरण में व्यंग्य प्रयोजन स्पष्ट नहीं है। केवल काव्यानुशीलन में प्रवीण सहृदय उसे ही समझ सकते हैं। यहाँ विकसित आदि पद लाक्षणिक है। विकसित से पहले पुष्प की तरह खिलने का लक्ष्यार्थ प्रतीत होता है फिर इस लक्ष्यार्थ से सौरभ के विस्तार की तरह सौन्दर्य का प्रसरण व्यंजित होता है। इसी प्रकार अन्य लाक्षणिक पद भी गूढ़ व्यंग्य से युक्त है।

लक्ष्यार्थ एवं लक्षणा व्यापार काव्य मे जिस शब्द के आश्रय मे रहते हैं उसे लाक्षणिक शब्द कहते हैं। वाक्य मे लक्षणा की पृष्ठभूमि मे प्रयोजन रहता है। वह प्रयोजन जिस व्यापार के द्वारा ज्ञात होता है उसे व्यजना व्यापार कहते है। प्रयोजन-

वती लक्षणा का आधार भूत यह व्यंजना व्यापार भी उस लाक्षणिक शब्द में ही स्थित रहता है।

व्यंजना

आचार्य मम्मट ने लक्षणा-शक्ति का विवेचन करने के पश्चात् व्यंजना शक्ति का विवेचन इस प्रकार से प्रस्तुत किया है। अभिधा और लक्षणा शक्ति के असमर्थ हो जाने पर शब्द जिस शक्ति से किसी दूसरे अर्थ को प्रतीति कराता है उसे व्यंजना शक्ति कहते हैं। इसका उदाहरण 'गगाया घोपः' दिया गया है और समझाया गया है कि लक्षणा-शक्ति द्वारा 'गंगा तट पर घोप है' अर्थ की प्राप्ति हो जाने पर भी इस कथन का प्रयोजन-शीतत्व तथा पावनत्व की प्रतीति कराना है। इस प्रयोजन की प्रतीति व्यंजना द्वारा ही होती है।

अभिधा और लक्षणा का कार्य-क्षेत्र शब्द तक ही सीमित होता है, पर व्यंजना शक्ति शब्द के साथ ही साथ अर्थ के द्वारा भी अपना व्यापार करती है। इसलिए आचार्य मम्मट ने दो प्रकार की व्यजना–शाब्दी और आर्थी मानी हैं। शाब्दी व्यजना के दो प्रकार अभिधामूला तथा लक्षणामूला और आर्थी व्यंजना के तीन प्रकार—वाच्यार्थ सभवा, लक्ष्यार्थ संभवा एवं व्यंग्यार्थ सभवा इन्होने माने है।

अभिधा मूला व्यंजना की परिभाषा काव्य-प्रकाश मे इस प्रकार दी गई है—'अभिधा मूला व्यजना वह व्यजना होती है जो अनेकार्थ पद प्रयोगो में, उनकी वाचकता के सयोग आदि के द्वारा नियन्त्रित हो जाने पर, एक ऐसे अर्थ का प्रत्यापन करा दिया करती है जिसे वाच्य-साक्षात् संकेतित-अभिधावोध्य रूप अर्थ नही कहा जा सकता है।' [1]. 'पद की वाचकता के नियामक—'सयोग विप्रयोग, साहचर्य विरोधिता, अर्थ, प्रकरण, लिग, शब्दान्तर सन्निधि, सामर्थ्य, औचित्य, देश, काल, व्यक्ति और स्वर होते हैं। [2] इन वाचकता नियामको मे से किसी एक नियामक से जब अनेकार्थक शब्द की अनेकार्थ-वाचकता नियन्त्रित हो जाए और किसी अभिधेय अर्थ की प्रतीति हो जाए, तब भी यदि किसी अन्य अर्थ की प्रतीति हो तो उसे अभिधामूला व्यजना व्यापार ही कहेंगे। इसका उदाहरण आचार्य मम्मट ने इस प्रकार दिया है—

---

१. अनेकार्थस्य शब्दस्य वाचकत्वे नियन्त्रिते।
संयोगद्यै रवचयार्थधीकृद्व्यापृतिरञ्जनम्। [का० प्र० द्वि० उ० का० १६]

२. संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता अर्थः प्रकरणं लिङ्ग शब्दस्मान्यस्य सन्निधि.।
सामर्थ्यमौचितीः देश कालो व्यक्तिः स्वरादयः शब्दार्थ स्यानवच्छेदेविशेष-स्मृतिहेतवः॥ [का० प्र० व्याख्याकार डा० सत्यव्रतसिह, सं० १६५५ पृ० ४६]

भद्रात्मनो दुरधिरोहतनोविशाल वंशोन्नतेः कृतशिलीमुखसङ्ग्रहस्य ।
यस्यानुपप्लवगतेः परवारणस्य दानाम्बुसेकसुभगः सततं करोऽभूत् ॥
[का० प्र० सं० डॉ० स० प्र० सिंह सं० १९५५ ई० पृ० ५१]

इसका अर्थ है—ये रहे वे महाराज । निर्मल अन्त.करण वाले । अनभिवननीय व्यक्तित्व वाले ! महानवंश में जन्म लेने वाले ! वाणविद्या में सतत अभ्यस्त ! सर्वत्रगामी तीक्ष्ण बुद्धि वाले और शत्रुजन के संहारक । जिनका कर निरन्तर दान के लिए सकल्प जल लेते रहने के कारण अत्यन्त सुन्दर रहा करता था । यहाँ प्रकरण रूप वाचकता नियामक के कारण भद्र, वश, शिलीमुख, गति, वारण, दान और कर शब्दो की अनेकार्वता के एकार्थता मे परिणत हो जाने पर भी कवि विवक्षा एक अनभिधेय अर्थ को अर्थात् 'गजराज' रूप अर्थ को राजा रूप अर्थ मे परस्पर उपमानोपमेय रूप अर्थ को प्रकट कर रही है । इस अर्थ से सहृदय सामाजिक का चित्त चमत्कृत हो रहा है । इस अर्थ की प्रतीति का कारण अभिधामूला व्यंजना ही है ।

प्रयोजनवती लक्षणा मे प्रयोजन व्यग्य रहता है । जिस प्रयोजन को सूचित करने के लिए लक्षणा का आश्रय लिया जाता है वस्तुतः वह (प्रयोजन अथवा व्यग्य) जिस शक्ति से प्रतीत होता है उसे लक्षणा मूला शाब्दी व्यजना कहते हैं । उदाहरण के लिए 'गंगायां घोष.' लिया जा सकता है । इसमे शीतत्व और पावनत्व की प्रतीति लक्षणा मूला शाब्दी व्यजना द्वारा ही होती है क्योकि 'गगा तट' अर्थ वताकर लक्षणा विरत हो जाती है ।

अर्थ के द्वारा जव व्यजना अपना व्यापार करती है तव उसे आर्थी व्यजना कहते हैं । जव काव्य-भावना परिपक्व बुद्धि काव्य रसिको को प्रतीत अर्थ के अतिरिक्त, यथास्थान अथवा यथा सभव जो एक अन्य अर्थ प्रतीत हुआ करता है और जिसके कई कारण हो सकते है जैसे कि—वक्तृ, वोद्धव्य, काकु, वाच्य, वाक्य, अन्य सन्निधि, प्रस्ताव, देश, काल और अन्यविधि आदि के वैशिष्ट्य ।[१].

इस विवेचन के पश्चात् आचार्य मम्मट ने व्यंजक अर्थ की नानाविधि विशिष्टता के निमित्तो का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए उदाहरण प्रस्तुत किए हैं ।

इन उदाहरणो मे दिखाया गया है कि वाच्य रूप, लक्ष्यरूप और व्यंग्यरूप त्रिविध अर्थ प्रकारो की कैसे व्यजना हुआ करती हैं । उनमे से एक उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है ।

---

१. वक्तृबोद्धव्य काकूनां वाक्यवाच्यान्यसन्निधेः ॥ का० सू० उ० का० २
प्रस्ताव देशकालादेर्वैशिष्ट्यात्प्रतिभाजुषाम् ।
योऽर्थस्यान्यार्थधीहेतुर्व्यापारो व्यक्तिरेव सा ॥ का० प्र० सू० उ० का० २२

वाच्य संभवा आर्थी व्यंजना—

अइपिहुलं जलकुंभं घेतूण समागदह्मि सहि तुरिअम् ।
समसअसलिलणी सासणीसहा वीसमामि खणम् ॥ [१]

इसका अर्थ है—अरी सखी क्या बताऊँ, बिना थोड़ी देर विश्राम किए मुझे शान्ति कहाँ। इतना बड़ा और पानी से भरा घड़ा उठाना और तब भी झटकते हुए आना! ओह! कितनी थक गई हूँ, कितनी पसीने की बूंदे निकल आई है, कितनी जोर से सास चल रही है, देह में ऐसा लगता है जैसे बिल्कुल भी दम न हो।

यहाँ जो वाच्यरूप अर्थ है अर्थात् एक स्त्री का अपनी सखी से पानी भरे घड़े को ले जाने के कारण अपनी थकावट का वर्णन करना। इस वाच्यार्थ के साथ ही साथ एक अन्य अर्थ की भी प्रतीति सहृदय जनो को होती है। वह अर्थ यह है कि अपनी थकावट को वर्णन करने वाली नायिका अपनी रति लीला को छिपाने के अभिप्राय से ही ऐसा कह रही है। यहाँ पर यही अन्य अर्थ अभिव्यजित हो रहा है। जब वाक्य के वाच्यार्थ से किसी अन्य अर्थ की व्यंजना होती है तो उसे वाच्य सभवा आर्थी व्यजना कहते है।

इसके पश्चात् आचार्य मम्मट ने लक्ष्य संभवा आर्थी व्यंजना और व्यंग्य संभवा आर्थी व्यंजना का उदाहरण नही दिया है बल्कि निर्देश कर दिया है कि लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ भी (काव्य साहित्य मे) व्यंजक रूप से रहा करते है और (यथास्थान अथवा यथा संभव) अपने से कहीं अधिक सुन्दर व्यंग्यार्थ का प्रत्यायन करवाया करते हैं।[२] इसके अनन्तर यह स्पष्ट किया गया है कि शब्द को स्पष्टतया व्यजक न कह कर अर्थ को व्यंजक क्यो कहा गया है। इसका कारण बतलाते हुए कहा गया है कि शब्द को यदि उसके समानार्थक शब्द से बदल भी दे तो भी व्यंग्यार्थ वैसा का वैसा ही रहा करता है। जैसे शाब्दी व्यंजना मे अर्थ की सहकारिता नही दूर की जा सकती, वैसे ही आर्थी व्यंजना मे शब्द का सहयोग भी नही हटाया जा सकता। काव्य प्रकाशकार मे अर्थ को 'शब्द प्रमाण वेद्य' कहा है क्योकि शब्द के अतिरिक्त अन्य साधनो से जाना गया अर्थ 'लोक' मे भले ही किसी अर्थ का व्यंजक हो, परन्तु काव्य साहित्य में तो वही अर्थ व्यंजक कहा जा सकता है जो प्रयुक्त शब्द के आधार पर प्रतीत हुआ करता है। वस्तुतः शब्द सौन्दर्य की उपासना मे अर्थ-सौन्दर्य की उपासना अन्तर्भूत है और अर्थ-सौन्दर्य की उपासना में शब्द सौन्दर्य की उपासना समायी हुई है। भावावेश में किसी शब्द की व्यंजकता से प्रभावित होकर न तो हम उसके अर्थ को ही छोड़ सकते हैं और न किसी अर्थ

---

१. का० प्र० व्या० डॉ० सत्यव्रतसिंह सं० १९५५ ई० पृ० ५४, तृ० उ०

२. अनेन क्रमेण लक्ष्य-व्यंग्ययोश्च व्यंजकत्वमुदाहार्यम् ।
[का० प्र० व्या० डा० सत्यव्रतसिंह सं० १९५५ ई० पृ० ५६, तृतीय उ०

की व्यंजकता से मुग्ध होकर उसके ज्ञापक शब्द को ही भुला सकते है। यह दूसरी बात है कि शब्द की प्रधानता से कही शाब्दी व्यंजना मान ले और अर्थ को मुख्यतया व्यंजक देखकर कही आर्थी व्यजना कह ले।

हिन्दी के रीतिकालीन आचार्य

"आचार्य चिन्तामणि त्रिपाठी"

आचार्य चिन्तामणि रीति-काल के प्रथम आचार्य हैं। इनका कविता-काल स० १७०७ से माना जाता है। इनका 'कविकुल कल्पतरु' ग्रन्थ स० १७०७ में लिखा गया था। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त 'काव्य-विवेक' 'छद विचार' काव्य-प्रकाश और रामायण इनके लिखे हुए ग्रन्थ हैं। आचार्य 'प० रामचन्द्र शुक्ल' के मतानुसार—"हिन्दी रीति ग्रन्थो की अखण्ड परम्परा चिन्तामणि त्रिपाठी से चली, अत. रीति-काल का आरम्भ उन्ही से मानना चाहिए।[1]

आचार्य चिन्तामणि ने काव्य के सभी अङ्गो का निरूपण किया है। इनके 'कविकुल-कल्पतरु' नामक ग्रन्थ में काव्य-लक्षण, काव्य-प्रयोजन, रस-भाव, ध्वनि, नायक, अलंकार, पदार्थ-निर्णय (शब्द-शक्ति), रीति, गुण, दोप, पिंगल आदि सभी का निरूपण किया गया है। इस ग्रन्थ के पचम प्रकरण 'शब्दार्थ-निरूपण' मे शब्द-शक्ति का उल्लेख किया गया है। इस विवेचन मे मूल रुप से 'काव्य-प्रकाश' और कही-कही साहित्य-दर्पण का आधार लिया गया है।

पद और अर्थ—

इन्होने पद (शब्द) तीन प्रकार के माने है—(१) वाचक, (२) लाक्षणिक और (३) व्यजक। इनके अनुसार अर्थ भी तीन प्रकार के होते है—वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य।[2] लक्ष्य का उदाहरण इन्होने इस तरह दिया है कि—"लक्षण उसे कहते है जो लक्षणायुक्त होता है,"[3] —जिसमे कोई अन्तर अथवा व्यवधान न हो।"[4]

शब्द-शक्ति—

चिन्तामणि ने अभिधा-शक्ति पर प्रकाश नही डाला है। लक्षणा-शक्ति के तीनो तत्वो—(१) मुख्यार्थ का बाध, (२) मुख्यार्थ से सम्बन्ध और (३) रूढि

---

१. हि० सा० इति, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, सं० परि० सं० २००२, पृ० २०२

२. पद वाचक अरु लाक्षणिक व्यंजक त्रिविध बखान।
वाच्य लक्ष्य अरु व्यग्य पुनि अर्थों तीनि प्रमान॥ [का० क० त० ५।१]

३. लक्षण ताको कहत हैं जो होत लक्षणा जुक्त। [का० क० त० ५।३]

४. बिन अन्तर जा शब्द कर जाको होत बखान। [का० क० त० ५।२]

अथवा प्रयोजन की सत्ता स्वीकार की है। पर उदाहरण केवल 'गंगायां घोष:' कह कर आगे बढ़ गए है।[1]

व्यंजना-शक्ति—

चिन्तामणि ने व्यजना निरूपण मे विश्वनाथ का अनुकरण किया है। इन्होंने बताया है कि—'अभिधा और लक्षणा वृत्तियो के विरत हो जाने पर जिस शक्ति से अन्य अर्थ की प्रतीति होती है, उसे व्यंजना-शक्ति कहते हैं।'[2]

इन्होंने व्यजना-शक्ति के दो मुख्य भेद—(१) शाब्दी और (२) आर्थी माने हैं। शाब्दी व्यजना के भी दो भेद किए है:—(१) लक्षणा मूला और (२) अभिधा मूला।

लक्षणा मूला शाब्दी व्यंजना:—वह व्यजना जो उस प्रयोजन की प्रतीति कराती है, जिसके लिए लाक्षणिक शब्द का प्रयोग किया जाता है, लक्षणा मूला शाब्दी व्यजना होती है उदाहरणार्थ—'गंगा में घोष' इस वाक्य में दिया गया 'गंगा में' लाक्षणिक शब्द है, इसका अर्थ है गगा तट की प्रतीति कराना, इसका प्रयोजन है—घोष की शीतलता और पवित्रता।[3] लक्षणा मूला शाब्दी व्यजना की विशेषता इस वाक्य से स्पष्ट नही होती। इसी को स्पष्ट करने के लिए उन्होने दूसरा उदाहरण इस प्रकार दिया है.—

"भई अनूपम चोप तनु प्रफुलित नैननि चैन।
अंकुस दै फेरयौ हियौ बालापन ते मैन॥" [का० क० त० २।११]

'चोप' अर्थात् कान्ति का लक्ष्यार्थ सौन्दर्य के उदय से और 'प्रफुलित' का अर्थ फूल की तरह खिलना अथवा आनन्दित होना है। इन दोनो लक्ष्यार्थो से 'चोप' तथा 'प्रफुलित' लाक्षणिक शब्दो के आधार पर इस व्यंग्य अर्थ की प्रतीति होती है कि नायिका के शरीर में आकर्षणमय सौन्दर्य और प्रफुलित आँखो में अनुराग आ गया है। यहाँ लाक्षणिक शब्दो के आधार पर ही व्यंग्यार्थ की प्रतीति होने के कारण लक्षणा मूला शाब्दी व्यजना है।

---

१. मुख्यारथ के बाध अरु जोग लक्षना होइ।
होत प्रयोजन पाइ कै, कहूं रूढ़ि हित सोइ॥
गंगा घोषक है तहां होत तीर को बोध।
शीतलताइ पवित्रता तहाँ प्रयोजन सोध॥ [का० क० त० ५।४, ५]

२. जहँ अभिधा अरु लक्षणा अति कछु भिन्न प्रकार।
होइ अर्थ को बोध तहां कवि व्यंजक व्यापार॥ [का० क० त० २।७]

३. तहाँ विजना वृत्ति वह होत लक्षना मूल।
जहाँ प्रयोजन जानिये कहत पंथ अनुकूल॥ [का० क० त० २।६]

अभिधा मूला शाब्दी व्यंजना.—इसके द्वारा अनेकार्थक शब्द के उस अर्थ की भी प्रतीति हो जाती है जो सयोगादि कारणों में से किसी एक के द्वारा अवाच्य घोपित हो जाता है।[1]

आर्थी-व्यंजना—

आर्थी-व्यजना का विपय वहाँ माना गया है, जहाँ व्यग्यार्थ की प्रतीति वक्ता, वोधव्य, काकु, वाच्य, वाच्य जन्य-सन्निधि, प्रस्ताव, देश काल तथा चेष्टा आदि में से किसी एक के वैशिष्ट्य के कारण होती है।

चिन्तामणि ने इसका लक्षण नही प्रस्तुत किया है। विशेपताओ में से प्रथम का उदाहरण प्रस्तुत कर विपय को समाप्त कर दिया है। अधोलिखित उदाहरण काव्य कल्प तरु मे दिया गया है—

"ग्रीषम में सरवर वापी कूप सूखे सब,
जल नदी झिरना ते आवतु नगर मे।
जहाँ जात आवत लगत काँट झारन के,
हौं न जैहौं हो हो पानी पीवति हौं घर मे॥
अति दूर ही ते भरी गगरी लै आवति हौं,
छूटै पसीना कम्पै अङ्ग थर-थर मैं।
वाहति हौं पुनि सासु ननद झुकै,
न मो पै जाऊँगी तौ आऊँगी भरि दुपहर मैं॥"

[क० क० त० ५।२४]

शब्द अर्थ की परस्पर सहकारिता—

शाब्दी-व्यजना मे शब्द व्यजक होता है और अर्थ सहयोग करता है। इसी तरह आर्थी व्यजना मे अर्थ व्यजक होता है और उसमें शब्द सहयोग करता है। इस सम्बन्ध मे चिन्तामणि ने इस प्रकार कहा है.—

"औ अर्थो व्यंजक वरनि शब्द सङ्ग ते होइ।" [क० क० त० २।२०]

निष्कर्षः—

आचार्य चिन्तामणि ने शब्द-शक्ति सम्वन्धी स्थूल प्रसगो का निरूपण किया है और उसमे भी सफल नही हुए हैं। इन्होने अभिधा का उल्लेख नही किया है, लक्षणा के भेदोपभेद की चर्चा भी नही की है और न व्यजना का ही उदाहरण प्रस्तुत किया है। वाचक शब्द और लक्षणा मूला शाब्दी-व्यंजना के लक्षण भी स्पष्ट नही है। फिर भी ये हिन्दी के प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने ऐसे गूढ़ विपय के प्रतिपादन का प्रयास किया है इसलिए प्रयत्न प्रशसनीय है।

---

१. शब्द अनेकारथ वरनि अति कछु भिन्न प्रकार।
होइ संयोगादिक गमन इत अवाच्य को सार॥ [का० क० त० ५।८]

आचार्य कुलपति मिश्र

आचार्य कुलपति मिश्र का कविता काल सं० १७२४ से १७४३ तक माना जाता है।[1] इनके ग्रन्थ 'रस रहस्य' का रचनाकाल कार्तिक कृष्ण एकादशी सं० १६२७ है। इसके अतिरिक्त द्रोणपर्व, युक्ति-तरंगिणी, नख-शिख, संग्रामसार ग्रन्थ भी इनके लिखे हुए हैं, किन्तु 'रसरहस्य ही अधिक प्रसिद्ध और प्रकाशित है। ये संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे और साहित्य-शास्त्र के भी मर्मज्ञ थे। रस रहस्य लक्षण-ग्रन्थ है और मम्मट के काव्य-प्रकाश का छायानुवाद है। इस ग्रन्थ के दूसरे वृतान्त का नाम शब्दार्थ-निर्णय है। इसी प्रकरण मे शब्द-शक्ति का निरूपण किया गया है। इन्होंने शास्त्रीय परिभाषाएँ और उदाहरण पद्य मे दिये है, बीच-बीच मे विषय को स्पष्ट करने के लिए गद्य का भी प्रयोग किया है। इससे प्रतीत होता है कि वे समझते थे कि शास्त्रीय निरूपण के लिये पद्य उतना उपयुक्त नहीं होता है, जितना कि गद्य। तत्कालीन गद्य की अपरिमार्जित और अपरिपक्व अवस्था के कारण इनका उद्देश्य सिद्ध न हो सका इस सम्बन्ध मे आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि—"शास्त्रीय निरूपण के लिए पद्य उपयुक्त नही होता, इसका अनुभव इन्होने किया, इससे कही-कही कुछ गद्य वार्तिक भी रखा। पर गद्य परिमार्जित न होने के कारण जिस उद्देश्य से इन्होने अपना यह ग्रन्थ लिखा वह पूरा न हो सका।"[2]

शब्द-शक्ति का निरूपण प्रारम्भ करने से प्रथम कुलपति ने और अर्थ को काव्य का शरीर मानकर इन्ही पर विचार किया है।[3] इन्होने शब्द के तीन भेद—(१) वाचक, (२) लक्षक और (३) व्यजक बताये हैं। इसी प्रकार उन्होने अर्थ के भी तीन भेद—(१) वाच्य, (२) लक्ष्य और व्यग्य बताये हैं।[4] इन्होने अभिधा आदि चार शब्द-शक्तियो का अपने ग्रन्थ मे उल्लेख किया है।

अभिधा—जो बिना किसी अन्य की सहायता के स्वयं अर्थ बता दे वह वाचक-पद कहा जाता है। पद को सुनते ही जिसे अर्थ को चित्त ग्रहण करले उसे वाचार्थ कहते हैं।[5] जिस व्यापार से पद का ऐसा अर्थ ज्ञात होता है उसे (अभिधा)

---

१. हि० सा० इति० आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० परि०सं० २००२, पृष्ठ २२४

२. हि० सा० इति०, आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० परि० सं० २००२ पृष्ठ २२४

३. देह प्रथम ही देखिए, बहुरि जीव की ज्ञान।
दूषण गुण भूषण को, पाछे जानत मान॥ [र.र. २/१]

४. वाचक लक्षण व्यंग को, शब्द तीन विधि सोइ।
वाच्य लक्ष्य अरु व्यंग्य पुनि, अर्थ तीन विधि होइ॥ [र. र. २/३]

५. वाचक सोजु सहाय बिन आप अर्थ कर देइ।
वाच्य अर्थ पद सुनत ही जहि चित्त गहि लेइ॥ [र. र. २/४]

शक्ति कहते है।[1] इन्होंने सकेत को 'सो इच्छा भगवान् की' कहकर ईश्वरेच्छा से सम्वद्ध वताया है।

लक्षण—जब कोई शब्द वक्ता के अभीष्ट अर्थ को प्रकट नही कर पाता तब सम्वद्ध किसी अन्य अर्थ को प्रकट करके कारण 'लक्षक' (लाक्षणिक) होता है।[2] इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि इन्होंने लक्षण के मुख्यार्थ वाध आदि तीनो तत्वों को स्वीकार किया है।

कुलपति ने सर्व प्रथम लक्षण के दो भेद—(१) रूढा और (२) प्रयोजनवती किये है। फिर इन्होने प्रयोजनवती के दो भेद—(१) शुद्धा और (२) गौणी वताए है। इन्होंने शुद्धा के दो भेद उपादान और लक्षण-लक्षणा स्वीकार किये है। वे इन दोनो के भी पुनः दो उपभेद सारोपा और साध्यवसाना करते है। इन्होने गौणी के दो भेद सारोपा और साध्यवसाना वताए है। लक्षणा के भेदोपभेद के उदाहरण इन्होने हिन्दी के रीतिकालीन वातावरण के अनुसार प्रस्तुत किए है।

व्यञ्जना—कुलपति व्यञ्जना की परिभाषा देते हुये कहते हैं कि—व्यंजक शब्द उसे कहते है जो मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ की अपेक्षा अधिक अर्थ वताता है। उसी अर्थ को व्यग्यार्थ कहते है और इसका वोध-व्यञ्जना शक्ति के द्वारा होता है। इस शक्ति के दो भेद—(१) लक्षणा मूला और (२) अभिधा मूला उन्होने माने हैं।[3] लक्षणा मूला शाब्दी व्यजना के भी दो भेद इन्होने माने है। मम्मट के अनुसार गूढ़ व्यग्या और अगूढ़ व्यंग्या प्रयोजनवती लक्षणा ही होती है न कि लक्षणामूला शाब्दी व्यजना किन्तु इनके उदाहरण बड़े सरस और शास्त्रानुमोदित हैं। अभिधामूला शाब्दी व्यजना का क्षेत्र इन्होने सीमित कर कर दिया है। यह मान्यता भी इनकी भ्रमात्मक है। इसका शुद्ध उदाहरण भी ये नही प्रस्तुत कर सके हैं। आर्थी व्यजना की परिभाषा मम्मट के आधार पर ही दी गई है, इनके द्वारा दिए हुए देश, काल आदि के दस वैशिष्ट्य नाम से कुछ भिन्न अवश्य है परन्तु इनका स्वरूप आचार्य मम्मट से पूर्णतः प्रभावित हैं। इन्होने अर्थी व्यजना के तीन भेद १—वाच्य से व्यग्य, २—लक्ष्य से ध्यंग्य और ३—व्यग्य से व्यंग्य माने है।

पूर्ववर्ती आचार्य चिन्तामणि की अपेक्षा कुलपति का शब्द-शक्ति निरूपण अधिक पूर्ण और स्पष्ट है। वाचक शब्द, व्यजना शक्ति और तात्पर्य वृत्ति के स्वरूप

---

१. या पदते ये ही अर्थ जान्यो ऐसो रूप।
सो इच्छा भगवान की जो है शक्ति अनूप॥ [र. र. २/६]

२. लक्षक सों अर्थ न बनै, तब ढिग तें गहि लेई। [र. र. २/७]

३. सोइ व्यंग जु लक्षणा अभिधा मूल विलास॥ [रा. रा २/१७]

को कुलपति निर्भ्रान्त नही निरूपण कर सके। लक्षणामूला व्यंजना के दो भेदो गूढ़ व्यंग्या और अगूढ़ व्यंग्या का निरूपण इन्होने व्यंजना के प्रकरण मे करके परम्परा का अतिक्रमण कर दिया है। शाब्दी अभिधा मूला व्यजना का उदाहरण भी ये नही दे सके हैं। फिर भी वे शब्द-शक्ति जैसे जटिल विषय को बोधगम्य बनाने मे अवश्य सफल हुए हैं।

आचार्य देव

आचार्य देव का प्रथम ग्रन्थ 'भावविलास' है जिसका रचनाकाल स० १७४६ है। यह ग्रन्थ इन्होने १६ वर्ष की अवस्था मे लिखा था। देव रीति-काल के प्रतिनिधि कवियों में प्रमुख कवि हैं और शायद सबसे अधिक ग्रन्थों की रचना भी इन्होने की है। (१) जाति विलास, (२) रस विलास, (३) काव्य-रसायन या शब्द रसायन (४) सुख सागर तरग, (५) वृक्ष विलास, (६) पावस विलास, (७) ब्रह्म-दर्शन पच्चीसी, (८) तत्व-दर्शन पच्चीसी, (६) आत्म-दर्शन पच्चीसी, (१०) जगद्दर्शन पच्चीसी, (११) रसानन्द लहरी, (१२) प्रेम दीपिका, (१३) सुमिल विनोद, (१४) राधिका विलास, (१५) नीति शतक और (१६) नख-शिख प्रेम दर्शन। इस सम्बन्ध में आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल का मत है:—

"रीतिकाल के प्रतिनिधि कवियों मे शायद सबसे अधिक ग्रन्थ-रचना देव ने की है। कोई इनकी रची पुस्तको की संख्या ५२ और कोई ७२ तक बतलाते है।"[1]

इस ग्रन्थ के द्वितीय प्रकाश मे तीनो वृत्तियों का विशद-विवेचन प्रस्तुत किया गया है, कतिपय विद्वान् इसे देव की मौलिक उद्भावना स्वीकार करते है, किन्तु इसका आधार आलंकारिको का वह वर्गीकरण भास होता है जिसमें उन्होने आर्थी व्यंजना में व्यग्यार्थ का विवेचन करते समय वाच्यार्थ से व्यग्यार्थ, लक्ष्यार्थ से व्यंग्यार्थ और व्यग्यार्थ से व्यग्यार्थ का विचार किया है। इसीलिए देव ने अभिधा तया लक्षणा मे भी संकर की कल्पना कर ली है। अतः देव ने तीन वृत्तियो के १२ प्रकार माने हैं।

अभिधा—(१) शुद्धा अभिधा, (२) अभिधा में अभिधा, (३) अभिधा मे लक्षणा, (४) अभिधा मे व्यंजना।

लक्षणा—(१) शुद्धा लक्षणा, (२) लक्षणा मे लक्षणा, (३) लक्षणा में व्यंजना, (४) लक्षणा में अभिधा।

व्यंजना—(१) शुद्धा व्यंजना, (२) व्यजना मे व्यंजना, (३) व्यंजना में अभिधा, (४) व्यंजना मे लक्षणा।

इसके अनन्तर उनका कथन है तात्पर्यार्थ के साथ मिलकर ये १२ भेद अनन्त

१. हि०-सा०-इति०, आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० परि० सं० २००२ पृष्ठ २२६

भेदों की सृष्टि करते है।[1] देव ने इन सब भेदों के सोदाहरण वर्णन किए है। प्रारम्भ में अभिधा के चार मूल-जाति, क्रिया, गुण तथा यदृच्छा का सोदाहरण वर्णन है। इसके पश्चात् लक्षणा के चार मूल कार्य-कारण, सादृश्य, वैपरीत्य और आक्षेप का सोदाहरण वर्णन किया गया है, इसका आधार वह प्राचीन मत है जहाँ लक्षणा के पाँच भेद माने गये थे। वे भेद कार्य-कारण, सादृश्य, व्यभिचारी, वैपरीत्य एवं क्रियायोग है। देव ने क्रियायोग और व्यभिचार के स्थान पर आक्षेप मान लिया है। व्यंजना के भी चार मूल-वचन, क्रिया, स्वर, चेष्टा का सोदाहरण विवेचन प्रस्तुत किया है।

देव काव्य मे रस की महत्ता स्वीकार करते हैं। अतः इस दृष्टि से काव्य की आत्मा रसव्यंजना को ही मानते हैं। इस प्रसङ्ग मे उनका प्रसिद्ध दोहा[2] जिसे आचार्य शुक्ल ने पहेली बुझौवल कहा है, द्रष्टव्य है। यह दोहा नायिका भेद के प्रसङ्ग मे कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यहा उनका अभिप्राय वस्तु व्यंजना की दुरारूढ़ पद्धति की भर्त्सना करना है। अगर ऐसा नही है और देव रस को काव्य का वाच्यार्थ या तात्पर्यार्थ मानकर उसे व्यग्यार्थ वृत्ति गम्य नही मानते तो कहना पड़ेगा कि यह उनका मत भ्रामक है।

आचार्य देव के लक्षणा के उदाहरण और उस पर उनकी टिप्पणी देखकर तो यही प्रतीत होता है कि उन्होने सम्पूर्ण छन्द मे लक्षणा स्वीकार की है, जबकि लक्षणा पदगत और वाक्य मे होती है। इस सम्बन्ध में डा० नगेन्द्र का मत है:—"देव ने सम्पूर्ण छन्द के अर्थ मे लक्षणा मान ली है जो कि साधारणतः सम्भव नही होती।"[3]

शब्द शक्तियो का विशद विवेचन आचार्य देव के ग्रन्थ "काव्य-रसायन" में

---

१. शुद्ध अभिधा है, अभिधा में अभिधा है,
अभिधा में लक्षना है, अभिधा में व्यंजना कहो।
शुद्ध लक्षना है, लक्षना में लक्षना है,
लक्षना में व्यंजना है, लक्षना में अभिधा कहो।
शुद्ध व्यजना है, व्यंजना में व्यंजना है,
व्यंजना में अभिधा है, व्यंजना में लक्षना गहो।
तातपरजारथ मिलत भेद बारह,
पदारथ अनंत सबदारथ मतै छहो॥
काव्य रसायन, द्वितीय प्रकाश पृ० १२

२. 'अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षणा लीन।
अधम व्यंजना रस कुटिल, उलटी कहत नवीन॥
शब्द रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह हि० मा० सं० प्र० सं० पृ० ७२

३. देव और उनकी कविता (उत्तरार्द्ध) डा० नगेन्द्र, सन् १९४९ ई० पृ० १८

पाया जाता है।[1] वे वाच्य, लक्ष्य, व्यंग्य एवं तात्पर्यार्थ इन चारों अर्थों को स्वीकार करते हैं। उनका कथन है कि—'शब्द का साक्षात्संकेतित अर्थ अभिधा वृत्ति का निमित्त है।'[2] "मुख्यार्थबाध और उसके सामीय-सम्बन्ध से रूढि या प्रयोजन के द्वारा लक्षणा लक्षित होती है।"[3] "साक्षात्संकेतित अर्थ के अभाव में जहाँ अन्य प्रतीयमान अर्थ की प्रतीति होती है वहाँ व्यजना होती है।[4] चौथी अर्थ शक्ति तात्पर्यार्थ उन्होंने मानी है जिसे वे शब्द मे ही स्वीकार करते है।

इन चारों अर्थों को स्पष्ट करने के लिए देव ने वाच्य-वाचक सम्बन्ध तथा अभिधावृत्ति के लिए एक उदाहरण में और 'दूसरे उदाहरण मे एक साथ वाच्य, लक्ष्य तथा व्यग्य अर्थो का प्रतिपादन किया गया है।

वे लक्षणा का प्रतिपादन करते हुए लक्षणा के १३ भेदों का संकेत करते है, प्रयोजनवती लक्षणा के १२ भेद और रूढ़ि के एक भेद मानते है। प्रयोजनवती लक्षणा को प्रथम दो वर्गों शुद्धालक्षणा तथा मीलित (गौणी) लक्षणा में उन्होंने विभाजित किया है। शुद्धा के चार भेद—उपादान, लक्षणलक्षणा, सारोपा एवं साध्यवसान वे मानते हैं। गौणी लक्षणा के वे दो भेद करते है—सारोपा तथा साध्यवसाना। इस प्रकार प्रयोजनवती के ६ भेद हुए, फिर हरएक में गूढव्यंग्या तथा अगूढ़व्यग्या भेद स्वीकार करते है।[5]

---

१. इसी काव्य रसायन को कुछ लोग शब्द-रसायन भी कहते हैं। हि० सा० सम्मेलन प्रयाग के तत्त्वावधान सम्पादित और प्रकाशित इस ग्रन्थ का नाम शब्द रसायन नहीं दिया है। इस प्रबन्ध में अध्ययन के लिए इसी संस्करण का उपयोग किया गया है।

२. शब्द वचन ते अर्थ कढ़ि, चढ़ै सामुहे चित्त।
ते दोऊ वाचक वाच्य है अभिधावृत्ति निमित्त॥
शब्द रसायन, प्र० सं०. जानकीनाथ सिंह मनोज पृ० २

३. रूढ़ि प्रयोजन करे कछु अर्थ समुहे भूल।
तिहि तरु प्रगटै लाक्षनिक लक्ष्य लक्षना मल॥
श० र०. सं० जा० ना० सिंह मनोज. प्र० सं०. पृ० २

४. समुहे कढ़े न, फेर सों झलकै औरै इंग्य।
वृत्ति व्यंजना धुनि लिए, दोऊ व्यंजक व्यंग्य॥
श० र०, सं० जा० ना० सिंह मनोज प्र० सं०, पृ० २

सुर पलटत ही शब्द ज्यों, वाचक व्यंजक होत।
तातपर्ज के अर्थ अर्थ हूं, तीन्यौ करत उदोत।
श० र०, सं० जा० ना० सिंह, मनोज, प्र० सं० पृ० २

५. तातपर्ज चौथो अरथ, तिहूं शब्द के बीच।
अधिक मध्य, लघु, वाच्य, धुनि. उत्तम मध्यम नीच॥
[शब्द रसायन. प्र० प्रकाश. प्रथम संस्करण. जानकीनाथ सिंह 'मनोज' पृ० २]

आचार्य देव के लक्षणा के उदाहरण और उस पर उनकी टिप्पणी देखकर तो यही प्रतीत होता है कि उन्होंने सम्पूर्ण छन्द में लक्षणा स्वीकार कर ली है, जब कि लक्षणा पद गत है और वाक्य मे होती है।[1]

आचार्य सोमनाथ

आचार्य सोमनाथ का कविता काल सं० १७६० से १८१० तक माना जाता है। इन्होने सं० १७९४ मे 'रसपीयूपनिधि' नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ मे इन्होने पिंगल, काव्य-लक्षण, प्रयोजन, भेद, शब्द-शक्ति, ध्वनि, भाव, रस, रीति, गुण, दोप आदि सभी विपयो का निरूपण किया है। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त कृष्ण लीलावती पचाध्यायी, सुजान विलास और माधव-विनोद नाटक ग्रन्थ इनके लिखे हुए है। रस पीयूपनिधि की छठी तरङ्ग मे इन्होने शब्द-शक्ति का निरूपण किया है। विपय का स्पष्टीकरण करने के लिए इन्होने गद्य का भी आश्रय लिया है। विपय का प्रमुख आधार ग्रन्थ 'काव्य-प्रकाश' 'साहित्य-दर्पण और कुलपति का 'रस-रहस्य' है।

सोमनाथ ने भी कुलपति की तरह ही काव्य-पुरुप की कल्पना की है।[2]

शब्द और अर्थ का भेद करते हुए इन्होने बताया है कि जिसे सुना जाए उसे शब्द कहते है और जिसे चित्त द्वारा ग्रहण किया जाए उसे अर्थ कहते है।[3]

इन्होने वाणी को दो वर्गो (१) ध्वनिमय और (२) अक्षरमय मे विभक्त किया है। ध्वनिमय के अन्तर्गत—इन्होने ताल, मृदङ्ग, डफ, ढोलक और तत्री को माना है और अक्षरमय के अन्तर्गत ग्रन्थो को स्वीकार किया है।[4] वे कहते हैं कि अक्षर अथवा अक्षरो से शब्द की रचना होती है। अक्षरो से बने हुए शब्द और उनके अर्थ दोनों ही तीन-तीन प्रकार के होते है—वाचक, लाक्षणिक और व्यजक तथा वाच्य, लक्ष्य और व्यग्य।

उपर्युक्त विवेचन मे केवल वाणी का भेद ही सोमनाथ की मौलिक उद्भावना है शेष काव्य-प्रकाश के अनुसार ही निरूपित किया गया है।

शब्द-शक्ति—

इन्होने शब्द की तीन शक्तियाँ मानी है—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना।

---

१. ......देव ने संपूर्ण छन्द के अर्थ में लक्षणा मान ली है जो कि—साधारणतः संभव नहीं होती। [देव और उनकी कविता (उत्तरार्ध) १९४९. डा० नगेन्द्र. पृ० १३७

२. [क] जोव ज्ञान फिरि होत है प्रथम निरखयहि देह। (रसपीयूषनिधि ६।१३)
[ख] व्यंग्य प्राण अरु अंग सब शब्द अर्थ पहिचानि। („ ६।६)

३. सुनिए श्रवननि शब्द समानो समुझि चित्त अर्थ वह जानो। (वही ६।१४)

४. ... ... (वही ६।१५)

अभिधा:—

शब्द का ठीक-ठीक अर्थ जिसके द्वारा जाना जाए उसे अभिधा-वृत्ति कहते है।[1]

रीति, सामर्थ्य, शक्ति, व्यापार और व्यवहार इसी के अपर नाम है। वाचक शब्द और वाच्य अर्थ इसी शक्ति से सम्बन्धित है। वाचक वे शब्द होते हैं जो विना किसी की सहायता के अर्थ प्रकट कर देते है- जैसे चन्द्र शब्द के सुनते ही चन्द्र का ज्ञान हो जाता है।[2] इसी अर्थ को वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और मुख्यार्थ भी कहते है।

लक्षणा—

सोमनाथ के लक्षणा के सम्वन्ध मे शास्त्र सम्मत तीनों तत्वो—(१) मुख्यार्थ-बाध (२) मुख्यार्थ-योग (३) रूढ़ि तथा प्रयोजन का उल्लेख किया है।[3] आचार्य मम्मट की तरह ही इन्होंने लक्षणा के सात भेद किए है—रूढ़ा लक्षणा और ६ प्रकार की प्रयोजनवती लक्षणा। इन भेदों के स्वरूप इन्होने मम्मट के अनुसार ही दिए है, उदाहरण इनके अपने है। विपय को स्पष्ट करने की प्रणाली इनकी वहुत स्वच्छ है।

व्यंजना—

वे व्यंजना शक्ति द्वारा ज्ञात अर्थ को व्यंग्य कहते है और इस अर्थ को व्यक्त करने वाले शब्द को व्यंजक। इनके अनुसार व्यंजक शब्द उसे कहते है जो कहे हुए अर्थ से अधिक अर्थ वताए। वही अधिक अर्थ व्यंग्य कहा जाता है जो रसिको को आनन्द प्रदान करता है।[4].

आचार्य कुलपति की तरह सोमनाथ ने भी व्यंजना के दो प्रमुख भेद वताए हैं (१) अभिधामूला और (२) लक्षणामूला। फिर लक्षणा मूला के दो भेद वताये

---

१. या अक्षर को यह अरय ठीकहि यह ठहराय।
जानि परै जातें सु वह अभिधा वृत्ति कहाय ॥ (वही ६।२०)

२. बिनु सहाय अर्थहि कहै सो वाचक सुख कन्द।
चंद शब्द यों सुनत ही परखि लीजिए चंद ॥ (वही ६।१८)

३. मुख्यारथ को छोड़ि कै पुनि तिहिं के ढिग और।
कहै जु अर्थ सुलक्षणा वृत्ति कहत कवि और ॥
कविन द्विविधि यह लीनो मान। रूढ़ प्रयोजनवती वखान ॥
(र. पी. नि. ६।२४, २५)

४. अधिक कहे कहि अर्थ को व्यंजक शब्द सु जानि।
× × × ×
समुझि लीजिए अर्थ पुनि और वीज हू होय।
रसिकन को सुखदानि अति व्यंग्य कहावत सोय॥ [र० पी० नि० ६।३७]

है (१) गूढ़ व्यंग्या (२) अगूढ व्यग्या । सोमनाथ ने भी अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की परम्परानुसार ही इसका वर्णन किया है । अभिधामूला व्यजना के प्रसङ्ग मे जब किसी स्थल पर अनेकार्थक शब्द का एक अर्थ वक्ता को अभीष्ट होता है और उसका कारण संयोगादि मे से कोई एक होता है, किन्तु इस प्रसग मे सोमनाथ ने संयोगादि की चर्चा ही यहाँ नही की है ? [1]

सयोगादि द्वारा अनेकार्थक शब्द के नियत एकार्थ की प्रतीति अभिधामूला व्यंजना का विषय नही है, बल्कि सीमित अर्थ की प्रतीति ही इस व्यजना का विषय है ।

आचार्य मम्मट ने शब्द और अर्थ दोनों में व्यजकता मानी है । सोमनाथ की अभिधामूला और लक्षणा मूला व्यंजना आचार्य विश्वनाथ की शाब्दी व्यजना के अंतर्गत आ जाती है । आचार्य विश्वनाथ ने व्यजना के दो भेद माने है— (१) शाब्दी-व्यंजना और (२) आर्थी-व्यजना । सोमनाथ ने इस प्रसग मे आचार्य मम्मट का अनुसरण किया है—मम्मट ने व्यजक अर्थ से व्यंग्यार्थ की प्रतीति के लिए वक्तादि दस विशिष्टताओं का उल्लेख किया है—वक्ता, काकु, वाक्य और समय का उल्लेख सोमनाथ ने भी इस प्रसंग में किया है । इस व्यंजना प्रकार को विश्वनाथ ने आर्थी व्यंजना माना है । सोमनाथ ने इसके समस्त क्षेत्र को तीन भागो मे बाँटा है (१) वाच्यार्थ से (२) लक्ष्यार्थ से (३) व्यंग्यार्थ से—व्यंग्यार्थ की प्रतीति । [2]

सोमनाथ का शब्द शक्ति निरूपण व्यंजना को छोड़कर शेष शास्त्रानुमोदित है । व्यंजना शक्ति का स्वतन्त्र लक्षण नही दिया गया है । इस स्थल पर व्यजक शब्द और व्यंग्य अर्थ के लक्षण प्रस्तुत किए गए हैं । इनसे व्यंजना का बोध नही होता है । अभिधामूला व्यंजना का स्वरूप न तो लक्षण से, न ही उदाहरण से स्पष्ट हुआ है । संयोगादि प्रसंग मे केवल चार का दस के बदले मे उल्लेख किया गया है । गूढ़ व्यंग्या और अगूढ़ व्यंग्या का उल्लेख लक्षणा के प्रसंग मे न करके व्यंजना के प्रसङ्ग मे किया गया है ।

सोमनाथ ने विषय को संक्षिप्त और सारयुक्त बनाने का प्रयास किया है । भाषा की सरलता और सुबोधता, विषय-निरूपण की पर्याप्तता तथा उदाहरणो

---

१. बहु अर्थ के जहँ शब्द में इक अर्थ की प्रतीति ।
सह अभिधा मूल व्यंग्य है समुझो अति करि प्रीति ।।
[र० पी० नि० ६।४४]

२. त्रिविधि अर्थ तें व्यंग्य जो होत सु कहत बनाय । [र० पी० नि० ६।४७]

की विशुद्धता और सरसता के कारण यह प्रकरणअपनी एक विशिष्ट उपादेयता सिद्ध करता है।

आचार्य भिखारीदास

आचार्य भिखारीदास का कविता काल सं० १७८५ से १८०७ तक माना जाता है। इनके अब तक रस सारांश, छदोर्ण व पिंगल, काव्य-निर्णय, शृङ्गार निर्णय, नाम प्रकाश, विष्णु पुराण, भाषा छद-प्रकाश, शतरज-शतिका और अमर-प्रकाश ग्रन्थ प्रकाश मे आ चुके है। काव्यांगो के निरूपण में दासजी ने छंद, रस, अलकार, रीति, गुण, दोष शब्द-शक्ति आदि सब विषयो का रीतिकालीन अन्य आचार्यों से विस्तृत निरूपण किया है।[1]

काव्य निर्णय के द्वितीय उल्लास, पदार्थ-निर्णय में शब्द-शक्ति का भी निरूपण किया गया है। निरूपण का प्रमुख आधार 'काव्य-प्रकाश' है।

पद और शब्द शक्ति—

भिखारीदास ने तीन प्रकार के पदो की गणना की है—(१) वाचक, (२) लाक्षणिक, (३) व्यजक।[2] भिखारीदास के अनुसार काव्य-शक्तियों का विवरण इस प्रकार है:—अभिधा शक्ति.—भिखारीदास ने वाचक, वाच्य और अभिधा शक्ति की परिभाषा एक स्थान पर ही दे दी है।

वाचक शब्द चार प्रकार के है—जाति—जैसे यदुनाथ; यदृच्छा—जैसे कान्ह; गुण—जैसे श्याम; और क्रिया—जैसे कसारि।[3]

वाचक शब्द से जो अर्थ ज्ञात होता है वह वाच्यार्थ कहलाता है।[4]

---

१. हि० सा० का० इति० आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० परि० सं० २००२, पृ० २४१

२. पद वाचक अरु लाच्छनिक ध्यंजक तीन विघान। (का० नि० २।१)

३. वाचक—जाति, यदिच्छा, गुन, क्रिया, नाम जु चारि प्रमान।
सब की संज्ञा जाति गनि, वाचक कहैं सुजान॥
जाति नाम जदुनाथ अरु, कान्ह जदिच्छा धारि।
गुन ते कहिए स्याम अरु, क्रिया नाम कंसारि॥
(का० नि० २।२,३)

४. वाच्यार्थ—ऐसे शब्दन्ह सों फुरै संकेतित जो अर्थ।
ताको वाच्यारथ कहैं, सज्जन सुमति समर्थ॥ (वही २।५)

अभिधा शक्ति वह है जो किसी शब्द के अनेक अर्थों मे से प्रसंग प्राप्त अर्थ विशेष का बोध करा देती है।[1]

मोर-पक्ष को मुकुट सिर, उर तुलसी-दल माल।
जमुना तीर कदम्ब ढिग, मैं देख्यौ नन्दलाल॥
(का० नि० २।२१)

यहाँ प्रसंग सम्बद्ध होकर पक्ष, दल, तीर आदि का एक अर्थ नियत हो गया है। यहाँ 'दास' भ्रमवश अभिधा के स्थान पर अभिधा मूला व्यंजना का उदाहरण दे गए हैं। इसी प्रसंग मे १४ नियन्त्रक कारणो के उदाहरण भी प्रस्तुत किए है।

जाति का उदाहरण जदुनाथ और क्रिया का उदाहरण कंसारि अशुद्ध भी है।

लक्षणा-शक्ति—भिखारीदास लक्षणा-शक्ति के तीन तत्वो मे से केवल दो की चर्चा करते हैं—

(१) मुख्यार्थ बाध।
(२) रूढ़ि और प्रयोजनवती।

तीसरे तत्व 'मुख्यार्थ योग' की चर्चा इन्होंने नही की है।[2] किन्तु इनके उदाहरणो से यह प्रतीत नही होता कि उन्हे यह तीसरा तत्व अभीष्ट नहीं था।

लक्षणा के भेदोपभेद गिनाते हुए दासजी ने एक साथ ही चार नाम—(१) उपादान, (२) लक्षण-लक्षणा, (३) सारोपा और (४) साध्यवसाना गिना दिया है।[3] इन भेदो के उदाहरण कुछ तो मम्मट सम्मत है और कुछ स्वतन्त्र है। स्वतन्त्र उदाहरणों मे उपादान लक्षणा का उदाहरण—'पिचकारी चलती' दिया गया है।[4] इसमे स्वयं सिद्धि के लिए अन्य अर्थ का आरोप किया गया है, जिसकी आवश्यकता नही प्रतीत होती है। साध्यवसाना का उदाहरण—'सेज-कृसानु' इन्होंने दिया है जो

---

१. अभिधा-शक्ति—अनेकार्थहू शब्द में, एक अर्थ की व्यक्ति।
तेहि वाच्यारथ को कहैं, सजन अभिधा-शक्ति॥
जामैं अभिधा-शक्ति करि, अर्थ न दूजो कोइ।
वहै काव्य कीन्हैं बनै, नातौ मिश्रित होइ॥
(का० नि० २।१९,२०)

२. मुख्य अर्थ के बाध तें, शब्द लाच्छनिक होत।
रूढ़ि औ प्रयोजनवती, द्वै लच्छना उदोत॥ [का० नि० प्र० सं० २।२२]

३. उपादान इक जानिये, दूजी लच्छित ठान।
तीजी सारोपा कहैं, चौथी साध्यवसान॥ [का० नि० प्र० सं० २।२७]

४. पिचकारी चलती घनी जहँ तहँ उड़त गुलाल। [का० नि० प्र० सं० २।३०]

सारोपा का उदाहरण है। इस तरह के उदाहरणों से भ्रम ही अधिक पैदा होता है। इस सम्बन्ध मे आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल का मत है—"इनके लक्षण भी व्याख्या के विना अपर्याप्त और कही-कही भ्रामक हैं और उदाहरण भी कुछ स्थलो पर अशुद्ध हैं। जैसे उपादान लक्षणा लीजिए। इसका लक्षण भी गड़वड़ है और उसी के अनुरूप उदाहरण भी अशुद्ध है।"[1]

व्यंजना—इसका निरूपण करते हुए इन्होने कहा है कि जिस शब्द के द्वारा 'सूधो' अर्थ के अतिरिक्त अर्थ की प्रतीति हो उसे व्यजना कहते है।[2] इस प्रसग मे इन्होने लक्ष्यार्थ की चर्चा नही की है। व्यंजना जन्य अर्थ को व्यग्यार्थ और जिस शब्द से व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है उसे वे व्यजक कहते हैं।[3] व्यंजना के महत्व को स्वीकार करते हुए इन्होने सहज भाव से कहा है कि—वाचक और लक्षक भाजन रूप हैं और व्यजक जल रूप है।[4] उन्होने स्पष्ट रूप से यह वताया है कि—जल के विना रीता घड़ा जिस प्रकार वेकार है उसी प्रकार व्यग्यार्थ के विना वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ वेकार है।[5] पर वे इस सत्य को भी स्वीकार करते हैं कि व्यग्यार्थ, वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ पर आश्रित होता है। इसके आगे भेदोपभेद की चर्चा करते हुए उन्होने वताया है कि—अभिधा मूला शाव्दी व्यजना अनेकार्थक शव्द के उस अर्थ को भी व्यक्त करती है जो सयोगादि के द्वारा अवाच्य घोपित किया जा चुका है किन्तु दास इस स्वरूप को स्पष्ट नही कर सके,[6] पर यह सत्य है कि इसके स्वरूप से वे परिचित थे।[7]

---

१. वैरिन कहा बिछावती फिरि-फिरि सेज-कृसान। [का० नि० प्र० सं० २।]
हि० सा० इति०, आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० परि० सं० २००२ पृ०

२. सूधो अर्थ जु वचन को, तेहि तजि और बैन।
समुझि परै तेहि कहत हैं, शक्ति व्यंजना ऐन॥ का० नि० २।४३

३. व्यंजन व्यंजक जुक्त पद, व्यंग्य तासु जो अर्थ।
ताहि बुझावें की सकति, है व्यंजना समर्थ॥ का० नि० २।४२

४. वाचक लच्छक भाजन रूप हैं व्यंजक को जल मानत ज्ञानी। का० नि० २।४१

५. भाजन लाइय नीर विहीन। न आइ सके, बिन भाजन पानी। का० नि० २।४१

६. सब्द अनेकारयन बल, होइ दूसरे अर्थ।
अभिधामूलक व्यंग्य तेहि, भावत सुकवि समर्थ॥ का० नि० २।४४

७. भये अपत कै कोप जुतहि, कै वैरो यहि काल।
मालिन आजु कहै न क्यों, वा रसाल को हाल॥ (का० नि० २।४५)

२. प्रयोजनवती लक्षणा के गूढ़ व्यंग्या और अगूढ़ व्यंग्या नामक दो भेद आचार्य मम्मट ने किए है।

इनका लक्षण दास ने बताया है कि—कवि सहृद जिसको समझें वह गूढा और जिसे सभी समझ सके वह अगूढ़ा-व्यंजना है।[1]

आचार्य भिखारीदास के शब्द-शक्ति निरूपण मे अभिधा तथा लक्षणा की अपेक्षा व्यंजना को अधिक महत्व दिया गया है। अभिधा और लक्षणा को घट तथा व्यजना को जल बता कर उन्होने अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। हिन्दी के दास से पहले के आचार्य अभिधा मूला शाब्दी व्यजना का उदाहरण नही प्रस्तुत कर सके थे। इन्होने प्रथम बार, इसका उदाहरण प्रस्तुत किया। भ्रान्तियो के कारण यह प्रकरण सर्वथा ग्राह्य नही है, क्योकि जाति वाचक और क्रिया वाचक शब्दों के उदाहरण शुद्ध नहीं है। उपादान लक्षणा तथा साध्यवसाना लक्षणा के उदाहरण भी शुद्ध नही है। इन्होने सयोग-वियोग आदि नियत्रको को अभिधा मे स्थान न देकर अभिधा मूला व्यजना मे स्थान दिया है। इससे इनको अभिधा वृत्ति का क्षेत्र सीमित और संकुचित हो गया है।

आचार्य प्रतापसिंह

आचार्य प्रतापसिंह का कविता काल स० १८८० से १६०० तक था। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'व्यंग्यार्थ कौमुदी' तथा 'काव्य विलास' है। इन ग्रन्थो के अतिरिक्त जयसिंह प्रकाश, शृङ्गार-मजरी, अलकार-चिन्तामणि, काव्य-विनोद और जुगल नख-शिख ग्रन्थो की रचना भी इन्होने की है। रसराज, रत्न-चन्द्रिका एव बलभद्र नख-शिख की टीका भी इन्होने लिखी हैं।

प्रतापसिंह रचित 'काव्य विलास' के द्वितीय विलास में शब्द-शक्तियों की चर्चा की गई है। इसके अतिरिक्त व्याग्यार्थ कौमुदी के दूसरे, चौथे, पाँचवे, आठवे और नवे पद्यो मे व्यंजना सम्बन्धित विषय की चर्चा की गई है।

प्रतापसिंह शब्द और अर्थ के सम्बन्ध में विचारव्यक्त करते हुए कहते हैं कि—जिसे हम कानो से सुनते है वह शब्द कहलाता है और जिसे चित्त से समझते हैं वह अर्थ। श्रव्य शब्दो का सम्बन्ध वर्णों के साथ है, अत. वे वर्णात्मक कहलाते है। यही वर्णात्मक शब्द विभक्ति-युक्त होकर वेद-पुराण-ग्रन्थो के रचना-आधार बनते हैं। शब्द शास्त्र के अनुसार ये शब्द तीन प्रकार के है—रूढ़, यौगिक और योग

---

१. कवि सहृद जाकहँ लखैं, व्यंग्य कहावत गूढ़।
जाको सब कोई लखत, सो पुनि होय अगूढ ॥ (का० नि० २।४७)

रुढ़ि। काव्य की वृत्ति के अनुसार भी तीन हैं—वाचक, लक्ष्यक और व्यंजक। इन शब्दों के अर्थ क्रमशः वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य कहलाते है।[१]

शब्द-शक्ति—

इनके मतानुसार वृत्ति (शब्द-शक्ति) तीन प्रकार की है—शक्ति, (अभिधा) लक्षणा और व्यजना। इनके द्वारा शब्द से अपने-अपने अर्थ का बोध होता है।[२]

अभिधा शक्ति—इसके सम्बन्ध मे अपना विचार व्यक्त करते हुए वे कहते है कि—"शब्द का वह व्यापार अभिधा कहलाता है जिसके द्वारा मुख्य अर्थ की प्रतीति होती है और इस अर्थ का बोध कराने वाले शब्द वाचक कहलाते है। इस शक्ति के द्वारा वाचक शब्द से जिस वाच्यार्थ का बोध होता है, उसका आधार—ईश्वरेच्छा है।"[३]

अभिधा शक्ति से सम्बद्ध वाचक शब्दो का संकेत चार रूपों मे प्राप्त होता है—जाति, क्रिया, गुण और द्रव्य।[४] इनके सम्बन्ध मे प्रतापसिंह ने जो उदाहरण प्रस्तुत किए है वे भ्रामक है। इन्होने जाति का उदाहरण 'क्षत्री' से दिया है। 'क्षत्री' शब्द जाति विशेप (ब्राह्मण-क्षत्री) के रूप मे यदि स्वीकार किया हो तब तो इसका अर्थ यह हुआ कि वे इसे समझते ही नही थे।

---

१. श्रवण सुने ते अर्थ है समुझे चित्त सु अर्थ।
वर्णात्मक धुन्यात्मक द्वै विधि कहत समर्थ॥
वेद पुराण विभक्ति युक्त वर्णात्मक सो जानि।
रूढ़ सुजौगिक दूसरो जोगरूढ़ त्रै मानि॥
वाचक लक्षक व्यंजकौ कवित्त वृत्ति में तीन।
समुझि ग्रन्थ प्राचीन मत बरणत सुकवि प्रवीन॥
वाचक ते वाच्यार्थ कहि, लक्षक ते लक्ष्यार्थ।
तीन भांति जो जानिये, विजक ते विग्यार्थ॥ (का० वि० २।१,२,५,११)

२. जहाँ शब्द में रचित है निज अर्थहि को वोध।
शक्ति लक्षणा व्यंजना वृत्ति तीन विधि सोध॥ (का० वि० २।६)

३. मुख्यार्थ प्रतिपाद्य शब्दस्य व्यापारो अभिधा अर्थ।
वाचक तासो कहत है जे कवि सुमति समर्थ॥
जो पद सों ऐसे अरथ अभिधा व्योहार।
जो इच्छा जगदीश की सु है शक्ति निरधार॥ का० वि० २।७,१०

४. क्षत्री आदिक जाति कहि पाठक क्रिया वखानि।
शुक्लादिक गुण जानिये संज्ञा द्रव्य सुजान॥ का० वि० २।९

तात्पर्य वृत्ति—इसके सम्बन्ध मे कुलपति के आधार पर इन्होने भी कह दिया—"चौथी तात्पर्यारथ कहत है," चौथी शब्द नाहि ये विजना वृत्ति के नजीक मानत है।"[१] यहाँ इतना ही कह देना यथार्थ होगा कि तात्पर्य वृत्ति को इन्होने व्यजना मे अन्तर्भुक्त कर दिया है जो किसी प्रकार भी सभव नही है।

लक्षणा शक्ति :—

जब कोई शब्द वक्ता के अभिप्रेत अर्थ को व्यक्त नही कर पाता और तत्सम्बद्धित किसी अन्य अर्थ को व्यक्त करता है तो उसे लक्षक (लाक्षणिक१) कहते हे।[२]

लक्षणा के भेदोपभेदों के निरूपण मे इन्होने साहित्य दर्पण का आश्रय लिया है, पर उसे पूर्ण रूप से व्यवस्थित नही कर सके है। प्रतापसाहि का यह प्रसङ्ग थोडा विभिन्न और कुछ अश तक अव्यवस्थित है। इन्होने रूढा और प्रयोजनवती के बाद गौणी और शुद्धा को स्थान दिया है और इनके बाद उपादान लक्षणा, लक्षण-लक्षणा, सारोपा तथा साध्यावसाना को। इससे विषय प्रतिपादन मे कोई अन्तर नही पड़ता है।

प्रतापसाहि मे 'धर्मगत' के साथ 'धर्मिगत' का नाम नही लिया है। फलगता लक्षणा[३] के इन्होने आठ भेद बताए हैं। ये आठो प्रकार 'धर्मगत' और 'धर्मिगत' के भेद से दो-दो प्रकार के होते हैं, इस प्रकार फलगता लक्षणा के कुल सोलह भेद हुए। इसके अतिरिक्त उन्होने लक्षणा-मूला व्यजना को शुद्ध व्यजना के अन्तर्गत लिया है। इसके दो भेद गूढ व्यंग्या और अगूढ व्यग्या किए गए है। वास्तव में यह प्रयोजनवती लक्षणा के ही भेद हैं जिसके आधार पर बत्तीस प्रकार की हो जाती हैं।[४]

फिर इन्होने लक्षणा के ८० भेद इस प्रकार किए हैं—

रूढ़ अष्टविधि भेद कहि, फल द्वात्रिंशति जानि।
दोऊ मिलि फिर लक्षणा चालिस भेद बखानि॥
पदगत बहुरो वाक्यगत जब ये द्विविध गनाय।
अस्सी भेद तऊ लक्षणा कहत सकल कविराय॥

का० वि० २।३५, ३६

व्यंजना—काव्य विलास और व्यग्यार्थ कौमुदी मे व्यजना का इन्होने उल्लेख इस प्रकार से किया गया है —

---

१. काव्य-विलास, प्रतापसिंह, २।११ तिलक
२. अर्थ न लक्षक सो बनत गहि समीप ते जोइ।
होइ लक्षणा ते प्रकट लक्ष्यारथ कहि सोइ॥ का० वि० २।१२
३. फलगता लक्षणा वास्तव मे मम्मट आदि द्वारा वर्णित प्रयोजनवती लक्षणा ही है।
४. फलगत त्यों ही धर्मगत ये जब दुविध बनाय।
द्वा-त्रिंशति तब लक्षणा भेद तहाँ ठहराय॥ का० वि० २।३४

जब शब्द मे अर्थ की अधिक प्रवृत्ति होती है तो वहाँ अत्यधिक चमत्कार से व्यजना वृत्ति होती है ।[1]

वाचक के सन्मुख रहने पर जब अन्तर अर्थ चमत्कार के साथ निकलता है तो उसे समर्थ व्यग्य कहते हैं ।[2]

जहाँ शब्द से अनेक अर्थ की प्रतीत हो वहाँ 'तिय कटाक्ष' की तरह व्यजना होती है ।[3]

व्यग्यार्थ कौमुदी में व्यंजना के क्षेत्र को अभिधा की अपेक्षा अधिक व्यापक बताया गया है किन्तु यहाँ लक्षणा की चर्चा नही की गई है। काव्य विलास में लक्षा से लक्षणा ही अभिप्रेत है ।[४] इनमे यदि यही तात्पर्य है तो भी इससे विश्वनाथ सम्मत व्यजना स्पष्ट नही होती है। अभिधा आदि शक्तियो के विरत हो जाने पर जिस अर्थ का बोध होता है उसे व्यंजना कहते हैं। पर यहाँ 'तिय कटाक्ष' कहकर यह सिद्ध कर दिया है कि इसके मर्म को वे समझते थे। वास्तव मे व्यग्यार्थ अनेक गूढ़ भावो से परिपूर्ण होता है ।

व्यंजना के दो प्रमुख भेद हैं—(१) शाब्दी और (२) आर्थी । १—इनके अनुसार शाब्दी व्यंजना के दो भेद होते है—(१) लक्षणा मूला, (२) अभिधा मूला ।

लक्षणा मूला की चर्चा लक्षणा के प्रसङ्ग मे इन्होने की है और इनका अभिधा मूला शाब्दी व्यंजना का उदाहरण भी शिथिल है—

शब्द जु नाना अर्थ वाचक यन्त्रित होइ ।
जोगादिक अनुकूल ते अर्थ नेम कहि सोइ ।। का० वि० २।४३

इनके द्वारा शब्दी व्यंजना का शुद्ध उदाहरण नही प्रस्तुत किया गया है। सयोगादि के उदाहरणो को इन्होने व्यजना का उदाहरण बताया है ।

आर्थी व्यजना—वक्ता, बोद्धव्य आदि दस विशिष्टताओ से जिस शक्ति द्वारा

---

१. जहाँ शब्द में अर्थ की होति जो अधिक प्रवृत्ति ।
चमत्कार अतिसै तहाँ जानि व्यंजना वृत्ति ।। व्यं०, कौ० ४

२. वाचक के सन्मुख रहे अन्तर और अर्थ ।
चमत्कार निकसै जहाँ कहि सो व्यंग्य समर्थ ।। व्यं० कौ० ८

३. जहाँ शब्द से अर्थ बहु अधिक-अधिक दरसाय ।
तिय कटाक्ष लौं व्यंजना कहत सकल कविराय ।। व्यं० कौ० ९

४. अभिधा लक्षा व्यंग्य जहँ अर्थ बोध पर होइ ।
वही वृत्ति सो व्यंजना शब्द अर्थ गत होइ ।। का० वि०२।४२

व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है वह आर्थी व्यंजना कहलाती है।[1]

इन्होने प्रतिभा नामक वैशिष्ट्य का उल्लेख किया है किन्तु प्रश्चात संस्कृत काव्य शास्त्रो मे इसका उल्लेख कही नही किया गया है। साथ ही साथ इन्होने इसका लक्षण उदाहरण भी नही प्रस्तुत किया है, जिससे समझने मे अस्पष्टता बनी रहती है। इसी तरह विलासादि नामक एक अन्य वैशिष्ट्य का भी इन्होने उल्लेख किया है। इसमे कोई विशेष चमत्कार नही प्रतीत होता है—

इमि विलसनि हुलसनि हसनि इमि विहसनि सुख वैन।
गनी घनी सोभा सनी बनी बनी छवि ऐन। का० वि० २।६८

किन्तु उपर्युक्त विलास हुलास हँसी आदि को यदि नायिका के हृदयगत भाव मान लें तो इन्हे चेष्टा वैशिष्ट्य कहना अधिक उचित होगा।

आचार्य विश्वनाथ की तरह इन्होने आर्थी व्यजना को तीन वर्गों मे विभक्त किया है :—(१) वाच्य, (२) लक्ष्य और (३) व्यग्य। अर्थो से व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है।

वाचक लक्षक व्यंजकों व्यंग्य सबन ते जानि।
वाच्य लक्ष्य अरु व्यंग्य ये क्रम ते कहहु वखानि।

निष्कर्ष—प्रतापसाहि ने अपेक्षाकृत सबसे अधिक कुलपति के ग्रन्थ का अनुकरण किया है। जिससे कुलपति के दोष इनकी मान्यता में भी आ गए हैं। जाति और क्रिया के उदाहरण, लक्षण लक्षणा तथा लक्षणा मूला व्यजना के दो-दो भेद, और शाब्दी अभिधा मूला के उदाहरण का अभाव—इस बात की परिपुष्टि करते हैं। लक्षणा के भेदो को स्पष्ट करने के लिए इन्होने साहित्य दर्पण का अनुकरण किया है, पर इसे वे व्यवस्था नही प्रदान कर सके है। उदाहरण अवश्य सरस हैं। उदाहरण इन्होने कवित्त, सवैयो मे प्रस्तुत कर व्यर्थ प्रसङ्ग को विशालता प्रदान कर दी है।

"रीति-कालीन आचार्यों का तुलनात्मक अध्ययन"

हिन्दी के इन छहो आचार्यो ने शब्द-शक्तियो का निरूपण किया है किन्तु इनमे से किसी ने भी व्यजना की स्थापना के लिए 'वादियों' के खण्डन का प्रयत्न नही किया है। यह शास्त्रीय विषय बड़ा जटिल और गम्भीर है, अतः तत्कालीन अपरिपक्व गद्य-पद्य के द्वारा इसे ठीक ढङ्ग से कह सकना असम्भव प्राय ही था।

शब्द शक्ति सम्बन्धी जितनी सामग्री इन आचार्यो ने प्रस्तुत की है उसका

---

१. वकता श्रोता काकु पुनि वाच्य अन्यसनिधि होइ।
देश काल प्रस्ताव पुनि वैशिष्टादिक सोइ।
प्रतिभा अरु पुनि चेष्टा ये थल व्यंग्य वखानि।
बोधत आरथी व्यंजना कवि कुल सकल बखानि॥ का० वि० २।२७, ५८

वे यथावत्, शुद्ध और व्यवस्थित प्रतिपादन नही कर सके है। सभी आचार्यो ने गूढ़ और अगूढ भेदो को लक्षणा के स्थान पर लक्षणा मूला व्यंजना के प्रसङ्ग में उल्लेख किए है। दास को छोड़कर अभिधा मूला शाब्दी व्यजना का यथार्थ उदाहरण किसी ने नही प्रस्तुत किया है। इन्होंने सयोगादि प्रतिबन्धको के उदाहरणो को ही व्यजना का भेद मान लिया है। सोमनाथ और प्रतापसाहि ने कुलपति के ग्रन्थ से पर्याप्त सहायता ली है। विपय व्यवस्था की दृष्टि से कुलपति और सोमनाथ का स्थान श्रेष्ठ है। इतना यहाँ और कह देना आवश्यक प्रतीत होता है—कि प्राय: मौलिकता का श्रेय इनमे से किसी को भी नही दिया जा सकता है।

शब्द-शक्ति और उसकी अर्थ-शक्ति के सम्बन्ध में आधुनिक मत

भाषा विज्ञान की दृष्टि से—

पिछले पृष्ठो मे इस बात का दिग्दर्शन यत्किंचित कराया जा चुका है कि शब्द और उसकी अर्थ शक्तियो के सम्बन्ध मे प्राचीन भारतीय शास्त्रो और विशेप रूप से काव्याचार्यो ने क्या कहा है। इसके साथ ही इस विपय मे आधुनिक विद्वानों का मत जान लेना भी अत्यन्त समीचीन होगा। आधुनिक विद्वानो ने जिन नवीन विद्याओ का प्रपच विस्तार किया है उनमे भापा विज्ञान का इस विपय से सर्वाधिक सम्बन्ध है क्योकि भापा-विज्ञान भापाओ का वैज्ञानिक अध्ययन करते हुए भापा के जिन तीन मूल तत्वो—ध्वनि, रूप और अर्थ का सविस्तार विवेचन करता है वे मूल रूप से शब्द और अर्थ ही है।

भापा-विज्ञान की दृष्टि से 'अर्थ-विचार' करते हुए विद्वानो ने अर्थ के बढने, घटने, मिटने आदि व्यापारो की व्याख्या की है। इस विवेचन मे प्रमुख रूप से शब्द के अर्थापकर्प, अर्थापदेश, अर्थोत्कर्प, अर्थ का मूर्तीकरण तथा अमूर्तीकरण, अर्थ संकोच, अर्थविस्तार, रूपक, अनेकार्थक, समास और नामकरण को स्थान दिया गया है। वास्तव मे भिन्न-भिन्न कारणो से अर्थ मे जो विकार उत्पन्न होते है उन्ही का इस रूप मे उल्लेख किया गया है। अर्थ की ये सभी दशाएं सामाजिक प्रचलन से सम्बन्धित हैं। यहाँ पर सक्षिप्त रूप मे इन्ही पर विचार किया जा रहा है.—

अर्थापकर्प—समाज प्रचलन मे किन्ही कारणो से जब अच्छे अर्थ वाले शब्द बुरे अर्थ ग्रहण कर लेते है तो कालान्तर मे वही उनका मुख्यार्थ हो जाता है। अर्थ के इस नए क्षेत्र की शोध सप्रयोजन की जाती है, इसीलिए यह शोध अपनी प्रथमावस्था मे लक्षणा-शक्ति द्वारा ही सम्पन्न होता है, जैसे:—गुरु और राजा शब्द साहित्यिक भापा मे आज भी अपना सम्माननीय अर्थ रखते है, पर वाराणसी क्षेत्र मे गुण्डो तथा बदमाशो के लिए इनका प्रयोग होने लगा है। गुरु और राजा के मुख्यार्थ से गुण्डा अथवा बदमाश का बोध नही होता है वरन् यह अर्थ लक्ष्यार्थ ही है। धीरे-धीरे ये शब्द अपने लक्ष्यार्थ मे ही स्थित हो जाएंगे और यहीं इनका मुख्यार्थ हो जाएगा।

अर्थापदेश—समाज प्रचलन मे लोग अपवित्र, अशुभ और अमङ्गल सूचकता का बुरापन दूर करने के लिए सुन्दर शब्दो का प्रयोग करते है, इस प्रकार उन शब्दों का अर्थ गिर जाता है जैसे:—स्वर्गवासी, दुकान वढाना, दिया वढाना आदि । स्वर्गवासी का मुख्यार्थ मरना नही था पर अप्रियता को मिटाने के प्रयोजन से इसका प्रयोग किया गया। वर्तमान समय मे 'मरना' ही मुख्यार्थ हो गया है । इसी प्रकार वंद करने अथवा वुझाने को अपशकुन समझ कर वढ़ाना शब्द प्रयोग किया जाता है जव कि वद करने का मुख्यार्थ वढ़ाना नही है । प्राथमिक अवस्था मे वढ़ाने का लक्ष्यार्थ ही वन्द करना या वुझाना रहा होगा वही कालान्तर मे मुख्यार्थ मे परिणित हो गया है।

अर्थोत्कर्प—भापा मे शब्दो का उत्कर्प भी होता रहता है, जैसे:—साहस, कपड़ा मुग्ध आदि। साहस का एक दिन सस्कृत भापा मे अर्थ था—हत्या, चोरी, व्यभिचार आदि पर आज हिन्दी भापा मे 'साहस' अपने इन सभी अर्थो को छोड़ चुका है। साहस को नवीन अर्थ प्रदान करने का कार्य लक्षणा शक्ति का ही है पर आज यह शब्द अपने लक्ष्यार्थ को ही मुख्यार्थ वना चुका है। इसी प्रकार कर्पट तथा कप्पट से कपडा और मुग्ध शब्द भी अपने मुख्यार्थ जीर्ण वस्त्र तथा मूढ अर्थ का त्याग कर चुके है। इनका वर्तमान अर्थ भी लक्षणा के मोपान से होकर ही आया है और आज वही लक्ष्यार्थ मुख्यार्थ हो गया है।

अर्थ सकोच—प्रारम्भिक अवस्या मे कुछ शब्दो का अर्थ वडा व्यापक था पर व्यवहार में आने पर कालान्तर मे उनका अर्थ सकोच हो जाता है, जैसे:—सस्कृत भापा का मृग शब्द। वैदिक युग मे इसका मुख्यार्थ था पशु मात्र पर आज इसका अर्थ हिरण हो गया है। यह परिवर्तन आकस्मिक तो है नही, धीरे-धीरे कालान्तर मे हुआ है। यह अर्थ परिवर्तन सप्रयोजन हुआ है और इनका लक्ष्यार्थ ही आज मुख्यार्थ वन गया है।

अर्थ विस्तार:—लोक व्यवहार मे शब्दो का विशेप अर्थ सामान्य अर्थ ग्रहण कर लेता है, जैसे—श्री गणेश मधुर शब्द, मार खाना आदि। श्री गणेश का प्रयोग पूजन मे, मिठाई के स्वाद के लिए मधुर और रोटी आदि के लिए खाना का प्रयोग होता था। लक्षणा शक्ति के द्वारा क्रमश. इनको प्रारम्भ, सुन्दर, सहना अर्थ प्रदान किया गया है और वे ही प्रसग विशेप मे मुख्यार्थ हो गए है।

रूपक:—जव हम कहते है कि—'वह गधा कहाँ है।' अथवा आज कमल मुरझाया क्यो है।'[1] तव हमारा ध्यान लक्ष्यार्थ पर ही होता है । इन वाक्यों में गधा का लक्ष्यार्थ मूर्ख और कमल का लक्ष्यार्थ मुख मण्डल है।

---

१. भाषा विज्ञान, डा० श्यामसुन्दरदास, पं० सं०, पृ० २५६।

अनेकार्थकता:—जब एक शब्द दूसरे अर्थ मे आने लगता है तब यह आवश्यक नही होता कि वह अपना पहला अर्थ छोड दे। इस तरह कभी-कभी एक शब्द अनेक अर्थो मे व्यवहृत होने लगता है जैसे—'धातु' शब्द व्याकरण, वैद्यक और खनिज-शास्त्र मे अलग-अलग अर्थो का बोध कराता है। प्रारम्भ मे इस अनेकार्थ के ग्रहण के पीछे लक्षणा का हाथ रहा होगा।

नामकरण.—इसके अन्तर्गत शब्द-शक्ति का पूरा विचार आ जाता है।[1] जब कोई नाम किसी वस्तु के लिए प्रचलन में आता है और उसमे अपेक्षित सकेतग्रह होने लगता है एव फिर कालान्तर मे उसकी शक्ति घटती अथवा बढती है तो यह समस्त क्रिया कलाप शब्द-शक्तियो के माध्यम से होता है। पीछे शब्द-शक्तियो का पर्याप्त विवेचन हो चुका है। अत. उसी का पुनः पुनरावर्तन करना यहाँ उपर्युक्त नही प्रतीत होता है।

समास:—समास रचना भी अर्थ के आधार पर ही होती है। समास पद रचना में जब हम कलमुहाँ, पेटपोछना, काम चोर आदि शब्दों द्वारा अपने विचार व्यक्त करते है तब इनका लक्ष्यार्थ ही दृष्टि मे रहता है। यद्यपि वे लक्ष्यार्थ प्रचलन की विशेषता के कारण मुख्यार्थ हो गए है।

भाषा विज्ञान की दृष्टि से विद्वानो ने विचार करते हुए बतलाया है कि—शब्द का अर्थ प्रकरण के अनुसार होता है। यदि उसके और कोई अर्थ होते हैं तो वे उस समय गायब रहते हैं, अन्यथा मनुष्य शब्दो का व्यवहार कर ही न सके। इस पर भी सम्बन्ध तत्वो की भाँति अर्थ भी अपने सम्बन्धियो के साथ मनुष्य के अन्त.करण में जुड़ा रहता है।

इस विवेचन के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वाक्य में दो तत्व—(१) अर्थ तत्व और (२) सम्बन्ध तत्व होते है। इन दोनो में अर्थ तत्व ही प्रधान है। सम्बन्ध तत्व का कार्य है विभिन्न अर्थ तत्वो का आपस में सम्बन्ध दिखला देना। 'राम ने रावण को बाण से मारा।' इसमे चार अर्थ तत्व है—राम, रावण, बाण और मारना। वाक्य बनाने के लिए इन चारों अर्थ-तत्वो में सम्बन्ध तत्व की आवश्यकता पड़ेगी, अतः यहाँ चार सम्बन्ध तत्व भी है। 'ने' राम का सम्बन्ध दिखलाता है इसी प्रकार को, 'से' रावण और बाण का सम्बन्ध दिखलाते हैं। मारना से मारा पद बनाने मे सम्बन्ध तत्व इसी में मिल गया है।

शब्द स्थान भी कभी-कभी सम्बन्ध-तत्व का काम करता है। जैसे—

---

१. यदि पूर्ण रूप से अध्ययन किया जाय तो नामकरण के भीतर शब्द-शक्ति का पूरा विचार आ जाता है। [भाषा-विज्ञान, डा० श्यामसुन्दरदास, पं० सं०, पृ० २५८]

राज-सदन = राजा का घर ।
सदन-राज = घरों का राजा ।
ग्राममल्ल = गाँव का पहलवान ।
मल्लग्राम = पहलवानो का ग्राम ।

उपर्युक्त शब्दो मे जो अर्थ परिवर्तन हुआ है वह शब्दो के विशेष स्थान के कारण हैं ।

कभी-कभी कोई भी सम्बन्ध तत्व न लगाकर शब्दो को ज्यो का त्यो छोड़ देना भी सम्बन्ध-तत्व का बोधक होता है । जैसे 'We go. They go.

ससार की कई भाषाओं मे भी स्वतन्त्र शब्द भी सम्बन्ध तत्व का कार्य करते हैं । हिन्दी के सारे परसर्ग या कारक चिन्ह (ने, को, से, पर, मे, का, की, के) इसी वर्ग में आते है ।

केवल स्वरो मे परिवर्तन से भी कभी-कभी सम्बन्ध तत्व प्रकट होता है ।

कुछ ध्वनियो के द्विरावृत्त से भी सम्बन्ध तत्वो का काम लिया जाता है । यह द्विरावृत्ति मूल शब्द के आदि, मध्य और अन्त तीनो स्थानो पर पाई जाती है ।

सम्बन्ध तत्व और अर्थ तत्व का सम्बन्ध पूर्ण सयोग अथवा अपूर्ण सयोग होता है । भाषा में संबन्धतत्व द्वारा प्रमुखत. काल, लिग, पुरुष, वचन तथा कारक आदि की अभिव्यक्ति होती है ।

पाश्चात्य और भारतीय आलोचकों के अनुसार—

पश्चिम के आधुनिक आचार्यो ने भी शब्द की विशिष्ट अर्थ वत्ता पर अपने विचार व्यक्त किए हैं । उनमे से कुछ प्रमुख विचार यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे है । डॉ० आइ० ए० रिचार्डस ने शब्द की विभिन्न अर्थ प्रक्रियाओ का विवेचन अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'प्रैक्टिकल क्रिटिसिज्म' मे किया है । इनके मतानुसार अर्थ की चार प्रक्रियाएँ हैं, इन्ही के आधार पर उन्होने अर्थ के भी चार प्रकार—वाच्यार्थ (Sense), भावनाये (Feeling), काकु (Tone) और इच्छा (Intention) स्वीकार किए है ।[1] वाच्यार्थ से उनका अभिप्राय यह था कि प्रत्येक उक्ति किसी न किसी तात्पर्य को लेकर चलती है, यह 'तात्पर्य' अर्थ का प्रथम तत्व है । वस्तु या परिस्थिति की चर्चा करते समय हमारे मन मे कोई न कोई भावना रहती है, इसका मतलब यह नही कि भावना सदैव उद्भूत ही रहती है । कुछ अवस्थाओ मे भावना नही उद्बुद्ध होती पर सामान्य अवस्थाओं में तो भावना अवश्य पाई जाती है ।

---

1. "For our purpose here a division into four types of Function four kinds of Meaning, will suffice"

—'Practical Criticism' P. 181

प्राय: विशिष्ट श्रोता के प्रति तथा विशिष्ट अवसर के लिए वक्ता विशिष्ट प्रकार की शब्दावली का प्रयोग करता है। ऐसे प्रसङ्ग में श्रोतृ भेद और प्रकरण भेद से स्वर मे भी भेद होता है, इसे ही उन्होने काकु के नाम से अभिहित किया है। प्रत्येक उक्ति मे वक्ता का कोई न कोई प्रयोजन अवश्य होता है, यही प्रयोजन अर्थ प्रतीति मे प्रमुख कार्य करता है।

"शब्द अर्थ का प्रतीक मात्र है, उसमे उस भाव के बोध कराने की पूर्ण-क्षमता नही होती है।"[1] अरस्तू ने साक्षात् वाचक एवं लक्षक शब्दो का भेद 'रिटोरिक्स' की तृतीय पुस्तक के द्वितीय परिच्छेद मे किया है। उनका कथन है कि—"साधारण प्रयोग मे शब्द साक्षात् अर्थ मे, और गद्यात्मक शैली मे लाक्षणिक रूप से प्रयुक्त होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति लाक्षणिक प्रयोग के द्वारा बातचीत करता है, मुख्यार्थ में शब्दो का प्रयोग करता है, एवं साधारण प्रयोग के शब्दों का व्यवहार करता है।[2] अरस्तू के इन्ही शब्दो को हम वाचक तथा लक्षक शब्द कह सकते हैं।

ऑग्डन और रिचर्ड्स का मत भी शब्द और शब्दशक्ति के सम्बन्ध मे द्रष्टव्य है—"शब्द और अर्थ मे प्रतीकात्मक सम्बन्ध है। इसका अभिप्राय यह है कि शब्द उस अर्थ का प्रतीक मात्र है और उसमे पूर्ण भाव-बोध कराने की क्षमता नही है,[3] जो किसी विशेष वस्तु के प्रति उत्पन्न होता है। शब्द अर्थ का वहन करते हैं। इसका एक दृष्टान्त उनके मतानुसार प्रस्तुत है जो शब्द की इस अर्थ वहन्-शक्ति स्पष्ट करता है। "यदि हम कहे 'माली दूब काट रहा है' तो घटना और स्थिति को दृष्टि मे रखकर विचार करने पर हम पायेंगे कि 'दूब' को माली नही अपितु 'यन्त्र' काटता है। यह सब कुछ जानने पर भी हम कहते हैं कि—'माली दूब काट रहा है। इसी तरह यह जानते हुए कि शब्द का साक्षात् सम्बन्ध भाव से है फिर भी कहते यही हैं कि—शब्द घटनाओ का उल्लेख करते है और तथ्यो

---

1. "Words as every one knows, 'mean' nothing by themselves, although the belief that they did was equally universal."
—"The Meaning of Meaning" Ch. I P. 9-10

2. "Words however of ordinary use and in their original acceptions and Metaphors, ard alone available in the style of prose, a proof that these are the only words which all person employ, for every body carrieson conversation by means of Metaphors, and words in their primary sense."—
Aristotle : Rhetoric : B- III. Ch. II Para 6. Page 209.

3. "Words, as every one knows, 'mean' nothing by themselves, although the belief that they did…was equally universal."—
'The Meaning of Meaning'. Ch. 1. P. 9.10

का वहन करते हैं।[१] इस प्रकार शब्द, भाव, एवं वस्तु मे दो प्रकार के सम्बन्ध स्थिर हुए—पहला शब्द तथा भावो मे, दूसरा भाव तथा वस्तु मे। भाव तथा शब्द का आकस्मिक सम्बन्ध है। इस बात को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि—'इस पर विशेष महत्व देना अनावश्यक होगा कि 'कुत्ता' शब्द तथा गलियो मे घूमते हुए पशु विशेष में कोई मुख्य सम्बन्ध नही है। इनमे सम्बन्ध केवल यह है कि जब हम उस पशु-विशेष का बोध कराना चाहते हैं, तो इस शब्द का प्रयोग करते हैं।[२] इसका अभिप्राय यह नही है कि किसी भी भाव का बोध कराने के लिए चाहे जिस प्रतीक का प्रयोग करलें। ऑग्डन और रिचर्ड्स, जहाँ एक संबद्ध पदार्थ के लिए दूसरे संबद्ध पदार्थ का प्रयोग किया जाता है, उसे लक्षणा कहते है।[3] लक्षणा के सम्बन्ध मे आइ० ए० रिचर्ड्स का कथन है कि—"लाक्षणिकता एक 'अर्द्धगूढ-ढग' है जिसके द्वारा बहुत से तत्व अनुभव की परिधि मे आ जाते है।[४]

पाश्चात्य विद्वान व्यंजना को अलग शब्द शक्ति के रूप में नही मानते, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतीयमान अर्थ की महत्ता को वे भी स्वीकार करते

---

1. "But just we say that the gardener mows the lawn when we know that it is the lawn mower which actually does the cutting, so though we know that the direct relation of symbols record events and communicate facts."—The Meaning of Meaning–Ch I. P. 9.

2. It may appear unnecessary to insist that there is no direct connection between say 'dog' the word, and certain common objects in our streets, and that the *only connection which* holds in that which consists in our using the word when we refer to the animal—Ibid. Ch. 1. Page 12

3. "Metaphor, in the most general sense, is the use of one reference to a group of things between which a given relation holds, for the purpose of facilitating the discrimination of an analogous relation in another group"—The Meaning of Meaning Ch. X P. 213.

4. Metaphor is a semi surruptitious method by which a great variety of elements can be wrought in to the fabric of experience.

—Principal of literary criticism. Ch. XXII Page 240.

हैं । कवि अपने वर्णन को तोड़-मोड़कर रख सकता है, ऐसा वर्णन कर सकता है जो तार्किक दृष्टि से वर्ण्य विषय से कोई सम्बन्ध न रक्खे । वह लाक्षणिकता तथा अन्य ढग से भावों के लिए ऐसे विषयों को प्रकाशित कर सकता है, जो तार्किक दृष्टि से सर्वदा असंगत हों । वह तार्किक असंगति का समावेश कर सकता है, चाहे वह तार्किक दृष्टि से सर्व सावारण और मूर्खतापूर्ण हो । इनका प्रयोग वाणी की अन्य प्रक्रियाओ के लिए अथवा स्वर (काकु) की संगति वैठाने के लिए, या अपनी अन्य अभिव्यंजना को अग्रसर करने के लिए कर सकता है । यदि इन लक्षणो मे उसकी सफलता प्रमाण रूप मे वर्तमान है तो कोई भी उसके विरुद्ध कुछ नही कह सकता । [1]

इस प्रसंग में यहाँ एक वात कहनी अनावश्यक नही प्रतीत होती है कि लक्षणा का विवेचन इन सबकी अपेक्षा अरस्तू का अधिक सक्षम है । अत: इस प्रसंग मे अरस्तू को उद्धृत करना विशेप संगत प्रतीति होता है । अरस्तू-जाति से व्यक्तिगत, व्यक्ति से जातिगत, व्यक्ति से व्यक्तिगत तथा साधर्म्यगत चार प्रकार की लक्षणा मानते है । आधुनिक पाश्चात्य विद्वान्-व्यक्ति से व्यक्तिगत और साधर्म्यगत लक्षणा को ही स्वीकार करते हैं । [2] जाति से व्यक्तिगत लक्षणा को समझाते हुए वे कहते है कि लाक्षणिक शब्द किसी जाति के वाच्यार्थ का बोध कराता है किन्तु वाच्यार्थ में घटितन होने से व्यक्तिवोध (लक्ष्यार्थ) स्वीकार किया जाता है । व्यक्ति से जातिगत लक्षणा को समझाते हुए उन्होने स्पष्ट किया है कि—'जहाँ विशिष्ट से सामान्य का बोध हो ।' व्यक्ति से व्यक्तिगत लक्षणा को उन्होने उस प्रसंग में स्वीकार किया

1· A poet must destort his statement, he may make statements which have logically nothing to do with the subject under freatment, he may by metaphor and otherwise, present subject for thought which are logically quite irrelevent, he may Perpetrate logically nonsense, be as frivial and as silly, logically as it is possible to be, all in the interest of the others function of his language to esepress feeling or adjust tone or furt her his other intention. If his success in these other aims justify him, no reader can validlys ay any thing against him.

—Practical criticism, P. P. 187-88

2. Aristole understands metaphor in more extended sense than we do, for we only consider the third and forth of the kinds inumerated by him, as metaphors. —Foot note 7, poetics. Ch. XXI. P. 452. (Tr. Thiodore Buchley)

है—'जहाँ विशिष्ट अर्थ के लिए दूसरे विशिष्ट अर्थ के वाचक का प्रयोग किया जाए।' अरस्तू की लक्षणा का अन्तिम और महत्वपूर्ण भेद 'साधर्म्यगत लक्षणा है जिसे हम अपनी की गौणी लक्षणा कह सकते हैं। हमारी गौणी लक्षणा का रूपक और अतिशोयक्ति से प्रकट होती है किन्तु अरस्तू की लक्षणा की परिधि मे सभी साधर्म्यमूलक अलंकारों का बीज है। "जहाँ प्रथम वाचक का द्वितीय वाचक से ठीक वही सम्बन्ध होता है, जो तृतीय का चतुर्थ से, ऐसी अवस्था मे द्वितीय का प्रयोग चतुर्थ के लिये अथवा चतुर्थ का द्वितीय के लिए किया जाता है।[1] यही अरस्तू की सधर्म्यगत लक्षणा है।

× × × ×

आधुनिक काल मे शब्द शक्ति पर लिखने वाले—कन्हैयालाल पोद्दार, जगन्नाथ प्रसाद भानु, लाला भगवानदीन, मिश्रबन्धु, बिहारीलाल भट्ट, रामदहिन मिश्र और आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल है। पोद्दार जी ने 'काव्य-कल्पद्रुम' के प्रथम तीन स्तवको मे शब्द शक्तियो की चर्चा की है। उनके समस्त विवेचन का आधार काव्य प्रकाश ही है, यहाँ तक कि—उदाहरण भी 'काव्य प्रकाश' से अनूदित है। इस ग्रन्थ का महत्व यही है कि इसमें शब्द-शक्ति के आवश्यक तत्वो का निरूपण स्पष्ट रूप से किया गया है। जगन्नाथ प्रसाद भानु का 'काव्य-प्रभाकर', लाला भगवान दीन का 'व्यंग्यार्थ मजूषा', तथा मिश्रबन्धुओ के 'साहित्य पारिजात' का आधार भिखारीदास का काव्य निर्णय है, इसके अतिरिक्त बिहारीभट्ट का 'साहित्य-सागर' 'काव्य-प्रकाश', 'साहित्य-दर्पण' और 'रसगगाधर' से प्रभावित है। इनके ग्रन्थ के पंचम तरंग मे शब्द-शक्तियो (अभिधा, लक्षणा, व्यजना) के साथ ही तात्पर्य वृत्ति का भी उल्लेख है। रामदहिन मिश्र ने भी 'काव्य-दर्पण' मे शब्द-शक्ति का विवेचन किया है। इस ग्रन्थ का मुख्याधार ग्रन्थ काव्य-प्रकाश है। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि शब्द शक्तियो के भेदोपभेद के उदाहरण आधुनिक कविता से दिए गए है।

आचार्य शुक्ल ही आधुनिक-युग के एक ऐसे व्यक्ति है जिन्होने रस, अलंकार एवं शब्द-शक्ति आदि के सम्बन्ध मे मौलिक उद्भावनाएं प्रस्तुत की हैं। इस प्रकार शुक्लजी ने साहित्य की चिन्तन-सरणि को आगे बढाया है। शुक्लजी ने अभिधा के द्वारा ही काव्य की 'रमणीयता' को सभव माना है, इसके लिए उनकी आलोचना

---

1. But I call it analogous, when the relation of the second term to the first is similar to that of the fourth to the third, for then the fourth is used instead of second or the second instead of the fourth. —Poetics, Ch, XXI. P. 452

भी की गई है। यहाँ इतना और स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि शुक्लजी रस को काव्य का चरम लक्ष्य स्वीकार करते है। अतः कहना पड़ेगा कि प्रकारान्तर से वे रस-व्यजना को काव्य की आत्मा मानते है। अभिधा को काव्य का चमत्कार-विधायक मानने मे उनका कुछ आन्तरिक उद्देश्य प्रतीत होता है। इसका कारण यह है कि—वे वस्तुव्यंजना तथा उहात्मक अलकार व्यजना की रूढ़ परिपाटी के विरोधी थे। इसके अतिरिक्त वे तत्कालीन छायावादी तथा रहस्यवादी काव्य के भी विरोधी थे।

आचार्य शुक्ल के 'शब्द-शक्ति' सम्बन्धी विचार उनके ग्रन्थ 'रस—मीमासा मे है। इस विवेचन मे प्रत्यक्षतः उनकी मौलिकता लक्षित होती है।

शुक्लजी ने प्राचीन अलंकारिको की रूढ़ि और प्रयोजनवती लक्षणा के सम्बन्ध मे विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि- इनमे साकर्य भी पाया जाता है और प्रयोजनवती लक्षणा रूढ़ि भी हो सकती है। इस प्रकार उन्होने रूढ़ि-प्रयोजनवती 'लक्षणा का तीसरा भेद प्रस्तुत किया, जिसके उदाहरण ये है—'सिर पर क्यो खड़े हो', 'वह उनके चगुल मे है'।[१]

साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ ने वाक्य लक्षणा मानी है। प्रसिद्ध पद्य—'उपकृत बहु तत्र किमुच्यते' मे वे वाक्य लक्षणा बतलाते है। इस सम्बन्ध में शुक्लजी का मन्तव्य यह है कि—यहाँ वाक्यगत लक्षणा न होकर व्यंजना है। आपने वड़ा उपकार किया' इस वाक्य से—'आपने मेरा उपकार किया है' यह अर्थ लक्षणा-गम्य नही है, वस्तुतः यह व्यंजना ही है यदि इसके साथ वक्ता 'आपने मेरा घर ले लिया' यह भी कहे तो लक्षणा हो सकेगी।[२] आगे वे विपरीत लक्षणा के सवन्ध मे शंका करते है—"अव प्रश्न होता है कि उस स्थिति मे जवकि किए गए अपकार का कथन शब्दो द्वारा न होगा केवल दोनो व्यक्तियो के द्वारा मन ही मन समझ लिया जायगा तव क्या लक्षणा होगी ?"[३]

साहित्य-दर्पणकार की प्रयोजनवती उपादान गौणी सारोपा-लक्षणा के उदाहरण—'एते राजकुमाराः गच्छन्ति' के सम्बन्ध मे शुक्लजी ने कहा है कि—इस वाक्य में लक्षणा 'राजकुमारा.' पद मे है, 'एते' मे नही। रसमीमासा के सम्पादक पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस पर आपत्ति की है, उनका कथन है कि वस्तुतः 'एते' आरोप को वतलाता है। अत. 'एते राजकुमाराः' सवका सव लाक्षणिक है।[४]

---

१. रस मीमांसा पृ० ३७५, आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल

२. रस मीमांसा पृ० ३७३, आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल

३. वही पृ० ३७६, आचार्य पं० रामचन्द्र शुल

४. वही पृ० ३७६ (पाद टिप्पणी), आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल

किन्तु वास्तविकता यह है कि—'एते' पद जाते हुए लोगों का मुख्य वृत्ति (अभिधा) से बोधक है, अतः उसे लाक्षणिक मानना भ्रमात्मक प्रतीत होता है। इसलिए कहना पड़ेगा कि शुक्लजी का ही मत ठीक है।

अभिधामूला शाब्दी व्यंजना के सम्बन्ध मे शुक्लजी ने श्लेप तथा शाब्दी व्यंजना का वह भेद स्वीकार किया है जिसे ध्वनिवादी मानते थे। उनका कथन है—"जहाँ दूसरे अर्थ का बोध कराना भी इष्ट होता है, वहाँ श्लेप अलकार होता है, पर जहाँ दूसरे अर्थ की यों ही प्रतीतिमात्र होती है, वहाँ अभिधा मूलक शाब्दी व्यजना होती है'।

इस प्रथम अध्याय के अवान्तर भगो मे यह भली भाँति स्पष्ट किया जा चुका है कि शब्द और उसके अर्थ को लेकर भारतीय और विदेशी आचार्यो ने किस प्रकार अपने सिद्धान्त प्रतिपादित किए है। यह विपय साहित्य शास्त्र का तो एक प्रमुख विपय ही रहा है भारतीय-दर्शन की विविध शाखाओ और व्याकरणशास्त्र मे भी इस विपय का सूक्ष्म विवेचन किया गया है। न्यायशास्त्र ने शब्द को ज्ञान प्राप्त करने का एक विशेप साधन अथवा प्रमाण माना है। अतः शब्दबोध की प्रक्रिया समझाते हुए उन्हे शब्द और उसके अर्थ पर विचार करना पड़ा है। मीमासा दर्शन का मुख्य कार्य ही वेद के वाक्यो की अनेक प्रकार से व्याख्या करना रहा है।[1] अतः मीमासा दर्शन के आचार्यो ने भी इस विपय का पर्याप्त मात्रा मे सूक्ष्म विवेचन किया है। हमारा व्याकरण शास्त्र केवल शब्दो की रूप-सिद्धि ही नही करता अपितु इस स्थूल कार्य से आगे बढकर वाक्य रचना और शब्दार्थ विज्ञान पर भी विचार करता है। साहित्येत्तर इन सभी आचार्यो ने व्यंजना-शक्ति को नही माना है। व्यंजना का काम वे अभिधा और लक्षणा से ही चलाते रहे है। साहित्यशास्त्र वालो को इन सबका खण्डन करके व्यजना की स्थापना करनी ही पड़ी है। अन्य शास्त्रो मे अभिधा और लक्षणा से चाहे काम चल जाए पर साहित्य-शास्त्र मे व्यजना की पृथक् स्वतन्त्र स्थिति मानना परमावश्यक है। अतः काव्यादि का विवेचन करने मे साहित्य शास्त्र वालो का मत ही अन्तिम रूप से ग्राह्य कर लिया गया है। शब्द और उसके अर्थ को लेकर पाश्चात्य साहित्य-शास्त्रियो ने भी विचार किया है। आधुनिक भापा विज्ञान भी शब्द और उसके अर्थ पर अपने निजी शास्त्रीय ढङ्ग से विचार करता है और साथ ही साहित्य शास्त्रियों के शब्दार्थ निरूपण को भी ज्यो का त्यो मान लेता है।[2] इन सभी मतो पर एक साथ विचार करते हुए शब्द और उसकी शक्ति को लेकर जो सर्व सम्मत रूप उपलब्ध होता है उसका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

---

१. निगमवाक्यानाम न्यायैः सहस्त्रेण विवेक्त्री मीमांसा।" राजशेखर-काव्य मीमांसा,

२. देखिए—भापाविज्ञान ले० बाबू श्यामसुन्दर दास, छठा प्रकरण

रूप रचना और अर्थ द्योतकता की दृष्टि से शब्द तीन प्रकार के होते है:—रूढ, यौगिक और योगरूढ। जो शब्द अपनी व्युत्पत्तिगत विशेपता पर ध्यान दिए विना ही वस्तु विशेप के लिए प्रचलित हो जाते हैं वे रूढ शब्द कहलाते हैं जैसे :—घट, नर, गज आदि। जो शब्द अपनी प्रकृति, प्रत्यय के योग से तज्जन्य अर्थ का वोध कराते है वे यौगिक शब्द होते हैं जैसे :—पट्पद अर्थात् छ. पैरो वाला भ्रमर। जो शब्द अपने व्युत्पत्तिगत अर्थ को वताते हुए भी किसी विशेप पदार्थ में ही रूढ़ हो जाते है वे योग-रूढ कहलाते है जैसे :—पकज। यद्यपि कीचड़ से उत्पन्न होने वाली प्रत्येक वस्तु पकज है, परन्तु यह शब्द केवल कमल का ही वोधक रह गया है। इसलिए अपने-यौगिक अर्थ को प्रकट करता हुआ भी यह शब्द वस्तु विशेप में रूढ हो जाने के कारण योग रूढ है।

प्रत्येक शब्द किसी न किसी अर्थ का वोध कराता है। शब्द में अर्थ प्रकाशन की इस क्षमता को विद्वानो ने उसकी शक्ति अथवा व्यापार कहा है। यह शब्द व्यापार अथवा शक्ति तीन प्रकार की होती है—अभिघा, लक्षणा और व्यंजना। कुछ विद्वानों ने तात्पर्य नामकी चौथी वृत्ति भी मानी है, किन्तु साहित्य के क्षेत्र में तात्पर्यवृत्ति का कोई मूल्य नही माना गया है और फलस्वरूप साहित्य-शास्त्रियों ने दूसरो के मत प्रदर्शन के रूप मे ही उसका सामान्य उल्लेख करके उसे छोड़ दिया है।

ऊपर वताए हुए तीनो शब्द व्यापारो की दृष्टि से शब्द तीन प्रकार के माने गये है—(१) वाचक (२) लाक्षणिक और (३) व्यजक। अभिघा शक्ति सम्पन्न शब्द वाचक कहलाता है। लक्षणा व्यापार के अनुसार अर्थ वोध कराने वाले लाक्षणिक कहलाते है। व्यजना व्यापार के द्वारा अर्थ की प्रतीति कराने वाले शब्द व्यजक कह-लाते है। वाचक, लाक्षणिक और व्यजक शब्दो से उपलब्ध होने वाले अर्थ क्रमशः वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य कहलाते हैं।

अभिघा व्यापार के द्वारा अर्थवोध कराने वाले वाचक शब्द वे होते है जो सीधे-सीधे अपने सकेतित अर्थ का वोध करा देते हैं। मूल रूप मे प्रत्येक शब्द किसी अर्थ की ओर संकेत करता है। कोई शब्द किसी अर्थ की ओर क्यों संकेत करने लगा इसे जानने का कोई साधन नही है। इसी कारण विद्वानो ने इस संकेत को ईश्वर सकेत शक्ति कहा है। शब्द का यह सकेत जाति, गुण, क्रिया और यदृच्छा (संज्ञा) के रूप मे होता है। कुछ विद्वान शब्द का संकेत ग्रह केवल जाति के रूप मे ही मानते है। नैयायिको ने इसी संकेतग्रह को जाति विशिष्ट व्यक्ति के अर्थ मे माना है और वौद्धों ने संकेतग्रह अतद्व्यावृत्ति के रूप मे ही माना है।

जव अभिघाजन्य वाच्यार्थ के घटित न होने पर उसी से सम्वन्ध कोई दूसरा अर्थ लिया जाता है और उस दूसरे अर्थ के ग्रहण मे कोई रूढि अथवा प्रयोजन विशेप होता है तव वहाँ लक्षणा होती है। लक्षणा वस्तुतः एक आरोपित व्यापार है।

जहाँ कोई अर्थ विशेप उस प्रकार के प्रयोग की परम्परा के कारण रूढ़ हो जाता है

वहाँ यदि लक्षणा के अन्य आवश्यक तत्व भी हों तब वहाँ रूढा लक्षणा होती है जैसे—कुशल शब्द वस्तुतः कुशा लाने वाले का द्योतक रहा। परन्तु धीरे-धीरे यह शब्द कुशा उखाड़ने में अपेक्षित विवेचकत्व आदि गुणो को लक्षित करने मे रूढ हो गया। रूढ़ि के अतिरिक्त कभी-कभी किसी विशेष प्रयोजन से भी लक्षणा का प्रयोग किया जाता है। ऐसी लक्षणा प्रयोजनवती लक्षणा कहलाती है जैसे—'वम्वई विल्कुल समुद्र मे ही वसा है' वाक्य मे प्रयोजनवती लक्षणा है। इसका लक्ष्यार्थ यह है कि वम्वई नगर तट के उस भाग पर वसा है जो कि समुद्र से विलकुल मिला है। यहाँ प्रयोजन यह है कि वम्वई मे जलवायु की शीतलता, आर्द्र पवन का सचार तापमान की समरसता आदि विशेपताये प्रत्यक्ष अनुभव मे आते है। लक्षणा का यह प्रयोजन सदा व्यग्य ही रहता हे। लक्षणा उसकी प्रतीति नही करा सकती। अभिधा से तो वह अर्थ दूर का नाता भी नही रखता है, दूसरे एक वात और भी है कि अभिधा और लक्षणा दोनो ही एक वार अपना कार्य करके शान्त हो जाती हैं। उसी प्रसग मे दुवारा आगे वढकर अर्थ वोध कराने की क्षमता उनमे नही होती। अतः प्रयोजन की प्रतीति व्यंजना द्वारा ही होती है। रूढा लक्षणा मे व्यग्य नही होता प्रयोजनवती लक्षणा का यह व्यग्य कही गूढ़ होता है और कही अगूढ।

लक्षणा शक्ति में अर्थाभिव्यक्ति की अनेकानेक भंगियाँ आ जाती है। आचार्यो ने छ. प्रकार की लक्षणा मे इन सव का समावेश कर लिया है। कही लक्षणा अपनी सिद्धि के लिये दूसरे अर्थ का ग्रहण कर लेती है और कही मुख्यार्थ का बिल्कुल परित्याग कर देती है। पहली स्थिति मे उपादान लक्षणा और दूसरी स्थिति मे लक्षण लक्षणा होती है। लक्षणा के इन्ही दोनो, उपादान लक्षणा और लक्षण लक्षणा भेदों को, साहित्यदर्पणकार ने अजहत् स्वार्था और जहत् स्वार्था कहा है।

लक्षणा मे जो आरोप व्यापार कहा गया है उसकी मात्रा की दृष्टि से भी लक्षणो के दो भेद हो जाते है (१) सारोपा और (२) साध्यवसाना। सारोपा लक्षणा वहाँ होती है जहाँ विषय और विषयी (आरोप का आधार और आरोपित किया जाने वाले धर्म) दोनो की सत्ता अलग अलग वनी रहती है जैसे 'मुख चन्द'। जहाँ विषयी विपय का पूर्णतया निगरण कर लेता है वहाँ साध्यवसाना लक्षणा होती है जैसे :—

अद्‌भुत एक अनुपम बाग।
जुगल कमल पर गज क्रीड़त है, तापर सिंह करत अनुराग॥

राधा के रूप वर्णन वाले इस पद मे रूपकातिशयोक्ति अलकार है। इस अलकार के मूल मे साध्यवसाना लक्षणा ही होती है। यहाँ कमल, गज सिंह आदि उपमानो ने शरीर के अगो का जो कि उपमेय है पूर्णतया निगरण कर लिया है। यहाँ उपमान पक्ष विषयी है और उपमेय पक्ष विषय। अतः यहाँ साध्यवसाना लक्षणा मानी जाती है।

लक्षणा मे विषयी और विषय का जो परस्पर सम्वन्ध रहता है उसकी दृष्टि से भी लक्षणा दो प्रकार की होती है—शुद्धा और गौणी। जहाँ विषय और विषयी

मे परस्पर धर्म्म साम्य या सादृश्य होता है वहाँ गौणी लक्षणा होती है और जहाँ सादृश्य के अतिरिक्त अन्य प्रकार सम्बन्ध—जैसे कार्य कारण भाव सम्बन्ध, तात्कर्म्य, तादर्थ्य, अवयवावयवि सम्बन्ध होते है वहाँ शुद्धा लक्षणा होती है। अभी ऊपर सारोपा और साध्यवसाना लक्षणा के जो उदाहरण दिखाये जा चुके है। वे वस्तुतः गौणी सारोपा और गौणी साध्यवसाना के ही है।

'घी ही आयु है' और 'लीजिये, आयु पीजिए' दोनो वाक्य क्रमशः शुद्धा सारोपा और शुद्धा साध्यवसाना के उदाहरण है। यहाँ आयु और घी में कार्यकारण भाव सम्बन्ध हैं। इस प्रकार लक्षणा के कुल छ. भेद आचार्यो ने माने हैं। वे इस प्रकार के है :—(१) उपादान लक्षणा (२) लक्षण लक्षणा (३) गौणी सारोपा (४) गौणी साध्यवसाना (५) शुद्धा सारोपा और (६) शुद्धा साध्यवसाना।

व्यंजना

अभिधा और लक्षणा शक्ति के असमर्थ हो जाने पर शब्द जिस शक्ति से किसी दूसरे अर्थ की प्रतीति कराता हे उसे व्यजना कहते है, जैसे—'गगा मे घोप है।' इस वाक्य मे गगा मे घोप कहा गया है किन्तु गगा मे घोष हो नही सकता इसलिए मुख्यार्थ का वाध करके गगा मे का लक्ष्यार्थ गगा तट ग्रहण किया जाता है। परन्तु इस वाक्य के कथन का प्रयोजन शीतत्व, और पावनन्त की प्रतीति कराने मे लक्ष्यार्थ भी असमर्थ है। इसलिए शीतत्व तथा पावनत्व की प्रतीति जिस शक्ति द्वारा होती है उसे व्यजना शक्ति कहते है।

अभिधा और लक्षणा शक्तियाँ शब्द के द्वारा ही अपना काम करती हैं, पर व्यजना शक्ति शब्द के अतिरिक्त कभी-कभी अर्थ के द्वारा भी अपना व्यापार करती है। इसी से व्यजना शाब्दी और आर्थी–दो प्रकार की मानी गई है। जहाँ शब्द के द्वारा व्यजना व्यापार होता है उसे शाब्दी व्यजना कहते हैं। शाब्दी व्यजना भी दो प्रकार की मानी गई है—अभिधा मूला और लक्षण मूला।

अभिधा-मूला शाब्दी व्यजना का स्वरूप निरूपण करने के पूर्व यह विशेप रूप से जान लेना चाहिए कि वहुत से शब्द अनेकार्थक होते है। अनेकार्थक शब्दो के सभी अर्थ उनके वाच्यार्थ ही होते है। कोप आदि में उन सभी का उल्लेख होता है। किसी प्रयोग में वे किस अर्थ मे प्रयुक्त होते है, इसका निर्णय सयोग, विप्रयोग, साह-चर्य, विरोविता, अर्थ, प्रकरण, लिग, शब्दान्तर सन्निधि, सामर्थ्य, औचित्य देश, काल, व्यक्ति और स्वर आदि चौदह अर्थ नियत्रक हेतु करते है। इस प्रकार शब्दो का अर्थ नियन्त्रित हो जाने के पश्चात्, यदि उनसे किसी व्यग्यार्थ की भी प्रतीति हो जाए तो वहाँ अभिवामूला शाब्दी व्यजना होती है।

"चिर जीवौ जोरी, जुरै क्यो न सनेह गँभीर।
को घटि, ए वृषभानुजा, वे हलधर के वीर॥"[1]

---

१. बिहारी सं० पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृष्ठ २८२ दोहा—१८२

इस दोहे मे 'वृषभानुजा का अर्थ वृषभानु की लड़की राधा' तथा 'हलधर के वीर' का 'बलराम के भाई कृष्ण' है। प्रकरण मे यही अर्थ ठीक बैठता है। यह वाच्यार्थ प्रकरण से निश्चित होता है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई मुख्यार्थ नही हो सकता है, तो भी इन शब्दो से परिहास की व्यंजना होती है। राधा, वृषभ की वहिन अर्थात् गाय है और कृष्ण हलधर (बैल) के भाई अर्थात् बैल है। गाय-बैल की अच्छी जोड़ी बनी है। यदि इन दोनो शब्दों मे से किसी एक को हटा कर उनका पर्यायवाची दूसरा शब्द रख दें तो मुख्यार्थ तो बना रहेगा पर यह परिहास नही रह जाएगा। इस प्रकार यहाँ व्यजना शब्द पर आश्रित है और अभिधा द्वारा व्यग्यार्थ भी निकल आता है, इसी से यहाँ अभिधामूला व्यंजना हुई। इन दोनो शब्दो मे श्लेष नही है क्योंकि आचार्यो के अनुसार श्लेपालकार मे दोनो अर्थ मुख्य होने चाहिए और यहाँ एक ही अर्थ प्रधान है। दूसरा अर्थ तो केवल सूचित होता है। अत. इस दोहे मे श्लेपालकार नही शाब्दी व्यंजना है।

प्रयोजनवती लक्षणा में प्रयोजन व्यंग्य रहता है। जिस प्रयोजन को सूचित करने के लिए लक्षणा का आश्रय लिया जाता है, वस्तुतः वह (प्रयोजन अथवा व्यग्य) जिस शक्ति से प्रतीत होता है उसे लक्षणा मूला शाब्दी व्यंजना कहते है। जैसे 'बम्बई बिल्कुल समुद्र में वसा है'—इस वाक्य में 'समुद्र मे' लाक्षणिक पद है। इस कथन में जल-पवन की आर्द्रता व्यंजित करना वक्ता को अभिप्रेत है। समुद्र में शहर वस नही सकता है इसलिए मुख्यार्थ का बाध हो गया और लक्षणा से समुद्र तट अर्थ ग्रहण किया गया है। इसी लक्षणा में आश्रय लेकर व्यजना प्रयोजन को व्यजित करती हैं। प्रयोजनवती लक्षणा के सभी प्रयोगो में प्रायः कुछ-न-कुछ इसी तरह व्यंग्य होता है इसे ही लक्षणा मूला व्यजना कहते है।

जहाँ अर्थ के द्वारा व्यजना अपना व्यापार करती है उसे आर्थी-व्यजना कहते है। आर्थी व्यंजना आचार्यो ने तीन प्रकार की मानी है—वाच्यार्थ सभवा, लक्ष्यार्थ सभवा और व्यग्यार्थ सभवा। जब सहृदयो को काव्य भावना परिपक्व बुद्धि काव्य-रसिकों को—आपाततः प्रतीत अर्थ के अतिरिक्त यथा स्थान अथवा यथा सभव जो एक अन्य अर्थ–वक्तृ, वोद्धव्य, काकु, वाक्य, वाच्य, अन्य सन्निधि, प्रस्ताव, देश, काल और अन्य विधि आदि के वैशिष्टय के कारण प्रतीत हुआ करता है, वहाँ जो व्यजना होती है वह अर्थ की ही व्यंजना हुआ करती है।

जब वाक्य के वाच्यार्थ से किसी अन्य अर्थ की व्यंजना होती है तो उसे वाच्य संभवा आर्थी व्यंजना कहते है। जैसे—यदि कोई सासु अपनी पतोहू से कहे कि 'सन्ध्या हो गई है' तो पतोहू समझ जाएगी कि 'दीप जलाना चाहिए' इस वाच्यार्थ मे दीप जलाने की इच्छा छिपी हुई है। इस प्रकार यह वाच्यार्थ व्यंग्यार्थ का व्यंजक हुआ और वाच्यार्थ द्वारा घटित होने के कारण व्यजना वाच्य सम्भवा हुई। यदि इस

वाक्य मे सन्ध्या के अन्य पर्यायवाची शब्द भी रख दें तो भी व्यंजना बनी रहेगी, क्योकि वह शब्द पर नही अर्थ पर आश्रित है।

जहाँ लक्ष्य अर्थ मे व्यजना होती है, वह लक्ष्य सम्भवा आर्थी व्यंजना कहलाती है। जब कोई अध्यापक अपने अयोग्य छात्र के सरक्षक से कहता है कि बालक आपकी देख-रेख मे पर्याप्त उन्नति कर चुका है। इससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। विपरीत लक्षणा से इसका लक्ष्यार्थ ग्रहण होता है कि बालक पहले से अधिक अवनत हो गया है इससे मैं बहुत अप्रसन्न हूँ। इससे लक्ष्यार्थ से श्रोतृ वैशिष्ट्य द्वारा यह व्यग्य सूचित होता है कि सरक्षक ही बड़ा अयोग्य है। यह व्यंग्य अभिप्राय लक्ष्यार्थ के द्वारा सूचित होता है। अत: यहाँ लक्ष्यार्थ सम्भवा आर्थी व्यंजना है। जहाँ लक्ष्य सम्भवा आर्थी व्यंजना होती है वहाँ लक्षणा मूला शाब्दी व्यजना भी होती है क्योकि जो व्यग्य लक्षणा का प्रयोजन होता है उसके लिए शाब्दी व्यंजना होती है और जो दूसरा व्यंग्य लक्ष्यार्थ द्वारा प्रतीत होता है उसके लिये आर्थी व्यजना होती है। पहली व्यंजना प्रयोजन को और दूसरी अन्य अर्थ को प्रकट करती है।

जहाँ एक व्यग्यार्थ दूसरे व्यंग्यार्थ को सूचित करता है, तब उस अर्थ के व्यापार को व्यग्य सम्भवा आर्थी व्यंजना कहते है। विद्रोही आधी रात को जेल पर आक्रमण करके अपने साथियों को छुड़ाने का निश्चय कर चुके है। उनमें से एक कहता है, "देखो अष्टिमी का चन्द्र डूब चुका है, वायु की गति भी मन्द हो गई है।" इन वाक्यो के वाच्यार्थ से यह व्यंग्य सूचित होता है कि अँधेरा हो गया है, चारों ओर सन्नाटा छा गया है। इस व्यंग्यार्थ से अन्य श्रोता विद्रोहियों के लिए एक और व्यंग्य की प्रतीति होती है कि इस समय आक्रमण कर देना चाहिए। इस प्रकार जब एक व्यग्य से दूसरे व्यंग्य की उत्पपत्ति होती है तो वह व्यंग्य संभवा आर्थी व्यंजना कहलाती है। व्यंजना का संक्षिप्त स्वरूप निरूपण इसी प्रकार है।

वास्तव मे शब्द-शक्ति का यह विज्ञान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अभिधावृत्ति द्वारा वाच्यार्थ के किन-किन कोणों का सस्पर्श हो जाता है अथवा शब्द का संकेतग्रह किस-किस प्रकार का होता है, यह एक महत्वपूर्ण विवेचन की बात है। भाषा द्वारा मन के अभिप्रेत अर्थ को उसी रूप मे ठीक-ठीक ग्रहण कराने का प्रयास ही इस विवेचन का प्रवर्तक है। इसके बिना हमारी बोध वृत्ति को सही दिशा नही मिलती है। इसके बिना समस्त ज्ञान-विज्ञान का विनमय और उत्कर्ष साधन असम्भव है। मनोगत भावो को वाणी द्वारा प्रकट करने मे वचन की भंगिमाएँ भी अनेक प्रकार की होती हैं। ये टेढ़ी सीधी भंगिमाएँ एक ओर तो चमत्कार उत्पन्न करती है और दूसरी ओर अर्थ का बिम्ब-ग्रहण करके गोचर प्रत्यक्षीकरण मे सहायक होकर कल्पना व्यापार को तीव्रता प्रदान करती हैं। इनके द्वारा उत्पन्न किया हुआ चमत्कार हमारे सौन्दर्य बोध को परितृप्त करके कलात्मक आनन्द की उपलब्धि की ओर ले जाता है। शब्द की ये सभी वक्र अर्थ भंगिमाएँ लक्षणा के अन्तर्गत आ जाती हैं। लक्षणा इसीलिए

साहित्य के लिए अधिक उपादेय है। इसके प्रयोग से काव्य में एक विशेष प्रकार का चमत्कार उत्पन्न हो जाता है। इसी वाङ्मय चमत्कार और उक्ति-वैचित्र्य को काव्य का सर्वस्व मान कर वक्रोक्तिवादी आचार्यो ने वक्रोक्ति को काव्य का सर्वस्व माना है। पाश्चात्य साहित्याचार्यो ने भी भाषा की—विशेष रूप से काव्य भाषा की—लाक्षणिक भगिमा को विशेष महत्व दिया है। आधुनिक यूरोपीय भाषाओं में लाक्षणिक चपलता बहुत अधिक है।[1] इसी विशेषता के कारण उन भाषाओ मे अभिव्यक्ति के अनेक प्रकार उपलब्ध होते है। हिन्दी साहित्य के ऐतिहासिक विस्तार पर यदि इस दृष्टि से विचार किया जाए तो रीतिकाल के मध्य मे ही कवियो का ध्यान भाषा के इस सौष्ठव की ओर गया था। घनानन्द, बोधा, ठाकुर आदि रीति मुक्त कवियो ने अपनी काव्य भाषा मे लक्षणा के रुचिर प्रयोग किए है। इस गुण के कारण ही उनकी कविता मुगल दरबार की 'नाज़ुक खयाली' वाली उर्दू और फारसी कविता से टक्कर ले सकी। रीति बद्ध कवियो ने भी लक्षणा के शास्त्रीय प्रयोगो द्वारा अपना इष्ट साधन किया है। हिन्दी का आधुनिक छायावादी युग तो लक्षणा को अत्यन्त मुखर बना कर ही आत्माभिव्यक्ति करता है यदि सच पूछा जाए तो लक्षणा के कारण ही छायावादी काव्य ने हिन्दी को एक अभूतपूर्व भाषा गत् सपत्ति दी है। आधुनिक हिन्दी गद्य का जो नवीन विकास हो रहा है उसमे भी धीरे-धीरे लाक्षणिक प्रयोग आते जा रहे है। इन्ही सब बातो से स्पष्ट है कि काव्य के क्षेत्र मे लक्षणा-शक्ति का कैसा महत्व है।

अभिधा और लक्षणा शब्द से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सम्बन्ध बनाए रख कर अपना कार्य करती है परन्तु कभी-कभी ऐसे प्रसग भी आ जाते है जबकि एक ऐसे अर्थ की भी प्रतीति होती है, जिसका शब्द से किसी प्रकार का सम्बन्ध नही होता। काव्य मे तो बहुधा ऐसा ही होता है। व्यजना इसी प्रकार के ध्वनि रूप व्यंग्यार्थ की प्रतीति कराती है जो न तो वाच्यार्थ होता है न तो लक्ष्यार्थ ही। भाव-वाङ्मय के लिए व्यजना अत्यन्त उपयोगी है। व्यंजना के बिना कवि कर्म की उत्कृष्टता तो क्या प्रतिष्ठा ही नही होती। व्यग्यार्थ से रहित चित्रादि काव्य अधम काव्य माने जाते है।[2] व्यग्य काव्य ही उत्तम काव्य माना जाता है।[3] काव्य में केवल शब्द को प्रधान बना कर भाव और रस के वर्णन का निषेध है। वस्तुतः ऐसा हो भी नही सकता। कवि अपनी रस सृष्टि करते समय समुचित शब्दों और व्यापारों के द्वारा उपयुक्त संकेत देकर पाठकों के भावक कल्पना-व्यापार को जगा देता है और पाठक भी अपनी क्षमता के अनुसार रस की गहराइयो मे व्यंजना की डोरी पकड़ कर निमग्न

---

१. आचार्य शुक्ल, हिन्दी सा० इति०, सं० परि० सं० २००२, पृ० २०७,
२. शब्द चित्रं वाच्य चित्रम व्यंग्य त्ववरम् स्मृतम्। का० प्र० १ प्र० का० ५
३. इदमुत्तम् मतिसायिनी व्यंग्ये वाच्याद्ध्वनिर्बुधैः कथित.। का० प्र० प्र० का० ४

हो जाता है। लक्षणा केवल आर्थिक-चमत्कार उत्पन्न करती है और व्यंजना रस-भाव प्रपच का विस्तार करती है। काव्य में इसकी इतनी उपयोगिता देखकर ही आनन्द वर्द्धनाचार्य, अभिनव गुप्त मम्मट, विश्वनाथ आदि आचार्यों ने अनेक प्रकार के विद्वानों से शास्त्रार्थ करके व्यजना की प्रतिष्ठा की।

साहित्य में लक्षणा के विविध प्रयोग और उसका महत्व

भाषा मे निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। शब्दों का नव-प्रयोग विशेष प्रयोजन लेकर होता रहता है। इस नव-प्रयोग को लक्षणा व्यापार ही प्रोत्साहित करता है। कालान्तर मे जब नव-प्रयोग एक निश्चित अर्थ मे रूढ़ हो जाते है तो वह शब्द अभिधेय हो जाता है। अत. लक्षणा का व्यापार चिर-नवीन है। उदाहरण के लिए लम्बोदर शब्द को लीजिए एक दिन यह भाषा मे लक्षणा-व्यापार से प्रोत्साहित हुआ नव-प्रयोग रहा होगा, किन्तु आज यह गणपति के अर्थ मे रूढ़ हो गया है। इसी तरह लक्षणा व्यापार सर्वदा नव-प्रयोग करता है और कालान्तर मे वही प्रयोग अभिधेय होकर अभिधा का शब्द भण्डार भरते रहते है। वास्तव मे लक्षणा व्यापार सर्वदा नए अर्थ की खोज मे रहता है। इस प्रकार शब्द को नया अर्थ देकर बदले हुए परिवेशों को अधिक प्रभा विष्णु बनाता है। लक्षणा-शक्ति द्वारा कथ्य सापेक्ष्य हो जाता है, सवेदन सकेतित सौन्दर्य को नया आयाम मिल जाता है, प्रतिबिम्ब प्रस्तुत हो जाते हैं, अनुभूतियों का तीव्रावेग के साथ विस्तार होता है, विशिष्ठ्य अर्थ बोध की सारणि बनती है और सादृश्य के माध्यम से उपमेय का उपमान पर पूर्णारोप होता है। जब काव्य की रमणीयता मे अभिधा व्यापार से गतिरोध उत्पन्न हो जाता है उस गतिरोध का अति क्रमण कर लक्षणा काव्य की रमणीयता को सहृदय जनो को प्राप्त कराती है। उदाहरण के लिए बाबू मैथिली शरण गुप्त की इन पक्तियों को लीजिए।

जीकर हाय ! पतग मरे क्या ?

इस पक्ति मे 'जीकर' और 'मरे' शब्दों के कथन मे विरोधाभास का चमत्कार है। मरे शब्द का मुख्यार्थ बाध होने पर ही प्रसगानुकूल सम्बन्धित आशय जन्य अर्थ विरह-वेदना जन्य कष्ट भोगना प्राप्त होता है जो सहृदय के अन्तर के भावों में संवेदन पैदा करता है। इससे आगे बढ़ कर क्षणिक मृत्यु पीड़ा को सह्य तथा उत्सर्ग सम्मत मानना और विरह जन्य वेदना, घुटन और तड़पन को असह्य बताना भी कवि को अभिप्रेत है। यह अर्थ गौरव प्राप्त करना अभिधा की शक्ति के बाहर है। अतः ऐसे स्थलों में लक्षणा ही काव्य की रमणीयता को प्रस्तुत करने में समर्थ होती है।

अर्थ स्रोत की दृष्टि से लक्ष्यार्थ भावातिरेक जन्य प्रयोग है। लक्षणा में अर्थ की प्रकृति विशिष्ट, अस्थिर और इरारूढ़ होती है। इसका आकर्षण भावात्मक होता है। आशय का गम्भीर प्रभाव इसके द्वारा प्रतिपादित होता है। वाक्य योजना के

अन्तर्गत शब्दों के मुख्यार्थ का बदलना न बदलना ही लक्षणा और अभिधा के बीच की सीमा रेखा है। कभी-कभी वाच्यार्थ संक्षिप्त होकर लक्षणा की सीमा मे प्रवेश कर जाते हैं। सम्भवतः विस्तृत आशय को संक्षिप्त शब्दावली मे प्रस्तुत करना भी लक्षणा की परिधि में आता है। अतः ऐसी अवस्था मे अभिधेयार्थ और लक्ष्यार्थ एक ही अर्थ की दो भिन्न-भिन्न अवस्थाओ के अविकसित-विकसित अवस्थाओ के द्योतक माने जा सकते हैं। उदाहरण लीजिए—सारा रनिवास रो रहा है। यहाँ यदि पद को विकसित कर दिया जाए तो लक्षणा का प्रभाव समाप्त हो सकता है—'रनिवास के सभी लोग रो रहे है।' इस पद मे लाक्षणिकता नही रही।

लक्षणा का क्षेत्र पद-गत होता है। लक्षणा किसी वाक्य के विधेयाश मे होती है। [वाक्य के कुछ पद विधेय और कुछ पद उद्देश्य होते हैं। जो हमारा अभीष्ट है—वह विधेयाश है और जो अभीष्ट सिद्धि के लिए प्रयोग मे आया है वह उद्देश्यांक होता है।] काव्य में लक्षणा की पृष्ठ भूमि मे प्रयोजन रहता ही है, किन्तु 'प्रयोजन' रूप निमित्त लाक्षणिक शब्द के अतिरिक्त अन्य किसी प्रमाण से ज्ञात नही हो सकता और वास्तव में यह प्रयोजन ज्ञात हो इसी एक उद्देश्य से उग (लाक्षणिक) शब्द का प्रयोग किया जाता हैं। इस प्रकार प्रयोजन की प्रतीति प्रत्यक्ष, अनुमान तथा स्मृति का विषय नही होती, अतएव उसका ज्ञान केवल शब्द से ही होता है। काव्य मे लक्षणा का आधार भूत प्रयोजन व्यजन-व्यापार से ही ज्ञात होता है। इस प्रकार लाक्षणिक शब्दो के लक्ष्यार्थ ने काव्य मे महती श्री-वृद्धि की है।

द्वितीय अध्याय

रीति ग्रंथकार कवियों की कृतियों में लक्षणा के प्रयोग

हिन्दी साहित्य मे चिन्तामणि के पश्चात् जिस साहित्यिक दृष्टिकोण की रूप रेखा सुनिश्चित हुई वह कोई आकस्मिक घटना नही थी। उसकी एक निश्चित साहित्यिक पृष्ठ भूमि है। उस साहित्यिक दृष्टिकोण के अन्तस्तत्व प्राकृत; संस्कृत, अपभ्रंश और हिन्दी के भक्ति काव्य मे विकसित होते रहे हैं और वही पैतृक दाय के रूप मे रीतिकालीन कवियो को प्राप्त हुए हैं। रीतिकालीन काव्य जिस मुक्तक परम्परा को लेकर चला है उसका प्रथम ग्रन्थ हाल कृत 'गाथा सप्तशती' है। यह प्राकृत भाषा का ग्रन्थ है और इसकी रचना ईसा की पहली शती मे हुई थी।[1] इसके अतिरिक्त सस्कृत मे 'अमरु-शतक' 'आर्यासप्तशती' भर्तृहरि का 'शृङ्गार शतक' विह्लण की 'चौर पचाशिका' आदि ग्रन्थ भी इसी परम्परा मे आते हैं। हिन्दी का रीति काव्य इन ग्रन्थो की शृङ्गार मुक्तक परम्परा से पूर्णतया प्रभावित है। यदि ध्यान से देखा जाय तो हिन्दी साहित्य के उद्भव और विकास के साथ ही इन रीतिकालीन प्रवृत्तियो का प्रारम्भ भी हो जाता है। हिन्दी साहित्य के आरम्भिक युग में वीर गीतो और प्रबन्धो की परम्परा रही है। इन वीर रसात्मक रचनाओ मे भी रीति के शृङ्गारिक तत्व बराबर पाए जाते रहे है। सच तो यह है कि आदि काल के चारणो और कवियों ने वीर रस के निष्पादन की आधार भूमि शृङ्गार रस को ही बनाया है। वीरता के कार्य मे नायक की प्रवृत्ति किसी न किसी नायिका को लेकर ही हुई है। रीति काव्य की शृङ्गारिकता का विद्यापति मे अपार वैभव भरा पड़ा है। प्रेमाख्यानकार सूफी कवियो के काव्य प्रबन्ध मे आने वाले नख-शिख, बारह-मासा, षड्ऋतु वर्णन आदि के प्रसग भी इसी परम्परा के अन्तर्गत आते हैं। कृपा राम की 'हित तरंगिणी' तो एक शुद्ध रीति-ग्रन्थ ही है। हिन्दी के अमर महाकवि सूरदास की रचनाओ में भी रीति के विविध अङ्गो और उपागो का सन्निवेश है। तुलसीदास कृत 'बरवै रामायण,' रहीम का बरवै नायिका भेद' नन्ददास की 'रस मंजरी,' केशव की 'रसिक प्रिया' तथा 'कवि प्रिया' और सेनापति का 'कवित्त रत्नाकर' ग्रन्थ भी इसी कोटि में आते है। उपर्युक्त सभी ग्रन्थ रीति काल से पूर्व लिखे गए है, यही परम्परा विकसित होती हुई रीति काल के ग्रन्थो मे एक सुनिश्चित और व्यवस्थित रूप मे उपलब्ध होती है।

---

१. सं० सं० की रूप रेखा, ले० पाण्डेय तथा व्यास, सप्तम् सं० पृ० ३४०

विवेच्य विषय के अनुसार सम्पूर्ण रीतिकाल को मुख्य रूप से तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। पहली श्रेणी मे वे ग्रन्थ रखे जा सकते है जिनमें रीति के सभी अगो का वर्णन किया गया है जैसे—चिन्तामणि का 'कविकुल कल्पतरु' तथा 'काव्य विवेक', कुलपति मिश्र का 'रस रहस्य', देव का 'काव्य रसायन', सूरति मिश्र का काव्य सिद्धान्त, श्रीपति का 'काव्य-सरोज', दास का 'काव्य-निर्णय', सोमनाथ का रस-पीयूष निधि, और प्रतापसाहि का 'काव्य-विलास।' इन ग्रन्थो में काव्य लक्षण, काव्य प्रयोजन, रस भाव, ध्वनि, नायक, अलंकार, शब्द शक्ति, रीति, गुण, दोष, पिगल आदि सभी कुछ व्यवस्थित रूप से निरूपित किया गया है। उपर्युक्त सभी विद्वान रीति शास्त्र के प्रकाड पण्डित थे। किन्तु उस समय गद्य का विकास न होने के कारण वे विषय को स्पष्ट नही कर सके। इस सम्बन्ध में डा० नगेन्द्र का मत द्रष्टव्य है:—

"ये प्राय: सभी रीति शास्त्र के गम्भीर पण्डित थे, उनका अध्ययन बड़ा व्यापक था। दुर्भाग्यवश इनको तर्कोपयोगी गद्य का माध्यम उपलब्ध नही था, इसलिए ये जटिलताओं को स्पष्ट नही कर सके।"[1]

दूसरी श्रेणी मे उन ग्रन्थों की गणना की जा सकती है जिनका विषय श्रृङ्गार है और उनमे मुख्य रूप से नायिका भेद का वर्णन किया गया है। इस तरह के प्रसिद्ध ग्रन्थ है—केशवदास की 'रसिक प्रिया' मतिराम का 'रसराज' सुखदेव का 'रस रत्नाकर' और 'रसार्णव', देव का 'भाव विलास' और 'भवानी विलास' दास का 'रस-निर्णय', वेनी प्रवीन का 'नव रस-तरंग' पद्माकर का जगविनोद आदि। इन ग्रन्थों मे रस के साथ रस के स्थायी, संचारी, विभाव, अनुभाव आदि सभी का वर्णन किया गया है किन्तु प्रमुख रूप से श्रृङ्गार के ही विभिन्न अङ्गो का विस्तार से निरूपण किया गया है। इन ग्रन्थो मे सबसे अधिक महत्व दिया गया है नायिका-भेद को, क्योंकि नारी के रूप और स्वभाव भेदों के वर्णन में इन कवियों की विशेष रुचि थी।

तीसरी श्रेणी मे 'चन्द्रालोक' और कुवलयानन्द के आधार पर लिखे गए अलंकार ग्रन्थ आते है। इसका आरम्भ करनेस के श्रुति भूषण तथा कर्णाभरण से हुआ है। तत्पश्चात् महाराज जसवन्तसिंह का 'भाषा भूषण', सूरति मिश्र का 'अलंकार माला', रसिक सुमति का 'अलंकार चन्द्रोदय', भूपति का 'कण्ठाभूषण' शम्भूनाथ मिश्र का 'अलंकार दीपक' ऋषिनाथ का 'अलकार मणि मजरी' वैरीसाल का 'भाषाभरण' नाथ हरि नाथ तथा महाराज रामसिंह के रचे हुए 'अलकार दर्पण' तथा पद्माकर का पद्माभरण आदि ग्रन्थ इसी परम्परा मे आते है। इस शैली से हट कर

१. रीति काव्य की भूमिका, डा० नगेन्द्र, तृ० सं० पृ० १३५,

कुछ आलंकारिक उदाहरणों को अधिक महत्व देते हुए अलकार ग्रन्थ भी लिखे गए है। इस शैली के अन्तर्गत—मतिराम का 'ललित-ललाम', भूषण का 'शिवराज-भूषण', रघुनाथ का 'रसिक मोहन', दूलह का 'कविकुल कण्ठाभरण', दत्त का 'लालित्यलता' और ग्वाल का रसिकानन्द है। उपर्युक्त ग्रन्थों मे अलकार निरूपण किया गया है। इन ग्रन्थों मे अर्थालंकार का विशद विवेचन है, पर शब्दालंकार के सम्बन्ध मे लेखको की रुचि रमती हुई नही जान पड़ती है। अधिकतर लोगो ने तो शब्दालंकारो का उल्लेख करना भी उपयुक्त नही समझा है। यहाँ तक कि अनुप्रास प्रेमी पद्माकर तक ने इनका उल्लेख नही किया है। इसका कारण सस्कृत का ग्रन्थ चन्द्रलोक है जिसके अनुकरण पर ये ग्रन्थ निर्मित हुए हैं। चन्द्रालोक मे भी शब्दालंकार उपेक्षित से है।

उपर्युक्त तीनों श्रेणियो के उपलब्ध ग्रन्थो मे लक्षणा-शक्ति के प्रयोग जो हुए हैं उनका विवेचन करना ही इस अध्याय का उद्देश्य है। अतः आगे क्रमशः इन ग्रन्थो के लाक्षणिक प्रयोगो की चर्चा की जा रही है।

रीति काल-पूर्व कवियों के रीति ग्रन्थों में लक्षणा के प्रयोग

"चन्द वरदायी"

हिन्दी के आदि काल मे कोई रीति ग्रन्थ नही लिखा गया। आदि काल तो वीर गीतों और वीर गाथाओं का युग था। वीर-गाथाओ के कवियो की कृति मे—विशेषकर 'चन्दवरदाई' के पृथ्वीराज रासो मे काव्य-रीति के प्रति निश्चित रूप से सावधानी बरती गई है। कथा के मार्मिक प्रसगो पर जहाँ कवि की कल्पना ने पख फैलाया है, वहाँ अलकारो का सहारा लेना ही पड़ा है। ऐसे प्रसगों के शृङ्गार-चित्रो मे बहुत से ऐसे हैं, जिन्हे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि वे रीति मे जकड़ कर प्रस्तुत किए गए हैं। इस सम्बन्ध मे डॉ० नगेन्द्र अपना मत व्यक्त करते है कि—"पृथ्वीराज रासो के शृङ्गार-चित्रो में अनेक चित्र ऐसे मिल जाते है जिनमे रूप के उपमानो को बहुत कुछ उसी प्रकार रीति से जकड़ कर उपस्थित किया है जैसा रीति युग मे हुआ है।"[1] उपमा और उत्प्रेक्षा के बडे सफल प्रयोग 'रासो' कार ने प्रस्तुत किए है। षटऋतु आदि प्रसगों के वर्णन के अवसर पर तो रूपक और उत्प्रेक्षा की वाढ सी आ गई है, कहीं-कही श्लेष की अद्भुत छटा भी दिखाई पडती है। रूपक, परिकराकुर, समासोक्ति और अतिशयोक्ति मे 'लक्षणा' की शक्ति परिव्याप्त होती है। अत. ऐसे प्रसंग जो रीति-काव्य की प्रारम्भिक शृङ्खला के समान 'रासो' में प्राप्य है, उन्हे यहाँ उदाहरण के रूप मे लिया जा सकता है।

...त में अपार
... शृङ्गार-चित्र

---

१. रीति-काव्य की भूमिका, डा० नगेन्द्र, पृ० १७१, तृ० ... काशी।

...० ८४ पद १२।१,२

"हिय अयन मयन तिसंययउ । भज गहन गहन निरंथयउ ।"[1]

इसमे 'हिय-अयन' पद लाक्षणिक है। इस पद में हिय उपमेय और अयन उपमान है। कवि ने उपमेय पर उपमेय का आरोप करके बिंब को संवेदनीय बनाया है। इसका आधार सादृश्य है। इसमें गौणी सारोपा लक्षणा है।

"रोमाली वम नीर निघ्घ वरये गिरि डंग नारायते ।"[2]

"इसमें 'रोमाली वन' लाक्षणिक पद है। इस पद में रोमावली उपमेय और वन उपमान है। आधार सादृश्य है। कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को सप्रेषणीय बनाया है। इसमे गौणी सारोपा लक्षणा है।

"शिशिरे सर्वरि वारणे च विरहा मम हृदय विद्दारये ।
मा कांत मृगवध्य, सिंह गमने किं देव उव्वारये ।"[3]

इसमे 'मृग' तथा 'सिंह' लाक्षणिक पद है। मृग, विरह का और सिंह, पृथ्वीराज (कात) का उपमान है। इन पदो मे कवि ने उपमानो के माध्यम से ही भाव का बोध कराया है।

"कुच कंज परसन अंजली । मुष मउप दोष कलक्कली ।"[4]

इसमें 'कुच कंज' तथा 'मुष तउप' लाक्षणिक पद है। इन पदों में कुच एवं मुख उपमेय है और कंज तथा मयूख उपमान है। उपमेय का उपमान पर आरोप करके कवि ने बिंब को स्पष्ट एवं संवेदनीय बना दिया है।

"नयन्न बान बंकुरे । स्रवन्न मुक्ति तारये ।"[5]

इसमे 'नयन्न बान' तथा 'मुक्ति तारये' लाक्षणिक पद हैं। इनमें नयन तथा मोती उपमेय है और बाण एवं तारे उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को संप्रेपणीय बनाया है।

'रासोकार' पृथ्वीराज संयोगिता के प्रथम साक्षात्कार के अवसर पर कहता है—

---

१. पृथ्वीराज रासउ, सं० डा० माताप्रसाद गुप्त, प्रथमबार, पृ० २५६ प० सं० ११।१७, १८।
२. पृथ्वीराज रासउ, सं० डा० माताप्रसाद गुप्त, प्रथमबार, पृ० २४६ प० सं० १४।१।
३. पृथ्वीराज रासउ, सं० डा० माताप्रसाद गुप्त, प्रथमबार, पृ० २५० प० सं० १४।३, ४।
४. पृथ्वीराज रासउ, सं० डा० माताप्रसाद गुप्त, प्रथमबार, पृ० २५६ प० सं०

---

१. रीति काव्य के सं० डा० माताप्रसाद गुप्त, प्रथमबार, पृ० १२२, प० सं०

"कुंजर उप्पर सिंघ सिंघ ऊपर दो पब्बय।
पब्बय ऊपर भृङ्ग भृंग उप्पर ससि सुभ्भय॥
ससि उप्पर इक कीर कीर उप्पर मृग दिट्ठौ।
मृग उप्पर कोवंड सङ्ग कंद्रप्प वयट्ठौ।
अहि मयूर महि उप्परह हीर सरस हेमन जर्‌यो।
सुर भुवन छंडि कविचन्द कहि तिहि घोषे राजन परयौ।"[1]

कुंजर, सिंह, पब्बय, भृङ्ग, ससि, कीर, मृग, अहि एव मयूर आदि का क्रमशः लक्ष्यार्थ जानु, कटि, कुच, कुचकोर, मुख, नासिका, दृग भौंह तथा वेणी आदि है। इन पदों का उपमेय वर्तमान नही है। इनका आधार सादृश्य है। इसलिए समस्त पदो मे गौणी साध्यवसाना लक्षणा है।

"उभय कनक सिंभ भ्रिग कंठीव लीला,
पुनरपि पुहुप पूजा वदति रति विप्पराज।
उरसि मुत्तिहारं मध्धि घंटीय सवदं
मुगत्ति सुकल वल्ली नंग रंग त्रिवल्ली।"[2]

इसमे 'कनक सिभ', 'मुगत्ति सुकल वल्ली' तथा 'अनग रग त्रिवल्ली' लाक्षाणिक पद है। ये सभी पद क्रमश. गंगा के कुच और गगा के उपमान हैं। एकात्म्य का आधार सादृश्य एवं गुण साम्य है। सुन्दर मुक्ति की वल्ली एवं अनंग रग त्रिवल्ली गंगा के विशेषण है जो यहा उपमान की तरह प्रयुक्त है। इसलिए इनमें साध्यवसाना गौणी लक्षणा है।

किन्तु इस प्रकार ढूंढने पर कही भी दो चार पद रीति के अवश्य मिल जायेंगे। अत. इनमे या इस प्रकार के अन्य वर्णनो में रीति-तत्व खोजना कुछ विशेष प्रयोजन नही रखता। अप्रस्तुत-विधान तो कवि कर्म की विशिष्टता ही है। इस प्रकार जहाँ भी काव्य लिखा गया होगा वहाँ उस काव्य मे लाक्षणिक प्रयोग भी हुए होंगे क्योंकि बिम्ब विधायकता और भाव मे संवेदनशीलता उत्पन्न करना लक्षणा का ही कार्य है।

'विद्यापति'

"हिन्दी में वास्तव मे सबसे पहले कवि विद्यापति है, जिनमें रीति संकेत असदिग्ध रूप मे मिलते है। रीति-काव्य की शृङ्गारिकता का तो विद्यापति मे अपार वैभव ही है। रीतियों का भी उनको अत्यन्त मोह था। विद्यापति के शृङ्गार-चित्र

---

१. पृथ्वीराज रासो, कनवज्ज समय पृ० १७४६, ना० प्र० सभा काशी।
२. पृथ्वीराज रासउ, सं० डा० माताप्रसाद गुप्त, प्रथमबार पृ० ८४ पद १२।१,२

सभी अलंकृत है और प्राय. उन सभी के पीछे नायिका भेद का पृष्ठाधार स्पष्ट है।"[1]

संस्कृत-साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठ कवि 'जयदेव' के मधुर शृङ्गार वर्णन की परम्परा को कवि विद्यापति ने हिन्दी मे विकसित किया। मैथिल कोकिल की काकली मे मत्त-शृङ्गार की गूँज सर्वत्र वर्तमान है। कीर्तिलता, कीर्तिपताका, पदावली इनकी प्रमुख रचनायें है किन्तु इस प्रबन्ध मे विशेप रूप से विद्यापति पदावली का उल्लेख किया जा रहा है। 'पदावली' के अध्याययो की व्यवस्था रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा अधो-लिखित रूप मे की गई है। प्रथम अध्याय वन्दना से प्रारम्भ होता है, तत्पश्चात क्रमश. वयः सन्धि, नखशिख, सद्यः स्नाता, प्रेम-प्रसङ्ग, दूती, सखी शिक्षा, मिलन, सखी सभापण, अभिसार, छलना, माना, मान-भग, वसत, विरह, भावोल्लास, प्रार्थना और नचारी तथा विविध अध्यायो मे पदावली का वर्गीकरण किया गया है। इन अध्यायो का वर्गीकरण ही साक्षी है कि 'पदावली' की रचना मे नायिका भेद का पृष्ठाधार वर्तमान है। इसीलिए पदावली की गणना रीतिकाल पूर्व कवियों के रीति-ग्रन्थ के रूप मे यहाँ की जा रही है।

काव्य मे अर्थ को गौरवान्वित करना प्राय: काव्यकार का प्रमुख धर्म होता है। अर्थ गौरव की प्राप्ति के लिए कवि को शब्द-शक्तियो का सहारा लेना पड़ता है। कल्पना की उडान काव्य को अलंकृत करती हुई अभिव्यक्ति की नवीन झाँकियाँ प्रस्तुत करती हुई, सरिता की तरह प्रवाहित होने लगती है। 'पदावली' मे भी इस प्रक्रिया का अपार वैभव भरा पड़ा है। श्री रामवृक्ष बेनीपुरी के मतानुसार—"इनकी (विद्या-पति) उपमाएँ अनूठी और अछूती है। इनकी उत्प्रेक्षाएँ कल्पना के उत्कृष्ट विकास के उदाहरण है। रूपक का इन्होने रूप खडा कर दिया है। स्वभावोक्ति से इनकी सारी रचनाये ओत-प्रोत हैं। श्रुत्यानुप्रास इनके पदो का स्वाभाविक आभूपण है। प्रधान काव्यगुण—प्रसाद और माधुर्य—इनके पद-पद से टपकते है।"[2] अतः इस प्रकरण में पदावली मे लक्षणा शक्ति के प्रयोग की ओर सकेत किया जा रहा है।

कामिनी के वय. सन्धि मे स्थित नेत्रो की अवस्था का एक शब्द चित्र प्रस्तुत करते हुए विद्यापति जी कहते है—

'स्रवनक पथ दुहु लोचन लेल।'[3] इसका मुख्यार्थ है कि दोनों नेत्रो ने कानो की तरफ का मार्ग ले लिया, किन्तु लक्ष्यार्थ है—'कटाक्ष करने लगे'। अथवा विशाल हो गये है। अत. यहाँ लक्षण लक्षणा है।

नारी के कान्ति-युक्त शरीर का भूतल पर स्थान निर्धारित करते हुए कवि कहता है—

---

१. रीति-काव्य की भूमिका, डा० नगेन्द्र, पृ० १७१
२. विद्यापति की पदावली, कवि परिचय, पृ० ४८, श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी, च० सं०
३. विद्यापति की पदावली वयः सन्धि ३।४।६, सं० रामवृक्ष बेनीपुरी, च० सं०

"घरनिए चांद कएल परगास।"[1] यहा शरीर उपमेय का नाम तक नहीं लिया गया है वलिक उपमान से ही अर्थ व्यक्त कर दिया गया है। यहा पर सादृश्य सम्बन्ध है। अतः गौणी साध्यवसाना लक्षणा है।

शैशव-यौवन के मिलन काल में नारी की मनः स्थिति का एक शब्द-चित्रण लीजिये—

"दुहु पथ हेरइत मनसिज गेल।"[2] इसका मुख्यार्थ है कि दोनो को पथ में देखते हुए कामदेव ने गमन किया। किन्तु 'गेल' का लक्ष्यार्थ है कि वाला के शरीर में कामदेव प्रविष्ट हुआ। अतः यहाँ लक्षण लक्षणा हुई।

'कुच-विकास' को कवि अभिव्यक्त करता है—

"किछु-किछु उतपति अंकुर भेल।"[3] यहा अ कुर मुख्यार्थ अपने साथ अन्यार्थ कुच को भी ग्रहण करता है। अतः लक्ष्यार्थ हुआ कु चाकुर। इसलिए यहाँ उपादन लक्षणा है।

एक दूसरा प्रतीक देखिए—"रोपल घट ऊचल कए ठाम।"[4] यहाँ 'घट' सादृश्य के आधार पर स्तन के लिए ग्रहीत है। अतः लक्ष्यार्थ हुआ उच्च वक्षस्थल पर घट रूपी दो स्तनो की ब्रह्मा ने स्थापना की है। इसलिए यहाँ पर गौणी साध्य-वसाना लक्षणा है।

नेत्र कटाक्ष की चचलगति का शब्द चित्र देखिए—"खने खन नयन कोन अनुसरइ।"[5] 'कोन अनुसरई' का लक्ष्यार्थ है कटाक्ष करने लगे है। इसलिए यहाँ लक्षण लक्षणा हुई।

इसी प्रकार का एक दूसरा चित्र देखिए—

"जुगल सैल-सिम हिमकर देखल एक कमल दुइ जोति रे।
फुलल मधुरि फुल सिंदुर लोटाएल पाँति वइसल गज मोती रे।"[6]

यहाँ क्रमशः 'जुगल सैल', 'हिमकर', 'कमल' और 'दुइ जोति' का लक्ष्यार्थ स्तन, मुख, मुख तथा नेत्र है। आधार सादृश्य है। अतः गौणी साध्यवसाना लक्षणा हुई। 'पाँति' शब्द का मुख्यार्थ पक्ति है, किन्तु अन्यार्थ दन्त है अतः लक्ष्यार्थ हुआ दन्त-पंक्ति। इसलिये इसमे उपदान लक्षणा है। फिर दन्त-पक्ति को गजमोती कहा गया है। आधार सादृश्य है। अतः इसमे गौणी साध्यवसाना लक्षणा हुई।

---

१. विद्यापति की पदावली वयः सं० ४।४।६, सं० रामवृक्ष वेनीपुरी, च० सं०
२. विद्यापति की पदावली, वय. सं०, २।६।११, सं० रामवृक्ष बेनीपुरी, च० सं०
३. विद्यापति की पदावली, वयः सं० ८।७।१२, सं० रामवृक्ष बेनीपुरी, च० सं०
४. विद्यापति की पदावली, वयः सं०, ८।७।१२, सं० रामवृक्ष वेनीपुरी, च० सं०
५. विद्यापति की पदावली, वयः सं०, ११।६।१४, सं० रामवृक्ष बेनीपुरी, च० सं०
६. विद्यापति की पदावली, नखशिख, २,१३।२२, सं० रामवृक्ष वेनीपुरी, च० सं०

"कनक-कमल माझ काल भुजंगिनि
स्रीयुत खंजन खेला।"[1]

यहाँ 'कनक-कमल' का लक्ष्यार्थ मुख और 'काल-भुजंगिनि' का लक्ष्यार्थ आँखें ग्रहीत है। आधार सादृश्य है। इसलिए गौणी साध्यवसाना लक्षणा है।

"नाभि विवर सयँ लोम-लतावलि भुजगि निसास पियासा।
नासा खगपति चंचु भरम भय कुच गिरि संधि निवासा॥"[2]

यहाँ 'लोम-लतावलि भुजगि' में सादृश्य आधार है और उपमेय उपमान दोनों वर्तमान है। इसी प्रकार 'नासा खगपति चचु' और 'कुचगिरि' शब्द भी है। अतः सर्वत्र गौणी सारोप लक्षणा है।

इसी प्रकार सर्वत्र लक्षणा शक्ति का व्यापार पदावली में व्याप्त है। इससे पदावली के शब्दों मे अद्भुत् अर्थवत्ता आई है।

जायसी

लक्षणा के प्रयोगों का जो वैशिष्टय आदिकाल मे उपलब्ध होता है और जिसकी परम्परा उपलक्षण प्रणाली से चन्द्र बरदायी और विद्यापति में दिखाई जा चुकी है, वह आगे चलकर धीरे-धीरे और भी व्यापक होती गई है। एक ओर तो जायसी आदि सूफी प्रेमाख्यानकार कवियो मे उसका उपयोग मिलता है और उनके काव्य की शोभा बढाता है तथा दूसरी ओर ज्ञानाश्रयी शाखा के सन्त कवियो मे भी इसका उपयोग मिलता है और वहाँ यह उनकी वाणी के प्रभाव को तीव्रतर बनाता है। सन्त कवियों की भाषा का लाक्षणिक दृष्टि से विवेचन आगे यथा-स्थान किया जाएगा। यहाँ सूफी कवियों मे सर्व प्रमुख जायसी के द्वारा किए हुए लाक्षणिक प्रयोगो का यत्-किंचित दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

जायसी कृत पद्मावत एक मसनवी शैली का प्रवन्ध काव्य हैं। प्रवन्ध-काव्य का क्षेत्र विषय वस्तु की दृष्टि से बड़ा व्यापक होता है। पद्मावत की यथा वस्तु भी प्रवन्ध काव्योचित विस्तार से युक्त है। नखशिख, बारहमासा, षट्ऋतु वर्णन के प्रसगों को देखकर यह प्रतीत होता है कि कवि रीति के प्रति अवश्य सतर्क था। भावना के क्षेत्र मे कवि हृदय की 'प्रेम पीर' तो सारे विश्व की 'प्रेम पीर' सी प्रतीत होती है।[3]

'पद्मावत' मे अन्योक्तियों और समासोक्तियो के माध्यम से जो अप्रस्तुत के

---

१. विद्यापति की पदावली, नखशिख, ४।१५।२४, सं० रामवृक्ष वेनीपुरी, च० सं०
२. विद्यापति की पदावली, नखशिख, ६।१५।२४, सं० रामवृक्ष वेनीपुरी, च० सं०
३. जायसी ग्रन्थावली आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल तृ० सं०, पृ० १९८
"उसकी 'प्रेम परि' तो सारे विश्व की 'प्रेम पीर' सी लगती है।"

लिए प्रस्तुत और प्रस्तुत के लिए अप्रस्तुत विधान किया गया है वह समस्त हिन्दी-साहित्य मे अपने ढग का अनूठा है। ऐसे प्रसंगों में वाणी का ऐश्वर्य एवं विस्तार लक्षणा शक्ति के द्वारा ही सपादित होता है। इस प्रस्तुत-अप्रस्तुत के सुन्दर समन्वय के सम्बन्ध मे डॉ० शम्भूनाथसिह का मत द्रष्टव्य है—

"प्रस्तुत को प्राकृतिक अप्रस्तुतो द्वारा व्यक्त करने या स्पष्ट करने की प्रवृत्ति जायसी मे बहुत अधिक मिलती है। उदाहरणार्थ उन्होंने पद्मिनी को कमल और चन्द्र, रतनसेन को भौरा, सूर्य और चन्द्रमा और अलाउद्दीन को सूर्य रूप मे माना है और इन्ही अप्रस्तुतो के आधार पर रूपक खडे किए गए है।"[1]

कवि ने पद्मावत के वर्णन मे प्रतीको का अधिक सहारा लिया है जिससे रूपक की छटा अपने आप उसकी शैली को गौरवान्वित करती है। वियोग काल के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन तथा विरह ताप के वेदनात्मक स्वरूप को अत्यन्त विशद व्यजना ही जायसी की विशेषता है। इस सम्बन्ध मे आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल का मत है:—

"इन्होने अत्युक्ति की है और खूब की है पर वह अधिकाश सवेदना के स्वरूप मे है परिमाण निर्देश के रूप मे नही है।"[2]

रूपक और अतिशयोक्ति के मूल मे लक्षणा का ही ऐश्वर्य समाहित रहता है। अतः यहाँ इस कथन की पुष्टि के लिए कुछ उदाहरण दिए जा रहे है। इस विषय की अधिक चर्चा चतुर्थ अध्याय मे की जाएगी। अतः यहाँ अति सक्षेप मे इस विषय का उल्लेख किया जा रहा है।

"खरग धनुक, चक बान दुइ, जग-मारन तिन्ह नावँ।
सुनि कै परा मुरछि कै (राजा) मो कहँ हए कुठावँ॥"[3]

'खरग,' 'धनुक' और 'चक बान दुइ' लाक्षणिक पद हैं। ये क्रमश; उपमान है नासिका, भ्रू, पुतली और कटाक्ष के। इन उपमेयो के प्रतीति कवि ने उपमानो के माध्यम से कराई है। इस प्रकार चित्र की सप्रेषणीयता मे वृद्धि हुई है और वह अधिक सवेदनीय हो गया है। इन पदो मे साध्यवसाना गौणी लक्षणा है।

"सुभर सरोवर नयन वै मानिक भरे तरंग।
आवत तीर फिर वही काल भौंर तेंहि संग॥"[4]

'मानिक भरे तरंग' लाक्षणिक पद है। इसमे मानिक (लाल डोरे) उपमेय और तरंग उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप

---

१. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, डॉ० शम्भूनाथसिह, प्र० सं०, पृ० ४४७.
२. आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, त्रिवेणी से उद्धृत, सं० कृष्णानन्द, पृ०. ४१.
३. पद्मावत, नखशिख खण्ड, सं० आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, तृ० सं० पृ० ४२, प०३
४. पद्मावत, नखशिख खण्ड, सं० आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, तृ० सं० पृ० ४३, प० ५

करके विब को स्पष्टता एवं संवेदनीयता प्रदान की गई है। इस पद में सारोपा गौणी लक्षणा है। मानिक पद मे लक्षण लक्षणा भी है क्योंकि इसको मुख्यार्थ का वोध हो गया है। यह आंख के लाल डोरों के लिए प्रयुक्त है।

"अमी अधर अस राजा सब जग आस करेइ।
केहि कहँ कवँल बिगासा, को मधुकर रस लेइ ॥[1]

'कँवल' तथा 'मधुकर' लाक्षणिक पद है। कँवल और मधुकर उपमान हैं पद्मावती और रतन सेन के। यहाँ कवि ने उपमान द्वारा ही उपमेय का विंब सप्रेषणीय बनाया है। इनका आधार सादृश्य है। इन पदो मे साध्यवसाना गौणी लक्षणा है।

"हिया थार, कुच कञ्चन लारू।
कनक कचोर उठे जनु चारू ॥"[2]

'हिमाधार' तथा 'कुच कचन लारू' लाक्षणिक पद हैं। इनमे हिया एवं कुच उपमेय है और थार तथा कचन लाड़ू उपमान है। इनका आधार सादृश्य है।

इन लाक्षणिक प्रयोगों द्वारा जायसी ने विंबो को संप्रेषणीय एवं संवेदनीय वनाया है तथा शब्दो को अर्थ का नया आयाम दिया है। इसी प्रकार अन्य प्रेमाख्यानकार कुतुवन मंझन आदि कवियो ने भी अपनी रचनाओं में लक्षणा-शक्ति का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है।

कृपाराम

चन्द वरदाई, विद्यापति, जायसी आदि कवियो के काव्य से यह सर्वथा प्रतीत होता है कि उन्हे रीतिशास्त्र का पूर्वरूपेण ज्ञान था और उनके समय मे रीति-ग्रन्थो का प्रचार बहुत कुछ हिन्दी में भी था। कृपाराम की 'हिततरंगिणी' इस अनुमान को पुष्ट करती है। 'हित तरंगिणी' का रचना काल सम्वत् १५९८ है। इस सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल का मत द्रष्टव्य है।

"इन्होने (कृपाराम) सवत् १५९८ मे रस रीति पर हित तरंगिणी नामक ग्रन्थ दोहा मे बनाया। रीति या लक्षण ग्रन्थों में यह बहुत पुराना है। कवि ने कहा है कि और कवियों ने बड़े छन्दो के विस्तार मे शृंगार रस का वर्णन किया है पर मैंने 'सुघरता' के विचार से दोहो में वर्णन किया है। इससे जान पड़ता है कि इनके पहले और लोगों ने भी रीतिग्रन्थ लिखे थे जो अब नही मिलते हैं।"[3]

'हित तरंगिणी' शुद्ध रीति-ग्रन्थ है। इसमे सम्पूर्ण नायिका भेद विस्तार के

---

१. पद्मावत, नखशिख खण्ड, सं० आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, तृ० सं० पृ० ४४, प० ८
२. पद्मावत, नखशिख खण्ड, सं० आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, तृ० सं० पृ० ४६, प० १५
३. हि० सा० इति०, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, सं० परि० स० २००२, पृ० १७१

साथ स्वच्छ लक्षणो और उदाहरणों से युक्त, साफ-सुथरी भाषा मे सूक्ष्मतिसूक्ष्म भेदो के सहित निरूपण किया गया है। इस ग्रन्थ की शैली अधिकतर वर्णनात्मक है पर स्थान-स्थान पर विवेचनात्मक भी है। भिन्न-भिन्न नायिका भेदो के समन्वय और सगठन का प्रयास भी इसमे लक्षित होता है। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध मे डा० नगेन्द्र का मत है—

"वह (हित तरगिणी) रीति का लक्ष्य-ग्रन्थ भी नही व्यक्त रूप से लक्षण-ग्रन्थ है, जिसमे सम्पूर्ण नायिका-भेद अत्यन्त विस्तार के साथ वर्णित है।"[1]

इस ग्रन्थ मे नायिका-भेद वर्णन के प्रसग मे जहाँ कवि प्रतिभा लौकिक आनन्द को अलौकिक बनाने की चेष्टा मे रत हुई है वही अर्थाभिव्यक्ति भी सूक्ष्म होती हुई चमत्कार युक्त हो जाती है।

हित तरगिणी से यहाँ पर कुछ लाक्षणिक प्रयोग उदाहरण स्वरूप दिए जा रहे है।

निरूढ़ा लक्षणा—

सुरतांत नायिका का एक चित्र प्रस्तुत करते हुए कृपाराम कहते है—

"ऐसे ढार ढरे सखी नौल वधू सो लाल।
कुम्हिलानी वा सेज पै अजौं परी बेहाल॥"[2]

कुम्हिलानी पद लाक्षणिक है। कुम्हिलाना का शब्दार्थ मुरझाना है जो पुष्प का धर्म है। यहाँ नायिका के लिए कुम्हिलाना का प्रयोग किया गया है। पहले इस प्रयोग में कवि का आशय पुष्प की सुकुमारता का नायिका पर आरोपित करना था किन्तु अब यह प्रयोग अति प्रसिद्ध हो रूढ हो गया है और प्रायः सभी कवियो ने नायिका के पक्ष मे इसका प्रयोग किया है।

"होत भोर रति सवन ते चली चोर गति ठानि।
लरखराति लज्जित हिएँ लखि गुरजन ठकुरानि॥"[3]

इस दोहे मे चली चोर-गति लाक्षणिक पद है। यह एक मुहावरा है। इसका अभिप्राय है छिपकर चलना जिससे कोई उसकी इस सुरतात अवस्था को देख न सके।

---

१. रीति काव्य की भूमिका, डॉ० नगेन्द्र, तृ० सं० १६५६, पृ० १७३
२. हित तरंगिणी, सं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर, प्रथम बार सं० १६५२, पृ. १२, पद ३६
३. हित तरंगिणी, सं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर, प्रथम बार सं० १६५२, पृ० १५, पद ५३

"लोक लाज कुल पति सकुच डारी गहि के कूप।
अंग अंग हुलसी प्रिया लखि मोहन को रूप॥"[1]

डारी गहि के कूप यह एक मुहावरा है। इसका अभिप्राय है कि लोकलाज, कुल और पति के सकोच को नायिका ने त्याग दिया है।

शुद्धा लक्षण लक्षणा :—

"छिन रोवै छिन में हँसे छिन में वहु बतराइ।
गहें मौन छिन में वधू छिन दृग जल उफनाइ॥"[2]

इसमे 'उफनाइ' लाक्षणिक पद है। 'उफनाइ' का शब्दार्थ है, उबाल आना जो दूध का धर्म है। किन्तु यहाँ आँसू के पक्ष मे इसका प्रयोग हुआ है। इस तरह उफनाइ पद का अर्थ ग्रहीत होता है आँखों मे आँसू भर आए।

सारोपा गौणी लक्षणा :—

"लोचन चपल कटाक्ष सर अनियारे विषपूरि।
मन मृग बेधें मुनिन के जग जन सहित बिसूरि॥"[3]

इसमे 'कटाक्ष सर' और 'मन मृग' दोनो पद लाक्षणिक हैं। इनमें क्रमशः कटाक्ष तथा मन उपमेय और सर एव मृग उपमान हैं। इनका आधार सादृश्य है। कटाक्ष को सर कह कर कटाक्षो मे जो वशीभूत करने अथवा शिकार वनाने की शक्ति है उसको व्यक्त किया गया है और इसी प्रकार मन को मृग कहकर मन को वशीभूत होने की क्षमता प्रदान की गई है। यही अर्थ जन्य चमत्कार यहाँ है।

"गए रूसि जदुपति सखी निरखि उदधि सों मान।
वड़वानल तें विषम उर उपजो विरह कृशान॥"[4]

—'विरह कृशान' लाक्षणिक पद है। उपमेय विरह और उपमान कृशान दोनो पद मे है। आधार सादृश्य है। विरह को कृशान कह कर विदग्धता मे वृद्धि की गई है। यही अर्थ मे चमत्कार है।

---

१. हित तरंगिणी, सं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर, प्रथम वार सं० १९५२, पृ० २८, पद ६३

२. हित तरंगिणी, स० जगन्नाथदास 'रत्नाकर', प्र० वा० सं० १९५२, पृ० ६१, पद १९२

३. हित तरंगिणी, सं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर', प्र० वा० सं० १९५२, पृ० २८ पद ६६

४. हित तरंगिणी, सं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर', प्र० वा० सं० १९५२, पृष्ठ ५६ पद १६५

साध्यवसाना गौणी लक्षणा :—

"बिनु रितु कैसे पाइए चम्पकली सुविचार।
जन जन कर विहरति सखी मदन सताई नारि।।"[१]

इसमे 'चम्पकली' लाक्षणिक पद है। चम्पकली उपमान है यहाँ उपमेय नायिका का नाम नही लिया गया है। आधार सादृश्य है। चम्पकली शब्द से ही नायिका का सकेत करके अर्थ में चमत्कार पैदा किया गया है। सहृदय जन चम्पकली का नायिका अर्थ ग्रहण कर लेते है जब कि जन साधारण चम्पकली अर्थ ही ग्रहण करते है, इस तरह भाव गोपन भी एक सीमा तक हो जाता है।

"घुने बाँस की बाँसुरी डारि चले नँदलाल।
लेहु कनक की नग जटित मो घर धरी रसाल।।"[२]

इसमे 'कनक' पद लाक्षणिक है। कनक की नग जटित बाँसुरी रूप युक्त लावण्यमयी नायिका का उपमान है। आधार सादृश्य है। इसी तरह घुने बाँस की बाँसुरी भी पूर्व नायिका का उपमान है। इसका आधार भी सादृश्य है।

कृपाराम के इन लाक्षणिक प्रयोगो मे शास्त्रीयता अधिक है साथ ही प्रयोग मँजे हुए तथा व्यवस्थित है। मुहावरो का स्वाभाविक प्रयोग इनकी अभिव्यजना-कौशल की दक्षता और लोक रुचि के प्रति जागरूकता के परिचायक हैं। इनकी अप्रस्तुत योजना परम्परा से अवश्य जकड़ी हुई है, पर सौन्दर्य के प्रतिपादन मे वह शिथिल नही है। इनके काव्य का वर्ण्य विषय जीवन के विविध क्षेत्रो को स्पर्श नही करता, वल्कि शृङ्गारिक भावनाओ को ही अभिव्यक्त करता है।

'सूरदास'

भगवान कृष्ण की कमनीय केलि भूमि व्रज-मण्डल के परम भागवत् महाकवि सूरदास ने भाव-विभोर होकर काव्य के माध्यम से जो रस निर्झरणी प्रवाहित की वह अपनी मधुरिमा, लोकोत्तर आस्वाद और हृदय स्पर्शिता मे अनुपम है। अपने उपास्य राधा-कृष्ण के पारस्परिक शृङ्गार के सयोग और वियोग दोनो पक्षो की अनेक सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव दशाओं का चित्रण करते हुए उन्होने अपने काव्य-स्वर की मधुरिमा से व्रज के करील-कुन्जो, तमाल-तरुओ और यमुना-कूलवर्ती प्रदेश को आप्यायित कर दिया। सूर-सागर और साहित्य लहरी उनकी अनुपम रचनाएँ है।

'सूर-सागर' श्रीमद् भागवत् का अनुवाद है। इसका मुख्य विषय सगुण-भक्ति है। उसके दशम् स्कन्ध मे भगवान कृष्ण और राधा का चरित्र कवि कर्म की पूरी निपुणता के साथ वर्णित किया गया है। एक ओर तो वात्सल्य और शृङ्गार की सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिस्थितियों के वर्णन से भाव पक्ष को अत्यन्त रमणीय रूप मे प्रस्तुत

---

१. हित तरंगिणी, सं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर' प्र. बा. सं० १९५२, पृष्ठ २३, पद ३६

२. " " " " " पृ० २४ पद ४०

किया गया है और दूसरी ओर कला पक्ष की चारुता सिद्धि के लिए रीति के अङ्गों और उपांगो का रसानुगुण सन्निवेश भी किया गया है। सूर की रचनाओ मे अलंकारों तथा अन्य रीति-तत्वो की परम्परागत योजना है। शास्त्रीय नायिका भेद का आधार भी स्पष्ट परिलक्षित होता है। साहित्य-लहरी मे तो दृष्टिकूटों के रूप में चित्र-काव्य प्रणाली और शाब्दिक चमत्कार की प्रवृत्ति स्पष्ट रूप मे पाई जाती है।[1] वचन भगिमा का असाधारणत्व उत्पन्न करने के लिए सूरदासजी ने लाक्षणिक वैचित्र्य की ओर भी पर्याप्त ध्यान रखा है। साहित्य-लहरी मे रीति-सामग्री अपेक्षाकृत अधिक है। यहाँ पर साहित्य-लहरी से कुछ लाक्षणिक प्रयोगो के उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे है।

एक लक्षणा का उदाहरण लीजिए—

"देखि सखि, साठ कमल इक जोर।
बीस कमल परघट दिखियत है, राधा नन्द किसोर॥
सोरह कला संपूरन मोह्यो, व्रज अरुनोदय भोर।
तामै सखी द्वै क मधु लागि रहे, चितवत चारि चकोर॥"[2]

इन पक्तियो मे प्रयुक्त साठ कमल, बीस कमल, मधु और चकोर सभी उपमान है, उपमेय का पता नही है। अतः ये सभी लक्षित अर्थ की ओर संकेत करते हैं। बीस कमल का लक्षित अर्थ है—प्रिया तथा कृष्ण के चार चरण-कमल, चार कर कमल, चार नेत्र कमल, दो मुख कमल, दो हृदय कमल, दो नाभि कमल और प्रिया जी के दो उरोज कमल। यही बीस प्रकट कमल हैं। दर्पण और यमुना मे प्रतिबिंबित होकर यही साठ हो जाते हैं। 'मधु' का लक्ष्यार्थ अधर है और चकोर का लक्ष्यार्थ नेत्र है। इसलिए यहाँ गौणी साध्यवसाना लक्षणा परिलक्षित हो रही है क्योकि सर्वत्र सादृश्य आधार है।

कलहांतरिता नायिका का एक शब्द चित्र प्रस्तुत करते हुए एक स्थल पर 'सूरदास' कहते हैं—

"धर्म-सुत के अरि-सुभावहिं तजत सिर धरि पानि।"[3]

---

१. "उनके (सूरदास) चित्रों में अलंकरण का प्राचुर्य है और नायिका भेद का पृष्ठाधार भी। यहाँ तक कि सूर ने विपरीत रति को भी नहीं छोड़ा।...... साहित्य-लहरी दृष्टि कूट और चित्रालंकारों का चक्रव्यूह है, इसलिए एक तरह से वह रीति-अन्तर्गत अलंकार परम्परा में आता है।"

[रीतिकाल की भूमिका, डॉ० नगेन्द्र, तृ० सं० पृ० १७३]

२. सूर के सौ कूट सं० चुन्नीलाल शेष द्वि० आवृ० पद सं० १२ पृ० ८४।

३. सूर के सौ कूट, पद २१ पृ० १०२ सं० चुन्नीलाल शेष, द्वि० आ० सं० २०१६

इस पक्ति मे 'तजत सिर धरि पानि' एक लोकोक्ति है। जिसका लक्ष्यार्थ है भविष्य में ऐसा कार्य नही होगा। इसमे निरूढा लक्षणा है। दूसरा चित्र कलहातरिता का लीजिए जिसमे नायक को बुलाने के लिए प्रिया सखी से कह रही है—

"सारंग चरन, सुभग-कर-सारंग, सारंग नाम बुलावहु।"[1]

'सुभग-कर-सारग' मे सारग उपमान और कर उपमेय दोनो साथ-साथ प्रयुक्त हुए हैं। इनका आधार सादृश्य है। अतः गौणी सारोपा लक्षणा का वैभव प्रतिपादित है। तीसरे 'सारग' का मुख्यार्थ भ्रमर है लक्ष्यार्थ भ्रमर वृत्ति वाले नायक की ओर सकेत करता है। यह सम्बन्ध सादृश्य के आधार पर है। इसलिए गौणी साध्यवसाना लक्षणा का सौन्दर्य दर्शनीय है।

आलंबन विभाव में नख-शिख के वर्णन का एक सुन्दरतम पद देखिए—

"अद्भुत एक अनूपम बाग।
जुगल कमल पर गजवर क्रीड़त, तापर सिंध करत अनुराग॥
हरि पर सरवर, सर पर, गिरिवर, गिर पर फूले कंज पराग।
रुचिर कपोत बसे ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग॥
फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, तापर सुक, पिक मृगमद काग।
खंजन, धनुप चन्द्रमा ऊपर, ता ऊपर इक मनिधर नाग॥
अंग-अंग प्रति-और-और छवि, उपमा ताको करत न त्याग।
सूरदास प्रभु पियो सुधा-रस मानों अधरन के बड़ भाग॥"[2]

सम्पर्ण पद मे नायिका के अग-उपमानो का ही वर्णन है। इस पद मे नायिका के शरीर को ही 'वाटिका'-रूप मे स्वीकार कर लिया गया है। बाग, कमल, क्रीडत, सिंघ, सरवर सर, गिरवर गिर, कज, कपोत, अमृत फल, पुहुप, पल्लव, सुक, पिक, मृगमद काग, खंजन, धनुप, चन्द्रमा और मनिधर नाग का लक्ष्यार्थ क्रमशः शरीर, चरण, गति, कटि, नाभि, दो कर कमल, दो कुच कमल एव एक मुख कमल और नायक के दो कर कमल। इसका आधार सादृश्य है। इसमे सात कमल एवं दो कमल केवल उपमान रूप मे ही वर्णित हैं। इसलिए गौणी साध्यवसाना लक्षणा है।

दूती द्वारा विरह-निवेदन का एक अलवन वर्णन प्रस्तुत है—

"राधे, नैन किधौं री बान।
यौं मारैं ज्यौं मुरछि परैं धर, क्यौं करि राखैं प्रान॥
खग पर कमल, कमल पर कदली, कदली पर हरि ठान।
हरि पर सरवर, सर पर कलसा, कलसा पर ससि भान॥

---

१. सूर के सौ कूट, पद २२ पृ० १०४ सं० चुन्नीलाल शेष, द्वि० आ० सं० २०१६
२. सूर के सौ कूट, पद २३ पृ० १०६ सं० चुन्नीलाल शेष, द्वि० आ० सं० २०१६

ससि पर बिंब, कोकिला ता बिच, कीर करत अनुमान।
बीच-बीच दामिनि दुति उपजत, मधुप-जूथ असमान ।।
तू नागरि सब गुनन उजागरि, पूरन कला निधान।
सूर श्याम तव दरसन कारन, व्याकुल परे अजान ।।"[1]

खग, कमल, कदली, सरवर, कलस, ससि, बिंब, कोकिल, कीर दामिनि, मधुप-जूथ, और आसमान सभी पद उपमान हैं। इनका लक्ष्यार्थ क्रमशः हस गमनि, चरण, जान्हु, नाभि, कुच, मुख, अधर वाणी, नासिका, दंत पक्ति, काले घुंघराले वाल तथा भाल है। इनका आधार सादृश्य है। गौणी साध्यवसाना लक्षणा परिव्याप्त है।

इन दृष्टि कूटो मे सूर की अद्‌भुत प्रतिभा का परिचय मिलता है। सर्वत्र रूपकाति शयोक्ति रूपक, परिकराकुर श्लेप तथा यमक अलंकारों की छटा दर्शनीय है। किन्तु इन पदों मे प्रायः दो तिहाई पदो मे रूपकातिशयोक्ति अलंकार का स्वाभाविक एव सहज रूप हमारे सामने उपस्थित होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सूरदास की विलक्षण प्रतिभा रूपकाति शयोक्ति मे आकर निखर पड़ी है। रूपकाति शयोक्ति के मूल मे वर्तमान रहती है।

'गोस्वामी तुलसीदास'

गोस्वामी तुलसीदास के वरवै रामायण मे भी 'रीति का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। इन वरवै छन्दो मे अलंकार योजना भी साभिप्रायः प्रतीत होती है। समस्त आलंकारिक वर्णनो मे भी गोस्वामी जी के उपास्य भगवान राम ही आलंवन के रूप मे रहते है, लौकिक नामक-नायिका नही। गोस्वामी जी के 'वरवै रामायण' के सम्वन्ध मे डॉ० नगेन्द्र का मत द्रष्टव्य है—

"सूर के उपरान्त तुलसी-कृत 'वरवै रामायण' पर रीति का प्रभाव स्पष्ट है, उसके अनेक वरवै प्रायः अलकारो के उदाहरण से लगते है।"[2]

'वरवै रामायण' के अधोलिखित वरवै ऐसे हैं, जिनसे रीति का प्रभाव स्पष्ट होता है।

"चंपक हरवा अंग मिलि अधिक सोहाइ।
जानि परै सिय हियरें जव कुंभिलाइ ।।"[3]
'सिय तुव अंग रंग मिलि अधिक उदोत।
हार बेल पहिरावौं चंपक होत ।।"[4]

---

१. सूर के सौ कूट, पद ३९ पृ० १४३ सं० चुन्नीलाल शेष, द्वि० आ० सं० २०१६
२. रीति काव्य की भूमिका, डॉ नगेन्द्र पृ० १७३
३. वरवै रामायण, वालकाण्ड, पद १२
४. वरवै रामायण, वालकाण्ड, पद १३

"उठी सखी हँसि मिस करि कहि मृदु बैन।
सिय रघुवर के भए उनींदे नैन ॥"[1]
"का घूँघट मुख मूदहु अबला नारि।
चांद सरग पर सोहत यहि अनुहारि ॥"[2]

इसी प्रकार के अनेक पद है जिनमे रूप वर्णन, विरह वर्णन आदि प्रसगो यह बात प्रकट होती है कि गोस्वामी जी भी रीति की तरफ सावधान थे।

इस प्रकरण मे 'बरवै रामायण' के उन पदो का उल्लेख किया जा रहा है जिनमे लक्षणा शक्ति के प्रयोग हुए है। राम के पौरुष की एक झाँकी गोस्वामी जी प्रस्तुत करते हैं—

"नृप निरास भए निरखत नगर उदास।
धनुष तोरि हरि सब कर हरेउ हरास ॥"[3]

इस पद में आया हुआ 'हरास' शब्द अवधी कोश के आधार पर साधारण ज्वर का अर्थ सकेत करता है। किन्तु यहाँ पर उसका लक्ष्यार्थ चिन्ता ग्रहण किया गया है। अतः शुद्धा लक्षण-लक्षणा का प्रयोग है।

श्रीराम के पद-कमल से सम्बन्धित एक अभिव्यक्ति को देखिए—

"कमल कंटकित सजनी कोमल पाइ।
निसि मलीन यह प्रफुलित नित दरसाइ ॥"[4]

उपर्युक्त पद की भाँति ही यहाँ 'प्रफुलित' पद प्रयुक्त हुआ है। इसका प्रयोग चरण के संदर्भ मे किया गया है, जबकि प्रफुल्लित होना पुष्प का धर्म है। इसका लक्ष्यार्थ शोभा की अभिवृद्धि है। इसलिए लक्षण-लक्षणा यहाँ व्याप्तमान है।

गीतावली के उत्तर काण्ड मे ऐसे कई स्थल हैं जहाँ नख-शिख वर्णन प्राप्त हो जाता है। इन वर्णनो मे गोस्वामी जी ने मर्यादिता के दृष्टि कोण मे अपनी सामान्य गभीरता भी यत् किंचित शिथिल कर दी है। इस सम्बन्ध मे आचार्य शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास मे लिखा है—

"पर उत्तरकाण्ड मे जाकर सूर पद्धति के अतिशय अनुकरण के कारण उनका गम्भीर व्यक्तित्व तिरोहित सा हो गया है। जिस रूप मे राम को उन्होने सर्वत्र लिया है, उसका भी ध्यान उन्हे नही रह गया है। सूर सागर मे जिस प्रकार गोपियों के साथ श्रीकृष्ण हिंडोला झूलते है, होली खेलते है वही करते राम भी दिखाए गए

---

१. बरवै रामायण वलि० पद १९
२. बरवै रामायण, बालकाण्ड, पद १७
३. बरवै रामायण, बालकाण्ड पद १६
४. बरवै रामायण, बालकाण्ड पद २६

हैं। इतना अवश्य है कि—सीता की सखियो और पुरनारियों का राम की ओर पूज्य-भाव ही प्रकट होता है। राम की नख-शिख शोभा का अलंकृत वर्णन भी सूर की शैली पर बहुत से पदो मे लगातार चला गया है। सरयू तट के इस आनन्दोत्सव को आगे चल कर रसिक लोग क्या रूप देंगे, इसका ख्याल गोस्वामी जी को न रहा।"[१]

चलिए गीतावली के उस प्रकरण को देखे जिसको लेकर आचार्य शुक्ल के मन मे भावी रसिको के प्रति सदेह हुआ था—

"सो समौ देखि सुहावनो नवसत सँवारि सँवारि।
गुन-रूप-जोबन-सींव सुन्दरि चलीं झुण्डन झारि॥
हिंडोल-साल बिलोकि सब अंचल पसारि-पसारि।
लागीं असीसन राम सीतहिं सुख-समाजु निहारि॥
झूलहिं झुलावहिं, ओसरिन्ह गावैं सुहो, गौंडमलार।
मंजीर नूपुर-वलय-धुनि जनु काम-करतल-तार॥
अति मुचत स्रमकन मुखनि, बिथुरे चिकुर, बिलुलित हार।
तम तड़ित उडुगन अरुन बिधु जनु करत व्योम-बिहार॥"[२]

हिंडोला झूलने वाली नारियों के सम्बन्ध में गोस्वामी जी का एक कथन सुनिए—

राम के नख-शिख वर्णन का एक प्रसंग लीजिए—

'नाभी सर, त्रिवली निसेनिका, रोमराजि सैवल-छबि पावति।
उर मुकतामनि-माल मनोहर मनहु हंस-अवली उड़ि आवत॥"[३]

'नाभि सर', 'त्रिवली निसेनिका' एवं 'रोमराजि सैवल छबि' इन पदो में उपमान और उपमेय दोनो साथ-साथ वर्तमान है। इनका आधार सादृश्य है। अतः तीनो पदो मे गौणी सारोपा लक्षणा है।

इसी प्रसग का एक दूसरा शब्द चित्र देखिए—

"भौंहैं बंक मयंक-अंक-रुचि, कुंकुम रेख भाल भलि भ्राजति।"[४]

'भौंहैं बंक मयंक-अंक-रुचि' [चन्द्रमा के श्याम चिह्न रूपी बाँकी भृकुटियाँ] इस पद में आरोप्य एव आरोप्य माण दोनो है। इनका आधार सादृश्य है। इस पद मे गौणी सारोपा लक्षणा वर्तमान है।

इन उदाहरणो से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'रीति' का आग्रह जाने-अनजाने काव्य मे प्रकट होने लगा था। इन पदो में शोभा के साथ ही साथ अर्थ भी

---

१. गीतावली, पृ० ४०६, दशम् संस्करण।
२. गीतावली, पृ० ४१०, दशम् संस्करण।
३. हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ११७.
४. गीतावली, पृ० ४१३, दशम् संस्करण

गौरवान्वित हुआ था। शब्द शक्तियाँ विशेषकर लक्षणा के प्रयोग भी इन पदो मे किए गए हैं। किन्तु इन पदो के आधार पर 'तुलसी' को रीति-काव्य की सीमा मे नही लाया जा सकता है।

'आचार्य केशव'

आचार्य केशव का काव्य-जगत मे प्रादुर्भाव रीतिकालीन परम्परा के आरम्भ होने के ५०-६० साल पहले हुआ था। इनकी 'कवि-प्रिया' और 'रसिक-प्रिया' पूर्ण रूपेण रीति-ग्रन्थ ही है। इन ग्रन्थो मे अलकार तथा रस का विवेचन किया गया है। हिन्दी के ये प्रथम आचार्य हैं जिन्होने पाण्डित्यपूर्ण शैली मे हिन्दी मे अलंकार और रस का निरूपण किया है। यहाँ इनके कुछ लाक्षणिक प्रयोग सक्षेप रूप मे दिए जा रहे है।

'रसिक-प्रिया':—

"खंजन है मन रंजन 'केशव' रंजन नैन किधौं मति जीकी।
मीठी सुधा कि सुधाधर की दुति दंतनि की किधौं दाड़िम ही की।
चंद भलो मुखचंद किधौं सखि सूरति काम की कान्ह की नीकी।
कोमल पंकज कै पद पंकज प्रानपियारे कि मूरति पी की॥"[1]

'मुखचन्द' तथा पदपकज पद लाक्षणिक है। मुख एव उपमेय है और चन्द तथा पकज उपमान है। इस प्रकार कवि ने उपमेय पर उपमान आरोप करके बिंव को संवेदनीय वनाया है।

"केहरि कपोत करि केर मृग मीन फनि,
सुक पिक कंज खंजरीट वन लीनो है।
मृदुल मृनाल बिंव चंपक मराल बेलि,
कुंकुम दाड़िम कहूँ दूनो दुख दीनो है।[2]

'केहरि', 'कपोत', 'करि', 'मृग', 'मीन', 'फनि', 'सुक', 'पिक', 'कज', 'खजन' 'मृनाल', 'विंव', 'चपक' और 'दाडिम' सभी नारी अवयव के उपमान है। उपमानो के द्वारा ही कवि ने विंव को सवेदनीय वनाया है। इनका आधार सादृश्य है। क्रमशः इनके उपमेय है— कटि, ग्रीवा, गति, आंख, चोटी, नाक, वाणी, मुख, नेत्र, भुज, अधर, शरीर और दाँत। इस प्रकार इन पदो मे गौणी साध्यवसाना लक्षणा है।

---

१. केशव ग्रन्थावली खण्ड १, सं० पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र प्र० सं०, पृ० ४६ पद सं० २२।

२. केशव-ग्रन्थावली खंड १ सं० पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र प्र० सं० पृ० ८५ प० सं० २२।

'कवि-प्रिया:'—

"वदन चंद लोचन कमल, वाहु बीसनी जानि ।
कर पल्लव अरु भ्रू लता, बिंबाधरनि बखानि ।।"[1]

'वदन चंद', 'लोचन कमल', 'वाहु बीसनी' (कमल नाल), 'कर पल्लव' और 'भ्रूलता' लाक्षणिक पद हैं। इनमे क्रमशः वदन, लोचन, वाहु, कर तथा भ्रू उपमेय हैं एवं चद, कमल, बीसनी, पल्लव और लता उपमान है। इस प्रकार कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके विंब को सम्प्रेपणीय वनाया है। इनका आधार सादृश्य है। प्रत्येक पद में गौणी सारोपा लक्षणा है।

"सोने की एक लता तुलसी वन क्यों वरनों सुनि बुद्धि सकै छ्वै ।
'केसवदास' मनोज मनोहर ताहि फले फल श्रीफल से द्वै ।
फूल सरोज रह्यो तिन ऊपर रूप निरूपत चित्त चलै च्वै ।
तापर एक सुवा सुभ तापर खेलत वालक खंजन के द्वै ।।"[2]

'सोने की लता', 'श्रीफल', 'सरोज', 'सुवा' और वालक खंजन लाक्षणिक पद है। सभी पद उपमान हैं नारी के शरीर, उरोज, मुख, नासिका और नेत्र के। कवि ने उपमानो के माध्यम से उपमेयों के विंब को संवेदनीय वनाया है। इनका आधार सादृश्य है। इन पदो मे गौणी साध्यवसाना लक्षणा है। इनके अतिरिक्त 'बुद्धि सकै छ्वै' 'फूल' और 'चित्त चलै च्वै' पद भी लाक्षणिक हैं। बुद्धि का छू सकना तथा चित्त का चूना असम्भव है। अतः इनका लक्ष्यार्थ क्रमशः बुद्धि गम्य नही है, विकसित होना और द्रवीभूत होना है। इन पदो में शुद्धा लक्षण-लक्षणा की शक्ति निहित है।

उपर्युक्त उदाहरण रीतिकाल से पूर्व कवियो के रीति ग्रन्थों मे लक्षणा के प्रयोगो की पुष्टि करते हैं और ऐसे लाक्षणिक प्रयोग आचार्य केशव की कृतियो में पर्याप्त मात्र मे पाए जाते हैं।

अब्दुर्रहीम

अब्दुर्रहीम खानखाना का 'वरवै नायिका भेद' एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। जिसमें नायिकाओ के भेद का निरूपण किया गया है और साथ ही उसकी विशिष्ट चेष्टाओं और व्यापारो का भी मनोरम वर्णन उपलब्ध होता है। यद्यपि इसमे नायिका भेद के लक्षण नही गिनाए गए हैं। फिर भी इसकी गणना रीति-काल पूर्व कवियो के रीति ग्रन्थों मे ही की जाती है। वरवै नायिका भेद मे सरसता, उक्त वैचित्र्य एवं

---

१. केशव-ग्रन्थावली खंड १, सं० पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्र० सं० पृ० १८४ पद सं० १३

२. केशव-ग्रन्थावली खंड १, सं० पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्र० सं०, पृ० १८४, पद सं० १८

माधुर्य पग-पग पर मिलता है। रहीम का काव्य-कौशल इन छन्दों में चमक उठा है। इस सम्बन्ध में डॉ० समर बहादुर का मत द्रष्टव्य है—

"रहीम रचित 'बरवै नायिका भेद' रीतिकाल के आदि ग्रन्थों में गिना जाता है। हिन्दी साहित्य को रीति-काव्य लिखने की परम्परा संस्कृत साहित्य से प्राप्त हुई।...... भक्ति-युग के उत्तर काल मे इस परम्परा को हिन्दी साहित्य मे चलाने का श्रेय जिन कवियो को प्राप्त है, उनमे रहीम का नाम प्रमुख है।"[1]

'रीति-काव्य की भूमिका' में डॉ नगेन्द्र इस परम्परा के सम्बन्ध में अपना विचार व्यक्त करते है कि—"रहीम का प्रसिद्ध ग्रन्थ है 'बरवै नायिका भेद', जिसमें विभिन्न नायिकाओं के लक्षण न देकर अत्यन्त सरस और स्वच्छ उदाहरण ही दिए हुए है। यह ग्रन्थ निश्चय ही एक मधुर रीति-ग्रन्थ है। इसमे नायिकाओ के देश भेद भी दिए गए है।"[2]

इस ग्रन्थ को देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ संस्कृत के काम-सूत्र और नाट्य-शास्त्र को दृष्टिगत रखकर लिखा गया है। इसमे नायक-नायिका के हाव-भावो तथा मनोवृत्तियो का सरस वर्णन है। यह शृङ्गार रस का एक अनूठा काव्य है। इस सम्बन्ध मे डॉ० समर बहादुरसिंह कहते है कि—

" 'बरवै नायिका भेद' शृङ्गार रस का काव्य है। यह संस्कृत के काम-सूत्र तथा नाट्य शास्त्र के ढङ्ग पर लिखा गया है।"[3]

'बरवै नायिका भेद' बडी सरल और स्वाभाविक युक्तियो से ओत-प्रोत है।

कवि के भावोद्गार सीधे-सादे एवं प्रवाह पूर्ण है। भावोद्वेगों को व्यर्थ में अलंकृत करने का प्रयास नही किया गया है। इस काव्य मे व्यजना शक्ति का प्रभाव अधिक लक्षित होता है, फिर भी लक्षणा का नितान्त अभाव भी नही है। यहाँ पर लक्षणा शक्ति से परिव्याप्त कतिपय पदो को उद्धृत किया जा रहा है।

"कवन रोग दुँहु छतिया, उपजे आय।
दुखि दुखि उठै करेजवा, लगि जनु जाय॥"[4]

'रोग' पद का लक्ष्यार्थ यौवन विकास है। इसलिए यहा शुद्ध लक्षण-लक्षणा शक्ति है। 'दुखि दुखि' पद का लक्ष्यार्थ भी इसी प्रकार है, काम-भावना की अज्ञात टीस। अतः यहाँ पर भी शुद्धा लक्षण-लक्षणा शक्ति है। इस पद मे 'अज्ञात यौवना' की अज्ञात व्यथा की अभिव्यजना प्रस्तुत की गई है।

---

१. अब्दुर्रहीम खानखाना पृ० २४६.
२. रीति-काव्य की भूमिका पृ० १७४।
३. अब्दुर्रहीम खानखाना, पृ० २४६।
४. अब्दुर्रहीम खानखाना, बरवै नायिका भेद, पद २

लीजिए, 'मध्यमा' का एक शब्द चित्र—

"ढीलि आँख जल अँचवत, तरुनि सुभाय।
धरि खसकाइ घइलना, मुरि मुसुकाय॥"[1]

'अँचवत' पद का मुख्यार्थ पीना है और वह मुख का धर्म है। आँखे -पान नही कर सकती। इसलिए यहाँ शुद्धा लक्षण-लक्षणा है।

लक्षिता नायिका का एक चित्र देखिये :—

"आज नयन के कोरवा, औरै भाँति।
नागर नेह नवेलिया, मूँदि न जात॥"[2]

'कोरवा का मुख्यार्थ किनारा होता है। यहाँ पर इसका लक्ष्यार्थ 'कटाक्ष' है। अतः यहाँ शुद्धा लक्षण-लक्षणा है।

प्रथम अनुसयाना, भावी सकेत नष्टा नायिका का एक वर्णन प्रस्तुत है—

'जमुना तीर तरुनि अहि, लखि भो सूल।
झरि गो रूख वेइलिया, फूलत न फूल॥"[3]

सूल पद मे लक्षण-लक्षणा है, क्योकि 'सूल' का मुख्यार्थ काँटा है और यहाँ पर उसका लक्ष्यार्थ वेदना लिया गया है। यदि ऊपर की पक्ति मे आए हुए 'तरुनि अहि' शब्द का अर्थ तरुणियो ग्रहण किया जाए तो उसके आधार पर 'फूलत न फूल' का भी लक्ष्यार्थ प्रसन्नता के दर्शन नही होते ग्रहण किया जाएगा। इस भाँति इसमें भी शुद्धा लक्षण-लक्षणा होगी।

प्रौढ़ा कलहातरिता की अभिव्यजना सुनिए—

"थकिगा करि मनुहरिया, फिरिगा पीय।
मै उठि तुरत न लाएउँ, हिमकर हीय॥"[4]

'हिमकर' का मुख्यार्थ चन्द्रमा है। किन्तु यहाँ लक्ष्यार्थ प्रियतम ग्रहीत है। इसका आधार सादृश्य है। इसमे उपमान है और उपमेय का तिरोभूत हो गया है। इसलिए इस पद मे गौणी साध्यवसाना-लक्षणा है।

इन उदाहरणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि—'रीति' के प्रति रहीम अपने काव्य मे पूर्ण सजग रहे है। इसके साथ-ही-साथ वे शब्द-शक्तियो को भी भली-भाँति पहचानते थे। भाव पूर्व, सहज एव प्रवाहमय अभिव्यक्ति के कारण वरवै नायिका भेद मे अलंकारो की योजना अधिक नही हो पाई है। किन्तु व्यंजना शक्ति का सुन्दर

---

१. अब्दुर्रहीम खानखाना, वरवै नायिका भेद पद १३
२. अब्दुर्रहीम खानखाना, वरवै नायिका भेद पद २६
३. अब्दुर्रहीम खानखाना, बरवै नायिका भेद पद ३४, प्र० सं०
४. अब्दुर्रहीम खानखाना, बरवै नायिका भेद पद ५७, प्र० सं०

सैरस प्रयोग इनमें पाया जाता है। लक्षणा-मूला व्यंजना जिसका आधार लक्षणा शक्ति है, इसके अनेक उदाहरण बरवै नायिक भेद मे खोज निकाले जा सकते है। इनके अतिरिक्त रहीम के अन्य दोहो, मदनाष्टक तथा अन्य फुटकर पदो मे रीति और लक्षणा का पर्याप्त प्रयोग मिलता है। डॉ० नगेन्द्र कहते है—"रहीम के अनेक फुटकर शृङ्गार दोनों को भी बड़ी सरलता से रीति-काव्य के अन्तर्गत माना जा सकता है।"[1]

'नन्ददास'

नन्ददास की गणना हिन्दी साहित्य के इतिहास मे पूर्ण मध्यकाल मे की गई है। इनकी रचनाएँ अपने युग का प्रतिनिधित्व करती है और साथ ही विरह मजरी तथा रस मजरी इनकी कृतियाँ अपने आवरण मे उत्तर मध्यकाल की विशेपताओ को संजोए हुए हैं। इन्ही विशेपताओ के कारण इन ग्रन्थो की गणना रीति-काल पूर्व के कवियों के रीति ग्रन्थों मे की जा सकती है। रस-मंजरी मे नायिका भेद का विशद वर्णन है और इसी के साथ उन्होने अति सक्षेप मे हाव-भाव आदि का भी वर्णन किया है।

नन्ददास जी की 'रस-मजरी' मे लक्षणा का प्रयोग पर्याप्त मात्रा मे हुआ है। इनके लाक्षणिक प्रयोगों ने काव्य की चरुता मे पूर्ण रूपेण वृद्धि की है। यहाँ उनके कुछ लाक्षणिक प्रयोगो का दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

अब ज्ञात यौवना का एक उदाहरण लीजिए—

"सो सुकृती वह निज नख धरिहै। इन कहँ चन्द्रचूड़ जो करिहै॥"[2]

'चन्द्रचूड़' पद का लक्ष्यार्थ 'नखदान' है। अतः यहाँ पर शुद्धा लक्षण-लक्षणा है।

मध्या अधीरा की अवस्था देखिए—

"अधर सुधा सव पिय तुम पियो। नव अनुराग सुघात है हियो॥"[3]

'अधर सुधा' पद मे उपमान और उपमेय दोनो वर्तमान है। इनका आधार साद्दश्य है। इसलिए यहाँ गौणी सारोपा लक्षणा है।

एक दूसरा उदाहरण प्रस्तुत है—

"बन मैं श्रीफल बनि गए तुमकों। काम क्रूर मारत है हमकों।"[4]

'श्रीफल' पद मात्र उपमान है। इसका उपमेय उरोज यहाँ नही है। आधार साद्दश्य है। अत. इस पद मे गौणी साध्यवसाना लक्षणा है।

---

१. रीति-काव्य की भूमिका, डॉ० नगेन्द्र पृ० १७४, तृ० सं०
२. नन्ददास ग्रन्थावली, सं० व्रज रत्नदास, पृ० १२८, द्वि० स० २०१४
३. नन्ददास ग्रन्थावली, सं० व्रज रत्नदास, पृ० १२९, द्वि० सं० २०१४
४. नन्ददास ग्रन्थावली, सं० व्रज रत्नदास, पृ० १२९, द्वि० सं० २०१४

प्रौढ़ा धीरा-धीरा का एक उदाहरण लीजिए—

"हँसहिं कपोल सलोल तिया के।"[१]

हँसना धर्म मनुष्य का है, यहाँ कपोल का हँसना कहा गया है। इसका लक्ष्यार्थ है प्रसन्नता अभिव्यक्ति के चिन्ह। इसलिए इस पद मे शुद्धा लक्षण-लक्षणा है।

परकीया वाग्विदग्धा का कथन सुनिए—

"छिनक छाँह लीजै रस पीजै।"[२]

'रस पीजै' पद का लक्ष्यार्थ है आनन्द कीजिए। इसलिए इस पद में शुद्धा लक्षण-लक्षणा है।

प्रौढ़ा प्रोषित पतिका का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

"अंग-अंग महा गरल जिमि चढ़्यौ।"[३]

'गरल' का परिणाम मौत है। किन्तु महा गरल यहाँ मुख्यार्थ छोड़ कर लक्ष्यार्थ प्रकट करता है, जिसका अभिप्राय है अंग-अंग में काम वेदना की व्याप्ति, जो मौत से कम दुखद नही है। इसलिए यहाँ शुद्धा लक्षण-लक्षणा है।

प्रौढ़ा कलहांतरिता का कथन सुनिए—

"अलि अदिष्टि नष्ट बड़ कोई। पाई निधि जिहि करतै खोई॥"[४]

'पाई निधि करतै खोई' एक मुहावरा है। इसलिए यहाँ निरूढ़ा लक्षणा है।

मध्या उत्कठिता का एक चित्र लीजिए—

"कै इहि सखी गई नहिं लैना। कै कछु डरपै पंकज नैना॥"[५]

'पकज नैना' पद मे उपमेय उपमान दोनो वर्तमान हैं। इनका आधार सादृश्य है। इसलिए गौणी सारोपा लक्षणा यहाँ है।

परकीया उत्कठिता नायिका की अभिव्यंजना सुनिए—

"सुपिय आज दृग अतिथि न भए।"[६]

"दृग अतिथि न भए" एक मुहावरा है। जिसका अभिप्राय है आज दर्शन नहीं हुए। इसलिए यहाँ पर निरूढ़ा लक्षणा है।

परकीया विप्रलब्धा का एक लक्षण देखिए—

"तिमिरि-महागज हाथनि ठेलै। पति-डर-नाहर पाइन पेलै॥"[७]

---

१. नन्ददास ग्रन्थावली, सं० व्रज रत्नदास, पृ० १३०, द्वि० सं० २०१४
२. नन्ददास ग्रन्थावली, सं० व्रज रत्नदास, पृ० १३०, द्वि० सं० २०१४
३. नन्ददास ग्रन्थावली, सं० व्रज रत्नदास, पृ० १३१, द्वि० सं० २०१४
४. नन्ददास ग्रन्थावली, सं० व्रज रत्नदास, पृ० १३३ द्वि० सं० २०१४
५. नन्ददास ग्रन्थावली सं० व्रज रत्नदास, पृ० १३४, द्वि० सं० २०१४
६. नन्ददास ग्रन्थावली, सं० व्रज रत्नदास, पृ० १३५, द्वि० सं० २०१४
७. नन्ददास ग्रन्थावली, सं० व्रज रत्नदास, पृ० १३६, द्वि० सं० २०१४

'तिमिरि-महागज' और 'पति-डर-नाहर' पदो में उपमेय और उपमान दोनों वर्तमान है। इनका आधार साहश्य है, इसलिए यहाँ पर गौणी सारोपा लक्षणा है।

परकीया अभिसारिका का एक दृश्य प्रस्तुत है—

"जौन मनोरथ रथ तहँ होई। क्यों पहुँचे पिय पै तिय सोई॥"[1]

'मनोरथ रथ' पद मे उपमेय और उपमान दोनो वर्तमान है। इसलिए इस पद मे गौणी सारोपा लक्षणा है।

परकीया स्वाधीन पतिका का उदाहरण लीजिए—

"मधु बैनी बारिज-वर नैनी। हास विलास रास रस रैनी॥"[2]

इसी प्रकार बारिज-वर नैनी में भी आरोप्य और आरोप्य-माण दोनो वर्तमान है। इनका आधार साहश्य है। इसलिए इसमे गौणी सारोप लक्षणा है।

परकीया प्रीतम गमनी का कथन सुनिए—

"पन्नग-फन पर मै पग दिए।"[3]

'पन्नग-फन पर' पग देना। पद लाक्षणिक है। यह एक मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है जान-बूझकर कष्ट उठाना। इसी लक्ष्यार्थ मे यह मुहावरा रूढ हो गया है।

रस-मजरी मे सर्वत्र लक्षणा के प्रयोग पाए जाते है। इन प्रयोगो के कारण काव्य मे चमत्कार उत्पन्न हो गया है तथा भावों मे तीव्रता और चित्रात्मकता आ गई है।

'सेनापति'

सेनापति के लिखे हुए दो ग्रन्थ बतलाए जाते है—(१) 'काव्य-कल्पद्रुम' और (२) 'कवित्त-रत्नाकर'। काव्य कल्पद्रुम तो देखने को मिला नही अतएव उसके सम्बन्ध मे कुछ नही कहा जा सकता। उनका दूसरा ग्रन्थ 'कवित्त रत्नाकर' है। कवित्त रत्नाकर इनका सबसे पिछला एव सग्रहीत ग्रन्थ जान पडता है। इसमे पाँच तरगे है और कुल ३९४ छन्द हैं जबकि दस छन्दो की पुनरावृत्ति भी हुई है। इस ग्रन्थ को स० १७०६ मे सग्रहीत किया गया था। यह समय रीतिकाल के प्रारभ में पड़ता है। सभव है कि 'कवित्त रत्नाकर' की कुछ रचनाएँ स० १७०६ के पूर्व की हो, पर इतना तो सत्य ही है कि इन रचनाओ पर रीतिकाल का प्रचुर प्रभाव है किन्तु रीतिकीलीन परिपाटी—भाव, विभाव अनुभाव आदि के लक्षणो और उदाहरणों का क्रम से वर्णन नही किया गया है।

---

१. नन्ददास ग्रन्थावली सं० ब्रज रत्नदास, पृ० १३८, द्वि० सं० २०१४

२. नन्ददास ग्रन्थावली, सं० ब्रज रत्नदास, पृ० १३९, द्वि० सं० २०१४

३. नन्ददास ग्रन्थावली, सं० ब्रज रत्नदास, पृ० १४०, द्वि० सं० २०१४

दूसरी 'तरङ्ग' में शृङ्गार वर्णन किया गया है। शृङ्गार रस के आलंवन विभाव नायक नायिक हैं। कवि ने अपनी रुचि के अनुसार नायिकाओं के कुछ भेदो को चुनकर उन्ही पर कवित्त लिखे है। उन्होंने मुख्य रूप से मुग्धा, खण्डिता, वचन-विदग्धा स्वाधीन पतिका, स्वकीया, परकीया आदि के सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं। कुल मिलाकर परकीया का विशेष चित्रण है, पर इन्होने स्वकीया के महत्व को भी स्वीकार किया है। उद्दीपन विभाव की दृष्टि से नख-शिख वर्णन पर भी इस ग्रन्थ में कुछ छन्द मिलते है। किन्तु परम्परा से प्रचलित उपमानो का ही अनुकरण है। इनके अतिरिक्त तीसरी तरंग मे ऋतु वर्णन किया गया है। ऐसा जान पड़ता है कि विरह व्यथा को उद्दीप्त करने के लिये कवि ने ऋतु वर्णन से सहायता ली है।

नायिका-भेद, नख-शिख और ऋतु वर्णन मे कवि ने जहाँ अप्रस्तुत विधान किया है अथवा वचन वक्रता का सहारा लिया है, वहाँ लक्षणा के चमत्कार भी दिखाई पड़ते हैं। यद्यपि इनमे से कुछ प्रसंगों की श्लिष्ट रचना पर कवि का विशेष ध्यान होने के कारण लक्षणा शक्ति का चमत्कार नही उत्पन्न हो सका है, फिर भी अनेक ऐसे पद है जिनमें स्पष्ट रूप से लक्षणा शक्ति का प्रभाव दिखाई पड़ता है। उनमे से कुछ लाक्षणिक प्रयोग यहाँ पर दिये जा रहे है।

निरूढ़ा लक्षणा :—

"कहाँ एती चतुराई, पढ़ी आप जदुराई।
अँगुरी पकरि पहुँचा कों पकरत हो॥"[१]

'अँगुरी पकरि पहुँचा को पकरत हो' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है—थोड़ा अधिकार पाकर सपूर्ण अधिकार पा लेना। यह मुहावरा अपने इसी लक्ष्यार्थ में ही रूढ़ हो गया है।

शुद्धा लक्षण लक्षणा :—

"मन लै चलति, रति करति सुहास पन,
बोलति मधुर मानो सरस सुधाई है॥"[२]

'लै चलति' तथा मधुर लाक्षणिक पद है। मन कोई वस्तु नही है जिसे लेकर चला जा सके और वाणी कोई मिठाई नही है जो मधुर हो। अतः इनका लक्ष्यार्थ है वशीभूत करना और मृदु वाते।

"लोचन जुगल थोरे थोरे से चपल, सोई सोभा मन्द पवन चलत जल जात की।
पीत है कपोल, तहाँ आई अरुनाई नई ताही छवि कर ससि आभा पात पात की॥

---

१. कवित्त-रत्नाकर, सं० उमाशंकर शुक्ल, चतुर्थ सं०, पृ० ४१, पद ३०.
२. कवित्त रत्नाकर, सं० उमाशंकर शुक्ल, चतु० सं०, पृ० ४१ पद २९.

सेनापति काम भूप सोवत सो जागत है, उज्वल विमल दुति पैयं गात गात की।
सैसव-निसा अथौत जोवन दिन उदौत बीच बाल बधू झाई पाई परभात की ॥[1]

'काम भूप सोवत सो जागत है' लाक्षणिक पद है। इसका वाच्यार्थ है—'काम राजा सोकर उठ गया है पर लक्ष्यार्थ है शैशव समाप्त हो गया है और तरुणाई का आगमन हो गया है अर्थात् अन्तर मे काम भावना जागृत हो उठी है। इस पद मे मुग्धा नायिका का कवि ने बड़ा सुन्दर बिंब प्रस्तुत किया है।

"मानहु प्रबाल ऐसे ओठ लाल लाल, भुज कंचन मृनाल तन चंपक की माल है।
लोचन बिसाल, देखि मोहे गिरधरलाल, आज तुही बाल तीनि लोक में रसाल है।
तोहि तरुनाई सेनापति बनि आई, चाल चलित सुहाई मानों मंथर मराल है।
नेक देखि पाई मोपै बरनी न जाई तेरी देह की निकाई सब गेह की मसाल है।"[2]

मसाल पद लाक्षणिक है। यहा वाच्यार्थ बाध गया है। इनका लक्ष्यार्थ है—कांतिपूर्ण शरीर। नारी शरीर का मासाल होना असम्भव है।

गौणी सारोपा लक्षणा :—

"सैसव-निसा अथौत जोबन दिन उदौत,
बीच बाल बधू झाई पाई परभात की।"[3]

'सैसव-निसा और जोवन दिन लाक्षणिक पद हैं। इनमे सैसव तथा जोबन उपमेय है। निसा और दिन उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। चढती हुई युवा-वस्था पर रात-दिन के मध्य प्रभात-कालीन छटा का आरोप करके कवि ने बिंब को सवेदनीय बना दिया है।

"बिंब हैं अधर-बिंब, कुन्द के कुसुम दन्त, उरज अनार निरखत सुखकारी हैं।
राजें भुज लता, कोटि कंटक कटाक्ष अति, लाल लाल कर किसलय के अनुकारी हैं।
सेनापति चरन बरन नव पल्लव के, जंघन कौं जुग रंभाथंभ दुति धारी है।
मन तौ मुनिन हू कौं, जो बन-बिहारी हुतौ, सो तौ मृग नैनी तेरे जोबन बिहारी है।"[4]

'बिंब है अधर-बिंब', कुन्द के कुसुम दन्त, उरज अनार, भुज लता, कंटक कटाक्ष कर किसलय, चरन बरन नव पल्लव और 'जघन कौ जुग 'रभा थंभ' लाक्षणिक पद है। सभी पदो मे उपमेय और उपमान दोनो है। इनका आधार रूप तथा गुण साम्य है। कवि ने उपमेयो पर उपमानो का आरोप करके बिंबो को अलौकिकता और सप्रेषणीयता प्रदान की है।

---

१. कवित्त-रत्नाकर, सं० उमाशंकर शुक्ल, चतु० सं०, पृ० ४० पद २६.
२. कवित्त-रत्नाकर, सं० उमाशंकर शुक्ल, चतु० सं०, पृ० ४४ पद ४०.
३. कवित्त-रत्नाकर, सं० उमाशंकर शुक्ल, चतु० सं० पृ० ४०, पद २६.
४. कवित्त-रत्नाकर, सं० उमाशंकर शुक्ल, चतु० सं० पृ० ३९, पद २५.

"ललौ मन मोहि तातें सूझत न मोहिं सखी, मदन-तिमिर मेरौ जीउ रह्यो दबि है।
सेनापति जीवन अधार बिन घनसार, गंधसार हार विरहानल कौं हबि है।
लोचन कुमुद नन्द-नन्दन को मुखचन्द, उर अरबिंद ताकौं ऐन मैन-रबि है।
छाँड़ि दे अपार बार-बार उपचार मेरे ही-तम के हरिबे कौ प्रीतम की छबि है॥"[1]

'लोचन कुमुद', 'मुख चन्द' और 'उर अरविंद' लाक्षणिक पद हैं। लोचन, मुख तथा उर उपमेय एव कुमुद, चन्द और अरविंद उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। मदन-तिमिर तथा मैंन रवि भी लाक्षणिक पद हैं। इन पदो मे भी उपमेय उपमान दोनो है और इनका आधार भी सादृश्य है। कवि ने उपमानो के सहारे बिंबो को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

साध्यवसाना गौणी लक्षणा :—

"कालिंदी की धार निरधार है अधर गन,
अलि के धरत जा निकाई के न लेस हैं।
जीते अहिराज, खंडि डारे हैं सिखंडि, घन,
इन्द्रनील कीरति कराई नाहिं ए सहे॥
एड़िन लगत सेना हिय के हरष कर,
देखत हरत रति कन्त के कलेस हैं।
चीकने, सघन, अँधियारे ते अधिक कारे,
लसत लछारे, सटकारे तेरे नैन हैं॥"[2]

केश के लिए कवि ने उपयुक्त उपमान, 'कालिंदी की धार निरधार है अधर' चुना है। इस उपमान से केश शशि के सौंदर्य मे व्यापकता आ गई है और कवि उस सौंदर्य को संप्रेषित करने के लिये एक सुन्दर बिंब प्रस्तुत कर सका है। इसका आधार सादृश्य है।

'कवित्त-रत्नाकर' के लाक्षणिक प्रयोगो को देखकर यह प्रतीत होता है कि कवि सेनापति इन प्रयोगो के प्रति सावधान थे। इसीलिये इस ग्रन्थ में पर्याप्त लाक्षणिक प्रयोग मिलते है। इनमे स्वाभाविकता तथा शास्त्रीयता दोनो पाई जाती हैं। मुहावरे तथा लोकोक्तियो का तो इनके काव्य में कम प्रयोग हुआ है पर अप्रस्तुत-विधान का पर्याप्त मात्रा में सहारा लिया गया है। ये अप्रस्तुत प्रकृति निरीक्षण तथा लोक अनुभव के परिचायक हैं। ऐसे अप्रस्तुत-विधान जिनमे एकात्म्य सादृश्य के आधार पर स्थापित किया गया है वे सभी लक्षणा शक्ति की श्री वृद्धि करते हैं।

---

१. कवित्त-रत्नाकर, सं० उमाशंकर शुक्ल, चतु० सं० पृ० ४६, पद ४६.
२. कवित्त-रत्नाकर, सं० उमाशंकर शुक्ल, चतु० सं० पृ० ३४ पद ७.

रीतिकालीन रीति-ग्रन्थ और लक्षणा—

रीतिकाल से पहले के कवियो के रीतिग्रन्थो में लक्षणा का प्रयोग दिखाने के पश्चात् यहाँ रीतिकालीन आचार्यो के उन ग्रन्थो मे जिनमे रीति के सभी अङ्गो का वर्णन किया गया है, आए हुए लाक्षणिक प्रयोगों को दिखाया जा रहा है। रीतिकाल के प्रमुख आचार्य चितामणि, कुलपति मिश्र, देव, श्रीपति, भिखारीदास, सोमनाथ और प्रतापसाहि है। रीति के सभी अङ्गों का निरूपण करने वाले इनके ग्रन्थ 'कविकुल-कल्पतरु', 'रसरहस्य', 'शब्द रसायन', 'काव्य-सरोज', 'काव्य-निर्णय', 'रसपीयूषनिधि' और 'काव्य-विलास' है। इन आचार्यों को काव्य के लक्षण तथा उदाहरण प्रस्तुत करने थे। इन्ही उदाहरणों मे लाक्षणिक प्रयोग पाये जाते है। श्रीपति का 'काव्य-सरोज' उपलब्ध नही है। इसलिए इसके अतिरिक्त अन्य सभी ग्रन्थो मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोगो का यहाँ क्रमश. दिग्दर्शन कराया जा रहा है। इसके साथ ही इन प्रयोगों की विशेषताओ को भी स्पष्ट किया जा रहा है।

'सम्पूर्ण काव्यांगों का विवेचन करने वाले ग्रन्थ'

'कविकुल कल्पतरु'

आचार्य चितामणि का जन्मकाल सवत् १६६६ के लगभग और कविता-काल १७०० के आस-पास ठहरता है। कवि कुल-कल्पतरु, काव्य विवेक, काव्य-प्रकाश, एवं रामायण ग्रन्थ इनके लिखे हुए है। इन्होने काव्य के सभी अगो पर ग्रन्थ लिखे।

आचार्य चितामणि हिन्दी रीति-ग्रन्थो की अखण्ड परम्परा के प्रथम आचार्य है, जिन्होने काव्य के सभी अगो का अपने ग्रन्थ मे निरूपण किया है।[1] यद्यपि इनसे ५०-६० वर्ष पूर्व आचार्य केशवदास ने हिन्दी मे काव्यागो का विवेचन कर चुके थे। किन्तु उनकी रचना का आधार संस्कृत के पूर्ववर्ती आचार्य भामह और दण्डी थे, जबकि सस्कृत के उत्तरकाल मे आचार्य मम्मट, आचार्य विश्वनाथ आदि ने काव्यांगो का विशद विवेचन किया था। आचार्य चितामणि ने इन्ही आचार्यो का अनुकरण किया। अतः चितामणि से प्रवाहित होने वाली रीति परम्परा ही आगे चलकर विकसित हुई। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार—"हिंदी के अलकार ग्रन्थ अधिकतर चन्द्रालोक और कुवलयानन्द के अनुसार निर्मित हुए। कुछ ग्रन्थो मे काव्यप्रकाश और साहित्य दर्पण का आधार पाया जाता है। काव्य के स्वरूप और अगो के सम्बन्ध में हिन्दी के रीतिकार कवियो ने सस्कृत के इन परवर्ती ग्रन्थो का मत ग्रहण किया।[2]

इनका 'कविकुलकल्पतरु' ग्रन्थ सं० १७०७ मे लिखा गया था। इसमे काव्य के विभिन्न अंगो का विवेचन है। प्रबन्ध के विषय को दृष्टि मे रखकर इस ग्रथ में

---

१. हिन्दी रीतिग्रन्थो की अखंड परम्परा चिंतामणि त्रिपाठी से चली। हिं० सा० इति० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, सं० परि० सं० २००२, पृ० २७२.

२. हिं० सा० इति., आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, सं० परि० सं० २००२, पृ० २७२.

प्रयुक्त पदो मे लक्षणा शक्ति के प्रयोग का स्वरूप आगे दिया जा रहा है। यहाँ यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि—शब्द शक्ति का विवेचन एक अति दुरूह विषय है। इसकी स्पष्ट एव सूक्ष्म विवेचना में कतिपय संस्कृत के आचार्य भी भटक गये है।"[१] यद्यपि हिन्दी के कतिपय आचार्यो ने ही शब्द शक्तियो के विषय का विवेचन किया है। फिर भी दुख के साथ यह कहना पडता है कि प्राय. इनकी धारणा से भ्रान्ति ही पैदा होती है। 'कविकुल कल्पतरु' ग्रन्थ मे शब्द शक्तियों के प्रकरण में जो उदाहरण दिए गए है, उनके अतिरिक्त अन्यत्र इनके प्रयोग के प्रति स्वाभाविक सतर्कता नही है। किन्तु रूप सौदर्यानुभूति की अभिव्यक्ति में कवि प्रतिभा जहाँ कही बिंब प्रस्तुत करने लगती है वहाँ लक्षणा-शक्ति का प्रयोग दृष्टि-गोचर होता है। इसीलिए सारोपा गौणी लक्षणा के पर्याप्त प्रयोग मिलते है। इनके अतिरिक्त लक्षण लक्षणा और साध्यवसाना गौणी के भी कही-कही प्रयोग मिल जाते है। काव्यागो के विवेचन मे कवि प्रतिमा को लक्षण-उदाहरणो की सीमा मे आबद्ध रहना पड़ता था इसलिए लक्षणा-शक्ति के प्रयोग के सहज स्वाभाविक रूप विरल ही दिखाई पडते है। जिन स्थलो पर प्रयोग मिलते भी है वे उदाहरण की सीमा मे जकड़े हुए है। रूपक, अतिशयोक्ति आदि अलंकारो के उदाहरण मे अथवा नायिका भेद के उदाहरणों के कतिपय प्रसंगों मे इनका प्रयोग पाया जाता है।

शुद्धा लक्षण लक्षणा—

"भई अनूपम चोपतनु प्रफुलित नैननि चैन।
अंकुस दै फेरयो हियो बाला पन ते मैन॥"[२]

इसमें 'प्रफुलित' और 'अ कुस' पद लाक्षणिक है। प्रफुलित होना पुष्पधर्म है पर यहाँ 'नैननि चैन' के पक्ष मे प्रयोग किया गया है। अङ्ग, मुख और नैन के पक्ष में प्रफुलित होना कवि प्रसिद्ध से रूढ हो गया है, पर नैननि चैन के पक्ष मे प्रफुलित शब्द का अर्थ बाध होता है और आनन्द अर्थ ग्रहण किया जाता है अर्थात् नैनो का आनन्द भी आनन्दित हो गया है।

इसी तरह 'अकुस' हाथी को दिया जाता है, किन्तु यहाँ हृदय को अंकुस देना कहा गया है। अतः अकुश का अर्थ वेदना युक्त नियंत्रण ग्रहीत है, यही अर्थ में चमत्कार है।

१. परन्तु ये (शब्दशक्ति और अलंकार) विषय तो हैं ही इतने गम्भीर और सूक्ष्म कि संस्कृत के भी अनेक आचार्य इनमें साफ-साफ नहीं उतर पाए। रीतिकाल की भूमिका, डॉ० नगेन्द्र तृतीय सं० १९५९ ई० पृ० १३५

२. कविकुल कल्पतरु, चितामणि, सं० १८७५ ई०, पृ० ८१ पद २१ हस्त. ना० प्र० स० काशी

सारोपा गौणी लक्षणा: —

"बाल अधर रद उरज छवि बीज फूल फल ऊँट।
वैस सध्य मे दाड़िमी लई विचारी छूट ॥"[१]

अधर, रद, उरज, वीज फूल, फल लाक्षणिक पद है। क्रमश: अधर, रद तथा उरज उपमेय हैं और फूल, वीज, फल उपमान हैं। इनका आधार सादृश्य है। अधर पर दाड़िम के फूल के रग का आरोप, दाँत पर बीज का आरोप, एव उरज पर फल का आरोप कवि ने किया है। इस तरह उपमेय और उपमान के द्वारा 'सधिवेला' के रूप का निखार सहृदय के समक्ष प्रस्तुत किया गया है, यही लक्षणा जन्य चमत्कार है।

"जाहि मिलि नैन कमल खुले हैं कान मुकुत नखत पर वार कै विचारयो हैं।
परम मधुर मुसक्यानि कौमुदी सौं वड़ो सुखमा गरब वारि जानि को विडारयो हैं।
निरखत सवन को सब वरखत को हिये हरखत हरि ध्यान निरधारयो है।
चिंतामणि कहैं चख चकोरन को आनन्द मुख चंद राधिका मुकुन्द को निहरयो हैं"[२]

नैन नील कमल, चख चकोर और मुख चन्द लाक्षणिक पद है। सभी पदो में उपमेय और उपमान है। इनकी ऐकात्म्य कल्पना का आधार सादृश है। नैन मे नीलिमा एव कमल की प्रफुल्लता का आरोप, चख पर चकोर की एकनिष्ठता का आरोप तथा मुख पर चन्द्रमा के सौन्दर्य के आरोप द्वारा कवि रूप विंव प्रस्तुत करके अर्थ मे चमत्कार पैदा करता है।

"काहू को पूरव पुन्य लता सु तौ वेलि अपूरव तू उलही है।
सोने सो जाको स्वरूप सबै कर पल्लव कांति कहा उमही है॥
फूल हँसी फल हैं, कुच जाहि के हाथ लगै सुकृती सो सही है।
आली कियो सुनिकै बतिया मुसुक्याइ तिया मुख नाइ रही है॥[३]

कर पल्लव, लाक्षणिक पद हैं। इसमे कर उपमेय और पल्लव उपमेय है। आधार सादृश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके विंव को सवेदनीय वनाया गया है।

---

१. कवि कुल कल्पतरु, चिंतामणि, सं० १८७५ ई०, पृ० १२ पद ६२, हस्त० ना० प्र० स० काशी
२. कवि कुल कल्पतरु, चिंतामणि, सं० १८५७ ई०, पृ० ८३ पद ३३, हस्त० ना० प्र० स० काशी
३. कवि कुल कल्पतरु, चिंतामणि, सं० १८७५ ई० पृ० १०२ पद ८५, हस्त, ना० प्र० स० काशी

साध्यवसाना गौणी लक्षणा—

'पूरन मण्डल वेलि के फूल लग्यो अकलंक मयंक तक्यो है।
नील सरोज भरै मधु बिदन लै सर तारका वृन्द सक्यो है।
डोलत है तिल मूल के पौन बधू को लखे छवि कौन छक्यो है।
गेह के द्वार मैं काहू महा सुकृती जन को जनु पुन्य पक्यो है।"[1]

'वेलि के फूल' पद लाक्षणिक है। यह पद कामिनी की विकसित तरुणाई का उपमान है। इस पद द्वारा कामिनी की विकसित पूर्ण तरुणाई का अर्थ व्यक्त करके चमत्कार प्रस्तुत किया गया है।

आचार्य चिन्तामणि के लाक्षणिक प्रयोग काव्यांगो के विवेचन के प्रसंग मे आए है। ये प्रसंग अलंकारों और नायिका भेद से सम्बन्धित हैं। उदाहरणों की सीमा मे बँधे रहने के कारण इनमे स्वाभाविकता का अभाव है। अप्रस्तुत योजना परम्परा नुमोदित है। समस्त लक्षण उदाहरण परम्परा से जकड़े हैं फिर भी यह सत्य है कि विशाल अप्रस्तुत योजना का स्वरूप जो इनके पूर्ववर्ती कवियो मे पाया जाता है उसका भी समुचित उपयोग ये नही कर पाए है।

'रस-रहस्य'

आचार्य कुलपति मिश्र का रस-रहस्य आचार्य मम्मट के काव्य-प्रकाश का छायानुवाद है। इस ग्रन्थ मे स्थान-स्थान पर गद्य वार्तिक भी दिए गए हैं, इससे यह प्रतीत होता है कि इन्होने रस-रहस्य को प्रौढ काव्यशास्त्र का ग्रन्थ बनाने का प्रयास किया था।[2] शब्द शक्ति निरूपण मे प्राय: इन्होने 'काव्य प्रकाश' के लक्षण उदाहरण प्रस्तुत कर दिए है। इनकी भाषा चलती हुई व्रजभाषा है, जिस पर इनका अच्छा अधिकार था।

रस अलकार निरूपण मे इनकी काव्य-प्रतिभा निखर गई है। यदि इन्हे लक्षण उदाहरण की सीमा मे बँधकर न चलना होता तो निश्चित रूप से इनकी रचना मे अधिक सरसता आ गई होती। भावो को संवेदनीय एवं संप्रेषणीय बनाने के लिए जहाँ भी इन्हे अप्रस्तुत विधान करना पड़ा है वहाँ निश्चितरूप से उक्ति मे वैचित्र्य आ गया है। उक्ति वैचित्र्य की भाव भगिमा मे लाक्षणिक चमत्कार उत्पन्न करके इन्होने काव्य गौरव की श्रीवृद्धि की है।

व्रज की चलती भाषा पर अच्छा अधिकार होने के कारण लोक रुचि मे ढले हुए शब्दों, मुहावरो और लोकोक्तियों का प्रयोग सहज स्वाभाविक रूप से इन्होंने किया है,

---

१. कवि कुल कल्पतरु, चिंतामणि, सं० १८७५ ई० पृ० ३८ पद ११२, हस्त, ना० प्र० स० काशी

२. साहित्यशास्त्र का अच्छा ज्ञान रखने के कारण इनके लिए स्वाभाविक था कि ये प्रचलित लक्षणा ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक प्रौढ़ निरूपण का प्रयत्न करें। हि० सा० इ०, आचार्य शुक्ल, सं० २००२, पृ० २२४।

-है और ऐसे प्रसंगो मे भी लाक्षणिक प्रयोगों की छटा देखी जा सकती है। यहाँ पर रस रहस्य में आए हुए कुछ लाक्षणिक प्रयोगो के उदाहरण दिए जा रहे हैं।

निरूढ़ा लक्षणा —

"कोयल कुहुकि दहै जरे पर लौन, भँरन मरयो मौन अब गुंज कान वै सुनौ ॥"[1]

इसमें 'जरे पर लौन देना' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है कष्ट पर अधिक कष्ट देना। इसी लक्ष्यार्थ मे ही अब यह मुहावरा रूढ हो गया है।

शुद्ध लक्षण-लक्षणा—

"प्रेम की झकोरन में झूमि झूमि झुक्यौ मन, झुकि गई भूलि फूलि गयो सब गात।"[2]

'झूमि' पद लाक्षणिक है। झूमना वृक्ष का धर्म है पर यहाँ मन के पक्ष मे कहा गया है। इसका लक्ष्यार्थ है मन का आनन्दित होना।

"फूले अंग अंग रुचि राजै बहुरंग मानो आवत अनंग संग लीन्हें छवि सो सखे।
अति सरसात गात रस बरसात पिय मौन गहे साहस अपार सिंधु जो नखे।"[3]

इसमे 'फूले' तथा 'रस बरसात' लाक्षणिक पद है। फूलना फूल का धर्म है पर यहाँ अङ्गों के पक्ष में प्रयुक्त हुआ है और बरसना बादल का धर्म है जो गात के पक्ष मे कहा गया है। अत इनका लक्ष्यार्थ है प्रसन्नता और आनन्दित करना।

'बारिद की विषधार अपार चहूँ दिशि दामिनि दीन दिखाई।[4]

'विषधार' लाक्षणिक पद है। बादल जल बरसाते है, विष नहीं। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है विरहिणी की वेदना को तीव्र करने वाली जलधारा। इस प्रकार कवि ने भाव बिंब को सम्प्रेषणीय बनाया है।

सारोपा गौणी लक्षणा :—

"तरुन तेज तुअ तपन सुभग सोहत मयंक मुख।
चितवनि मंगल रूप बुद्धिमय समा सर्वा सुख ॥
गुरु गुरुता मन सहज धाम कवि को कवित्त रस।
राहु शत्रु उर दाहु कोप शनि कियउ आप वस ॥
कर जोरि केतु आगे रहइ नित सेवक सम वपु धरिय।
जगमगइ जगत नृप राम रवि प्रगट नवग्रह वस करिय ॥"[5]

'मयंक मुख', 'चितवनि मगल', 'मन धाम', 'राहु शत्रु', 'कोप शनि' और

---

१. रस रहस्य, स० बलदेव प्र० व ज्वाला प्र० सं० १९५४, पृ० ३९, पद १७
२. रस रहस्य सं० बलदेव प्र० व ज्वाला प्र० सं० १९५४, पृ० २०, पद ४२
३. रस रहस्य सं० बलदेव प्र० व ज्वाला प्र० सं० १९५४, पृ० ९, पद २०
४. रस रहस्य सं० बलदेव प्र० व ज्वाला प्र० सं० १९५४, पृ० २०, पद ४६
५. रस रहस्य सं० बलदेव प्र० व ज्वाला प्र० सं० १९५४, पृ० ८५, पद ४२

'राम रवि' लाक्षणिक पद है। सभी पदों में उपमेय उपमान दोनो वर्तमान है। आधार रूप एव गुण सादृश्य है। मुख पर मयक के सौन्दर्य का, चितवनि पर मंगल के मांगल्य का, मन पर धाम मे आवास का, शत्रु पर राहु के अकारण शत्रुता का, क्रोध पर शनि की भयकरता का और राम पर रवि की प्रचण्डता एव व्यापकता का आरोप करके लाक्षणिक चमत्कार उत्पन्न किया गया है।

साध्यवसाना गौणी लक्षणा:—

"है किधौं नाहि ने संभ्रम माझ सुदेत रहै रस कौन कली कौ।
जानि परै जब होइ विकास सखी भलो मानियै वात भली कौ।
भोरन के मन भाये करो न डरो सुनि लेहु सिखायौ अली कौ।
आनँद पुंज चकोरन देइ प्रकाश करो किनि कुंज गली कौ ॥"[1]

'भोरन' 'चकोरन' लाक्षणिक पद है। दोनों पद रसिक जनों के उपमान है। कथन में गोपनीयता द्वारा चमत्कार उत्पन्न किया गया है। एक सखी दूसरी सखी के यौवन विकास को देखकर सम्वोधित करती हुई सलाह देती है।

"प्रेम पुलकत झलकत जोति अंग अंग दुरै न दुराये क्यों करत त्यौरतेह के।
अंकुर जग्यो है हुलस्यो वस्यो हिये मांझ वेली लहकत ज्यों परस होत मेह के।
मोह सो दुरावति है बातन वनाय करि सुनत है कछु जो कहत लोग गेह के।
फूली फूली फिरै सव बगर बगर अब नगर नगर के नगारे बाजे नेह के ॥"[2]

'अंकुर जग्यो है', 'वेली' लाक्षणिक पद है। दोनों क्रमशः उरोज विकास तथा अभिलाषा के उपमान है। उरोजो के विकास के लिये अंकुर और अभिलाषाओं को वेलि का लहराना कहकर दोनों के विकास का मार्मिक विंव प्रस्तुत किया गया है।

आचार्य कुलपति के लाक्षणिक प्रयोगो मे शास्त्रीयता अधिक है। इनकी अप्रस्तुत योजना परम्परानुमोदित है। इन्हें काव्यांगो का विवेचन करना था, इसलिए इन्हें लक्षण-उदाहरणों की सीमा मे बँधकर रहना पड़ा है। इन सीमाओं में आवद्ध रहने के कारण इन लाक्षणिक प्रयोगो में स्वाभाविकता नही आ पाई है। इनके लाक्षणिक प्रयोग उन्ही स्थलो से प्रायः सम्वन्वित है, जिन स्थलों पर इन्होंने रूपक, अतिशयोक्ति, अप्रस्तुत प्रशसा, समासोक्ति आदि अलंकारो तथा नायिका भेद के उदाहरण प्रस्तुत किए है।

'शब्द-रसायन'

आचार्य देव रीतिकाल के उन आचार्य कवियो में से हैं, जिन्होने काव्य के सम्पूर्ण अङ्गों का विवेचन किया है। रस, नायिका-भेद तथा अलंकार-निरूपण—भाव-

---

१. रस रहस्य, सं० बलदेव प्र० व ज्वाला प्र०, सं० १९५४, पृ० १५ पद ५
२. रस रहस्य, सं० बलदेव प्र० व ज्वाला प्र०, सं० १९५४, पृ० ३६ पद ३

विलास, भवानी-विलास, कुशल-विलास, रस-विलास सुखसागर-तरङ्ग और सुजान विनोद में मिलता है। देव ने सभी काव्यागो का विवेचन शब्द-रसायन मे किया है। इस ग्रन्थ में ग्यारह प्रकाश हैं। ग्रन्थ के प्रथम एव द्वितीय प्रकाश में शब्द-शक्तियो का, तृतीय, चतुर्थ, पंचम तथा षष्ठ प्रकाश मे रस-नायिका-भेद का, सप्तम प्रकाश मे रीति का, अष्टम, नवम प्रकाश मे अलङ्कारो का और दशम् तथा एकादश प्रकाश मे पिंगल का क्रमिक विवेचन किया गया है। आचार्य देव ने अपने ग्रन्थ शब्द-रसायन में काव्य के सार्वाङ्गो का विवेचन करते हुए जहाँ कही भी लक्षणा शक्ति का प्रयोग किया है वही स्थल इस प्रबन्ध के विषय से संबद्ध है। इस ग्रन्थ मे शब्द-शक्तियो का विवेचन सर्व प्रथग हुआ है, किन्तु इस स्थल पर प्रथम और द्वितीय प्रकाश को **उद्धृत करना पुनरावृत्ति मात्र होगा, क्योंकि इसका उल्लेख प्रथम अध्याय के 'रीति-कालीन हिन्दी आचार्यों का शब्द-शक्ति निरूपण' शीर्षक के अन्तर्गत हो चुका है।*** अतएव इस स्थल पर रस, नायिका भेद, रीति एवं अलङ्कार-निरूपण के उन प्रसङ्गो का उल्लेख किया जाता है, जहाँ लक्षणा शक्ति का प्रयोग है।

आचार्य देव रस को काव्य का मूल मानते थे, एव उनके अनुसार 'हरिजस' निमग्न रस आनन्द प्रदान करता है।[1] उन्होने शृङ्गार, वीर और शात रसों को ही मुख्य रस माना है शेप रस दो-दो के क्रम से इन्ही तीनो के आधीन है और अन्त मे वीर रस तथा शात को भी शृङ्गार रस का अङ्ग मान कर, शृङ्गार को रसराज स्वीकार किया है।[2] शब्द-रसायन मे इन्होने रसो को देने के वाद वृत्तियो को भी दिया है। तत्पश्चात् शृङ्गार का वर्णन है, इसमे पात्र, नायिका-नायक, दूती, विदूषक एवं पीठमर्द का वर्णन है। देव ने नायिकाओ के स्वकीया और परकीया केवल दो भेद किए है, वे परकीया की काफी निन्दा भी करते है। आचार्य देव के विचारानुसार शब्दालकारो में वर्णो की ही विचित्रता रहती है और अर्थ असमर्थ होता है।[3] अर्थालकारों मे उपमा और स्वाभावोक्ति को ही मुख्य मानते है।[4] स्वाभावोक्ति

---

* यही शोध प्रबन्ध पृष्ठ

१. "चलत न तव लगि पद छिदे, शब्द, अर्थ, छल, छन्द,
जब लगि लगि बरसत नहीं, हरिजस रस आनन्द।" (शब्द रसायन पृष्ठ २७)

२. तीन मुख्य नवहू रसनि, द्वै द्वै प्रथमनि लीन,
प्रथम मुख्य तिनहून मे, वोऊ तेहि आधीन। —शब्द रसायन पृ० ३१

३. अलङ्कार जे शब्द के, ते कहि काव्य-सुचित्र,
अर्थ समर्थ न पाइयत, अच्छर बरन विचित्र। —शब्द-रसायन पृ० ८४

४. अलंकार में मुख्य हैं, उपमा और सुभाव,
सकल अलंकारन विषे, परसत प्रकट प्रभाव। —शब्द-रसायन पृ० ९४

की अपेक्षा उपमा को प्रधान मानते है और अन्य अलंकारों के साथ उपमा जोड़ देते है। वास्तव मे देव अन्य अलंकारो के मूल में भी उपमा की प्रतीति कराना चाहते है।

अभिव्यक्ति को रमणीयता तथा सबलता प्रदान करने के लिए, प्रस्तुत की श्रीवृद्धि के लिए अप्रस्तुत का उपयोग होता है। अप्रस्तुत विधान प्रायः साम्य पर आधारित रहता है। साम्य तीन प्रकार का होता है—(१) रूप साम्य, (२) साधर्म्य और (३) प्रभाव साम्य।

रूप-साम्य—रूप साम्य मूलक अप्रस्तुत वस्तु के स्वरूप को स्पष्ट करके रूप जन्य चेतना को संवेदनीय बनाता है। देव के शृंगारिक चित्रो में अनुभूति को तीव्रता एवं स्पष्टता प्रदान करने के लिए इनका उपयोग किया गया है। ऐसे सभी पदों के मूल मे लक्षणा वर्तमान रहती है।

साधर्म्य—साधर्म्य विधान के द्वारा वस्तु के धर्म अथवा गुण की अनुभूति को सवेदनीय बनाने का कवि प्रयास करता है। इनका उद्देश्य धर्म अथवा गुण की अनुभूति मे सहायता पहुँचाना होता है। साधर्म्य विधान मे प्रायः सर्वत्र-लक्षणा का चमत्कार वर्तमान रहता है।[1]

प्रभाव साम्य—प्रभाव साम्य साधर्म्य का ही सूक्ष्मतर रूप है। इसका विधान किसी प्रभाव की अनुभूति को स्पष्ट करने के लिए किया जाता है। इसके सौन्दर्य मे भी लक्षणा का चमत्कार बहुत कुछ होता है।[2]

जहा भाव सवेदन के लिए रमणीय तथा सूक्ष्म प्रणाली तथा धर्म के लिए धर्मी का प्रयोग किया गया है वहां भी लक्षणा का आधार लिया गया है। मानवीकरण मे जड़ वस्तुओ, अमूर्त भावनाओ पर पूर्णतया अथवा आशिक रूप मे मानव गुणो का आरोप किया जाता है। इनके मूल मे भी लक्षणा का चमत्कार होता है। आचार्य देव की रचना मे इस तरह लक्षणा सर्वत्र व्याप्त है। आचार्य देव ने मुहावरों का प्रयोग भी अपने काव्य ग्रन्थ में खूब किया है। मुहावरों मे भी लक्षणा का चमत्कार रहता है।

उपादान शुद्धा लक्षणा—

"त्यों अँसुवा बरसै बरसाने को, पाती लिखै लिखि राधिका ध्यावै।"[3]

---

१. आधुनिक उपमान–जिनमें लक्षणा का चमत्कार प्रायः वर्तमान रहता है साधर्म्य-मूलक ही अधिक होते हैं। —देव और उनकी कविता (उत्तरार्द्ध) डॉ० नगेन्द्र, १९४९ पृष्ठ १८४

२. इसका (प्रभाव साम्य) भी सौन्दर्य बहुत कुछ लक्षणा पर ही आश्रित रहता है। [देव और उनकी कविता (उत्तरार्द्ध) डॉ० नगेन्द्र, १९४९ पृ० १८५]

३. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथसिंह 'मनोज' प्र० सं०, पृ० ५२

'बरसाने को' लाक्षणिक पद है। इसका मुख्यार्थ बरसाना गांव है, पर गाव आंसू कैसे बरसा सकता है ? अतः मुख्यार्थ बाध होकर लक्ष्यार्थ बरसाने मे निवास करने वाली राधा या सभी गोपियो अर्थ ग्रहण किया जाता है। इस प्रकार मुख्यार्थ के त्याग के विना लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाता है।

शुद्धा लक्षण-लक्षणा—

'लाज कसी उकसी न उतै, हुलसी वरुनी विलसी कछु भौंहें।"[1]

'हुलसी' तथा 'विलसी' लक्षक पद है। हुलसना, विलसना मानव के धर्म है, वरुनी और भौह के नही।

'नेह भरी अति प्यारी निहारि, तिरीछी चितौनि रही चित में चुभि।"[2]

'चुभि' लक्षक पद है। चुभना कांटे आदि का गुण है, यहां प्रभावित करना अर्थ गृहीत है।

"भौंह हँसाइ, हिये हुलसाइ, खिले विलसाइ मिले दृग चारों।"[3]

'हँसाइ' तथा 'खिले' लक्षक पद है। भौह का हँसना और नेत्रो का खिलना समव नही है। हँसना मनुष्य स्वभाव है और खिलना पुष्प धर्म है। हँसना एवं खिलना का प्रसन्नता अर्थ गृहीत है।

"चोज के चंदन खोज खुले, जहँ ओछे उरोज रहे उर मे घिसि।"[4]

'ओछे उरोज' लक्षक पद है। ओछे का मुख्यार्थ छोटे का यहाँ बाध हो गया है। अर्ध-प्रस्फुटित अर्थ ग्रहीत है। इस पद का देव काव्य मे अनेक स्थलो पर प्रयोग हुआ है।

"ओछे उरोज अँगोछि अँगोछन, पोंछति पीक कपोलन पी की।"[5]

उपर्युक्त पद की तरह यहाँ भी ओछे उरोज का अर्ध-प्रस्फुटित अर्थ ग्रहण किया जाता है।

"रूसि कछू, रस ही रिस रूसि, मसूसि रही, रिस के विस भोई,...।"[6]

'विस' का मुख्यार्थ जहर है जिसका परिणाम मृत्यु है। इसलिए विस का अर्थ जलन, पीड़ा ग्रहण किया जाता है।

"खेलत फाग नई दुलही, उर आंसुन लीलि उसासन लै लै।"[7]

---

१. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह 'मनोज', प्र० सं०, पृ० ३३
२. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह 'मनोज', प्र० सं०, पृ० ३३
३. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह 'मनोज', प्र० सं०, पृ० ३४
४. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह 'मनोज', प्र० सं०, पृ० ४३
५. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह 'मनोज', प्र० सं०, पृ० ४६
६. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह मनोज,' प्र० सं०, पृ० ४८
७. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह 'मनोज', प्र० सं०, पृ० ५०

'आँसुन' तथा 'लीलि' पद लक्षक है। आँसू नेत्र में आते हैं उर में नहीं, लीलना भी हृदय का धर्म नहीं है। इनका लक्ष्यार्थ क्रमशः दुःख या वियोग और दवा लेना है। इस प्रसग मे यही अर्थ ग्रहीत है।

"पावस ते उठि कीजिये चैत अमावस ते उठि कीजिए पूनो।"[1]

पावस, चैत, अमावस तथा पूनो लक्षक पद है। इनका मुख्यार्थ क्रमशः वर्षा, चैत मास, अमावस तिथि एवं पूनो तिथि है, किन्तु इनका लक्ष्यार्थ—वियोग मे निरतर अश्रु वर्षा, बसंतागमन (मिलन) दुःख और प्रसन्नता है।

"थोरे-थोरे जोबन बिथोरे देत रूप, रासि गोरे मुख भोरे, हँसि जोरे लेत हित को।"[2]

थोरे-थोरे लक्षक पद है। इसका लक्ष्यार्थ अर्ध-स्फुटित ग्रहीत है।

"रावरे रूप लता ललचानी, पंजानी न काहू बिकानी है ऐसी।"[3]

'बिकानी' पद बिकना मुख्यार्थ त्याग कर वशीभूत होना लक्ष्यार्थ ग्रहण करता है।

"गूजरी ऊजरे जोबन को कछु, मोल कहौ, दधि को तब दै हौं,...।"[4]

'ऊजरे' पद लक्षक है। इसका मुख्यार्थ उज्ज्वल है, किन्तु यहाँ लक्ष्यार्थ निष्कलिकित अथवा अछूते ग्रहण किया जाता है।

"रूप के लालच, लाल चितौत चितै मुख चोकन चूवन चाहौं,...।"[5]

'चूवन' का मुख्यार्थ है टपकना अथवा नीचे गिरना जो जल का धर्म है, किन्तु यहाँ मुख के लिए चूवन शब्द प्रयोग किया गया है। अतः इसका लक्ष्यार्थ लज्जित होना ग्रहण किया जाता है।

सारोपा गौणी लक्षणाः—

"प्रेम सुधा-सागर, बिसद बसुधा बिनोद ब्रज-जन समोद कुमुद मुद मकरंद,
सोहत समाज ब्रजराज राजहंस बम 'देव' मुख देखत, बिमुख होत दुख द्वन्द;
जोबन उज्यारी प्यारी राधा, राति कातिक की पूरन अनूप रूप भूपर बदन-चंद।"[6]

'प्रेम सुधा-सागर', बसुधा-बिनोद', 'ब्रज-जन समोद कुमद', 'मुद मकरंद', 'ब्रजराज-राजहस', 'जोबन उज्यारी राति कातिक की पूरन', तथा बदन-चंद लक्षक पद हैं। इनमे क्रमशः प्रेम, बिनोद, ब्रज-जन समोद, मुद, ब्रजराज, जोबन उज्यारी,

---

१. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह 'मनोज', प्र० सं०, पृ० ६४
२. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह 'मनोज', प्र० सं०, पृ० ६५
३. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह 'मनोज', प्र० सं०, पृ० ६७
४. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह 'मनोज', प्र० सं०, पृ० ७५
५. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह 'मनोज', प्र० सं०, पृ० ७७
६. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह 'मनोज', प्र० सं० पृ० १०४

एवं वदन उपमेय है और सुधा-सागर, वसुधा, कुमुद, मकरंद, राजहस, राति कातिक की पूरन, तथा चंद उपमान हैं। इनका आधार सादृश्य है।

"स्वास सुगंध सरोजमुखी, दृग भौंरन पीत सुधाधर वल्ली,
बाहु लता, कर पल्लव औ, पदकंज, पवित्र करी ब्रज गल्ली;
बीच फली कुच, कंचन श्रीफल संग लिए ललिता मृदु मल्ली,
जंगम अंगन रंग रंगी वृषभान के भौन लसै सुर बल्ली।"[1]

स्वास सुगध, दृग भौरन, वाहुलता, कर पल्लव, पदकंज तथा कुच-कचन श्रीफल, लाक्षणिक पद हैं। इनमें क्रमश. स्वास, दृग, वाहु, कर, पद, कुच उपमेय है, सुगध, भौरन, लता, पल्लव, कंज और कचन श्रीफल उपमान हैं। इनका आधार सादृश्य है।

"अरुन-उदोत, सकरुन ह्वै, अरुन नैन तरुनी-तरुन तन तूमत फिरत हैं,
कुंज-कुंज केलि कै, नवेली बाल बेलिन सों नायक पवन, बन झूमत फिरत हैं;
आँवकुल बकुल समीड़, पीड़ पाडरनि मल्लिकानि मीड़ि घने घूमत फिरत हैं,
द्रुमन-द्रुमन दल दूमत मधुप 'देव' सुमन सुमन मुख चूमत फिरत हैं।"[2]

'तरुनी-तरुन', 'वाल-वेलिन', 'नायक पवन' तथा 'मुख चूमत' लाक्षणिक पद हैं। इन पदो में क्रमश· उपमेय तरुन, वेलिन, पवन है और उपमान तरुनी बाल एवं नायक है। आधार सादृश्य है। इस छन्द में पवन का मानवीकरण किया गया है अन्तिम पद 'मुख चूमत' मे चूमना प्राणी का स्वभाव है, पवन का नही, पवन तो केवल स्पर्श कर सकता है। इसलिए 'मुख चूमत' मे शुद्धा लक्षण-लक्षणा है।

"'देव' सुधा-रस सागर आपु, उजागर आगर रूप रहे है,
बार सेवार सरोजमुखी, गहिरी-गति पंकज पाइ लहे है;
छीन कटी तट हीन तरंग, चितै चित चक्र चहूँ उमहे है,
जा हृद हंस बसी न विभावरि वावरि क्यों न सुकाल्हि कहे है।"[3]

'बार सेवार', 'छीन कटीतट हीन तरग' लाक्षणिक पद है। इनमे क्रमशः उपमेय, 'बार' तथा 'कटि' है और 'सुधा-रस सागर', 'सेवार' एवं तरंग उपमान है, आधार सादृश्य है।

छन्द के चतुर्थ पद में 'हंस' शब्द भी लाक्षणिक है। यह हंस शब्द नायक का उपमान हैं। उपमेय यहाँ नही है केवल उपमान से ही उपमेय का भी बोध करा दिया गया है। इस पद मे गौणी साध्यावसाना लक्षणा है, इसका आधार भी सादृश्य ही है।

---

१. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह 'मनोज', प्र० सं०. पृ० १०४
२. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह 'मनोज', प्र० सं०, पृ० १०५
३. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह 'मनोज', प्र० सं०, पृ० ११०

साध्यवसाना गौणी लक्षणा:—

"तेरो, अलि कामुक इहाँ ते चलि कामु कहा
आयो कलिका मुख निहरि नींद परी क्यों ?
चम्पा ते चुराइ चपि चूमी ते चमेली कंपि
झीने रस झंपि कै, घिरनौन घरघरी क्यों ?
मारे-मारे भोरही सरोजनि को खोज लेत
झांकत न सौंस ते पुरैं निरैं निचरी क्यों ?
'देव' कैसे पियो तें कपोल मधुकरी को
न छूछे मधुकर क्यों न पूछै मधुकरी क्यों ?"[१]

'अलि', 'कलिका', 'चम्पा', 'चमेली', 'सरोजनि', 'पुरैनि', 'मधुकरी' तथा मधुकर लक्षक पद है। सभी पद उपमान है इनका उपमेय क्रमश. नायक, किशोरी-प्रेमिका, पत्नी, पर पत्नी अथवा दूसरी नायिका, स्वपत्नी, पूर्वप्रेमिका, स्वपत्नी एवं नायक हैं। उपमान द्वारा ही उपमेय का बोध कराया गया है, इनका आधार सादृश्य है।

"छपद छबीले छबि पीवत सवीव रस संपत निपटि, प्रीति कपट ढरे परत,
भंग मय मध्य अंग, डुलत, खुलत सास्त्र मृदुल चरन चारु धरनि धरे परत;
'देव' मधुकर हूँक, ढूकत मधूक धोखे माधवी-मधुर-मधु लालच लरे परत,
दुपहर जैसे, जलरुह परसत इहाँ मुँह पर झाँईं, परैं पुहुप झरैं परत।"[२]

'छपद', 'मधुकर' तथा 'माधवी' पद लक्षक है। तीनो पद उपमान है, इनका—उपमेय स्वार्थी नायक एवं नायिक है। यहा उपमान से ही उपमेय लक्षित किया गया है, आधार सादृश्य है।

"वाम कर हार, वार अंचल सम्हार करै, कयौ छंद कंदुक उछारै कर दाहिये।[3]

'कदुक' पद लक्षक है। कंदुक उपमान है उरोज का, आधार सादृश्य है।

"इन्दु के फन्द फंदे बिबि खंजन, इन्दु उयै सुरडारन ढूपर।
तै सुर डार फलै, बिबि श्रीफल, श्रीफल कंचन वेलि तरूपर;
तै तुब आनन, नैननि और भुजान, उरोज उरूनि दुहूं पर,
'देव कहाँ उपमा इनकी, न तोसी, सुरासुर लोक नमू पर।"[४]

'इन्दु', 'बिबि खजन', 'सुरडारन', 'श्रीफल' तथा कचन वेलि लक्षक पद हैं।

---

१. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह 'मनोज', प्र० सं०, पृ० ६६
२. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह 'मनोज', प्र० सं०, पृ० ७८
३. शब्द-रसायन, सं० जानकी नार्थसिंह 'मनोज', प्र० सं०, पृ० ६५
४. शब्द-रसायन, सं० जानकी नार्थसिंह 'मनोज', प्र० सं०, पृ० १०१

सभी पद उपमान है, इनका उपमेय क्रमशः मुख, नेत्र, भुजाएँ उरोज और सुन्दर शरीर हैं। उपमान द्वारा ही उपमेय का बोध कराया गया है, आधार सादृश्य है।

"भूपर कमल युग ऊपर कनक खंभ ब्रह्मा की सी गति मध्य सूक्षमन नवीवर,
तापर अनूप रूप कूप की तरंगें तहाँ श्रीफल युगल माल मिलित मिलिन्दवर;
'देव' तरु वल्ली बिबि डोलत सपल्लव, प्रकास पुंज तामें जगमग जोति विंवीवर,
इन्दिरा के मन्दिर में उदित अमंद इन्दु आनन उवित इन्दु मन्दिर मै इन्दीवर।"[१]

'कमल युग', 'कनक खभ', 'ब्रह्मा की सी गति', 'कूप', तरग', श्रीफल, तरु वल्ली विवि, तथा सपल्लव लक्षक पय है। सभी पद उपमान हैं, इनका उपमेय क्रमशः चरण युग, जान्हु, कटि, नाभि, त्रिवली, उरोज, नायिका और युवा है। इस छन्द में उपमानों द्वारा ही उपमेय लक्षित किया गया है। आधार सभी का सादृश्य है।

निरूढा लक्षणा:—

"चारि घरी लै चितोति-चितौति, मरू करि चन्द्रमुखी पहिचानी।"[२]

'मरु करि' मुहावरा है। इसका अर्थ है 'मर कर' मरने के बाद फिर पहचान कैसी ? अत. इसका लाक्षणिक अर्थ हुआ वहुत परेशान होने के वाद।

"दिन दस जोवन जीवन री, मरिये पचि होइ जुपै मरिवैन।"[३]

'दिन दस जोवन जीवन री' मुहावरा है। इसका लाक्षणिक अर्थ है यौवन और जीवन क्षणिक है।

"ऐरे निरलज्ज, मेरे वैरी मेरे जीव, तेरे जीवत ही, मेरे जीवतेश, मोहि पीठ दई।"[४]

'मोहि पीठ दई' मुहावरा है। इसका लाक्षणिक अर्थ है प्रियतम छोड़ कर चले गए।

'देव कहा कहौं वाहर हू, घर बाहेर हू, रहै भौंह तरेरी।"[५]

'भौह तरेरी' मुहावरा है। इसका लाक्षणिक अर्थ है क्रोधित रहना।

"फेरि इन्हें सपने नहि पैयत, लै अपने उर मे धरि राखो,
'देव' लला अबला नवला यह, चन्द्रकला कठुला करि राखो।"[६]

'फेरि इन्हे समने नहि पैयत' 'अपने उर मे धरि राखो' और कठुला करि राखो' तीनो मुहावरे है। इनका लाक्षणिक अर्थ है—फिर कभी नही मिलेगी, बड़े हिफाजत से सँभाल लो तथा प्राण के निकट बसालो अर्थात् अनन्य प्रिय वना लो।

---

१. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह 'मनोज', प्र० सं० पृ० सं० ११२
२. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह 'मनोज', प्र० सं० पृ० सं० ४५
३. शब्द-रसायन, स० जानकीनाथ सिंह 'मनोज', प्र० सं० पृ०सं० ४६
४. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह 'मनोज', प्र० सं० पृ० सं० ५०
५. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह 'मनोज', प्र० सं० पृ० सं० ६०
६. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह 'मनोज', प्र० सं० पृ० सं० ६२

"'देव' जु आपनो जोवन रूप धरोहरि सी धन राखो धनी को।"[1]

'धरोहरि राखौ' मुहावरा है। लाक्षणिक अर्थ है सुरक्षित रखो।

"दैया! कन्हैया की वात कहा कहौं, स्वर्ग पताल पठावत दूती।"[2]

'स्वर्ग पताल पठावत दूती' मुहावरा है। लाक्षणिक अर्थ है—चाहे जहाँ रहे कन्हैया की दूती पहुँच ही जाती है अर्थात् कहीं भी वच नही सकती हूँ।

'राखि न रूप कछू विधि के घर, ल्याहि है लूटि, लुनाई की ढेरी।"[3]

'ल्याइ है लूटि लुनाई की ढेरी' मुहावरा है। लाक्षणिक अर्थ है अत्यधिक सुन्दर है।

"सुनिये संदेस जीवितेस! यह जीव सब देश ही सौं आठो याम जूझत फिरत है।"[4]

'आठो याम जूझत फिरत है' मुहावरा है। लाक्षणिक अर्थ है सदैव विरहाग्नि के कष्ट से जूझती रहती हूँ।

उपर्युक्त लाक्षणिक उदाहरणो से यह सिद्धि हो जाता है कि देव के लाक्षणिक प्रयोगों का क्षेत्र विस्तृत है। रूपसाम्य, साधर्म्य साम्य तथा प्रभाव साम्य तथा प्रभाव साम्य के आधार पर—आयोजित अप्रस्तुतों द्वारा इन्होने लाक्षणिक प्रयोगों की श्री वृद्धि की है। इनके अतिरिक्त धर्म के लिए धर्मी के प्रयोग तथा मानवी करण द्वारा भी इन्होने लक्षणा के गौरव को वढ़ाया है। इस प्रकार इन्होने भाव सवेदन के लिए रमणीय तथा सूक्ष्म प्रणाली को अपनाया है। परपरा में जकडे होने के कारण इनके कुछ उपमान विंब प्रस्तुत करने मे समर्थ हो कर भी काव्य सौन्दर्य की वृद्धि नही कर सके है, जैसे—'ब्रह्मा की सी गति'। कमर की सूक्ष्मता तो ब्रह्म की सूक्ष्मता से स्पष्ट हो जाती है पर इससे काव्य की रमणीयता मे वृद्धि नही होती है। किन्तु ऐसे प्रयोग समस्त ग्रन्थ में कम ही है।

'काव्य-निर्णय'

आचार्य भिखारीदास का 'काव्य-निर्णय' काव्यांगो का निरूपण करने वाला ग्रन्थ है। इसे काव्य-शास्त्र पर लिखा हुआ उत्कृष्ट ग्रन्थ स्वीकार किया गया है। इसमे छन्द, रस, अलंकार, रीति, गुण, दोप, शब्दशक्ति आदि सभी विपयों का पूर्वाचार्यों की अपेक्षा विस्तृत निरूपण है। आचार्य शुक्लजी के मतानुसार—

"काव्यागों के निरूपण मे दासजी को सर्वप्रधान स्थान दिया जाता है क्योंकि

---

१. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह 'मनोज'. प्र० सं० पृ० सं० ६३
२. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह 'मनोज.' प्र० सं० पृ० सं० ७६
३. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह 'मनोज'. प्र० सं० पृ० सं० ८३
४. शब्द-रसायन, सं० जानकीनाथ सिंह 'मनोज', प्र० सं० पृ० सं० ११५

इन्होंने छन्द, रस, अलकार रीति, गुण, दोष, शब्दशक्ति आदि सब विषयो का औरों से विस्तृत प्रतिपादन किया है।"[1]

'काव्य-निर्णय' मे आचार्य भिखारीदास ने 'चन्द्रालोक' एव 'काव्य प्रकाश' के प्रति ऋणी होना स्वीकार किया है। इस ग्रन्थ मे कवि प्रतिभा को खुल कर खेलने का अवसर नही था क्योकि इन्हे सस्कृत के काव्य शास्त्रीय ग्रन्थो, पूर्ववर्ती हिन्दी रीति ग्रन्थो तथा काव्यागो के लक्षणो और उदाहरणों की सीमा मे बँधकर चलना था। रस, नायिका भेद एवं अलंकारो के क्षेत्र में कवि प्रतिभा को थोडा अवसर मिलता है। नायिकाओ के रूपो और भाव भगिमाओं को सम्प्रेषणीय बनाने के लिये जो अप्रस्तुत विधान किए गए हैं, वहाँ लक्षणा का चमत्कार है।

रीति-कालीन रचनाओ मे सर्वत्र अलकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है। रूपक, अतिशयोक्ति, समासोक्ति, परिकराकुर आदि अलकारो तथा अविवक्षितवाच्य अर्थान्तर सङ्क्रमितवाच्य ध्वनि और अविवक्षितवाच्य अत्यन्ततिरस्कृतवाच्यध्वनि के मूल मे लक्षणा होती है। लोक रुचि को व्यक्त करने वाली लोकोक्तियो एव मुहावरों का प्रयोग भी तत्कालीन ब्रजभाषा मे पर्याप्त प्रचार पा चुका था। इन मुहावरो और लोकोक्तियो का प्रचलन भी लक्षणा के आधार पर होता है।

कवि प्रतिभा जब शब्दार्थ को रस अभिव्यक्ति की सामर्थ्य प्रदान कर देती है तो आधारभूत अर्थों मे उक्ति वैचित्र्य का समावेश हो जाता है। यह उक्ति वैचित्र्य लक्षणा अथवा व्यजना द्वारा ही प्रतिपादित होता है। 'काव्य-निर्णय' के कुछ ऐसे प्रसङ्ग जहाँ लक्षणा का वैभव बिखरा हुआ है उदाहरणार्थ प्रस्तुत किए जा रहे है।

निरूढ़ा लक्षणा—

"कञ्चन निवरि गनै गात को चंपक पात कान्ह मति फिरि गई कालिह ही की राति है।
दाय यों सहेली सो सहेली बतलाती सुनि सुनि उत लाजनि नवेली गड़ी जाति है।"[2]

'मति फिरि गई' तथा 'लाजनि नवेली गड़ी जाति है' मुहावरे है। मति का फिरना और लाज का गड़ना सम्भव नही है पर लोक रुचि से इनका प्रयोग होने लगा है। इसलिए इमी रूप मे ये रूढ़ हो गए है। विचार बदल जाना और अत्यधिक लज्जित होने के अर्थ मे इनका प्रयोग होता है।

"अब तो बिहारी की वे बानक गए री तेरी, तन दुति केसरि कों नैन कसमीर मो।
श्रौन तुअ बानी-स्वाति बूँदन कों चातिक भो, स्वासन को भरिबो द्रुपदजा को चीरभो।

---

१. हि० सा० इति० आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० परि० २००२ पृ०, २४१
२. भिखारीदास ग्रन्थावली, द्वि० खं०, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० ४५ पद २ प्र० सं०

हिय कों हरष मरुधरनि कों नीर भोरी, जियरो मदन-तीर गन कों तुनीर भो।
ऐरी वेगि करि कै मिलाप थिर थापु नत, आप अब चाहतु अतन कों शरीर भो॥"[1]

इसमें 'द्रुपदजा को चीर भो', मरुधरनि को नीर भो और अतन कों शरीर भी मुहावरे है। लोक रुचि से इनका प्रयोग अभिधेय अर्थ मे नही होता। द्रोपदी का चीर होने से अभिप्राय है जो निरन्तर बढता जाए अथवा जिसका अन्त न हो। मरु-स्थल का नीर होने का अर्थ है जो कदाचित प्राप्त हो तथा अतन का शरीर होना का अर्थ है भस्म होना। इन्ही अर्थो में मुहावरे रूढ़ हो गए है।

"वेत कहा है दहे पर दाहि गई करि जाहि दई के निहोरे।"[2]

'दहे पर दाहि' और 'दई के निहोरे' मुहावरे है। इनका लाक्षणिक अर्थ क्रमश कष्ट पर कष्ट देना और भाग्य भरोसे छोड़ना है। इसी अर्थ में अब ये रूढ़ हो गए है।

"आगि लिए चली जाति सु मेरे हिये विच आगि दिये चली जाति है।"[3]

'हिये विच आगि दिये चलि जाति है' मुहावरा है। इसका लाक्षणिक अर्थ हृदय मे विरह-व्यथा पैदा करती हुई चली जा रही है।

"भूल्यो भिरै भ्रमजाल में जीव के ख्याल की ख्याल में फूल्यो फिरै है।"[4]

'भ्रमजाल मे भूलना और फूले-फूले फिरना मुहावरे हैं। इनका लाक्षणिक अर्थ है—भौतिक सुखों में निमग्न रहना तथा कल्पना लोक में आनन्दित होकर विच-रण करना अथवा अभिमान मे रहना।

शुद्धा लक्षण-लक्षणा—

"मंद-मंद गौने सों गयंद गति खोने लगी, बोने लगी विष सो अलक अहि छौनेसी।"[5]

'विष बोना' एक मुहावरा है, जिसका लक्ष्यार्थ उत्पात मचाना, झगड़ा पैदा

---

१. भिखारीदास ग्रन्थावली, द्वि० खं०, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० १०१, पद ३०, प्र० सं०

२. भिखारीदास ग्रन्थावली, द्वि० ख०, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र; पृ० ४१ पद १४, प्र० सं०

३. भिखारीदास ग्रन्थावली, द्वि० खं०, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० ३५, पद ४६, प्र० सं०

४. भिखारीदास ग्रन्थावली, द्वि० खं०, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० ३६, पद ७, प्र० सं०

५. भिखारीदास ग्रन्थावली द्वि० खं०, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० २८ पद, १६ प्र० सं०

करना है पर अलको के पक्ष मे विष बोने का प्रयोग किया गया है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है—वशीभूत करना अथवा बेसुध करना।

"सखी हौं लई न सोच तुअ, तू किय मो सब काम।
अब आनहि चित सुचतई, सुख पै है परिनाम॥"[1]

इसमे 'लई न सोच', 'किय सब काम' तथा 'सुख पै है' लाक्षणिक पद हैं। विपरीत भाव से इसका लाक्षणिक अर्थ होगा—सखि! अब तुम्हारे प्रति भी चिन्तित होना पडेगा क्योकि तुमने मेरा सब काम बिगाड दिया है। अब सोच लो कि तुम्हारे लिए इसका परिणाम दुखद होगा। [दूती नायक को बुलाने गई थी पर स्वयं सभोग करके लौटी है और सभोग चिन्ह उसके मुख आदि पर वर्तमान हैं। उन्हे ही देखकर उपर्युक्त कथन नायिका करती है]

सारोपा गौणी लक्षणा—

"हरि मुख पंकज भ्रुव, धनुष, खंजन लोचन मित्त।
बिंब अधर कुण्डल मकर, बसे रहत मों चित्त॥"[2]

"मुख पकज, भ्रुव धनुष, खंजन लोचन, और कुण्डल मकर लक्षणिक पद है। मुख, भ्रुव, लोचन, तथा कुण्डल उपमेय एव पंकज, धनुष, खजन और मकर उपमान है। इन सभी पदो का आधार सादृश्य है। मुख को पंकज कह कर अरुणिमा, सुवास, सुकुमारता, प्रफुल्लता तथा प्रेमीजनों को आकर्षित करने वाला इतने भावो का एक साथ आरोप किया गया है। 'भ्रुव' को धनुष कह कर जहाँ भ्रू का आकार स्पष्ट किया गया है वही कटाक्ष सर के संधानक का भी आरोप हो गया है। खंजन लोचन से नेत्र के सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्य की घोषणा की गई है। कुण्डल मकर से आकार प्रस्तुत किया गया है। यह अर्थ गाभीर्य लक्षणा द्वारा ही प्रतिपादित होता है।

"नाभि सरोवरी औ त्रिबली की तरंगनि पैरत ही दिन राती।
बूड़ी रहै तन पानिप ही में नहीं बनमालहू ते बिलगाति है।
दास जू प्यासी नई अँखियाँ घनश्याम बिलोकत ही अकुलाति है।
पीबो करै अधरामृत हू कों तऊ उनकी सखि प्यास न जाति है।"[3]

---

१. भिखारीदास ग्रन्थावली, द्वि० खं०, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० ४६ पद १०, प्र० सं०

२. भिखारीदास ग्रंथावली, द्वि० खं०, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० ६६, पद २४, प्र० सं०

३. भिखारीदास ग्रन्थावली, द्वि० खं०, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० १२६ पद ३५, प्र० सं०

नाभि, सरोवरि, त्रिवली तरंगनि तथा तन पानिप लाक्षणिक पद है। सभी पदो में उपमेय और उपमान दोनो है। इनका आधार सादृश्य है। प्रथम तीन पदो मे नाभि को सरोवरी त्रिवली को तरग और शरीर को जल कह कर चमत्कार पैदा किया गया है।

साध्यवसाना गौणी लक्षणा :-

"गुम्वज मनोज के महल के सोहाए स्वच्छ,
गुच्छ छवि छाए गज कुम्भ गजगामिनी।
उलटे नगारे तने तम्बू सैल भारे मठ,
मंजुल सुधारे चक्रवाक गत जामिनी।
दास जुग सम्भु रूप श्रीफल अनूप मन,
धावरे करन धावरेन किल कामिनी।
कन्दुक कलस वटे संपुट सरस,
मुकुलित तामरस है उरोज तेरे भामिनी॥"[1]

मनोज महल के गुंवज, गजकुंभ, उलटे नगारे, तने तंवू, सैल, चक्रवाक, युगल शंभु, श्रीफल, कंदुक, कलास और मुकुलित तामरस पद लाक्षणिक हैं। सभी पद उरोज के उपमान है। आधार भी आकार सादृश्य है। रूप के संप्रेषण के लिए उक्ति वैचित्र्य की संयोजना की गई है। यही लक्षणा जनित चमत्कार यहाँ है।

"कुवलय जीतिवे कों वीर वरबंड राजै,
करन पैजाइवे को जाचक निहारे है।
सितासित अरुनारे पानिप को राखिबे कों,
तीरथ के पति हैं अलेखे लखिहारे है।
बेधिबे को सर मारि डारिबे कों महाविष,
मीन कहिबें दास मानस बिहारे हैं।
देखत ही सुबरन हीरा हरिबे कों,
पस्यतोहर मनोह ये लोचन तिहारे है॥[2]

वीरवरि वड, तीरथ के पति, सर, महाविप, मीन लाक्षणिक पद हैं। सभी पद लोचन के उपमान है। इनका आधार गुण तथा रूप सादृश्य है। उपर्युक्त पदों के गुणों का नेत्र गुण पर आरोप है। इस तरह नेत्र युद्ध विजेता हैं, पवित्र हैं, चुभजाने वाले है, वशीभूत करने वाले है एव रूपवान हैं। 'जाचक' भी लाक्षणिक पद है। यह स्नेही जन का उपमान है। स्नेह की याचना करने वाले अर्थ को ग्रहण किया गया है।

---

१. भिखारीदास ग्रन्थावली, द्वि० खंड, सं० विश्वनाथ प्रसाद,
पृ० ८३, पद ८६, पु० सं०
२. वही पृ० १००, पद २७, पृ० सं०

लक्षण—उदाहरणों की सीमा मे बँधे रहने पर भी आचार्य भिखारीदास के लाक्षणिक प्रयोग पर्याप्त चमत्कार पूर्ण एव काव्योपयोगी है। परंम्परा नुमोदित अप्रस्तुत-विधान से जकड़े रहने के कारण तथा शास्त्रीय सीमा मे परिवद्ध होने के कारण ये काव्य मे लाक्षणिक प्रयोगो की नई उद्‌भावना करने मे समर्थ नही हो सके है।

रसपीयूषनिधि

सोमनाथ कृत 'रसपीयूपनिधि' रीति का एक विस्तृत ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का रचना काल सं० १७९४ है। इसमे पिंगल काव्य लक्षण प्रयोजन, भेद, शब्दशक्ति, ध्वनि, भाव, रस, गुण, दोप आदि विषयो का निरूपण है। काव्याग निरूपण मे इनका स्थान आचार्य भिखारीदास और आचार्य श्रीपति के समान ही है। विपय की दृष्टि से इनकी प्रणाली श्रेष्ठ है।

शब्द शक्ति के प्रकरण के अतिरिक्त ध्वनि, भाव, रस आदि के निरूपण में इनके ग्रन्थ में लक्षणा शक्ति का चमत्कार मिलता है। किन्तु इस प्रसग मे यही कहना पडता है कि—लक्षण उदाहरणो की सीमा मे आवद्ध होने के कारण शक्ति के प्रयोग के प्रति इनमे सतर्कता नही दिखाई पडती है। किन्तु जहाँ कवि नायिका के रूप और भाव- भंगिमा का चित्र प्रस्तुत करने लगा है वहाँ सीमाओ मे घिरे होने के बावजूद भी लक्षणाशक्ति के प्रयोग दर्शनीय है। अनुभूति को सवेदनीय तथा संप्रेपणीय बनाने का जहाँ भी प्रयास किया जाता है वहाँ प्रायः लक्षणा शक्ति का सहारा लेना ही पड़ता है। रसपीयूपनिधि के ऐसे ही प्रसङ्गो के कुछ उद्धरण यहाँ प्रस्तुत किए जाते हैं।

निरूढा लक्षणा :—

"उतही है मन यातें सूधे न परत,
अङ्ग अरसात भुरहरे उठि आये हो।
रगमगी अँखियाँ अनूप चित चोरें,
लेति सोमनाथ आछे इहि रूप लखि पाए हो।
हम सौं तौ विहँसि बिलोकिबौ बिसार्यौ,
पिय सबै विधि उनही के हाथनि बिकाए हो।
काहे को नटत वेहू बैंननि प्रगट होति,
अनुराग जिनको लिलार धरिलाये हो॥[1]

चित चोरें लेति तथा हाथनि बिकाए हो, मुहावरे है। प्रारम्भिक प्रयोग मे ये मुहावरे सप्रयोजित थे पर कवि प्रसिद्धि के कारण ये अपने प्रचलित अर्थ मे ही रूढ हो गए है।

---

१. रसपीयूषानिधि, सोमनाथ, हस्तलिखित, सभा संग्रह, पृ० ६६ पद १३

शुद्धा लक्षण लक्षणा :—

"या विधि सुजान प्रान प्यारे को निहारत ही,
गई मुरझाइ हियें अनुष बढ़ाइ कै।"[१]

'मुरझाइ' पद लाक्षणिक है। मुरझाना पुष्प धर्म है। यहाँ नारी के पक्ष में प्रयोग है। इस प्रकार इस पद को अर्थ का नया आयाम मिल गया है।

"नेंकु न भूलति सो ससिनाथ हियें वह मूरति आनि धरी है।"[२]

'धरी' पद लाक्षणिक है। इसका अर्थ है रखना पर हृदय में मूर्ति लाकर रखना सभव नही है। अतः लक्षणा से इस अर्थ की प्रतीति होती है हृदय पट पर दृश्य अङ्कित हो गया है।

"प्रात उवि आए काहू चन्द वदनी कें वसि,
सोमनाथ चार्यो जाम जामिनी बिताइकै।"[3]

'उवि' लाक्षणिक पद है। सूर्य, चन्द्रमा, तारो के पक्ष में उदय होने का प्रयोग हुता है, किन्तु यहाँ कामिनी अपने पति के लिए 'उवि' शब्द का प्रयोग करती है। यहाँ प्रयोजन जन्य अर्थ है सूर्य की तरह रात भर अन्यत्र वास करके प्रातः आ पहुँचे हो।

सारोपा गौणी लक्षणा :—

"आनन फूले गुलाव रंगनि अंगनि में अरसानि भरी है।
नेंकु न भूलति सो ससिनाथ हियें वह मूरति आनि धरी है।
नाम सुने हरखे तिय नैन पै वैननि है अब जानि परी है।
कुंजनि में रह ठानि करी तें नई हरि सों पहिचानि करी है।"[४]

'आनन फूले गुलाव' लाक्षणिक पद है। उपमेय आनन और उपमान गुलाव दोनो पद मे है। आधार सादृश्य है। मुख पर खिले हुए गुलाव की प्रफुल्लता व्याप्त है। इसी अर्थ मे लक्षणा का चमत्कार है। कवि प्रतिभा ने लौकिक मुख और गुलाव के योग से अलौकिक सौंदर्य छटा को प्रस्तुत किया है।

साध्यावसाना गौणी लक्षणा :—

"उन पियूष परस्यो मधुर उनि अचयो मकरंद।
अलि अनूप कौतिक गयो मिलि इन्दीवरचन्द॥"[५]

---

१. रसपीयूषनिधि, सोमनाथ, हस्त०, सभासंग्रह. पृ० ६८ पद ११
२. वही पृ० ४५ पद १०
३. यही पृ० ६८ पद ११
४. वही पृ० ४५ पद १०
५. वही पृ० ४४, पद ५

'पियूष', 'मकरन्द' 'इन्दीवर' तथा चंद लाक्षणिक पद हैं। पीयूष और मकरद क्रमशः पुरुष और नारी के अधर रस के उपमान है। इसी तरह इन्दीवर नारी और चन्द पुरुष के उपमान है। इस पद मे इन्दीवर और चन्द के माध्यम से नायक और नायिका के अधर पान का वर्णन है।

"अधखुली पलकें अलक लटकति पुन्जु चन्दमुख निकट भुवगिनि भुलानी सी।
मरगजो सारो अंग भूषन कहूँ के कहूँ पीछें संग सोहत सहेली अरसानी सी।
डेग डगमगी निसि जगी कहि सोमनाथ झलके कपोलनि में पीक सुखदानी सी।
ओढि अगिरात औ जनाति मुसुक्याति वाल मंद मंद आवति ·············।"[1]

'भुवगिनी' लाक्षणिक पद है। अलक का उपमान भुवंगिनि है। यहाँ कवि ने अलक न कहकर भुवंगिनि अलकों के लिए प्रयोग किया है। आधार सादृश्य है।

सोमनाथ के लाक्षणिक प्रयोगों मे शास्त्रीयता तो है पर स्वाभाविकता की कमी है। इनकी अप्रस्तुत योजना भी परपरानुमोदित है। इनका विषय काव्याग विवेचन था, इसलिए लक्षण-उदाहरणो की सीमा मे बँधे रहकर ही ऐसे प्रयोग उन्होंने किए है। कुछ अलकारों के उदाहरणो और नायिकाओ के वर्णन के कतिपय प्रसगो मे लाक्षणिक प्रयोग हुए हैं।

'काव्य-विलास'

प्रतापसाहि कृत 'काव्य-विलास' मे काव्य के सर्वागो का निरूपण किया गया है। इसकी रचना स० १८८३ मे हुई थी। प्रतापसाहि ने पूर्ववर्तो आचार्यो के आचार्यत्व को पूर्णता की सीमा तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया है। इससे आचार्यत्व की दृष्टि से इनका स्थान 'दास' से भी श्रेष्ठ ठहरता है। इसके सम्बन्ध मे आचार्य शुक्ल जी का मत है.—

आचार्यत्व मे इनका नाम मतिराम, श्रीपति और दास के साथ आता है और एक दृष्टि से इन्होंने उनके चलाए हुए कार्य को पूर्णता को पहुँचाया था। लक्षणा व्यजना का उदाहरणों द्वारा विस्तृत निरूपण पूर्ववर्ती तीनो कवियो ने नही किया था।"[2]

इनके काव्य मे अभिव्यक्त कल्पना की मूर्तिमत्ता, हृदय की द्रवणशीलता और आचार्यत्व की प्रखर प्रतिभा को देख कर यह कहना पड़ता है कि इन्होने रीतिबद्ध कविता को उसकी चरमसीमा पर पहुँचा कर छोड़ दिया है। इनकी भाषा मे कृत्रिमता, तोड़ मरोड, आडम्बर तथा शैथिल्य कही दृष्टिगोचर नही होता है।

---

१. रसपियूषनिधि, सोमनाथ, हस्त०, सभासंग्रह, पृ० ५०, पद ५०
२. हि० सा० इति०, आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० परि० सं० २००२, पृ० २७४

अलंकार और रस विवेचन के प्रसग में भाव बिंबों को संवेदनीय बनाने का इन्होंने जहाँ प्रयास किया है वहाँ लक्षणा-शक्ति का चमत्कार उत्पन्न हो गया है। रूपक, परिकरांकुर, समासोक्ति तथा अतिशयोक्ति के मूल में लक्षणा-शक्ति होती ही है। 'काव्य विलास' मे आए हुए कुछ लाक्षणिक प्रयोग यहाँ दिये जा रहे हैं।

निरूढ़ा लक्षणा:—

'बैठी सूने गेह में वृथा बजावत गाल।"[१]

इसमे 'गाल बजाना' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है व्यर्थ की डीग मारना। इसी लक्ष्यार्थ मे ही मुहावरा रूढ़ हो गया है।

"शीश क्रीट मुकुट लसत कटि पीत पट
श्यामल सरूप सोभा लेति है चितहि चोर।"[२]

इसमे 'चित्त चुराना' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है मन को आकर्षित अथवा विमुग्ध करना। प्रयोग में यही लक्ष्यार्थ ही मुहावरे का मुख्यार्थ हो गया है।

शुद्धा लक्षण-लक्षणा:—

महाराज राम सुनि दीन की ओर
रतनाकर सुमेर नित चौंकत रहत हैं।"[३]

इसमे 'चौंकत रहत है' पद लाक्षणिक है। चौंकना प्राणी मात्र का स्वभाव है, पर यहाँ 'रत्नाकर' और 'सुमेर' के पक्ष मे प्रयोग किया गया है जो असंभव है। अतः इसका लक्ष्यार्थ है राम के दारिद्रय दूर करने के स्वभाव के कारण संपत्ति भी सावधान रहती है।

"जाके मिलिबे को करत आगम निगम इलाज।"[४]

इसमें 'इलाज' पद लाक्षणिक है। इलाज करना तो वैद्य का कार्य है, पर यहाँ आगम-निगम के लिए इसका प्रयोग किया गया है जो असंभव है। अतः इसका लक्ष्यार्थ है मार्ग प्रशस्त करना अथवा उपाय बतलाना। इस प्रकार 'इलाज' पद के अर्थ को नया आयाम मिल गया है।

---

१. काव्य-विलास, प्रतापसाहि, हस्तलिखित प्रति, ना० प्र० सं० काशी, प० ८४ प० २७
२. काव्य-विलास, प्रतापसाहि, हस्तलिखित प्रति, ना० प्र० सं० काशी, प० ४७ प० ७७
३. काव्य-विलास, प्रतापसाहि, हस्तलिखित प्रति, ना० प्र० सं० काशी, प० ५७ प० १०४
४. काव्य-विलास, प्रतापसाहि, हस्तलिखित प्रति, ना० प्र० सं० काशी, प० ५६ प० १०६

"अतर गुलाब पान पानी की कहानी कहा
अतन को तन में तरंग उछलत है।"[१]

इसमें 'तरंग' पद लाक्षणिक है। तरग उठना जल मे ही सभव है, पर यहाँ अतन के पक्ष मे इसका प्रयोग हुआ है जो असभव है। अतः इसका लक्ष्यार्थ है काम भावना का उद्दाम वेग।

"कासों कहौ अपने मन की निज नैनन ते वहै नीर पनारो।
खोलि कै नैन निहारहु तो सगरो जग लागत है अँधियारो॥"[२]

इसमे 'नीर पनारो' तथा 'अँधियारो' पद लाक्षणिक है। इनका लक्ष्यार्थ है तीव्रावेग के साथ आँसू बहना और निराशा से पूर्ण। इस प्रकार भाव सम्प्रेषणीय बनाया गया है।

"तासों कौन हितू अरी भरी परी निज काज।
मेरे हित निज अंग में सहे नष छत्त आज॥"[३]

इसमे 'हितू' तथा 'हित' लाक्षणिक पद है। विपरीत भाव से इसका लक्ष्यार्थ है बुरा चाहने वाली एव बुराई के लिए। नप छत्त सहना भी लाक्षणिक पद है। इसका लक्ष्यार्थ है रमण करके आना। इस प्रकार के कथन द्वारा कवि ने भाव को संवेदनीय बनाया है।

सारोपा गौणी लक्षणा:—

"जाके मिलिवे को करत आगम निगम इलाज।
तो वृज वीथिन मे लहो हरि हीरा हम आज॥"[४]

इसमे 'हरि हीरा' लाक्षणिक पद है। इस पद मे हरि उपमेय और हीरा उपमान है। इसका आधार गुण साम्य है। कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके भाव बिंब को संप्रेपित किया है।

"चलत मंत्र तंत्रक कछू वाहत कछु उर माह।
विरह भुजंगम की डसी परी हरी मुख छाँह॥"[५]

---

१. काव्य-विलास, प्रतापसाहि, हस्तलिखित प्रति, ना० प्र० सं० काशी, प० ४२ प० ६१

२. काव्य-विलास, प्रतापसाहि, हस्तलिखित प्रति, ना० प्र० सं० काशी, प० ८२ प० २१

३. काव्य-विलास, प्रतापसाहि, हस्तलिखित प्रति, ना० प्र० सं० काशी, प० २८ प० ७२

४. काव्य-विलास, प्रतापसाहि, हस्तलिखित प्रति, ना० प्र० सं० काशी, प० ५६ प० १०६

५. काव्य-विलास, प्रतापसाहि, हस्तलिखित प्रति, ना० प्र० सं० काशी, प० ६८ प० २३

इसमे 'विरह भुजंगम' पद लाक्षणिक है। इस पद मे विरह उपमेय और भुजंगम उपमान है। इसका आधार सादृश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को सप्रेषणीय वनाया गया है।

' रचत अनोखो ख्याल यह नन्दलाल मुसकात।
दृग खंजन के बेंधत ही दृग खंजन बंधि जात ॥"[1]

इसमे 'दृग खजन' लाक्षणिक पद है। इस पद मे दृग उपमेय तथा खंजन उपमान है। इसका आधार सादृश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को सवेदनीय वनाया गया है।

"वदन मयंक की मरीचिन अमंद आजु
मंद सी लगत आजु शरद जुन्हाई की।"[2]

इसमे 'वदन मयंक' पद लाक्षणिक है। इस पद मे वदन उपमेय और मयंक उपमान है। इसका आधार सादृश्य है। कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को सवेदनीय वनाया है।

"भृकुटी कमान तानि नैन विरवैती भरे
नैन कमनैती आजु कौन पै करत है।"[3]

इसमे 'भृकुटी कमान' लाक्षणिक पद है। इस पद मे भृकुटी उपमेय और कमान उपमान है। इसका आधार सादृश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को सप्रेपणीय वनाया गया है।

"मुदित करत सुर सज्जन कुमुद
सुख सुकवि कुमोदिन समूह बरसति है।"[4]

इसमें 'सज्जन कुमुद' तथा 'सुकवि कुमोदिन' लाक्षणिक पद है। इनमें क्रमशः सज्जन एवं सुकवि उपमेय और कुमुद तथा कुमुदनी उपमान है। इनका आधार गुण साम्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके भाव को संप्रेपणीय वनाया गया है।

---

१. काव्य-विलास, प्रतापसाहि, हस्तलिखित प्रति, ना० प्र० सं० काशी; प० ७० प० २७
२. काव्य-विलास, प्रतापसाहि, हस्तलिखित प्रति, ना० प्र० सं० काशी, प० ७३ प० ७
३. काव्य-विलास, प्रतापसाहि, हस्तलिखित प्रति, ना० प्र० सं० काशी, प० ४६ प० ८४
४. काव्य-विलास, प्रतापसाहि, हस्तलिखित प्रति, ना० प्र० सं० काशी, प० ५१ प० ६१

साध्यवसाना गौणी लक्षणा:—

"तो मुख मंजु विलोकि अली नित संग लगे फिर भौंर चकोर है।"[1]

इसमें 'भौर तथा चकोर' पद लाक्षणिक है। दोनों पद प्रेमियो के उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। कवि ने भाव बिंब को यहाँ उपमान के माध्यम से ही संप्रेषणीय बनाया है।

"मत्त मलिंदन पै सुख लेहु चकोरन आनद देहु अघाय कै।"[2]

इसमे 'मलिंदन' और चकोरन पद लाक्षणिक हैं। ये दोनो पद प्रेमियो के उपमान हैं। इनका आधार सादृश्य है। यहाँ उपमानो के द्वारा ही बिंब से गोचर कराया गया है।

आचार्य प्रतापसाहि के लाक्षणिक प्रयोग काव्यागो के विवेचन के प्रसंग मे आए हुए है। ये प्रसंग अलकार और रस विवेचन से सम्बन्धित हैं। इनकी अप्रस्तुत योजना परपरानुमोदित है। सभी लाक्षणिक प्रयोग काव्यांगो के उदाहरणो मे आए हुए हैं और ये उदाहरण अपनी सीमाओ मे जकड़े हुए है जिससे इनमे स्वाभाविकता का अभाव है। इनके लाक्षणिक प्रयोग शास्त्रीय अधिक है। परंपरा पालन के लिए ही कही-कही पर अप्रस्तुत विधान किया गया है, ऐसे स्थलो पर काव्य सौन्दर्य शिथिल पड़ गया है।

रीतिकालीन रस सम्बन्धी ग्रन्थों में लक्षणा—

संस्कृत काव्य शास्त्र की ऐतिहासिक प्रगति के उत्तरार्द्ध काल मे व्यापक विवेचन से हट कर रसज्ञों ने अपने-अपने आश्रय दाताओ अथवा रसिक नागरिको को काव्य शिक्षा देने के निमित्त ऐसे ग्रन्थ लिखे, जिनमें काव्य के सक्षिप्त लक्षण मात्र दे दिए जाते थे। उस समय शृङ्गार रस अत्यधिक लोक-प्रिय हो गया था, इसलिए नायिका भेद का समावेश प्रायः सभी ग्रन्थों मे किया जाने लगा था। प्राकृत तथा अपभ्रंश के तत्कालीन ग्रन्थो मे भी इस परिपाटी के दर्शन होते है। रुद्र भट्ट का 'शृङ्गार तिलक' और भानुदत्त की रस तरंगिणी तथा रसमंजरी इसी तरह के ग्रन्थ है।

हिन्दी रीतिकालीन साहित्य मे इन्ही ग्रन्थो के आधार पर रस ग्रन्थ लिखे गए। इनका वर्ण्य-विषय शृङ्गार है। इस परिपाटी पर लिखे गए ग्रंथो मे केशव की 'रसिक-प्रिया', मतिराम का रसराज, सुखदेव मिश्र का रस रत्नाकर तथा रसार्णव, देव का भाव विलास, रस विलास, भवानी विलास, सुख सागर तरंग, कविन्द्र का रस

---

१. काव्य-विलास, प्रतापसाहि, हस्तलिखित प्रति, ना० प्र० सं० काशी, पृ० ७० प० २६

२. काव्य-विलास, प्रतापसाहि, हस्तलिखित प्रति, ना० प्र० सं० काशी, पृ० ३० प० ७

चन्द्रोदय, 'दास' का रस निर्णय, तोप का सुधानिधि, वेनी प्रवीन का नवरस तरंग, रघुनाथ का काव्य कलाधर एव रसिक मोहन, पद्माकर का जगविनोद और ग्वाल का नखशिख आदि ग्रन्थ अधिक प्रसिद्ध हैं। सामान्यतः इन ग्रन्थों में रस के साथ रस के स्थायी संचारी, विभाव, अनुभाव आदि सभी का वर्णन है, किन्तु प्रधानता श्रृंगार के ही विविध अंगो को दी गई है। सभी ने एक स्वर से श्रृंगार रस को रसो का राजा स्वीकार किया है।

इन ग्रन्थों मे श्रृंगार के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का निरूपण किया गया है। संयोग में नायक, नायिका, सखी दूती, षटऋतु और नायिकाओ के आभूषण एवं सात्विक आदि भावों का विस्तारपूर्वक मनोहर वर्णन है। वियोगपक्ष में पूर्वानुराग मान, प्रवास आदि पूर्वानुराग के श्रवण, चित्र दर्शन, प्रत्यक्ष दर्शन, मानमोचन के उपाय तथा वियोग जन्य काम दशाओ का वर्णन है। श्रृंगार के इन दो पक्षों मे से प्रायः इन रस सिद्ध कवियों की प्रवृत्ति सयोग मे अधिक रमी है। इसमें भी नायिका भेद के प्रसंगों को विशेष महत्व दिया है। इन कवियों की रसवृत्ति का सीधा सम्बन्ध नारी के रूप भेदो से अधिक था।

समस्त शब्द जगत अर्थ की सत्ता से ही तो प्रतिभासित है। विशेष रूप से काव्य तो अपनी अर्थवत्ता के कारण ही सत्यं शिवं सुन्दरम् के श्रेष्ठ आसन पर आसीन है। रीतिकालीन रस ग्रन्थों की माधुर्यपूर्ण सरस शैली तो अपनी भाव भगिमा की निराली छटा लेकर नायिका के विविध भावों, रूपों, अवस्थाओ और भगिमाओं मे दिखाई देती है। इन भावों, रूपो, अवस्थाओ एवं भंगिमाओ को सहृदय पाठक तक पहुँचाने के लिए कवि प्रतिभा जो लौकिक एवं अलौकिक अप्रस्तुत-विधान करती है तथा उनके सहारे जिन बिंबों को प्रस्तुत करती है, उन सभी मे प्रायः उक्ति वैचित्र्य होता है और वह लक्षणा की शक्ति से मडित होता है। निबन्ध का विषय उन्हीं लाक्षणिक प्रयोगो से सम्बन्धित है इसलिये उपलब्ध रस ग्रन्थों मे से कुछ उदाहरण प्रस्तुत करके कथन को चरितार्थ करने का यहाँ प्रयास किया जा रहा है।

'रसिक प्रिया'

आचार्य केशवदास की 'रसिकप्रिया' रसभेद तथा नायिका भेद सम्बन्धी रचना है। हिन्दी काव्यशास्त्र की विशुद्ध साहित्यिक आचार्य परम्परा मे आचार्य केशव का नाम सर्वप्रथम आता है। सस्कृत काव्यशास्त्र के महान पण्डित होने के कारण इनका आचार्यत्व संस्कृत साहित्य के आचार्य ग्रन्थो से प्रभावित है। केशव का अगाध पाडित्य अपने पीछे लक्षण-ग्रन्थों की रचना परम्परा का प्रवर्तन नही कर सका। वस्तुतः यह परम्परा उनसे लगभग पचास वर्षो वाद चिन्तामणि के द्वारा चली।[1]

---

१. 'पर केशव के ५० या ६० वर्ष पीछे हिन्दी में लक्षण ग्रन्थों की जो परम्परा चली वह केशव के मार्ग पर नहीं चली'।

हि० सा० इ०, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्र० सं० २००२ पृ० १८०

अपनी रसिकप्रिया के आरम्भ मे आचार्य केशव ने रस का विवेचन किया है, इसके पश्चात् नायक-नायिका भेद का प्रसग है। विविध प्रकार की नायिकाओ के उदाहरणों मे जो अप्रस्तुत विधान किया गया है, उसका उपादान लोक जीवन के विविध क्षेत्रों से किया गया है। इनके ग्रहण का मूल उद्देश्य रूप, गुण क्रिया और भाव का गोचर प्रत्यक्षी करण कराना है। अप्रस्तुत योजना मे लक्षणा शक्ति एक विशेप चमत्कार उत्पन्न करती है।

रीति-ग्रन्थकारो की कृतियो मे अलंकरण की प्रवृत्ति प्रमुख रूप से दिखलाई देती है, रसिकप्रिया भी इसका अपवाद नही है। अलकारो मे विशेप रूप से रूपक, परिकरांकुर, समासोक्ति तथा अतिशयोक्ति अलकारो के अलकारत्व का बीज लक्षणा ही है। रसिकप्रिया ब्रज-भापा की कृति है। उस समय तक ब्रज-भापा पर्याप्त रूप से मंज और सवंर चुकी थी। मुहावरेदानी उसका स्वाभाविक गुण हो गया था। विशेप रूप से मुहावरों मे तथा अन्यत्र भी लक्षणा के प्रयोग के कारण ब्रज-भापा चमत्कार पूर्ण होने लगी थी। लक्षणा शक्ति शब्द का आरोपित व्यापार है।[1] मुहावरो की योजना मे गुण, धर्म आदि का साम्य प्रकट करने मे वह उसी स्थल पर उपादेय मानी जाती है, जहाँ अभिधा अपेक्षाकृत असमर्थ दिखाई देती है।

शब्द शक्तियो का सम्बन्ध अर्थ से है। शब्द गत् अर्थ अपनी असाधारणता और रमणीयता के कारण रसास्वाद मे सहायक होते है। रस की आस्वादनीयता मे वृद्धि के लिए काव्य के आधारभूत अर्थो मे उक्ति-वैचित्र्य अथवा वचन भगिमा का समावेश किया जाता है। अर्थगत् उक्ति वैचित्र्य अथवा वचन भगिमा लक्षणा और व्यजना शक्तियों के कारण आती है। लक्षणा-शक्ति पाठक को काव्यानुभूति कराने मे समर्थ होती है। रसिक प्रिया मे लक्षणा का वैभव बिखरा पड़ा है, उसी का यहाँ विवेचन किया जा रहा है।

शुद्धा लक्षण-लक्षणा:—

"भय दावानल-पान पियो बीभत्स बकी उर।"[2]

यहाँ 'पान' शब्द का अर्थ है पीना किन्तु भय पिया नही जा सकता है क्योकि वह कोई तरल मूर्त पदार्थ तो है नही। अत. यहाँ 'पान' शब्द का अर्थ समाप्त करना है।

---

१. मुख्यार्थ बाधे तद्योगे रूढ़ितोऽथ प्रयोजनात्।
अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणारोपिता क्रिया॥ का० प्र० उ० २, का० ९

२. केशव ग्रन्थावली खं० १ सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रथम सं०, पद स० २, पृ० १

"केशव एक समय हरि राधिका आसन एक लसैं रंग-भीने।"[१]

यहाँ 'रँग-भीने' पद का अर्थ रग में भीगना है। किन्तु इस प्रसंग में स्नेहासिक्त होने के अर्थ को ग्रहण किया गया है।

"सहज सुगन्ध सरूप शुभ, पुन्य प्रेम सुखदानि।"[२]

'सुगन्ध' पुष्प का गुण है, शरीर का नहीं। इसलिए यहाँ सुगन्ध से रमणीय अर्थ ग्रहण किया जाएगा।

"ओप उरोजनि की उपजै दिन काहि मढ़ैं अँगिया न मढ़ैंगी।"[३]

'ओप' पद अपने मुख्यार्थ प्रकाश का त्याग करके 'विकास' अर्थ ग्रहण करता है।

"माई कहाँ यह माइगी दीपति जौ दिन द्वै इहि भाँति बढ़ैंगी।"[४]

'दीपति' पद का अर्थ है ज्योति किन्तु यहाँ मुख्यार्थ का बाघ हो गया है और प्रयोजन जन्य अर्थ मुग्धा नायिका का यौवन विकास ग्रहण किया गया है।

"केसोदास सकल सुबास को निवास तन,.........।"[५]

यहाँ 'सवास' पद अपने मुख्यार्थ 'गन्ध' को त्याग कर सौन्दर्य अर्थ को प्रकट करता है।

सारोपा गौणी लक्षणा:—

"तेरे मनोरथ भगीरथ-रथ पाछे-पाछे,
डोलत गोपाल मेरो गंगा को सो पानी है।"[६]

'मनोरथ भागीरथ-रथ' लाक्षणिक पद है। उपमेय मनोरथ उपमान भगीरथ-रथ दोनों पद में हैं, आघार सादृश्य है।

"तिमिरि-वियोग भूले लोचन-चकोर फूले,.........।"[७]

'लोचन-चकोर' लाक्षणिक पद हैं। उपमेय लोचन और उपमान चकोर है, आधार सादृश्य है।

---

१. केशव ग्रन्थावली खं० १, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रथम सं० पद सं० २२, पृ० ३
२. वही पद सं० २, पृ० ८
३. वही पद सं० १६, पृ० १०
४. वही पद सं० १६, पृ० १०
५. वही पद सं० १८, पृ० ४६
६. वही पद सं० ६, पृ० ३६
७. वही पद सं० ३१, पृ० ४४

"प्रेम-मय भूप रूप सचिव संकोच सोच,
विरह्-विनोद पील पेलियत पचि कै।
तरल तुरंग अवलोकनि अनन्त गति,
रथ मनोरथ रहैं प्यादे गुन गचि कै॥"[1]

'प्रेम मय भूप रूप' 'विरह्-विनोद पील', 'तुरग अवलोकनि', और 'प्यादे गुन' लाक्षणिक पद है। क्रमशः इन पदों में उपमेय प्रेम, विरह्-विनोद, अवलोकनि और गुन है तथा उपमान-भूप रूप, पील, तुरग और प्यादे है, आधार सादृश्य है।

"उरज मलय सैल-सील सम सुनि देखि,
अलक वलित व्याल आसा उर आइयै।"[2]

'उरज मलय सैल' और 'अलक वलित व्याल' लाक्षणिक पद है। क्रमशः उपमेय उरज, अलक तथा उपमान मलय सैल, वलित व्याल है, आधार सादृश्य है।

"गति गजराज साजि देह् की दीपति वाजि,
हाव रथ भाव पत्तिराज चली चाल सों।
केसोदास मंदहास असि कुच भट भिरे,
भेंट भए प्रतिभट भाले नख जाल सों।
लाज साजि कुल कानि सोच पोच भय मानि,
भौंह् धनु तानि बान लोचन विसाल सों।
प्रेम को कवच कसि साहस सहायक लै,
जीत्यो रति-रन आजु मदन गुपाल सों॥"[3]

'गति गजराज', 'दीपति वाजि', 'हाव रथ', 'भाव पत्तिराज', 'मदहास असि', 'कुच भट', 'भोह् धनु', 'साहस सहायक' और रति-रन पद लाक्षणिक है। क्रमशः उपमेय गति, दीपति, हाव, भाव, मदहास, कुच, भौंह, साहस और रति है, उपमान गजराज, वाजि, रथ, पत्तिराज, असि, भट, धनु, सहायक और रन है। आधार सादृश्य है। इस प्रकार उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को सम्प्रेषणीय बनाया गया है।

"बिनु गुन तेरी आनि भृकुटी कमान तानि,
कुटिल कटाक्ष बान यहै अचरज आहि।"[4],

---

१. केशव ग्रन्थावली खं० १, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रथम सं० पद सं० १७, पृ० ४८
२. वही पद सं० ८, पृ० ६०
३. वही पद सं० २५, पृ० ८५
४. केशव ग्रन्थावली खं०१, सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रथम स० पद सं०३५ पृ० ८८

'भृकुटी कमान' और 'कटाक्ष वान' लाक्षणिक पद हैं। क्रमशः उपमेय भृकुटी, कटाक्ष तथा उपमान कमान, वान इन पदों में वर्तमान हैं, आधार साहश्य है।

"केसव छबीले छत्र शीशफूल सारथी सो,
केसरि की आड़ि अधिरथिक रची बनाइ।"[१]

'आड़ि अधिरयिक' लाक्षणिक पद है। उपमेय आड़ि और उपमान अधिरथिक पद मे दोनो वर्तमान हैं, आधार साहश्य है।

"कपट कृपानी मानो प्रेम रस लपटानी...।"[२]

'कपट कृपानी' लाक्षणिक पद है। उपमेय कपट और उपमान कृपानी दोनो पद में है इसका आधार साहश्य है।

"खंजन है मन रंजन 'केसव' रंजन नैन किधौं मति जी की।
मीठी सुधा कि सुधाधर की दुति दंतनि की किधौं दाड़िन ही की।
चंद भलो मुखचंद किधौं सखि सूरति काम की कान्ह की नीकी।
कोमल पंकज के पदपंकज प्रान पियारे कि मूरति पी की॥[3]

'मुखचन्द' तथा 'पदपंकज' लाक्षणिक पद हैं। क्रमशः उपमेय मुख और पद है, उपमान, चन्द एव पकज है। सभी पदों मे उपमेय और उपमान दोनो वर्तमान है, आधार साहश्य है।

साध्यवसाना गौणी लक्षणा—

"केहरि कपोत करि केर मृग मीन फनि,
सुक पिक कंज खंजरीट बन लीनो हैं।
मृदुल मृनाल बिंब चंपक मराल वेलि,
कुंकुम दाड़िम कहूँ दूनो दुख दीनो है।[४]

उपर्युक्त छन्द मे केहरि, कपोत, करि, मृग, मीन, फनि, सुक, पिक, कंज, खजन, मृनाल, बिंब, चपक और दाड़िम सभी नारी अवयव के उपमान है। उपमेय को त्यागकर उपमान से ही नारी सौन्दर्य का सकेत किया गया है, सभी पदो का आधार साहश्य है। केहरि=कटि, कपोत=ग्रीवा, करि=गति, मृग=आँख, मीन=आँख, फनि=चोटी, सुक=नाक, पिक=कठ माधुर्य, कंज=मुख, खंजन=आँख, मृनाल=भुज, बिंब=अधर, चंपक=शरीर और दाड़िम=दाँत के उपमान है।

---

१. केशव-ग्रन्थावली, खंड १, सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रथम सं० पद सं० ५ पृ० ९०
२. वही पद सं० ११ पृ० ९३
३. वही पद सं० २२ पृ० ४९
४. वही पद सं० २२ पृ० ८५

"देखत हो यह काम कली कुंभिलानिपै जाति कहा अब कीजै।"[१]

'कामकली' नारी का उपमान है। इस पंक्ति मे केवल उपमान का प्रयोग करके उपमेय की ओर सकेत कर दिया गया है। आधार साहश्य है।

"जो कहौं 'केसव' सोम सरोज सुधा सुर भृंगनि देह दहे हैं।
दाड़िम के फल श्रीफल विद्रुम हाटक कोटिक कष्ट सहे हैं।
कोक कपोत करी अहि केहरि कोकिल कीर कुचील कहे हैं।
अंग-अनूपम वा तिय के उनकी उपमा कहें वेई रहे है।"[२]

यहाँ उपमानो को अगो से निकृष्ट बताया गया है किन्तु सभी उपमान अगों का बोध कराते है। सोम तथा सरोज=मुख, दाडिम फल=दत-पक्ति, श्रीफल=उरोज, विद्रुम=अधर, कपोत=ग्रीवा, करी=गति, अहि=चोटी, केहरि=कटि, कोकिल=कठ माधुर्य और कीर=नासिका के उपमान है आधार साहश्य है।

निरूढ़ा लक्षणा—

"नेक अटें पट फूटति आंखि सु देखति है कब को ब्रज सूनो।
काहे को काहू को कीजै परेखोऽव जीजै री जीव की नाक दै चूनो।"[३]

फूटति आँखि और नाक दै चूनो मुहावरे है।

"तिनके संग छूटत ही पटु रे हिम तोहि कहा न दरार फटी।"[४]

'हिय मे दरार फटना' मुहावरा है।

"......हैं हरि आठहुं गांठ अठाए।"[५]

'आठहुं गाठ अठाए' मुहावरा है।

"खारक दाख खवाइ मरो कोठ ऊंटहि-ऊंट कटारोइ भावै।"[६]

'ऊंटहि ऊंट कटारोइ भावै' मुहावरा है।

"डीठि लगी किधौं प्रेत लग्यो कि लग्यो उर प्रीतम जाहि डरी यों।"[७]

'डीठ लगना' मुहावरा है।

"बीस बिसे बसीकर कैसे उर आनिए,...।"[८]

'बीस बिसे' मुहावरा है।

१, केशव-ग्रन्थावली, खंड १, सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रथम सं० पद सं० ४९ पृ० ५४
२. वही पद सं० २३ पृ० ५०
३. वही पद सं०, २२ पृ० ३
४. वही पद सं० २8 पृ० 8
५. वही पद सं० १५ पृ० ७
६. वही पद स० १० पृ० ६
७. वही पद सं० १३ पृ० २१
८. वही पद सं० १८ पृ० २३

"तोरि तोरि डारत तिनूका कहो कौन पर,....।"[१]
'तृण तोडना' मुहावरा है।
"काको घर घालिबे कों बसे कहाँ घनश्याम,...।"[२]
'घर घालिबे को' मुहावरा है।
"बात बनाइ बनाइ कहा कहो लेहु मनाइ मनाइ ज्यों आए।"[३]
'बातें बनाना' मुहावरा है।
"केसव' सुगन्ध बाय बाय सी लगति है।"[४]
'बाय लगति है' मुहावरा है।
"कुंकुम न लख अग आग सी लगति है।"[५]
'आग लगना' मुहावरा है।
"गिरिगो कछू गाँठि तें छूटि छबीली सु कहे तें डोलति ढाढ़ति सी।[६]
'गाँठि तें छूटि' मुहावरा है।
"कहि 'केसव' अपनी जाँघ उघारि कै आपही लाजनि को मरई।"[७]
'जाँघ उघारना' मुहावरा है।
"हौ सिखाऊँ अपने सपने हूं तौ आवत लच्छि किवार न दीजै।"[८]
'आवत लच्छि किवार न दीजै' मुहावरा है।
"लालच हाथ रहै ब्रजनाथ पै प्यास बुझाइ न ओस के चाटें।"[९]
'प्यास बुझाइ न ओस के चाटे' मुहावरा है।
"सोने सिगारहु सोंधे चढ़ावहु पीतर की पितराई न जाई।"[१०]
'पीतर की पितराई न जाई' मुहावरा है।
उपर्युक्त सभी मुहावरों का लक्ष्यार्थ ही अत्र मुख्यार्थ हो गया है।

---

१. केशव-ग्रन्थावली, खंड १, सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रथम सं० पद सं० ११ पृ० २५
२. वही पद सं० १७ पृ० ४२
३. वही पद स० ३७ पृ० ४५
४. वही पद सं० ४ पृ० ४७
५. वही पद सं० ४ पृ० ४७
६. वही पद सं० ११, पृ० ४७
७. वही पद सं० १७ पृ०५८
८. वही पद सं० १६ पृ० ६२
९. वही पद सं० २४ पृ० ७४
१०. वही पद सं० २८ पृ० ७५

'रसराज'

मतिराम का रसराज नायिका भेद का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ मे केवल शृङ्गार का ही वर्णन एव चित्रण है। इसमे अन्य रसो की उपेक्षा की गई है। रसराज मे से यहाँ लक्षणा के प्रयोगो के उदाहरण दिए जा रहे हैं।

निरूढ़ा लक्षणा:—

"साथ सखी के नई दुलही को भयो हरि कौ हियो हेर हिमंचल।"[1]

'हृदय का हिमाचल होना' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है हृदय को प्रसन्नता से फूल उठना।

"भयो द्रोपदी को बसनु बासर नाहि बिहाय।"[2]

'भयो द्रोपदी को बसन' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है अन्त हीन।

"काहे को करत हठ हारिल की लकरी।"[3]

'हारिल की लकरी' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है प्रिय आधार।

"पारद सो उड़ि जायगो अलि चंचल यह नेह।"[4]

'पारद सो उड़ि जायगो' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है—शीघ्रता से समाप्त हो जाना।

"लाज गिरि गई जैसे तरुवर तीर को।"[5]

'लाज गिरना' तथा 'तीर का तरुवर होना' मुहावरे है। इनका लक्ष्यार्थ है—लाज का समाप्त हो जाना और मौत की घड़ियाँ गिनने वाले की मृत्यु।

शुद्धा लक्षण लक्षणा:—

"मनहूं को जानो प्राण प्यारे मतिराम इहै, नैननि ही माहि पाइयतु अनुराग है।"[6]

'अनुराग' लाक्षणिक पद है। अनुराग का लक्ष्यार्थ यहाँ अरुणिमा ग्रहीत है। नायिका नायक को उसकी बेवफाई के लिए फटकार रही है।

"..........जाके बैन सुनत सुधा सी पीजियतु है।"[7]

'पीजियतु लाक्षणिक पद है। पीना का लक्ष्यार्थ सुनना ग्रहीत है क्योकि बैन पीए नही जा सकते, सुने ही जा सकते है। पीना कह कर अन्तर की प्यास और

---

१. रसराज, सं० कृष्ण बिहारी मिश्र, प्र० सं०, पृ० ५[?] पद २५
२. वही पृ० ३६, पद १७३
३. वही पृ० ५०, पद २३५
४. वही पृ० ५०, पद २३६
५. वही पृ० ७०, पद ३३४
६. वही पृ० ८, पद ३८
७. वही पृ० ११, पद ५०

वाणी को आत्मसात करने का आरोप भी है। इस प्रकार कथन में उक्ति वैचित्र्य का समावेश हो जाता है।

"बैठी एक सेज पै सलोनी मृगनैनी दोऊ आनि तहाँ प्रीतम सुधा समूह बरसै।"[1]

'सुधा' पद लाक्षणिक है। सुधा की वर्षा तो असम्भव है इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है रसमय वचन और सरस व्यवहार। अभिप्राय यह है कि—नायिका सखी के साथ बैठी वार्तालाप कर रही थी उसी समय प्रीतम ने आकर दर्शन दिया और अपनी सरस वाणी तथा मधुर व्यवहार से आनन्दित करके नायिका में नव-जीवन का संचार कर दिया।

"मोहन को तन पानिप पीजै।"[2]

'पानिप पीजै' पद लाक्षणिक है। इसका लक्ष्यार्थ है रूप दर्शन करना। पानी प्यासे को संतोष देने की जो सामर्थ्य है उसका यहाँ रूप आरोप है।

"बार बार सुकुमार फूलन की मार ऐसी मार के मरोरनि मरोर मारियत है।"[3]

'फूलन की मार' लाक्षणिक पद है। इसका अभिधेय अर्थ है नायक फूलों से मारता है पर लक्ष्यार्थ है काम भाव उत्पन्न करना।

"ऐसे सयान सुभायन ही सों मिली मन भावन सों मन मोरे।"[4]

'सयान' पद लाक्षणिक है। यहाँ विपरीत भाव से लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाता है मूर्खता।

सारोपा गौणी लक्षणा:—

"दुहुन के हीय अरविन्द मोद सरसै।"[5]

'हीय अरविन्द' लाक्षणिक पद है। हिय उपमेय और अरविन्द उपमान है, इनका आधार सादृश्य है। इस तरह कवि ने हृदय पर अरविन्द के प्रफुल्लित होने के भाव का आरोप करता है।

"दृग कमलन के द्वार पर बाँधे वन्दनवार।"[6]

'दृग कमलन' तथा वन्दनवार लाक्षणिक पद है। दृग उपमेय और कमलन उपमान है, इनका आधार सादृश्य है। दृग पर कमल के सौन्दर्य का आरोप किया गया है। इस तरह दृग-सौदर्य मे प्रेषणीयता आ गई है। वन्दनवार आँखो में बाँधे नही जा सकते, इसलिए साहचर्य भाव से इसका लक्ष्यार्थ काजल ग्रहण किया जाता है। इस पद में लक्षण लक्षणा है।

---

१. रसराज, सं० कृष्ण बिहारी मिश्र, प्र० सं०, पृ० १२, पद ५६
२. वही पृ० १३, पद ६०
३. वही पृ० २४, पद ११६
४. वही पृ० २६ पद १२७
५. वही पृ० १२, पद ५६
६. वही पृ० ३७, पद १७७

'सुख सागर तरंग'

आचार्य देव का सुख सागर तरग नायिका भेद का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में नायिका के विभिन्न रूपो, भावों एवं अवस्थाओ के चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। यहाँ उनमे से कुछ उदाहरण स्वरूप दिए जा रहे हैं जिनमे लक्षणा का चमत्कार है।

निरूढ़ा लक्षणाः—

"तोरि तोरि तिनन निवारती तिनन तान तनन धितान हन हन रन धारती।"[1]

'तृण तोडना' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है सौदर्य को दृष्टि लगने से वचना।

"मीड़त हाथ फिरै उमड़्यौ सोमड़्यौ बहि बीच पर्‌यो महरान्यौ।"[2]

'मीडत हाथ' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है-पश्चाताप करना।

"देव तिहि काल गुहि माल लाई मालिनि सुवाल को विरह विष व्याल की लहरि परि।"[3]

'विष व्याल की लहरि परी' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है—विरह वेदना से मूर्छित्त हो जाना।

"बांह गहि लेहु छवि छांह सी छुवाय नेक नाहको निहारि मन बूड़ै नाभि कूप में।"[4]

'बांह गहि लेहु' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है सहारा देना अथवा शरण देना।

"डगर डगर बगरावति अगर अंग,
जगर मगर आपु आवत दिवारी सी।"[5]

'जगर मगर आपु आवत दिवारी सी' मुहावरा है। लक्ष्यार्थ है सुन्दरता को प्रकाशित करती हुई आ रही है।

"खेलिवोऊ हँसिबोऊ कहा सुख सों वसिवो बिसे बीस बिसारो।"[6]

'बिसे बीस' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है पूर्णरूप से।

"पूरी करी इतहूँ उत प्रीति भले खुलि खेलत बोलत पापर।"[7]

'वेलत पापर' मुहावरा है इसका लक्ष्यार्थ व्यर्थ श्रम करना है।

---

१. सुखसागर तरंग, सं० बालदत्त मिश्र, सन् १८९८ ई० पृ० २३ पद ७०,
२. वही पृ० ३३ पद ९७
३. वही पृ० ६४ पद १८७
४. वही पृ० ७५ पद २१९
५. वही पृ० ११२, पद ३२२
६. वही पृ० १८७, पद ५५२
७. वही पृ० २९८, पद ८०८

शुद्धालक्षण लक्षणा —

"तीखी तीखी तरल चितोलि में परल भरे,
मदन मनीबी चित चीखी सुख सागरी।"[१]

'गरल भरे' लाक्षणिक पद है। चितौनि मे गरल भरा होना असंभव है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है तीव्र आकर्षण द्वारा मृत्यु वेदना के सदृश्य रसिक के हृदय मे विरह वेदना पैदा कर देना अथवा वशीभूत कर लेने की शक्ति अर्थात् नायिका की कटाक्ष मे बेसुध कर देने की शक्ति है।

"लाल के रंग सो भीज रही,
सुगुलाल के रंग सों चाहति भीज्यो।"[२]

'रंग' लाक्षणिक पद है। रंग का प्रयोग लाल के पक्ष मे किया गया है जो असंभव है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है—अनुराग रस।

"अंगी कसै उकसै कुच ऊँचे हँसै हुलसै फुफदीन की फूँदै।"[3]

'हँसै','हुलसै' लाक्षणिक पद हैं। फुफदीन के फूँदों का हँसना तथा हुलसना असंभव है। इसलिए इनका लक्ष्यार्थ शोभादायक एवं आकर्षक है।

"आज तो मियाहो उर आंनद बढ़ाइ लीजो आइ लीजो दरश अघाइ लीजो अँखियन।"[४]

'अघाइ' पद लाक्षणिक है। नेत्रो के पक्ष मे अघाना कहा गया है जब कि यह क्षुधा धर्म है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है संतुष्ट करना।

गौणी सारोपा लक्षणाः—

वेध गुण मंत संत सामंत समाज राज—
काज को जहाज दिल दरिया दराज है।"[५]

यहाँ 'संत सामंत राज काज—जहाज,' तथा दिल दरिया लाक्षणिक पद है। इन पदो मे उपमा और उपमेय दोनो हैं। आधार सादृश्य है। सामंतों पर संतों की साधुता और गुणज्ञता का, राजकाज पर जहाज की वहनीयता और महाराज के दिल पर दरिया की विशालता का आरोप किया गया है।

"लोचन दलालनि लै बेंची नन्दलाल कर,
दै वै करताल वर बाल बरताने की।"[६]

---

१. सुखसागर तरंग, सं० बालदत्त मिश्र, सन १८९८ ई०, पृ० २३, पद ६९
२. वही पृ० ४१, पद ११६
३. वही पृ० ४५, पद १३३
४. पृ० ४२, पद १२४
५. वही पृ० ६, पद २
६. वही पृ० ४०, पद ११८

यहाँ 'लोचन दलालनि' लाक्षणिक पद है। लोचन उपमेय और दलाल उपमान है। आधार सादृश्य है। लोचन पर दलाल के विक्रय करने के कार्य व्यापार का आरोप किया गया है। अभिप्राय यह है कि वाला के नेत्र नन्दलाल के स्वरूप को देख कर ऐसे आकर्षित हुए कि वाला तन मन से नन्दलाल की हो गई और वरसाने की वालाएँ राधिका का मजाक उड़ाती हैं।

"त्रिवली त्रिवेणी तट रोमावली धूम लट यौवन पटल ज्योति वेंदी छवि तुंड मैं।
वेद ध्वनि वोलै गुणमन्त मुनि किंकणीक रसना रतन मणि मुकुतान भुंड मैं।
देव जू अनंग ध्वंग होमि कै भसम संग अग अंग उमह्यो असैंवर ज्यौं ढंड मै।
ओज निज पावकै उरोज मन भावकै मनीखी ह्वै मनोज मखु माड़्यो नाभि कुंडमै।"[१]

इसमे 'त्रिवली त्रिवेणी' तथा 'रोमावली धूम', लाक्षणिक पद हैं। त्रिवली एवं रोमावली उपमेय है और त्रिवेणी,तथा धूम उपमान हैं। रूप गुण का सादृश्य है नारी के शरीर को यज्ञस्थल कहने मे उक्ति वैचित्र्य तो अवश्य है पर सौदर्य वृद्धि मे ये उपमान सहायक नही है। यह पद रीति कालीन रूढ़ियो मे आवद्ध होने का नमूना है।

"लाल कर पल्लव वनक भुज उल्लरीन कनक समुद्य उच्च कुच गिरिसंगिनी।
यामे वलवीर मन वूड़ि वूड़ि उछरतं वलि गई तेरी वलि त्रिवली तरंगिनी॥"[२]

इसमें 'कर पल्लव',भुज वल्लरीन, तथा त्रिवली तरगिनी को लाक्षणिक पद है। कर भुज, एवं त्रिवली उपमेय हैं। और पल्लव, वल्लरीन, तथा तरगी उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। कर पर पल्लव की अरुणिमा, भुज पर वल्लरीन के सुगठित सौन्दर्य, कुच पर कनक कलश के सौन्दर्य एव उभाड़ तथा त्रिवली पर तरगिनी के तरंगो की शोभा का आरोप करके कवि प्रतिमा ने आलौकिक सौन्दर्य प्रस्तुत किया है।

"आननइंदु उठे कुच कंदुक आनन इंदिरा मंदिर सोहे।"[३]

इसमे 'आननइदु' तथा कुच कदुक लाक्षणिक पद है। दोनो पदो मे उपमेय तथा उपमान हैं इनका आधार सादृश्य है। आनन पर इंदु के सौन्दर्य का और कुच पर कदुक के आकार का आरोप करके विंव को प्रेषणीय वनाया गया है।

साध्यवसाना गौणी लक्षणा:—

"देव देखो दामिनी दिखाई दै दुरति दूरि चन्द्र रुचि चूरि मुख चन्द्रिका पराग की।"[४]

इसमे 'दामिनी' लाक्षणिक पद है। दामिनी कामिनी का उपमान है। आधार

---

१. सुख सागर तरंग, सं० वालदत्त मिश्र, सन १८९८ ई० पृ० ७५, पद २१८
२. वही पृ० ७६, पद २२१
३. वही पृ० १३८, पद ४०१
४. वही पृ० २२ पद ६५.

सादृश्य है। कामिनी को दामिनी कह कर उस पर दामिनी के सौन्दर्य, प्रकाश एवं चकाचौध कर देने की सामर्थ्य का आरोप किया गया है अर्थात् कामिनी का सौन्दर्य ऐसा द्युतिमान है कि आँखें चकाचौध हो जाती है।

'वा चकई को भयो चित चीतो चितौति चहूं दिशि चाइ सो नाची।"[1]

इसमे 'चकई' लाक्षणिक पद है। चकई उपमान है नायिका का। इसका आधार गुण साम्य है। चकई के प्रीतम प्यार के हर्ष का आरोप नायिका पर किया गया है अर्थात् प्रीतम का प्यार पाकर नायिका आनन्द विभोर हो नाचने लगती है।

"माणिक निखर मुख मेरु के सिखर विव वनक वनाए विधि कनक सरोज के।
कैधों रुचि भूपर अनूप रचि राखे देव रूपक समूह ह्वै उज्यारे अति ओज के।
कोमल नवेली बाल बेली फूल फूले किधौं उमगे निशंक उर अंकुर उरोज के।
यापुर पुरन्दर ह्वै चाहत वसायो सो न सुन्दर कलश धरे मंदिर मनोज के॥"[2]

इसमें 'मेरु के सिखर', 'कनक सरोज,', 'फूल फूले', तथा सुन्दर कलश सभी उरोज के उपमान है, आधार सादृश्य है। मेरुशिखर की शृंग का, कनक सरोज के सौंदर्य का, फूले फूल के विकास की कमनीयता का एवं सुन्दर कलश के सुगंठन का आरोप करके विंव को प्रेपणीय वनाया गया है।

"भूपर कमल युग ऊपर कनक खंभ ब्रह्म की सी गति मध्य सूक्षम अनिंदी बर।
तापर अनूप रूप कूप पै तरंगै सींचै श्रीफल युगल माल मिलित मलिंदी बर।
देव तरु वल्ली विधि डोलत सपल्लव प्रकाश पुंज तामै जगमग ज्योति विंदी बर।
इंदिरा के मंदिर में उदित अमन्द इन्दु आनन उदित इन्दु मन्दिर में इन्दी बर॥"[3]

इसमे 'कमलयुग, कनकखभ, ब्रह्म, कूप, तरंगै, श्रीफल, देवतरुवल्ली तथा इंदु क्रमशः चरण, जंधा, कटि, नाभि, त्रिवली, उरोज, नायिका एवं मुख के उपमान हैं। इनका आधार सादृश्य है। इस तरह समस्त पद में नारी के रूप का वर्णन है। सूक्ष्मता प्रकट करने के लिए ब्रह्म उपमान को ग्रहण किया गया है पर इससे सूक्ष्मता का आभास होने पर भी सौंदर्य का आरोप नही हो पाता है।

मानवीकरण:—

"प्रेम पयोधि परो गहिरो अभिमान को फेन रह्यो गहिरे मन।
कोप तरंगन सो वहिरे पछिताय पुकारत क्यों बहरे मन।
देव जू लाज जहाज ते कूदि रह्यो मुख मूँदि अज्यौं रहिरे मन।
जोरत तोरत प्रीति तुही अब तेरी अनीति तुही सहि रे मन॥"[4]

---

१. सुखसागर तरंग, सं० वालदत्त मिश्र, सन् १८९८ ई० पृ० ७२ पद २११
२. वही सन् १८९८ ई० पृ० ७७ पद २२२
३. वही सन् १८९८ ई० पृ० १४५ पद ४२२
४. वही पृ० २२० पद ६५५

इसमें 'प्रेम पयोधि', अभिमान फेन', 'कोप तरंगन' एव लाज जहाज पद लाक्षणिक हैं। प्रेम, अभिमान, कोप, लाज उपमेय और पयोधि, फेन, तरगन तथा जहाज उपमान है। इनका आधार साहश्य है। प्रेम पर पयोधि के विस्तार और अगाधता का, अभिमान पर फेन की नि.सारता का, कोप पर तरंगो की चंचलता और उद्दामता का लाज पर जहाज की वहनीयता का आरोप करके विंब को प्रस्तुत किया गया है। इनमें सारोपा गौणी लक्षणा है।

इसी तरह कवि वियोगिनी आखो का योगिनी रूप वडी मार्मिकता के साथ प्रस्तुत करता है:—

"वरुणी बघम्बर औ गूवरी पलक वोऊ कोये लाल बसन भगौंहे भेष रखियाँ।
बूड़ी जल ही में दिन यामिनि हूँ जागी भौंहें धूम शिर छायो विरहागिनि बिलखियाँ।
आँसू जो फटकि माल लाल डोरे सेली पंन्हि भई है अकेली तजी चेली संग सखियाँ।
दीजिए दरश देव कीजिए संजोगिनी के योगिनी ह्वै बैठी हैं वियोगिनी की अँखियाँ॥"[1]

इसमे वरुणी वघम्बर, कोये लाल बसन तथा आँसू माल सेली, लाक्षणिक पद हैं। सभी पदो मे उपमेय और उपमान दोनो है आधार भी साहश्य है। इस तरह कथन मे उक्ति वैचित्र्य लाकर आँखों पर योगिनी के रूप, गुण का आरोप किया गया है। इन पदो मे सारोपा गौणी लक्षणा है।

'रस सारांश'

आचार्य भिखारीदास का रस सारांश नायिका भेद ग्रन्थ है। इसमे नायिकाओं के रूप, गुण और अवस्थाओ का चित्र अप्रस्तुत विधान द्वारा संवेदनीय बनाए गए हैं। उनमे से ही कुछ लाक्षणिक चमत्कार वाले पद यहाँ उदाहरण स्वरूप दिए जा रहे है।

निगूढ़ा लक्षणा:—

"मोहि अली निज छाँह की नही परत परतीत।"[2]

छाँह की प्रतीत न होना मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है मन इतना सशंकित हो गया है कि अपने पर भी विश्वास नही होता अर्थात् जो छाया की तरह घनिष्ट हैं उन पर से भी विश्वास उठ गया है।

"आपने भालहि कोह कों दूखिए और को चन्दन चाहि बनाय सों।"[3]

'आपने भालहि काहे को दूखिए' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है व्यर्थ मे क्यों चिन्ता करना।

---

१. सुखसागर तरंग, सं० बालदत्त मिश्र, सन् १८९८ ई० पृ० ८८ पद २५५
२. भिखारीदास ग्रन्थावली, सं० विश्वनाथ प्र० मिश्र, प्र० स०, प्र० सं० पृ० ६, पद २७
३. वही पृ० १३, पद ६९

"गोप-वधू फिरि फिरि लखति भादौं चौथि मयंक ।"[1]

'लखति भादो चौथि मयंक एक लोकोक्ति है। इसका लक्ष्यार्थ है—कलंक लगना। गोप-वधू बार-बार भादो की चतुर्थी के चाँद को इस उद्देश्य से देखती है कि नन्दलाल के प्रेम का कलक ही मुझे लग जाए।

"गात की गोराई पर सहज भाराई पर सारी सुन्दरताई पर राई लोन वारती ।"[2]

'राई लोन वारती' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है कि सौंदर्य को दृष्टि न लगे।

"तापर नेकु रहै नहिं चैननि मोहि तो नैननि नाच नचायो ।"[3]

'नाच नचायो' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है अत्यधिक परेशान करना।

शुद्धा लक्षण-लक्षणा—

"सुमन चलावति मानिनी सखी कहति जदुराइ ।"[4]

सुमन चलावति का लक्ष्यार्थ है काम भावना उत्पन्न करना।

"वही ठौर को समुझि तिय हिय गहि रही मरोर ।"[5]

'मरोर' लाक्षणिक पद है। मरोर का लक्ष्यार्थ है वलपूर्वक हृदय को नियंत्रित करना।

"लाल जाइ कीजै सरल हृदय आँच की सेंक ।"[6]

आँच और सेक लाक्षणिक पद है। आँच तथा सेंक अग्नि से सम्भव है पर यहाँ हृदय के पक्ष मे कहा गया है। इनका लक्ष्यार्थ है स्नेह और स्पर्श। दूती नायक से कहती है कि उस वियोगिनी का उपचार हृदय स्नेह के स्पर्श से कीजिए।

"कव की बिसासिन बगरैं बिषु बाँसुरी ।"[7]

'विपु' लाक्षणिक पद है। विष फैलना बाँसुरी के पक्ष में कहा गया है जो असम्भव है, बाँसुरी तो मधुरनाद फैलाती है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है कि मृत्यु पीड़ा की तरह वेदना फैलाने वाली अथवा वेसुधि फैलाने वाली।

"डसे रावरे वेनहीं परे अधरसे श्याम ।"[8]

---

१. भिखारीदास ग्रन्थावली, सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्र० खं०, प्र० सं०, पृ० १३ पद ७३
२. वही पृ० ३३, पद २२७
३. वही पृ० ७७, पद ५२४
४. वही पृ० १०, पद ५३
५. वही पृ० १६ पद ९९
६. वही पृ० १८ पद ११२
७. वही पृ० ३५ पद २४४
८. वही पृ० ५८ पद ३९९

'डसे' लाक्षणिक पद है। किन्तु डसना सांप का धर्म है जो वेन के लिए प्रयुक्त है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है मूर्छित करना।

सारोपा गौणी लक्षणा:—

"पियत रहत नित दुलहिया बदन सुधाकर जोति।
प्यारे नैन चकोर कौं कबहुँ निसा न होति।।"[1]

'वदन सुधाकर' तथा नैन चकोर' लाक्षणिक पद हैं। वदन तया नैन उपमेय हैं और सुधाकर एवं चकोर उपमान है। इनका आधार साहश्य है। वदन पर सुधाकर के समस्त गुणो एव सौदर्य का तथा नैन पर चकोर के उत्कट स्नेह का आरोप किया गया है।

"मुदित सकल तिय कुमुदिनी निरखि निरखि ब्रज इंदु।"[2]

'तिय कुमुदिन' लाक्षणिक पद है। तिय उपमेय और कुमुदनी उपमान है। इसका आधार साहश्य है। तिय पर कुमुदनी के प्रेम भाव का आरोप किया गया है अर्थात् तिय कुमुदनी की तरह निरन्तर प्रीतम दर्शन से ही प्रसन्न रहती है।

"कुचन सेवती संभु सुनि कामद समुझि अधीर।
द्दग अरघानि धरी धरी रही चढ़ावत नीर।।"[3]

कुचन सभु एवं द्दग अरघानि लाक्षणिक पद हैं। कुचन तथा द्दग उपमेय हैं शभु और अरघा उपमान है। आधार रूप एव गुण साहश्य है। कुच पर शम्भु के आकार का और द्दग पर अरघा के स्वभाव का आरोप किया गया है अर्थात् नायिका के आंसू विरह वियोग से निरन्तर प्रवाहित होकर उरोजो पर बह रहे है।

"नासा सुकतुंड वर कुंडल मकर नैन खंजन किसोरन सों खेलन भिरतु है।
उरभ्‍त बनमाल त्रिबली तरंगनि मे बूड़त तिरत पद कंजन गिरतु है।"[4]

नासासुकतुंड, कुंडल मकर, नैन खजन, त्रिवली तरगनि तथा पदकजन लाक्षणिक पद हैं। उपमेय क्रमशः नासा, कुण्डल, नैन, त्रिवली एव पद है, उपमान सुकतुंड, मकर, खजन, तरंगनि और कज है। आधार रूप साहश्य है। उपमेयो पर उपमान का आरोप कर उपमेयो के भावों को संप्रेषणीय बनाया गया है।

साध्यवसाना गौणी लक्षणा :—

"सखि लखिए घनश्याम बिनु सबमें पावक पुंज।"[5]

---

१. भिखारीदास ग्रन्थावली, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्र० खं०, प्र० सं०, पृ० २५ पद १६२

२. वही पृ० ३३, पद २३१

३. वही पृष्ठ ६०, पद ४१३

४. वही पृष्ठ ७७, पद ५२१

५. वही पृष्ठ २१, पद १३६

'पावक पुंज' लाक्षणिक पद है। पावक पुंज विरह वियोग का उपमान है। आधार गुण साद्दश्य है। अभिप्राय यह है कि नायिका अपनी सखी से कहती है कि घनश्याम के विरह मे समस्त ब्रज-मण्डल मे विरहाग्नि व्याप्त है।

"फूल्यो सरोज बनाइ के ऊपर तापर खंजन द्वै फरकाइ हौं।
बीच अनोखो सुवा उनयो इक बिंब के लालच दैहौ बताइ हौं।
श्रीफल के फल द्वैक निहारि कै रीझिहौं लाल कहौं समुझाइ हौं।
कंचन की लतिका इक आजु अनूप बनाइ तुम्हैं दरसाइ हौं॥"[1]

सरोज, खंजन, सुवा, बिंब, श्रीफल तथा कंचन की लतिका सभी उपमान हैं क्रमशः मुख, नेत्र, नासिका, अधर, उरोज एवं बाला के शरीर के उपमेयो का सकेत उपमानों द्वारा कर दिया गया है इनका आधार साद्दश्य है। इस तरह इस पद मे नारी के सौंदर्य का बिंब प्रस्तुत किया गया है।

"श्रीफल लै उर में धरै तुम बिन करुनाकंद।"[2]

श्रीफल लाक्षणिक पद है। इसका उपमेय उरोज है। आधार साद्दश्य है। अभिप्राय यह है कि नायिका कहती है—उर पर उरोज विकसित हो गए हैं पर नायक नही है।

'काव्य-कलाधर'

रघुनाथ कृत काव्य कलाधर नायिका भेद ग्रन्थ है। विभिन्न प्रकार की नायिकाओं के लक्षण, हाव-भाव, वचन, रूप, स्वभाव तथा गुण आदि के निरूपण मे जहाँ कवि प्रतिभा ने अप्रस्तुत का विधान किया है, उन स्थलों पर प्रायः लक्षणा-शक्ति का चमत्कार उत्पन्न हो गया है। ऐसे ही कुछ स्थलो को उदाहरण स्वरूप दिया जा रहा है।

निरूढ़ा लक्षणा—

"मोल बिना बृज बीथिन बीच हहा कै सखीन के हाथ बिकैहौं।[3]

'बिना मोल बिकना' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है बिना प्रयास ही नायिकाओं के वशीभूत हो जाओगे।

"मारत गाल कहा इतनो मनमोहन जू अपने मन ऊटे।"[4]

'गाल मारना' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है बढ-बढ के बातें करना। इसी अर्थ मे अब यह मुहावरा रूढ़ हो गया है।

---

१. भिखारीदास ग्रन्थावली सं. विश्वनाथप्रसाद मिश्र प्र. खं. प्र. सं. पृष्ठ ३१, पद २१६
२. वही पृष्ठ ३२, पद २२४
३. काव्य कलाधर, रघुनाथ, पृ० १६, पद १३
४. वही पृष्ठ १७, पद १[illegible]

"खेलि के फागु भली विधि सों तबसों दृग देखिये मैर मढ़ो सो।
आवत ही मुख जो सो वकै कछू खाहिन पीवहि भूत चढ़ो सो।
ऐसी दशा सबकी रघुनाथ रह्यो तपि कै अंग आगि वढ़ो सो।
डारि गयो नन्दलाल सखी बृजबाल पै मानो गुलाल पढ़ो सो।"[1]

'भूत चढो सो', तथा 'गुलाल पढो सो' लाक्षणिक पद है। भूत चढो सो एवं गुलाल पढ़ो सो मुहावरे है। इनका क्रमश लक्ष्यार्थ है—होश मे न रहना तथा जादू कर देना अर्थात् वशीभूत कर लेना।

सारोपा गौणी लक्षणा—

"आवै लगी वटिया पकोनन सो तीषी ह्वै के भौहें लागी चढ़ि भाल त्रिकुटी छविमई।
पानि पाय पंकज की रुचि नष विद्रुम की मोतिन को दंत ओठ जपा की हरलई।
और सब जोवन की वनकन बनाई पूरी अंगनि मे रघुनाथ अति द्युति सों रई।
खेल गुड़ियान के सो भई न उदास एक रह गई बाल में इतनीय लरिकाई॥"[2]

'पानि पाय पकज', 'नख विद्रुम' तथा 'ओट जमा' लाक्षणिक पद है। सभी पदो मे उपमेय और उपमान दोनो है। आवार रूप सादृश्य है। हाथ, पैर, नख, दन्त एवं ओष्ठ के सौन्दर्य को विवित करने के लिए कमल, विद्रुम, मोती और जपा का आरोप किया गया है। 'आपै लगी वटिया' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ प्रतीक्षा करना है। इसलिए इसमे निरूढा लक्षणा है। 'पकोनन से तीपी ह्वै के' का लक्ष्यार्थ है नेत्र कटाक्ष युक्त हो गए और नायिका-नायक की कामना करने लगी। इसमे लक्षण-लक्षणा है।

"लोचन सजल मकरन्द भरे अरविन्द खुली खुले बूंदपति मधुप किसोर की।
स्वेदकन ओस परी यही रंग रघुनाथ स्वासा सों वयारि वहै सौरभ झकोर की।
भूषन को मोतिन की शेष वेष सोहै तारागन मुसकनि धुनि चरन के शोर की।
प्यारी जू के बदन पै मदन विनोद वेषी देखी आजु मोरही सकल सोभा भोर की।"[3]

'लोचन सजल मकरन्द भरे अरविन्द', स्वेद कन ओस स्वासा वयारि सौरभ, तथा मोतिन को भूपण शेप तारागण लाक्षणिक पद है। सभी पदो मे उपमेय और उपमान दोनो हैं, इनका आधार भी सादृश्य है। इस कवित्त मे कवि प्रातः-काल के समस्त सौन्दर्य का आरोप नारी रूप पर करता है। नारी के सजल लोचनों को प्रातःकालीन विकसित मकरन्द युक्त अरविन्द, उस पर आसक्त किशोर को अरविन्द पर आसक्त भ्रमर, अङ्गो पर छाए हुए स्वेद कन को ओस, श्वास को सौरभ

---

१. काव्य कलाधर, रघुनाथ पृष्ठ १७, पद १६
२. वही पृष्ठ २१, पद २१
३. वही पृष्ठ २३, पद ३२

जो प्रात:काल वातावरण में फैलती है और मोतियों के आभूषणों को भोर के तारे कह कर उक्ति वैचित्र्य का समावेश किया गया है। स्वेद कन का लक्ष्यार्थ रतिश्रम स्वेद भी ग्रहण किया जाता है। इसलिए इस पद मे लक्षणा मूला गूढ़ व्यंग्या है।

'नवरस-तरङ्ग'

वेनी प्रवीण कृत नवरस तरङ्ग नायिका भेद ग्रन्थ है। नायिकाओं के रूप, गुण, अवस्था तथा स्वभावादि के निरूपण के प्रसङ्ग मे कवि जहाँ चित्रो की प्रेषणीयता के लिए अप्रस्तुत विधान करता है, वे स्थल प्राय: लाक्षणिक चमत्कार से उद्दीप्त हो उठते है। ऐसे ही कुछ उदाहरणो को यहाँ दिया जा रहा है।

निरूढा लक्षणा :—

"आइ गयो व्रजचन्द तहाँ कुमिलाइ गयो मुख कौल कली है।"[१]

'कुँभिलाइ' लाक्षणिक पद है 'कुँभिलाना' पुष्प धर्म है पर यहाँ मुख के पक्ष मे कहा गया है। कवि प्रयोग प्रसिद्धि से इस प्रकार के प्रयोग रूढ़ हो गए है।

"तोरि तनी तन छोरि अभूसन, भूलि गई गल देन को फाँसी।"[२]

'गल देन को फाँसी मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है मृत्यु कष्ट के बराबर का कष्ट देना।

"विष कौरु मनोकुल गोकुल को कुलि लोग हमें लखि लीलतु हैं।"[३]

'विष कौरु लीलतु है' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है बड़ी वेदना या कष्ट के साथ किसी बात को सहन करना।

शुद्धा लक्षण लक्षणा :—

"नेह के ज्योंही पठावति हैं करि हैं फिरि तेह भरी विषु बातें।"[४]

'विषु बातें लाक्षणिक पद है। विषु का रूप लक्ष्यार्थ है विरह।

"दारिम कली पै छैल छतिया छबीली कैसी,
छतिया छबीली आई दारिम कली सी ह्वै।"[५]

'छतिया छबीली आई" में आई पद लाक्षणिक है। जीवधारी जिनका अपना एक अलग अस्तित्व है - वे आने, जाने की क्रिया कर सकते है। उरोज आने का कार्य नही कर सकते है। आई का लक्ष्यार्थ है विकसित होना।

---

१. नवरस-तरंग, सं० कृष्णविहारी मिश्र, प्र० सं० पृ० ७, पद २४
२. वही प्र० सं०, पृ० १३ पद ७१
३. वही प्र० सं०, पृ० १८ पद १०६
४. वही प्र० सं०, पृ० १३ पद ७१
५. वही प्र० सं०, पृ० ५ पद १३

"मुग्धा अन्न जोबना दूजी ज्ञात। पहिले भये अंकुवा ते दुइ पात।"[1]

'दुइ पात' लाक्षणिक पद है। इसका लक्ष्यार्थ है यौवन पल्लवति होने लगा अर्थात् विकसित होने लगा।

सारोपा गौणी लक्षणा :—

"कर कंजन ते गिरि फन्दुक गो दृग, खंजनि ते अंसुवा भरि ढारे।"

कर कंजन तथा दृग खजन लाक्षणिक पद है। कर एव दृग उपमेय हैं और कजन तथा खजन उपमान हैं, इनका आधार रूप सादृश्य है। कर पर कजन के सौन्दर्य एव दृग पर खंजन के सौन्दर्य का आरोप करके बिंव को सवेदनीय तथा सम्प्रेषणीय बनाया गया है।

"सट कीली सापिन प्रवीन बेनी बेनी बनी कहू,
नटकीली है फटकीली अति ही।
मटकीली भौंहनि लखनि अटकीली उर,
भटकीली कौन की न कीन्ही गति मति है।
चटकीली लंक तू लुटाइ लूटे लेत लोग,
सिर पटकीली भई सौतिन की छाती है।
चटकीली पटकीली गटकीली बतियन,
हटकीली होरी कत पारति विपति है॥"[2]

'सापिनि वेनी' लाक्षणिक पद है। इस पद मे उपमेय सापिनि और उपमान वेनी दोनों हैं। इनका आधार सादृश्य है। वेनी पर सापिनि की कालिमा तथा सट-कीले पन का आरोप कर के वेनी के सौन्दर्य को बढ़ाया गया है।

"आनन चन्द सों मन्द हँसी दुति दामिन सी चहू ओर रहै छ्वै।
वेनी प्रवीन विलोचन चंचल माधुरे वैन सुधा से परे च्वै।
कौतुक एक अनूप लख्यौ सखि आजु अचानक नाह गये छ्वै।
श्रीफल से कुच कामिनी के दोऊ फूलि कदम्ब के फूल गये ह्वै॥"[3]

'आनन चन्द' 'हँसी दुति दामिन' तथा वैन सुधा लाक्षणिक पद हैं। इन पदों मे आनन, हँसी दुति एव वैन उपमेय है और चन्द, दामिन तथा सुधा उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। आनन पर चन्द्र के सौन्दर्य का और वैन पर सुधा के गुण नवजीवन का आरोप करके उपमेयो को अलौकिक सौन्दर्य प्रदान किया गया है।

---

१. नवरस तरंग, सं० कृष्णविहारी मिश्र, प्र० स०, पृ ५ पद १४
२. वही प्र० सं० पृ० १६ पद १००
३. वही प्र० सं० पृ० ९ पद ४०

'जगद्विनोद'

पद्माकर का जगद्विनोद नायिका भेद का ग्रन्थ है। विभिन्न प्रकार की नायिकाओ के रूप, गुण और अवस्थाओं का निरीपण है। उनमें से प्रायः मुग्धा, ज्ञात यौवना, नवोढ़ा, प्रौढ़ा अधीरा, वचन विदग्धा, क्रिया विदग्धा, लक्षिता, रूप गर्विता, खण्डिता तथा परकीया विप्रलब्धा आदि के चित्रण तो लक्षणा शक्ति के व्यापार से चमत्कृत हैं। उनमें से कुछ लाक्षणिक प्रयोगों के उदाहरण यहाँ दिए जा रहे है।

निरूढ़ा लक्षणा :—

' ह्यां इनके रस भीजत से दृग ह्वां उनके मसि भीजत आवै।"[1]

'मसि भीजना' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है मूँछो का निकलना अर्थात् तरुणाई का आगमन। इसी तरह रस भीजत से दृग भी कवि प्रयोग प्रसिद्धि से नेत्रों मे शृङ्गार रस की मधुर भावना स्नेह का आगमन अर्थात् यह तरुणाई के आगमन का सकेत है।

"एक कहैं इनै डीठि लगी पर भेद न कोऊ लहै दुलही को।"[2]

'डीठि लगना' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है।

"केसरि लै मुख मींजिवे कों रस भीजत से कर मीजत ठाढ़े।"[3]

'कर मीजना' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है पश्चाताप करना। कवि प्रयोग प्रसिद्धि से 'रस भीजत' का लक्ष्यार्थ है स्नेह सिक्त होना।

"ऐसी परवीन कों कियो जो यह पुरुष तौ,
बीस बिसै जानी महामूरख विधाता है।"[4]

'बीस बिसै जानी' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है पूर्ण रूप से।

शुद्धा लक्षण-लक्षणा —

"ऐसी धनि धन्य धनी धन्य है सु पैसी जाहि,
फूल की छरी सों खरी हनति हरै हरै।"[5]

'फूल की छड़ी मारना' लाक्षणिक पद है। इसका लक्ष्यार्थ है काम-भावना पैदा करना।

सारोपा गौणी लक्षणा :—

"राजि रही उलही छवि सों दुलही दुरि देखत ही फुलवारी।
त्यों पद्माकर बोलै हसैं हुलसैं विलसैं मुख चंद उजारी।

---

१. पद्माकर ग्रन्थावली, सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्र० सं०, पृ० ६८, पद ३१
२. वही पृ० ११६, पद १७२
३. वही पृ० १४५, पद ३०१
४. वही पृ० १५०, पद ३२१
५. वही पृ० ६४, पद ७०

ऐसे समै कहूँ चातक की धुनि कान परी डरपी वह प्यारी।
चौंकी चकी चमकी चित में चुप ह्वै 'रही चंचल अंचलवारी॥"[1]

'मुख चंद' लाक्षणिक पद है। मुख उपमेय पर चद उपमान का आरोप किया गया है। इसका आधार सादृश्य है। इस तरह कवि चन्द्रमा के विकसित प्रकाश और सौन्दर्य का मुख पर आरोप करता है और मुख सौन्दर्य का बिंब प्रस्तुत करता है।

"बीतिबै ही सु तौ बीति चुकी अब आंजती हौ किहिं काज लुकंजन।
त्यौं पदमाकर हाल कहैं मति लाल करौ दृग ख्याल के खंजन।
रेखित रंचु की कंचुकी के बिच होत छिपाए कहा कुच कंजन।
तोहि कलंक लगाइवे कों लग्यो कान्ह ही के अधरान मे अंजन॥"[2]

'दृग ख्याल के खंजन' और कुच कंजन लाक्षणिक पद है। दृग तथा कुच उपमेय और खंजन एवं कंजन उपमान हैं। इनका आधार सादृश्य है। दृग पर खंजन के सौन्दर्य का तथा कुच पर कज के विकास का आरोप किया गया है। इस तरह सौन्दर्य का चमत्कृत बिंब सहृदय के समक्ष उपस्थित होता है।

"मनमोहन तन घन सघन रमनि राधिका मोर।
श्रीराधामुखचंद पै गोकुलचंद चकोर॥"[3]

तन-घन, राधिका मोर, मुखचद और गोकुलचद चकोर लाक्षणिक पद है। इन पदों मे उपमा उपमेय दोनो है। इनका आधार सादृश्य है। मनमोहन के तन के रङ्ग पर घन के रङ्ग का, राधिका के भाव पर मोर के बादल के प्रति प्रीति का, राधा के मुख पर चन्द्र के सौन्दर्य का तथा—गोकुलचन्द पर चकोर की चन्द्रमा के प्रति एक निष्ट प्रीति का आरोप किया गया है। इस तरह राधिका की प्रीति की आत्म-विभोरता और कृष्ण की प्रीति की एकनिष्ठता का कवि सकेत करता है।

साध्यवसाना गौणी लक्षणा—

"कछु गजगति के आहटनि छिन छिन छीजत सेर।
बिधु बिकास बिकसत कमल कछू दिनन के फेर॥"[4]

इसमे 'सेर', 'बिधु' तथा 'कमल' लाक्षणिक पद हैं। ये पद क्रमशः कटि, मुख और नेत्रों के उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। यहाँ कवि ने उपमानो के माध्यम से ही बिंब को गोचर करा दिया है।

---

१. पद्माकर ग्रन्थावली सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र प्र० सं० पृ० ८६, पद ३९
२. वही पृ० १०२, पद १०६
३. वही पृ० १४३, पद २६०
४. वही पृ० ८३, पद २४

"कनक लता श्रीफल फरी रही विजन बन फूलि।
ताहि तजत क्यों ववरे सु अलि सावरे भूलि॥"[१]

'कनकलता', 'श्रीफल' तथा अलि लाक्षणिक पद है। ये पद उपमान हैं— क्रमशः नायिका, उरोज एव नायक के कथन की गोपनीयता में उक्ति वैचित्र्य का समावेश हैं। इसका लक्ष्यार्थ यह है कि नायिका के उरोज विकसित हो गए हैं। अङ्ग-अङ्ग मे तरुणाई आ गई है। ऐसे समय मे तुम (नायक) उसे त्यागने की भूल क्यों कर रहे हो।

"गंजन सु गुंज लग्यो तैसो पौन पुंज लग्यो,
दघोसमनि कुंज लग्यो गुंजन सों गजि कै।
कहै पदमाकर न खोज लग्यो ख्यालन को,
घालन मनोज लग्यो वीर तीर सजि कै।
सूखन सो बिंब लग्यो बूषन कदंब लग्यो,
मोहि न विलंब लग्यो आई गेह तजि कै,
मींजन मयंक लग्यो मीतहू न अंक लग्यो,
पंक लग्यो पाइन कलंक लग्यो बजिकै।"[२]

'बिंब', 'कदंब' और मयंक पद लाक्षणिक है। ये पद क्रमशः अधर, उरोज तथा मुख के उपमान है। कथन की गोपनीयता से चमत्कार पैदा किया गया है। इनका लक्ष्यार्थ यह है कि नायिका काम वाणों से विद्ध हो गई। उसके अधर सूखने लगे, उरोजो मे वेदना पैदा हो गई और शीघ्रता के साथ गृह त्याग कर कुंज भवन मे पहुंची पर वहाँ नायक के न होने से मुख मलमल कर पश्चाताप करने लगी कि मैं व्यर्थ ही यहाँ आकर कलङ्क की भागिनी हो गई।

'नख-शिख'

ग्वाल कवि कृत 'नख शिख' रस ग्रन्थ है। इसमें श्रीकृष्ण भगवान के नख-शिख का निरूपण है। एक-एक अङ्ग के वर्णन मे एक-एक कवित्त लिखा गया है। इस तरह एक ही कवित्त में एक अंग के अनेक उपमानो से अनेक सौन्दर्य बिंब प्रस्तुत किए गए हैं। इन बिंबों के लिए जो अप्रस्तुत विधान किया गया है उसमे प्रायः लक्षणा का चमत्कार है। उन लाक्षणिक पदो मे से कुछ यहाँ उदाहरण स्वरूप दिए जा रहे हैं।

सारोपा गौणी लक्षणा :—

"कैधौं विधि बागवान अधिक उतावल में कदली उलटि धरे सीमां शोभ माल की।
कैधौं भुज उदर हृदय सीस मंदिर के उवति अगार धर मंडी जोति जाल की।

---

१. पद्माकर ग्रन्थावली सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र प्र० सं० पृ० १००, पद १००
२. वही पृ० १२०, पद १८९

ग्वाल कवि कैंधों सुरराज वन नन्दन औंधी धरि दीनी है सरोमहा सुढ़ाल की।
कैंधों केलि कलमै कलानिधि मुखीन कों ऐ गोद की करन जुग जंघै नन्दलाल की ॥"[1]

इसमे 'विधि बागवान' लाक्षणिक पद है। इस पद मे विधि उपमेय और बागवान उपमान है। आधार गुण साम्य है। कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके भाव को सप्रेषणीय बनाया है।

"कैंधों अध ऊरध शरीर मध्य भाग ताके करन प्रसिद्धि बुर्ज बने हैं सम्हाल के।
कैंधों लंक भूपति विराजिबे के रंग गूढ़े मजेदा जड़े नील मणि जाल के।
ग्वाल कवि कैंधों कामिनी की केलि समये तबले मधुर मृदुदैन हारे ताल के।
कैंधो पृष्ठ भाग की प्रभा के वृद्धि करिबे को विधि ने बनाए है नितम्ब नन्दलाल के।"[2]

इसमे 'लक भूपति' पद लाक्षणिक है। इस पद मे लंक (कटि) उपमेय और भूपति उपमान है। आधार सादृश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके कवि ने भाव बिंब को गोचर कराया है।

समस्त नायिका-भेद ग्रन्थों मे लक्षणा के प्रयोग पर्याप्त मात्रा मे हुए है। इन प्रयोगों मे शास्त्रीयता और स्वाभाविकता भी है। इन कवियो ने क्रिया पदो के लाक्षणिक प्रयोगो द्वारा अर्थ को नया आयाम प्रदान किया है। इन पदो मे शुद्धा लक्षण लक्षणा सर्वत्र वर्तमान है। अप्रस्तुत-विधान परपरा से बद्ध है। इसी कारण से ऐसे उपमान भी इन कवियो ने ग्रहण किए है जो सौन्दर्य प्रतिपादन मे असमर्थ हैं। इन ग्रन्थो मे मुहावरो का खुलकर प्रयोग किया गया है। ये सभी प्रयोग निरूढ़ा लक्षणा के अन्तर्गत आते है। रीति-कालीन आचार्यो के लाक्षणिक प्रयोग जहाँ अधिक शास्त्रीय थे वहाँ इन प्रयोगो मे शास्त्रीयता के साथ-साथ काव्य की सवेदनीय सामर्थ्य का भी विशेष ध्यान रखा गया है। काव्य मे इन लाक्षणिक प्रयोगो के कारण बिंबात्मकता, सवेदनीयता तथा सप्रेपणीयता आ गई है और काव्य की चारुता समृद्ध हो गई है।

रीतिकालीन अलंकार सम्बन्धी ग्रन्थों में लक्षणा —

साहित्य मे अलंकरण की प्रवृत्ति अति प्राचीन है। विद्वानो ने इसका सवन्ध ऋग्वेद की सहिताओ से जोड़ रखा है। किन्तु कव्य-शास्त्र के रूप मे नाट्य शास्त्र मे उपमा, रूपक और दीपक तीन अलकार दिए गए है। उपमा एक अति प्राचीन अलकार है। यास्काचार्य ने निरूक्त में इसका उल्लेख किया है।[3] किन्तु यास्काचार्य

---

१. नख शिख, सं० गो० श्रीगोवर्द्धनलाल, सं० १९६०, पृ० २, पद ५

२. नखशिख, सं० गो० गोवर्द्धन लाल, सं०१९६०, पृ० ७ पद ६

३. अर्थात् उपमाः। यदेतत् तत्सदृशमिति गार्ग्यः। तदासां कर्म ज्यायसा वा गुणेन व प्रख्यात समेन वा कनीयांसं वा अप्रख्यातं वा उपमीते, अथापि कनीयसा ज्यायाँसम्। निरुक्त ३।१३

को उपमा से भिन्न अलकार के रूप मे रूपक की कल्पना नही थी। उनकी दृष्टि में रूपक लुप्तोपमा ही था।[1] बादरायण के 'वेदान्त सूत्रों' मे उपमा और रूपक दोनों का स्पष्ट रूप मे निर्देश है।[2] निरुक्त तथा 'वेदान्तसूत्रों' मे पाए जाने वाले उपमा तथा रूपक के बीज विकसित होते होते भरत तक आ पहुँचे थे। भरत मुनि के तीनों अलंकार औपम्य मूलक है। भरत ने उपमा की परिभाषा देकर, उपका के पाँच भेद प्रशंसा, निन्दा, कल्पिता, सदृशी और किंचितसदृशी किए है। इसके अनन्तर भरत मुनि कहते है—

"उपमा बुधैरेते ज्ञेया भेदाः मे समासतः।
शेषा ये लक्षणैनेक्तास्ते ग्राह्याः काव्यलोकतः ॥"[3]

इस श्लोक का अभिप्राय स्पष्ट करते हुए अभिनव गुप्त ने कहा है—नाट्य शास्त्र मे किए भेदों से जो भिन्न हो ऐसे उपमा भेद लक्षण मुख से समझ लेना चाहिए इससे ज्ञात होता है कि निन्दोपमा तथा प्रशंसोपमा दो भेद भरत ने स्वयं लक्षणकृत दिए और अन्यभेद लक्षणो पर से समझ लेने का निर्देश किया। इसके उपरान्त अभिनव गुप्त कहते है कि—"लक्षण मुख से अलंकार भेद करने का सूत्र एकबार अवगत कर लेने के बाद अलकार प्रपंच का विस्तार होने मे क्या देर थी? भरतोक्त तीनो अलंकारों में ही छत्तीस लक्षणो का वैचित्र्य प्रतीत होने पर ही कितने अलंकार होते है, और उनमे अन्यान्य अलकार छटाओ के मिश्रण से सैकड़ों और सहस्त्रों अलंकारो की कल्पना की जा सकती है।"[4]

भरत मुनि द्वारा उल्लखित छत्तीस काव्य लक्षणो[5] के सयोग से तथा अन्यान्य अलकार-छटाओ के मिश्रण से अलकारो का विकल्पन होने लगा। दण्डी ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि—"अलंकारो का विकल्पन अभी चल ही रहा है। अतः उनकी

---

१. लुप्तोपमानि अर्थोपमानि इत्याचक्षते। निरुक्ति ३।१८

२. अत एव चोपमा सूर्यकादिवत्। ब्रह्म सूत्र ३।२।१८ आनुमानिकमप्येकेषां शरीरूपकविन्यस्तगृहीतेः दर्शयतिच। ब्रह्म सूत्र १-४-१.

३. नाट्य शास्त्र १६।५६

४. इत्येवम् उपमा रूपकादीनाः अलंकारत्वेन वक्ष्यमाणानां प्रत्येकं षट त्रिंशल्लक्षण-योगात्, लक्षणानापमि च एकद्वित्र्याद्यवान्तरविभागभेदात् आनन्त्यं केन गणयितुं शक्यम्, इदानीं शतसहस्त्राणि वैचित्र्याणि सहृदयैरुत्प्रेक्ष्यन्ताम्।
(अभिनव भारती २।३१७)

५. षटत्रिंशदेतानि तुलक्षणानि। प्रोक्तानि वै भूषण संमितानि।
(ना० शा० १६।४२)

गणना कौन कर सकता है ? किन्तु इस विकल्पन का बीज पूर्व आचार्यों ने पहले ही दर्शित किया है । हम केवल उसका परिसस्कार मात्र करते है ।"[1]

नाट्य-शास्त्र के अनन्तर अग्नि पुराण मे १६ अलंकारो का नाम आया है । आचार्य भामह के काव्यालकार मे ३८ अलकारो का निरूपण है । आचार्य दण्डी के काव्यादर्श मे यह संख्या ५२ हो गई है । आचार्य रुय्यक के समय तक अलंकारो की सख्या १०३ और पण्डितराज जगन्नाथ ने अपने ग्रन्थ रस-गंगाधर मे इनकी सख्या १६१ तक मान ली है ।

रीतिकालीन हिन्दी साहित्य मे सस्कृत साहित्य-शास्त्र की उत्तर-कालीन परम्परा का अनुकरण किया गया, जिसमे 'चन्द्रालोक' एव कुवलयानन्द ग्रन्थ आते हैं । इन ग्रन्थो में पूर्ववर्ती खण्डन-मण्डन और सूक्ष्म विवेचन की प्रणाली का अनुकरण नही किया गया है । यह अलकार निरूपण की सरल तथा सक्षिप्त शैली है । इसमें काव्याग परिचय की अपेक्षा रसिकता का पोषण अधिक है । इस शैली का आरम्भ हिन्दी मे सम्भवत: कर्णेश के 'श्रुति भूषण' आदि ग्रन्थो से हुआ, पर इसकी वास्तविक प्रतिष्ठा तो महाराज जसवंतसिंह के 'भाषा भूषण' से ही हुई । भाषा भूषण की रचना दोहों मे की गई है—जिनमे पहले चरण में अलकार का लक्षण और दूसरे मे उदाहरण दिया गया है । इस संक्षिप्त शैली का अनुकरण रीतिकाल मे अनेक ग्रन्थकारों ने किया है । किन्तु उनमे एक ऐसा भी वर्ग है जो लक्षण के लिए दोहा और उदाहरण के लिए कवित्त तथा सवैयो का प्रयोग करता है । इस श्रेणी के अनेक ग्रन्थो का नाम उल्लेख किया जाता है । यहाँ पर उपलब्ध ग्रन्थो—जैसे 'कवि प्रिया', 'भाषा भूषण', 'ललित ललाम', 'शिवराज भूषण', श्रृङ्गार निर्णय, 'कवि कुल कठा भरण', अलंकार दर्पण तथा पद्माभरण आदि ग्रन्थो मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोग दिए जा रहे है ।

अलंकारो मे सादृश्यालंकारो मे जो अप्रस्तुत विधान किया जाता है वह साम्य पर आधारित रहता है । साम्य तीन प्रकार के होते है—(१) रूप साम्य, (२) गुण साम्य और (३) प्रभाव साम्य । रूप साम्य मूलक अप्रस्तुत वस्तु के स्वरूप को स्पष्ट करके रूप जन्य चेतना को उद्बुद्ध करते है । गुण साम्य मूलक अप्रस्तुत वस्तु के धर्म अथवा गुण की अनुभूति को स्पष्ट करते है और प्रभाव साम्य साधर्म्य का ही सूक्ष्मतर रूप है, इसका विधान किसी प्रभाव की अनुभूति को संवेदनीय बनाता है । धर्म के स्थान पर धर्मी का प्रयोग करने पर लक्षणा-शक्ति का चमत्कार उत्पन्न हो जाता है ।

---

१. काव्य शोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते ।
ते चाद्यापि विकल्प्यन्ते कस्तान् कात्स्र्न्येन वक्ष्यति ॥
किन्तु बीजं विकल्पानां पूर्वाचार्यैः प्रदर्शितम् ।
तदेव परिसंस्कर्तुमयमस्मत्परिश्रमः ॥ (काव्यादर्श २।१, २)

मानवीकरण मे जड़ वस्तुओं, भावनाओं अथवा किसी अंग विशेष पर मानव गुणों का आरोप किया जाता है। इन सभी के मूल मे भी लक्षणा का चमत्कार होता है।

रूपक अलंकार मे गौणी सारोपा लक्षणा के मूल मे होने के कारण ही चमत्कार पैदा होता है। अतिशयोक्ति अलकार के मूल मे साध्यावसाना गौणी लक्षणा होती ही है। हेतु अलकार के मूल मे लक्षण-लक्षणा की शक्ति भी प्राय. चमत्कार पैदा करती है। इसी तरह परिकरांकुर, समासोक्ति, निन्दास्तुति, स्तुतिनिन्दा, व्याज-स्तुति, व्याज निन्दा, गूढोत्तर और गूढोक्ति मे भी लक्षणा-शक्ति होती है। इनके अतिरिक्त प्रायः अप्रस्तुत प्रशंसा, प्रस्तुतांकुर, अपह्नुति और गम्यतोत्प्रेक्षा में भी लक्षणा-शक्ति का चमत्कार हाता है। इन अलंकारो के अतिरिक्त जब अन्य अलंकारों के निरूपण मे कवि-प्रतिभा बिंब-विधान करने लगती है तो वहाँ भी लक्षणा-शक्ति का चमत्कार पाया जाता है।

वास्तव मे समस्त साहित्य ग्रन्थों मे अर्थ का वैभव बिखरा पड़ा है। रस अनुभूति और अलंकार चमत्कार अर्थ की ही आधार शिला पर खड़े है। लक्षणा-शक्ति अर्थ व्यापार की एक शक्ति है जिसके द्वारा अप्रस्तुत विधान मे बिंबो को गोचर किया जाता है। लोकोक्तियाँ तथा मुहावरे जो भाषा की स्फूर्ति हैं, उनका भी अलंकारिक कवियो ने खुलकर प्रयोग किया है। इनके भी मूल में निरूढ़ा लक्षणा होती ही है। इनके अतिरिक्त कुछ पद कवि प्रयोग प्रसिद्धि के कारण किसी विशेष अर्थ मे रूढ़ हो गए हैं वे भी निरूढ़ा लक्षणा का विधान करते है। अब यहाँ अलकार ग्रन्थों में आए हुए लाक्षणिक प्रयोगो के कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं।

कवि प्रिया

आचार्य केशव जो रीतिकाल से पहले के रीति ग्रन्थकार हैं, उनकी 'कवि प्रिया' से कुछ लाक्षणिक प्रयोगों के उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे है, जिनसे उपर्युक्त कथन की स्पष्टता भी होगी।

निरूढ़ा लक्षणा—

"जान्यो न मैं मद जोबन को उतर्यो कब, काम को काम गयो ई।"[1]

'मद' का शब्दार्थ शराब है पर लक्ष्यार्थ नशा ग्रहण होता है। मादक वस्तुओं मे ही नशा का होना सम्भव है किन्तु कवि प्रयोग प्रसिद्धि से 'जोबन' के साथ मद अपने लक्ष्यार्थ मे प्रयुक्त होते-होते रूढ़ हो गया है। इसी तरह काम के पक्ष मे गयो का प्रयोग है। काम का जाना असम्भव है क्योंकि वह देहधारी नही है। इस पद का लक्ष्यार्थ का काम भावना की समाप्ति है पर कवि प्रयोग प्रसिद्धि से यह भी अपने लक्ष्यार्थ मे रूढ़ हो गया है।

---

१. कवि प्रिया, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रथम सं०पृ० १५०, पद १७

"नाह के नेह के मामिले अपनी छांह हू की परतीत न कीजै ।"[1]

'छांह हू की परतीत न कीजै' मुहावरा है । इसका लक्ष्यार्थ है—किसी का भी विश्वास न करो ।

"सर्वस लोग लुटावत देखि कै दारिद देह दरार सी खाई ।"[2]

'दरार खाई' मुहावरा है । इसका लक्ष्यार्थ है अत्यधिक दुखी होना ।

शुद्धा लक्षण-लक्षणा—

"देखो नही हरि देखि तुम्हें यहि होति है आंखिन ही में अखारो ।।"[3]

'अखारो' पद लाक्षणिक है । अखाड़ा कुश्ती लड़ने का स्थान होता है पर यहाँ इसका लक्ष्यार्थ है कुश्ती होना अथवा लड़ाई होना ।

गौणी सारोपा लक्षणा—

"जानकी के जनकादिक के सब फूलि उठे तरु पुन्य पुराने ।"[4]

'तरु पुन्य' लाक्षणिक पद है । इस पद मे उपमेय पुन्य एव उपमान तरु है । इसका आधार सादृश्य है । पुन्य पर तरु का आरोप करके फूलना कहा गया है । अभिप्राय यह है कि जनकादिक के पूर्व कृत पुण्य अवसर पाकर प्रकट हो गए ।

"वदन चन्द लोचन कमल, वाहु वीसनी जानि ।
कर पल्लव अरु भ्रू लता, विंवा धरनि बखानि ।।"[5]

'वदन चन्द', लोचन कमल', 'वाहु वीसनी' (कमल नाल) 'कर पल्लव', भ्रूलता और विंब अधर लाक्षणिक पद है । वदन, लोचन, वाहु, कर, भ्रू तथा अधर उपमेय और चन्द, कमल, वीसनी, पल्लव, लता एव विंब उपमान है । इनका आधार रूप सादृश्य है । उपमानो की सहायता से उपमेयो की अनुभूति को संवेदनीय बनाया गया है ।

"कर कंजनि पल्लवन भुज बिस वल्लरी सुपास ।
रत्न तारका कुसुम सर नखरुचि केसवदास ।।"[6]

'कर कंजनि', रत्न तारका तथा लाक्षणिक पद है । कर एवं रत्न उपमेय है और 'कंजनि' तथा तारका उपमान है । इनका आधार सादृश्य है । उपमानो की सहायता से उपमेय सम्प्रेपणीय बनाए गए है ।

---

१. कवि प्रिया, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्र० सं० पृ० ७७, पद ७
२. वही पृ० १७८, पद ११
३. वही पृ० १८५, पद २०
४. वही पृ० १८२, पद ३
५. वही पृ० १८४, पद १३
६. वही पृ० २०१, पद २६

"बिन गुन तेरी आन, भृकुटी कमान तानि,
कुटिल कटाक्ष वान, यह आचिरज आहि।"[1]

'भृकुटी कमान' तथा कुटिल कटाक्ष वान लाक्षणिक पद है। इनमें भृकुटी तथा कुटिल कटाक्ष उपमेय और कमान एवं वान उपमान है। इनका आधार गुण सादृश्य है। उपमानों की सहायता से उपमेय बिंबों को स्पष्ट किया गया है।

साध्यवसाना गौणी लक्षणा—

"सोने की एक लता तुलसी वन क्यों वरनौं सुनि बुद्धि सकै छ्वै।
'केसवदास' मनोज मनोहर ताहि फले फल श्रीफल से द्वै।
फूलि सरोज रह्यो तिन ऊपर रूप निरूपत चित्त चलै च्वै।
तापर एक सुवा सुभ तापर खेलत बालक खंजन के द्वै॥"[2]

'सोने की लता' 'श्रीफल', 'सरोज', सुवा और खंजन के बालक उपमान है नारी के शरीर, उरोज, मुख, नासिका तथा नेत्रो के। इनका आधार रूप सादृश्य है। यहाँ कवि ने नारी के शरीर के सौन्दर्य का उपमानो के सहारे सवेदनीय बिंब प्रस्तुत किया है।

भाषा-भूषण

महाराज जसवन्तसिंह कृत 'भाषा-भूषण' 'चन्द्रालोक' की छाया पर विरचित एक अलकार ग्रन्थ है। उन्होने एक ही दोहे मे लक्षण और उदाहरण दोनों का सन्निवेश कर दिया है। इस सक्षिप्त प्रणाली के कारण यह ग्रन्थ छात्रोपयोगी अधिक है। इस छोटे से ग्रन्थ मे १०८ अलकारों के लक्षण उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। इन अलंकारो मे ऐसे अनेक अलकार है जिनके मूल मे लक्षणा शक्ति निहित है। उनमे से कुछ यहाँ लाक्षणिक प्रयोग के उदाहरण स्वरूप दिए जा रहे है।

निरूढ़ा लक्षणा—

"कीरति अरिकुल संग ही जलनिधि पहुँची जाइ॥"[3]

'कीरति जल निधि पहुँची' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है—कीर्ति समस्त पृथ्वी और सागर पर छा गई।

"जाचक तेरे दान ते भए कल्पतरु भूप।"[4]

---

१. कवि प्रिया, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्र० सं०, पृ० १५२, पद २८
२. वही पृ० १८४, पद १८
३. भाषा भूषण, सं० व्रजरत्नदास, प्र० सं०, पृ० १२, पद ६२
४. वही पृ० २६, पद १६२

'भए कल्पतरु' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है दानी हो गए है अर्थात् कल्पतरु की तरह याचक की इच्छानुसार दान देने लगे हैं।

"मोहन कर मुरली नहीं है कछु बड़ी बलाइ।"[१]

'बलाइ' लाक्षणिक पद है। यहाँ मुरली को बड़ी बलाइ' कहा गया है। इसका शब्दार्थ है—बडी व्याधि किन्तु इसका लक्ष्यार्थ है स्नेहाकर्षण की तीव्र वेदना उत्पन्न करने वाली। यहाँ कवि ने धर्मी को धर्म के रूप मे स्थापित कर दिया है। कवि प्रयोग प्रसिद्धि से इसका प्रयोग इस रूप मे रूढ हो गया है।

शुद्धा लक्षण-लक्षणा—

"मुख ससि या ससि तें अधिक उदित जोति दिन राति।
सागर ते उपजी न यह कमला अपर सुहाति ॥[२]

'कमला' लाक्षणिक पद है। कमला का लक्ष्यार्थ है सौन्दर्ययुक्त नारी।

सारोपा गौणी लक्षणाः—

"बिजुरी सी पंकजमुखी, कनक लता तिय लेखि।
बनिता रस शृङ्गार की कारर मुरति पेखि॥"[३]

'वनिता शृङ्गार मूरति' लाक्षणिक पद है। वनिता उपमेय और शृंगार मूर्ति उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। उपमान के सहारे उपमेय के बिंब का कवि ने स्पष्ट किया है।

"अति सोभित विद्रुम अधर नहिं समुद्र उत्पन्न।
तुअ मुख पंकज विमल अति सरस सुवास प्रसन्न॥"[४]

मुख पंकज लाक्षणिक पद है। इसमे मुख उपमेय है और पकज उपमान है। उपमेय के बिंबो को कवि ने उपमान के सहारे सवेदनीय बनाया है।

"नैन कमल ए ऐन हैं और कमल किहि काम।
गौवन करति नीकी लगति कनक लता यह बाम॥"[५]

'नैन कमल' पद लाक्षणिक है। नैन पर कमल के आरोप द्वारा कवि ने बिंब को संवेदनीय बनाया है। उपमेय और उपमान का आधार सादृश्य है।

"धर्म दुरै आरोप तें शुद्ध अपह्नुति जानि।
उर पर नाहिं उरोज ए कनक लता फल मानि॥"[६]

---

१. भाषा भूषण, सं० ब्रजरत्नदास, प्र० सं०, पृ० २७, पद १९४
२. वही पृ० ८, पद ५५
३. वही पृ० ७ पद ४६
४. वही पृ० ८, पद ५७
५. वही पृ० ८ पद ५६
६. वही पृ० ९ पद ६३

'उरोज कनकलता फल' लाक्षणिक पद है। उरोज उपमेय पर कनकलता फल उपमान का आरोप करके कवि ने विंव को अलौकिक सौन्दर्य से मण्डित कर दिया है।

साध्यवसाना गौणी लक्षणा:—

"अतिशयोक्ति रूपक जहाँ केवल ही उपमान।
कनकलता पर चन्द्रमा धरे धनुष द्वै वान॥"[1]

'कनकलता' चन्द्रमा, धनुप द्वै तथा वान उपमान है क्रमशः नारी के शरीर मुख, भृकुटी और कटाक्ष के। कवि ने उपमानो के सहारे उपमेय विंव को सवेदनीय वनाने का प्रयास किया है।

"समासोक्ति प्रस्तुत फुरैऽप्रस्तुत वर्नन मांझ।
कुमिदिनी हूँ प्रफुलित भई देखि कलानिधि सांझ॥"[2]

कुमुदिनी तथा कलानिधि उपमान है क्रमशः नायिक और नायक के कवि ने उपमानों के द्वारा ही उपमेयों का विंव सम्प्रेपणीय वनाया है।

'ललित-ललाम'

'मतिराम' कृत 'ललित-ललाम' एक अलकार ग्रन्थ है। इसमे भाषा-भूषण की शैली का अनुकरण नही किया गया है वल्कि लक्षण दोहे में और उदाहरण दोहे, कवित्त अथवा सवैयो मे अलग दिया गया है—मतिराम ने लक्षणों पर विशेप ध्यान नही दिया है पर उनके उदाहरण अत्यन्त स्वच्छ हैं। इससे इनके आचार्यत्व की प्रतिभा की अपेक्षा कवित्व की प्रतिभा का अधिक निखार इनके अलंकार के उदाहरणो मे दिखाई पड़ता है। इस सम्वन्ध मे डा० नगेन्द्र का मत है—

"इसके रचयिता आचार्यत्व अथवा अलंकार निरूपण को प्रधान लक्ष्य वनाकर नही चले। यद्यपि इनका निरूपण—विशेप कर मतिराम और रघुनाथ का अत्यन्त स्वच्छ है, फिर भी यह मानना ही पडेगा कि उन्होंने लक्षणों की अपेक्षा उदाहरणों को कही अधिक महत्व दिया है।"[3]

कुछ अलकारो के मतिराम ने नाम भी वदले है—जैसे कैतुवापह्नुति प्रतियमान उत्प्रेक्षा, अन्योन्य तथा करण माला का उन्होने क्रमशः छलापन्हुति, गुप्तोत्प्रेक्षा, परस्पर तथा हेतुमाला नाम करण किया है। इस सम्वन्ध मे डा० त्रिभुवनसिंह का मत है—

---

१. भाषा भूषण, सं० व्रजरत्नदास, प्र० सं०, पृ० १० पद ७७
२. वही पृ० १२ पद ९५
३. रीति काव्य की मिका, डॉ० नगेन्द्र, तृ० सं०, पृ० १४२

"ऐसा जान पड़ता है कि मतिराम को नाम बदलने का शौक था, जैसा कि उन्होंने अलंकार शब्द के लिए 'ललाम' शब्द का उपयोग किया है और अपने ग्रन्थ का नाम 'ललित ललाम' रक्खा है।" [१]

रूपक, अपन्हुति, अतिशयोक्ति, समासोक्ति, परिकराकुर, अप्रस्तुत प्रशंसा, व्याजस्तुति, व्याज निन्दा, असंगति, अर्थान्तरन्यास, ललित, गूढ़ोत्तर, गूढोक्ति तथा लोकोक्ति आदि अलकारो के मूल मे लक्षणा शक्ति का चमत्कार होता है। यहाँ पर उनमें से कुछ उदाहरण प्रस्तुत करके लाक्षणिक चमत्कार दिखाए जा रहे हैं।

निरूढ़ा लक्षणा—

"ऊधो नहीं हम जानत हो मनमोहन कूबरी हाथ बिकै हैं।"[२]

'हाथ बिकै हैं' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है कि वशीभूत हो जाना।

"मेरी सीख सिखै न सखि, मोसो उठै रिसाय।
सोयो चाहत नींद भरि, सेज अङ्गार बिछाय॥"[3]

'सोयो चाहत सेज अंगार बिछाय' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है विरहावस्था मे सेज पर पुष्प बिछाकर विरहाग्नि को और भी बढाया जाएगा।

"मैं तृन सो गन्यो तीनहु लोकनि तू तृन ओट पहार छपावै।"[४]

'तृन सो गन्यो' तथा 'तृन ओट पहार छपावै' मुहावरे और लोकोक्ति हैं। इनका लक्ष्यार्थ है कुछ न समझना एवं असभव कार्य करना।

शुद्धा लक्षण-लक्षणा—

"इन्द्रजाल कंदर्प को, कहै कहा मतिराम।
आगि लपट, वर्षा करै, ताप धरै घनश्याम॥"[५]

'आगि लपट' तथा वर्षा करै' लाक्षणिक पद है। क्रमशः इनका लक्ष्याथ विरहाग्नि और अश्रु वर्षा है।

सारोपा गौणी लक्षणा—

"जंग में अंग कठोर महा मदनीर झरै झरना सरसे है,
झूलनि रंग घने 'मतिराम' महीरुह फूल प्रभा निकसे हैं।

---

१. महाकवि मतिराम, डॉ० त्रिभुवनसिंह, प्र० सं०, पृ० २०४

२. मतिराम ग्रन्थावली, सं० कृष्ण बिहारी मिश्र, प्र० सं०, पृ० १३२, पद २१३

३. वही पृ० १५०, पद ३०१

४. वही पृ० १६२, पद ३६७

५. वही पृ० ११२, पद ११२

सुन्दर सिंदुरमंडित कुंभनि गैरिक श्रृंग उतंग लसे हैं,
भाऊ दिवान उदार अपार सजीव पहार करी बकसे हैं।"[१]

मदनीर झरना', झूलनि रंग महीरुह फूल प्रभा', सिंदुरमंडित कुंभनि गैरिक श्रृंग लाक्षणिक पद हैं। मदनीर, झूलनि रग एव सिंदुरमण्डित कुंभनि, उपमेय तथा झरना, महीरुह फूल प्रभा और गैरिक श्रृंग उपमान हैं। इनका आधार सादृश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके कवि ने बिंबों को अलौकिकता प्रदान की है।

"बाल बदन प्रतिबिम्ब बिधु, ज्यो रह्यो तिहि संग।
ज्यो रहत अब रजनि दिन, तपन तपावत अंग॥"[२]

'बदन प्रतिबिंब बिधु' लाक्षणिक पद है। बदन प्रतिबिंब उपमेय और बिधु उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। मुख प्रतिबिंब पर बिधु का आरोप करके कवि ने बिंब को संप्रेषणीय तथा संवेदनीय बनाया है।

साध्यवसाना गौणी लक्षणा—

"पारावार पीतम को प्यारी ह्वै मिली है गंग,
बरन कोऊ कबि कोविद निहारि कै;
सो तो मतो 'मतिराम' के न मन मानै निज,
मति सों कहत यह बचन बिचारि कै।
जरत बरत बड़वानल सों बारि निधि,
बीचिनि के सोर सों जनावत पुकारि कै।
ज्यावति बिरचि ताहि प्यावत पियूष निज,
कलानिधि मंडल कमंडल तें ढारि कै॥"[३]

'पारावार' नायक का, 'गग' नायिका का 'बड़वानल' काम भावना का 'बीचिनि' भाव तरग का, पियूप श्रृंगार रस का और 'कलानिधि' नारी सौन्दर्य का उपमान है। इस तरह पूरे कवित्त का अर्थ नायक-नायिका के पक्ष में घटित होता है। इनका आधार भाव साम्य है।

'शिवराज भूषण'

संपूर्ण रीतिकालीन साहित्य में भूपण ही एक मात्र ओजस्वी वाणी में उद्घोष करने वाले कवि हैं। उनके वीर रस से ओत-प्रोत उद्‌गार तत्कालीन भारतीय मानस का प्रतिनिधित्व करते थे। उनके वीर नायकों के प्रति हिन्दू जनता में सम्मान की भावना उस समय भी थी और आज भी है। इस सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है—

---

१. मतिराम ग्रन्थावली, सं० कृष्णबिहारी मिश्र, प्र० सं०, पृ० १०५ पद ७१
२. वही पृ० १०८ पद ९०
३. वही पृ० १०८ पद ८८

"...भूषण ने जिन दो नायकों की कृति को अपने वीर काव्य का विषय बनाया वे अन्याय-दमन मे तत्पर, हिन्दू धर्म के सरक्षक, दो इतिहास प्रसिद्ध वीर थे। उनके प्रति भक्ति और सम्मान की प्रतिष्ठा हिन्दू जनता के हृदय मे उस समय भी थी और आगे भी बराबर बनी रही या बढ़ती गई।"[1]

भूषण रीतिकालीन कवि थे। तत्कालीन साहित्यिक प्रभावों से वे कैसे मुक्त रह सकते थे। उनकी कृति 'शिवराज भूषण' तत्कालीन परिस्थितियों की देन है। तत्कालीन परम्परा के अनुसार निर्मित यह एक अलकार ग्रन्थ है। कवि इस ग्रन्थ में अपने कथन को प्रभावपूर्ण और चमत्कारिक बनाने के लिए जहाँ अप्रस्तुत विधान करता है वहाँ प्राय लक्षणा का चमत्कार देखा जा सकता है। भूषण के समय में ब्रज-भाषा का एक प्रौढ़ रूप साहित्य के माध्यम से व्यक्त हो चुका था। ब्रज-भाषा का स्वच्छ और मँजा हुआ स्वरूप उनके समक्ष था। गूढोक्तियाँ, लोकोक्तियाँ तथा मुहावरे भाषा के सहज स्वरूप हो गए थे। ऐसी परिस्थिति मे गूढ़ोक्तियाँ लोकोक्तियाँ और मुहावरो का भूषण की अभिव्यक्ति मे स्थान पा जाना सहज स्वाभाविक था। ऐसे सभी भाषा के क्षेत्र लक्षणा की शक्ति से समृद्ध हो जाते है।

इस स्थल पर 'शिवराज भूषण' में प्रयुक्त कुछ लाक्षणिक उदाहरणो को दिया जा रहा है।

निरूढ़ा लक्षणा :—

"महाराज शिवराज चढ़त तुरंग पर ग्रीवाजातनै कर गनीम अतिबल की।
भूषण चलत सरजा की सैन भूमि पर छाती दरकति खरी अखिल खलन की।
कियो दौरि घाव अमीर उमराव पर गई कटि नाक सगरेई दिल्ली दल की।
सूरति जराई कीन्हीं दाहुपात साह उर स्याही जाय सब पात साही मुख झलकी।।"[2]

'छाती दरकति', कटि गई नाक और स्याही जाय सब पातसाही मुख झलकी मुहावरे है। इनका क्रमश: लक्ष्यार्थ है—डरना या चिंतित होना, इज्जत चली जाना तथा कलकित हो जाना। इसी लक्ष्यार्थ मे ही ये मुहावरे लोक प्रसिद्धि पा चुके है।

सारोपा गौणी लक्षणा :—

"कलियुग जलधि अपार उद्ध अधरम्म ऊर्मिमय।
लच्छनिलच्छ मलिच्छ कच्छ अरु मच्छ मगरचय।
नृपति नदी नद वृन्द होत जाको मिलि मीरस।
भनि भूषण सब भुम्मि घेरि किन्नि यसुअप्पवस।

---

१. हि० सा० इति०आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, सं० परि० सं० २००२, पृ० २२१
२. शिवराज भूषण, भूषण, सं० १९०५ ई०, पृ० ३१-३२, पद १३३

हिन्दुवान पुण्यगाह फवनिक तासु नियाहक तासु निवाहक साहि सुव ।
वरदवान फिरवान धरि यश जहाज शिवराज दुव ॥"[1]

'कलियुग जलधि', 'अधरम्म उर्मि', 'मलिच्छ कच्छ अरु मच्छ, मगर, 'नृपति नदी नद', हिन्दवान पुण्यगाह' और यश जहाज लाक्षणिक पद है । इन पदो में उपमेय और उपमान दोनो है । इनका आधार सादृश्य है । तत्कालीन परिस्थिति का सागर के अगों-उपांगों के उपमानों द्वारा विवित किया गया है। इससे परिस्थिति की भीपणता, गम्भीरता, और उससे त्राण पाने की एक मात्र ज्योति का चित्र कवि पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है । इस परिस्थिति का यदि कलियुग, मलिच्छ आदि शब्दों के द्वारा ही अभिव्यक्ति की गई होती तो कथन में प्रभाव और चमत्कार न उत्पन्न होता । यही कवि प्रतिभा का चमत्कार है ।

"शिव सरजा के कर लसै सोन होइ किरवान ।
भुज भुज गेश भुजंगिनी भरवत पौन अरि प्रान ॥"[2]

'शिव सरजा' तथा 'पौन अरि प्रान' लाक्षणिक पद है । दोनों में उपमेय और उपमान हैं। इनका आधार गुण साम्य है। इस तरह शिवाजी की वहादुरी का श्रेष्ठतम स्वरूप और तलवार की भीपणता का चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है।

गौणी साध्यावसाना :—

"मंगत मनोरथ के दानि प्रथमहिं तोहिं कामतरु कामधेनु सो गनाइयतु है।
याते तेरे गुण सब गाइ को सकतु कवि वुधि अनुसार कछु हम गाइयतु है।
भूषण कहै यों साहि तनय शिवराज निज बखत वढ़ाइ करि तोहिं ध्याइयतु है।
दीनता को डारि औ आधीनता विडारि दीह दारिद को मारि तेरे द्वार आइयतु है।"[3]

'कामतरु' तथा कामधेनु लाक्षणिक पद है। दोनों पद शिवाजी के उपमान है। आधार सादृश्य है। शिवाजी पर कामतरु और कामधेनु की दानी प्रवृत्ति का आरोप करके कवि उनके दान की महत्ता स्थापित करता है। कवि का कथन है कि याचक जो मनोरथ लेकर शिवाजी के पास पहुँचता था वह पूर्ण हो जाता था।

"वासव से विसरत विक्रम की कहा चली विक्रम लखत वीर वखत विलन्द के।
जाके तेज वृन्द शिवाजी नरिंद मसरंद माल मकरंद कुलचंद साहि नन्द के।
भूषण भनत जाके वैर वैर नैरनि मैं होत अचरज घर घर दुखदन्द के।
कनक लतानि इन्दु इन्दुनि मै अरविंद झरै अरविंद नितै वुन्द मकरन्द के॥"[4]

---

१. शिवराज भूषण, भूषण, सं० १९०५ ई०, पृ० १०, पद २१
२. वही पृ० १५, पद ४१
३. वही पृ० २०-२१, पद ७२
४. वही पृ० १६, पद ६४

'कनक लतानि', 'इन्दु' 'अरविद' और मकरंद उपमान पद है। इनके उपमेय क्रमश: शत्रुओ की नारियाँ, मुख, नेत्र तथा आँसू है। इनका आधार सादृश्य है। नारियो की शरीर के वर्ण को कनकलता मुख को इन्दु की ज्योत्स्ना, नेत्र को अरबिंद और आँसू को मकरद कहकर विवित्त किया गया है। इस तरह नारियों के सौन्दर्य एवं उनकी कारुणिक अवस्था का चित्र कवि प्रस्तुत करने मे समर्थ हुआ है।

'कविकुल कंठाभरण'

दूलह कवि कृत 'कविकुल-कंठाभरण' अलकार का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ कवित्त और सवैयो में लिखा गया है। 'भापा भूपण' की तरह एक ही पद में लक्षण और उदाहरण इसमें भी दिए गए है। पद विस्तार के कारण लक्षण एवं उदाहरण पर्याप्त मात्रा में स्पष्ट है। कुवलयानन्द के आधार पर यह ग्रन्थ लिखा गया है।

अलकारो के उदाहरण मे जहाँ कवि रूपक, अतिशयोक्ति, परिकराकुर, समासोक्ति, अप्रस्तुत प्रशंसा, व्याजनिन्दा, व्याजस्तुति गूढोक्ति तथा लोकोक्ति आदि अलकारो के लिए अप्रस्तुत विधान करता है, वहाँ लक्षण का चमत्कार आ ही जाता है। मुहावरे, कवि प्रयोग प्रसिद्धि के निखरे हुए वाक्यांश एव शब्दो मे भी लक्षणा शक्ति का प्रभाव होता है। यहाँ पर उन उदाहरणो मे—जिसमे लक्षणा-शक्ति का प्रयोग हुआ है कुछ उदाहरण स्वरूप दिए जा रहे है।

निरूढ़ा लक्षणा—

"फूले सखा सखी नैन तन दुति देखे ऐन केतकी कनक जोति नरम निहारी है।"[१]

'फूले' पद लाक्षणिक है। फूल फूलता है पर यहाँ नैन का फूलना कहा गया है। इसका लक्ष्यार्थ है प्रसन्न होना किन्तु कवि प्रयोग प्रसिद्धि के कारण यह पद अपने लक्ष्यार्थ मे भी रूढ हो गया है।

"सुन्दर सरस सुकुमार मुख कमल सों रवि को उदै विचारि जुदै कुम्हिलानी है।"[२]

'कुम्हिलानी' पद लाक्षणिक है। पुष्प के लिए कुम्हिलाना का प्रयोग होता है पर यहाँ नायिका के पक्ष मे कुम्हिलानी शब्द का प्रयोग हुआ है। कवि प्रयोग प्रसिद्धि से यह पद अपने लक्ष्यार्थ उदास होना अथवा दुखी होना, रूप में रूढ़ हो गया है।

सारोपा गौणी:—

"बैन सुधा सुने जीजे, नैन कंज देखे सुख,
प्यारे न्यारे चन्द हो मृगाम रथ में न है।"[3]

---

१. कविकुल कंठाभरण, सं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर' प्र० बा०, पृ० ८ पद २३
२. वही पृ० १० पद २७
३. वही पृ० ४ पद १३

'बैन-सुधा' तथा नैन कंज' लाक्षणिक पद है। बैन एवं, नैन उपमेय है। सुधा और कंज उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। बैन पर सुधा का आरोप करके सुधा के आकर्षण और माधुर्य का और नैन पर खंजन के नेत्र सौंदर्य का आरोप किया गया है। इस तरह दोनो बिंबों को कवि ने संप्रेप-ठरिय बनाया है।

"चौथी है अकारण सो कारज जनम रूप।
लता पर शोभावान श्रीफल सुढारमे।"[१]

इसमे 'रूपलता' लाक्षणिक पद है। इस पद मे रूप पर लता की कमनीयता और सुकुमारता का आरोप किया गया है। श्रीफल उपमान है उरोज का। इस प्रकार के अप्रस्तुत विधान द्वारा कवि बिंबों को अलौकिकता प्रदान की है। श्रीफल में साध्यावसाना लक्षणा का चमत्कार है।

"कहै नट नागर सकल गुन आगर तो अधर सुधाते सुख सागर अपारमे।"[२]

अधर सुधा तथा सुख सागर लाक्षणिक पद हैं। अधर एव सुख उपमेय और सुधा तथा सागर उपमान है। अधर पर सुधा, के माधुर्य,—आकर्षण का एवं सुख पर सागर की विशालता का आरोप किया गया है। इस तरह कवि ने बिंबों को सवेदनीय बनाया है।

साध्यवसाना गौणी लक्षणा:—

"चारु विधु मंडल में विद्रुम विराजै छद मोतिन की छाजै छपाये छपते नहीं।
कहै कवि दूलह अपर तन्हुगिभ यहै सापन्हुति बरन विशेष रचना लहीं।
शंकर न कयलास हेमलता कीनो बास हेरे को पलास है पलास कलिका नहीं॥"[३]

इसमें 'विधु मंडल, विद्रुम, मोतिन, शंकर, हेमलता और पलास कलिका क्रमशः मुख, अधर, दन्त, उरोज, शरीर एवं नारी के उपमान है। इनका आधार सहृश्य है। इस पद मे उपमानों द्वारा ही उपमेय के सौदर्य का कवि प्रस्तुत करके एक अलौकिक सौन्दर्य की झांकी दी है।

"चारु चन्द उवै चकोरन को चैन देत।
बाम को जतावै सो अराम सखी जनको।"[४]

चन्द और चकोर क्रमशः नायक मुख एवं नायिका के उपमान है। कवि उपमानों के माध्यम से विंबो को सवेदनीय बनाया है। इसका लक्ष्यार्थ है नायक के दर्शन होते ही नायिका तथा उसकी सखियाँ आनन्दित हो गईं।

---

१. कविकुल-कंठाभरण, सं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर,' प्र० आ०, पृ. १४ पद ३७
२. वही पृ० १५ पद ३७
३. वही पृ० ७ पद २०
४. वही पृ० १० पद २६

' अलंकार दर्पण '

महाराज रामसिह कृत 'अलकार दर्पण' एक अलकार ग्रन्थ है। इसमे लक्षण और उदाहरण दोहों में दिए गए हैं। उदाहरण स्वच्छ और स्पष्ट है। इस ग्रन्थ में रूपक, अतिशयोक्ति, समासोक्ति, परिकराकुर, अप्रस्तु प्रशसा, निन्दा, व्याज निन्दा, गूढ़ोक्ति, लोकोक्ति आदि अलकारो में लक्षणा का चमत्कार पाया जाता है। यहाँ पर कुछ लाक्षणिक प्रयोगो के उदाहरण दिए जा रहे है—

निरूढ़ा लक्षणाः —

"मुरली सुन्दर स्याम की रही सरस रस भोइ।
ताकी धुनि श्रवनन सुनै रही मृगी सी होइ॥"[1]

'भोइ' पद लाक्षणिक है। इसका वाच्यार्थ भिगोना है किन्तु इस पद का प्रयोग जल के पक्ष में किया जाता है। यहाँ कवि प्रयोग प्रसिद्धि से 'मुरली इस में 'भोइ' कहा गया है।

सारोपा गौणी लक्षणाः—

"तेरो आनन चन्द्रमा अमल सुधा के ऐन।
चैन चकोरन देत नहि कुमुद फुलावत है न॥"[2]

'आनन चन्द्रमा' लाक्षणिक पद है। आनन उपमेय और चन्द्रमा उपमान है। आधार सादृश्य है। आनन पर चन्द्रमा के गुण–अपने प्रेमियो को प्रसन्न करने के भाव का आरोप किया गया है। इस तरह कवि ने बिंव को सप्रेषणीय बनाया है।

"चन्द्रमुखी वृषभानुजा नीरव नन्दकिशोर।
चित चकोर चातक भयो लग्यो रह्यो तिहि ओर।"[3]

चित-चकोर लाक्षणिक पद है—चित उपमेय तथा चकोर उपमान है। इनका आधार गुण साम्य है। चित्त पर चकोर के स्नेह की एक निष्ठा का आरोप करके कवि ने बिंव को अलौकिकता प्रदान की है।

साध्यवसाना गौणी लक्षणाः—

"वसि ससि मै नित नित रहै सरसावत पिय हेत।
दो खजन अंजन दिये मनरंजन करि देत॥"[4]

'ससि' तथा 'खजन' पद लाक्षणिक पद है। शशि और खंजन पद उपमान है मुख एव नेत्र के। इनका आधार सादृश्य है। इन पदों द्वारा इनकी सपूर्ण विशेषताओं

---

१. अलंकार दर्पण, महाराज रामसिंह, प्र० बा०, पृ० ५ पद २५
२. वही पृ० ६ पद ५५
३. वही पृ० ५८ पद ३८४
४. वही पृ० १५ पद ६६

का पूर्ण रूप से तादात्म उपमेय के साथ करके कथन में चमत्कार पैदा कर दिया गया है। इस तरह अर्थ को विशिष्ट गौरव प्राप्त हो गया है।

"मधुर सुरंग अनार का तजि समीप सुख दैन।
एरी कीर कईय पै गयौ कहा रस लैन॥"[१]

'अनार','कीर' तथा 'कईथ' लाक्षणिक पद हैं। ये पद-क्रमश: उपमान है तरुण रस युक्त नायिका अथवा उसके उरोज, नायक और दूसरी कुरूप नायिका अथवा घटिया किस्म की नायिका। यहाँ कथन की गोपनीयता द्वारा व्यंग्य तथा चमत्कार उत्पन्न किया है।

'पद्माभरण'

पद्माका कृत 'पद्माभरण' एक अलंकार ग्रंथ है। कवि ने अलकारो के उदाहरणो में जो अप्रस्तुत विधान किया है, तथा मुहावरे और लोकोक्तियो का जो प्रयोग किया है वह लक्षणा गर्भित है। इस प्रकार के कुछ उदाहरण यहाँ दिए जा रहे है।

निरूठा लक्षणा :--

"राजा करै सुन्याउ है पासा परै सु दाउ॥"[२]

'राजा करै सुन्याउ' और 'पासा परै सु दाउ' लोकोक्तियाँ है। इनका लक्ष्यार्थ यह है कि राजा की इच्छा ही न्याय और अवसर मिलने पर ही सफलता मिल सकती है।

"भूख विवस कृस तन पर्यो जद्यपि थकित अवान।
तदपि मत्त गजराज बिन हनत न तृन मृगराज॥"[३]

'हनत न तृन मृगराज' एक मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है स्वधर्म न छोड़ना।

"सूँड़ि बाँधि किय स्याम तन ताही को अनुहार।
क्यों रासभ लै चलहिगो गुरु गयंद को भार॥"[४]

'क्यो रासभ लै चेलहिगो गुरु गयंद को भार' लोकोक्ति है। इसका लक्ष्यार्थ है छोटी सामर्थ्य का व्यवित चाहे कितना भी वड़ा हो जाए फिर भी वह वड़े सामर्थ्य के व्यक्ति का सामता नही कर सकता है।

सरोपा गौणी लक्षणा:—

"तुव दृग खंजन हैं सही उड़ि न सकत तजि थान।
तु ही उर-बसी उरबसी राजत रूप निधान॥"[५]

१- अलंकार दर्पण महाराज रामसिह प्र० वा० पृ० २७ पद १७२
२. पद्माकर ग्रन्थावली सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्र० सं०, पृ० ६४ पद २५७
३. वही पृ० ४६ पद ११२
४. वही पृ० ४६ पद ११३
५. वही पृ० ३६ पद ३५

निष्कर्ष

इस प्रकार ऊपर के पृष्ठों में रीतिकाल से पहले के साहित्य, रीतिकालीन आचार्यों के ग्रन्थो, रस ग्रन्थो और अलकार ग्रन्थो मे लक्षणा शक्ति के प्रयोग का दिग्दर्शन कराया गया है। हिन्दी साहित्य की गतिविधि का तात्विक अनुशीलन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि आगे चलकर रीतिकालीन साहित्य मे जो प्रवृत्तियाँ प्रमुख रूप से प्रतिष्ठित हुईं उनका रीतिकालीन साहित्य मे उदय आकस्मिक नही था अपितु वे हिन्दी साहित्य के आरम्भ मे ही पुरानी परम्पराओ के फलस्वरूप चल पडी थी। धीरे-धीरे उनमें विकास होता रहा और रीतिकाल की अनुकूल जलवायु प्राप्त करके प्रधान रूप मे प्रतिष्ठित हुईं। रीतिकाल पूर्व कवियो के रीति ग्रन्थो मे लक्षणा के प्रयोग रीतिकालीन सामान्य प्रवृत्तियो के परिचायक हैं। आदि काल के चारणो तथा कवियो ने वीर रस के निष्पादन की आधार भूमि शृङ्गार रस को ही बनाया है। इन वीर गीतो और प्रवन्धो में भाव विंवों को सप्रेपणीय एव सवेदनीय बनाने के लिए जो अप्रस्तुत-विधान किए गए उनमे अनेक स्थलो पर लाक्षणिक प्रयोग मिलते है। इस काल के प्रमुख कवि चन्द वरदायी के पृथ्वीराज रासो से कुछ उदाहरण उद्धत करके इस कथन की पुष्टि की गई है। लाक्षणिक प्रयोगो द्वारा रासो के काव्य सौन्दर्य मे वृद्धि हुई है एव विंव अधिक सप्रेपणीय हुए है, परन्तु ऐसे लाक्षणिक प्रयोग समस्त ग्रन्थ मे विरल है।

विद्यापति के शृङ्गारिक गीतों मे सर्वत्र लाक्षणिक प्रयोगो की छटा दिखाई पड़ती है। इन प्रयोगो से उक्ति वैचित्र्य, चमत्कार और काव्य सौन्दर्य मे पर्याप्त अभिवृद्धि हुई है। ये प्रयोग सहज एव स्वाभाविक हैं और भाव को सवेदनशील बनाने मे सहायक होते है। इनके सहारे कवि ने रूप सौन्दर्य को अधिक चमत्कार पूर्ण बनाया है।

जायसी के पदमावत मे आने वाले नख-शिख षड्ऋतु, बारहमासा आदि के प्रसग भी लक्षणा शक्ति की चरुता से मडित है। इनके द्वारा काव्य-सौन्दर्य की योजना और विंव-विधान की प्रक्रिया अधिक स्पष्ट और सुन्दर बन पडी है।

कृपाराम की हित तरगिणी एक शुद्ध रीति-ग्रन्थ है। इनके लाक्षणिक प्रयोगो मे शास्त्रीयता अधिक है। ये प्रयोग नायिका भेद के उदाहरणो की सीमा मे जकड़े है, किन्तु ये सौन्दर्य के प्रतिपादन मे शिथिल नही हैं साथ ही अभिव्यजना कौशल की दक्षता को भी ये प्रस्तुत करते है।

सूरदास के दृष्टि कूटो मे पर्याप्त लाक्षणिक-वैचित्र्य मिलता है। ये लाक्षणिक प्रयोग भी नायिका-भेद की पृष्ठभूमि में हुए है, पर कवि प्रतिभा ने प्रयोगों को सहज स्वाभाविकता प्रदान कर दी है। इससे काव्य सौन्दर्य की अभिवृद्धि, उक्ति-वैचित्र्य

एवं चमत्कार मे कही भी शिथिलता नहीं दिखाई पड़ती है। इनके अप्रस्तुत-विधानों द्वारा भावो मे तीव्रता सवेदन शीलता और सप्रेपणीयता आई है। गोस्वामी तुलसीदास के 'वरवै रामायण' और 'गीतावली' में भी रीति-कालीन प्रवृत्ति के दर्शन होते है। इनमें जो लाक्षणिक प्रयोग आए है स्वाभाविक है और काव्य सौन्दर्य की अभिवृद्धि करते है। अब्दुर्रहीम खानखाना का 'वरवै नायिका भेद' ग्रन्थ रीतिकालीन प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करता है। भावपूर्ण, सहज एवं प्रवाहमय अभिव्यक्ति के कारण इनके लाक्षणिक प्रयोग उक्ति वैचित्र्य की चारुता को वढ़ाते है।

आचार्य केशव की 'कवि-प्रिया' और 'रसिक-प्रिया' पूर्णरूप से रीति ग्रन्थ ही है। इन ग्रन्थो मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोगों मे शास्त्रीयता अधिक और स्वाभाविकता कम है। लाक्षणिक प्रयोगो से संवन्वित अप्रस्तुत विधान परम्पराओं और उदाहरणो की सीमा में जकड़े हुए है, इससे कही-कही काव्य-सौन्दर्य शिथिल पड़ गया है।

नन्ददास की रस मंजरी और सेनापति के कवित्त रत्नाकर मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोगो में शास्त्रीयता और स्वाभाविकता दोनों का समन्वय हुआ है। इन प्रयोगो द्वारा उक्ति मे वैचित्र्य, काव्य में चमत्कार, भावो में तीव्रता और विम्वात्मकता आई है।

रीतिकालीन आचार्य चितामणि, कुलपति, देव, भिखारीदास, सोमनाथ और प्रतापसाहि के काव्यांगों के निरूपण करने वाले ग्रन्थो में अलकारों और नायिका भेदो के उदाहरणों में लाक्षणिक प्रयोग हुए हैं। परंपरानुमोदित अप्रस्तुत विधान और उदाहरणों की सीमा ने इन्हे मुक्त अभिव्यक्ति का अवसर नही प्रदान किया, इस कारण से इनके प्रयोगों मे शास्त्रीयता तो है पर स्वाभाविकता का अभाव है। इन्होने काव्य सौन्दर्य, संवेदनशीलता तथा विंव संप्रेपणीयता पर विशेप ध्यान नही दिया। यह कथन देव, भिखारीदास और प्रतापसाहि की रचनाओं के सम्बन्ध मे पूर्णरूपेण ठीक नही कहा जा सकता, क्योकि इनकी रचनाओ में आए हुए लाक्षणिक प्रयोग पर्याप्त प्रांजल एवं शोभाधायक सभी नायिका-भेद ग्रन्थो में आए हुए लाक्षणिक प्रयोगो में शास्त्रीयता के साथ ही साथ किसी अश तक स्वाभाविकता भी पाई जाती है। इनसे उक्ति-वैचित्र्य तथा चमत्कार मे तो वृद्धि हुई है, पर सौन्दर्य विधान और संवेदनशीलता मे शिथिलता भी आई है। परंपरा निर्वाह की प्रवृत्ति के कारण घिसे-पिटे उपमानों की सीमाओं का अतिक्रमण कर नई उद्भावना करने का प्रयास नही किया गया। जिससे काव्य-सौन्दर्य मे अभिवृद्धि की कमी रही और शब्दो के अर्थो को नया आयाम न मिल सका। फिर भी इन ग्रन्थों मे ऐसे वहुत से लाक्षणिक प्रयोग मिलते हैं जिनके कारण विम्वात्मकता, सम्वेदनीयता, संप्रेपणीयता और काव्य की चारुता समृद्ध हुई है।

अलंकार ग्रन्थो में भी ग्रन्थकार की रुचि मुख्यरूप से उदाहरणों के प्रस्तुतीकरण में प्रवृत्त है । इन उदाहरणो मे रूपक, परिकरांकुर, समासोक्ति, अतिशयोक्ति आदि के मूल मे लक्षणा-शक्ति का चमत्कार विद्यमान रहता ही है इसलिए इन प्रसंगो पर लाक्षणिक प्रयोगों की छटा दिखाई पड़ती है। इनके अतिरिक्त अनेक ऐसे स्थल भी लक्षणा के प्रयोग से युक्त है जहाँ कवि प्रतिभा बिम्ब-विधान और शब्दो को अर्थ का नया आयामा देने में तल्लीन हुई है। इन प्रयोगो मे परंपरा निर्वाह का आग्रह अधिक और काव्य चारुता की समृद्धि कम है। फिर भी इनमे से अनेक प्रयोग ऐसे है जिनसे भाव की तीव्रता और बिंब की गोचरता बढ़ती है।

रीति-काल पूर्व के रीति ग्रन्थकारो के लाक्षणिक प्रयोगो मे स्वाभाविकता, शास्त्रीयता और काव्य सौन्दर्य की समृद्धि के प्रति अधिक आग्रह दिखाई पड़ता है जबकि रीतिकालीन आचार्यो, आलंकारिको और नायिका-भेद ग्रन्थकारो में शास्त्रीयता का अधिक आग्रह है और परंपरा निर्वाह पर विशेष ध्यान रखा गया है। शास्त्रीयता और परपरा निर्वाह के कारण काव्य सौन्दर्य की जितनी अभिवृद्धि संभव थी उतनी न हो सकी।

तृतीय अध्याय

रीति सिद्ध कवि और लक्षणा का प्रयोग

'रीतिकाल' के समस्त रीति-ग्रन्थों पर यदि दृष्टिपात किया जाए तो इन ग्रन्थों को आसानी से तीन वर्गो मे विभक्त किया जा सकता है। प्रथम वर्ग मे उन ग्रन्थों को रखा जा सकता है जिनमे सम्पूर्ण काव्यांगो का विवेचन किया गया है। इनके अतिरिक्त नायिका भेद और अलंकार ग्रन्थ भी इसी कोटि मे आते है। इन ग्रन्थो के कर्ताओ ने मुख्य रूप से अपनी रचनाओ मे काव्य के कलापक्ष को विशेष महत्व प्रदान किया है। इन ग्रन्थो का स्वरूप देखने पर यही ज्ञात होता है कि इनमें काव्य के विविध अङ्गो और उपागो के लक्षण और उदाहरण है, किन्तु वास्तविकता यह है कि शास्त्रीय विचार-विमर्श के लिए इन ग्रन्थों की रचना नही हुई है। इन ग्रन्थो के रचियताओं ने अपनी कवितत्व शक्ति का प्रदर्शन करने के लिए ही इस पद्धति को अपनाया है। यदि इनका लक्ष्य विशुद्ध रूप से साहित्य-शास्त्र का निरूपण करना होता तो इतना पिष्ट पेषणा और पुनरावृत्ति न होती। इनका लक्ष्य तो मात्र शास्त्र-स्थिति सम्पादन प्रतीत होता है। इस तरह जो लक्षणानुयायी ग्रन्थकार हैं वे भाषा के हेर-फेर से उदाहरण एकत्र करने की क्रिया मे जुटे हुए दिखाई पड़ते हैं। इन ग्रन्थकारो की कृतियो मे नई उद्भावना के लिए कोई स्थान नही था। इन्हे हम रीतिबद्ध ग्रंथ कह सकते है।

द्वितीय वर्ग मे वे ग्रथ आते है जिनमे रीतिकाल की परिपाटी की अनुकूलता तो है पर वे लक्षण ग्रथ नही है। ये ग्रंथ मूल रूप से कवियो की स्वतन्त्र रचनाएँ है। इन ग्रथो मे मुख्य रूप से 'विहारी-सतसई', 'मतिराम सतसई' आदि ग्रथ आते है। इन ग्रथो के रचयिता कवि रीति से सहारा अवश्य लेते थे पर अपनी स्वतन्त्र सत्ता भी वनाए रहते थे। ये रीति से बँधकर भी स्वतन्त्र थे। इनकी रचनाओं मे स्वतन्त्र उद्भावनाएँ भी पर्याप्त मात्रा मे मिलती है। इस सम्बन्ध मे पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का मत है.—

"रीति-ग्रथ लिखने वालो मे व्यक्तिगत विशेपताओं का स्फुरण बहुत कम हो सका। पर जो लोग रीति के आधार पर स्वतन्त्र रचना करते थे उनमे ऐसी विशेपताएँ बहुत स्पष्ट है।"[1]

---

१. बिहारी, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, तृ० सं० पृ० ५१

इस मध्यम मार्ग के अनुकर्ताओं को ही रीति सिद्ध कवि कहा जाता है। इनकी रचनाओं मे काव्य के भाव पक्ष और कला पक्ष का समान प्रतिपादन हुआ है। इन ग्रन्थकारों ने उक्ति-वैचिश्र्य के लिए अपनी स्वतन्त्र सत्ता और व्यक्तिगत विशेषता का खुलकर उपयोग किया है। इनका लक्ष्य शास्त्र-स्थिति सम्पादन नही था। अपने काव्य मे चमत्कार उत्पन्न करने के लिए ये अपनी उक्तियों में वैचिश्र्य लाते थे एवं रसाभिव्यक्ति के लिए अपने अनुभव और निरीक्षण द्वारा प्राप्त सामग्री का नवीनता के साथ काव्य मे समावेश करते थे। इस सम्बन्ध मे पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का मत द्रष्टव्य है:—

"कही तो चमत्कारातिशय के लिए वे उक्तियाँ बाँधते थे और कही रसाभिव्यक्ति के लिए रीति-शास्त्रो में गिनाई हुई सामग्री का त्याग करके अपने अनुभव और निरीक्षण से प्राप्त उपलब्धि, सामग्री या नूतनता का सन्निवेश करते थे।"[1]

मुख्य रूप से यह कहा जा सकता है कि रीति परम्परा की अनुकूलता में अपनी स्वकीय विशेषता को सम्पादन करने वाले कवियों को हम रीति सिद्धि कवि कह सकते है।

तृतीय वर्ग में वे ग्रन्थ आते है जिनके रचयिता अपना वैभव हृदय की उदारत और प्रेम की निर्मलता में प्रस्तुत करते है। इन ग्रन्थो मे काव्य के भाव पक्ष का प्राधान्य है और कला पक्ष का स्थान गौण है। ये कवि रीति बन्धन से मुक्त थे और मनोगत वेग के प्रवाह मे काव्य रचते थे। इनमे घनानन्द, ठाकुर, बोधा आदि मुख्य हैं। इन्हे रीति मुक्त कवि कहा जाता है।

इस अध्याय मे रीति सिद्ध कवियो के काव्य मे लक्षणा के प्रयोग के स्वरूप की चर्चा की जा रही है। रीति सिद्ध कवियो ने उक्ति-वैचिश्र्य और वाग्वैदग्ध्य द्वारा जहाँ शब्द को नए अर्थ मे ढालकर वदले हुए परिवेश को प्रभा विष्णु वनाना चाहा है, जहाँ सवेदन सकेतित सौन्दर्य को नया आयाम देना चाहा है, जहाँ वस्तु को सापेक्ष्य करना चाहा है, जहाँ बिंब प्रस्तुत करना चाहा है, जहाँ अनुभूतियो को तीव्रावेग के साथ विस्तार करना चाहा है और जहाँ पर विशिष्ट अर्थ बोध कराना चाहा है, वहाँ उन्हे लक्षणा का अवश्य सहारा लेना पड़ा है। इसके अतिरिक्त भाषा की प्रकृति के साथ वहुत से मुहावरे और लोकोक्तियाँ तथा कवि प्रौदोक्त प्रसिद्ध तथ्य अपने लक्ष्यार्थ मे ही रूढ होकर इनके काव्य में प्रयुक्त होने लग गए थे। इस प्रकार के स्थलो मे भी लक्षणा के प्रयोग होते हैं।

बिहारी

रीतिकाल मे कुछ ऐसे भी कवि हुए हैं जिन्होने रीतिशास्त्र पर तो कोई

---

१. बिहारी, सं० पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, तृ० सं० पृ० ५२

ग्रन्थ नही लिखा पर वे रीति के ही प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं । इसका कारण यह है कि उनकी रचना पर रीति-शास्त्र की पूरी-पूरी छाप है । ऐसे कवियों मे प्रमुख बिहारी है । 'बिहारी सतसई' रीति-ग्रन्थ के रूप मे प्रस्तुत नहीं की गई है, किन्तु टीकाकारों ने अधिकाश भागों को शृङ्गार के आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव आदि के अन्तर्गत रख छोड़ा है । यद्यपि 'सतसई' जैसे ग्रन्थ लक्षण-ग्रन्थो से सर्वथा भिन्न कोटि के ग्रन्थ हैं, फिर भी इन ग्रन्थो पर रीति की छाप है । 'सतसई' मे बिहारी को लक्ष्य तथा लक्षणा के समन्वय की चिन्ता नही थी, इसलिए रीति ग्रन्थकारो की रचना से यह प्रायः उत्कृष्ट रचना है । बिहारी के अधिकाश दोहे 'नख-शिख', 'नायिका भेद' एवं 'षट्ऋतु' के अन्तर्गत आ जाते है, पर बिहारी ने रीति के बन्धन को ढीला करके अपने दोहो में रमणीयता लाने का भी सराहनीय प्रयत्न किया है ।

बिहारी काव्य के लिए दोहो को चुनकर रीति-ग्रन्थो की परम्परा को कुछ ढीली करते हुए प्रतीत होते है ।[1] रीति-ग्रन्थो मे कवित्त तथा सवैये विशेष रूप से प्रचलित थे । दोहे मे वाणी के विस्तार के लिए अवकाश नही होता है । कवि को बहुत सक्षेप अथवा सूक्ष्म रूप से काम चलाना पड़ता है । बिहारी के दोहों मे सामासिक शैली का जो चरम विकास हुआ है उसे स्पष्ट करने के लिए आगे चलकर कुण्डलियाँ आदि बडे छन्दो के माध्यम से अर्थ विस्तार किया गया । लक्षण-ग्रन्थो के अनुकरण पर लिखे गए काव्यो मे नई उद्भावना के लिए स्थान न था पर बिहारी मे उद्भावना की शक्ति थी और साथ ही भाषा पर भी उनका अधिकार था फिर वे मात्र लक्षणानुयायी बन कर कैसे रह सकते थे ? उन्होने उक्ति-वैचित्र्य के लिए अपनी स्वतन्त्र सत्ता और व्यक्तिगत विशेषता का खुलकर प्रयोग किया । उनकी 'सतसई' में कला पक्ष का उत्कर्ष बहुत अधिक हुआ है । इनके दोहो के कसाव और कारीगरी को देखकर आचार्य शुक्ल जी हिन्दी साहित्य के इतिहास मे लिखते हैं कि.—

"बिहारी की कृति का मूल्य जो बहुत आँका गया है उसे अधिकतर रचना की बारीकी या काव्यागों के सूक्ष्म विन्यास की निपुणता की ओर ही मुख्यत. दृष्टि रखने वाले पारखियो के पक्ष से समझना चाहिए—उनके पक्ष से समझना चाहिए जो किसी हाथी-दाँत के टुकड़े पर महीन बेल-बूटे देखकर घण्टो वाह-वाह किया करते हैं ।"[2]

"बिहारी ने दोहों को चुन कर भी स्पष्ट कर दिया है कि रीति बद्धता मात्र मेरा लक्ष्य नहीं है ।"

१. 'बिहारी' सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, तृ० सं०, पृ० ५२

२. हि० सा० इति०, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, सं० परि सं० २००२, पृ० २१७

आचार्य शुक्लजी के उपर्युक्त कथन से विहारी की रचना में कला पक्ष की सबलता स्पष्ट हो जाती है किन्तु भाव पक्ष में उनकी सम्मति कुछ और ही है। उनके मतानुसार—

"भावो का वहुत उत्कृष्ट और उद्दात्त स्वरूप विहारी में नही मिलता। कविता उनकी श्रृंगारी है, पर प्रेम की उच्च भूमि पर नही पहुंचती, नीचे ही रह जाती है।"[1]

रीति सिद्धि कवि विहारी की सतसई में रीति का सहारा अवश्य लिया गया है पर उसमें कवि की अपनी स्वतन्त्र सत्ता की भी छाप है। व्यक्तिगत विशेषताओ के स्फुरण वड़े ही स्पष्ट रूप में सतसई में देखे जा सकते हैं। कवि ने रसाभिव्यक्ति के लिए रीति-शास्त्र में गिनाई हुई सामग्री का त्याग करके अपने अनुभव और निरीक्षण से प्राप्त सामग्री का भी समावेश किया है।

'सतसई' के दोहों में जहाँ कवि सयोग तथा वियोग पक्ष का निरूपण करता है, जहाँ अनुभूतियों तक ले जाने के लिए अप्रस्तुत विधान करता है अथवा अनुभाव विधान में जहाँ भाव के आश्रय की चेष्टायें तथा आलंवन की चेष्टाओ आदि के विंवों का प्रत्यक्षीकरण कराने का प्रयत्न करता है वहाँ लक्षणा-शक्ति के प्रयोगो को देखा जा सकता है। अलकार तथा नायिका भेद लिखने का तो यह युग ही था। सतसई मे रूपक, अतिशयोक्ति, परिकराकुर, असंगति, अन्योक्ति, गूढोक्ति, समासोक्ति, अप्रस्तुत प्रशंसा आदि अलंकारों का एवं नायिकाओ के रूप, गुण, स्वभाव और भाव-भंगिमाओं का जहाँ निरुपण किया गया है वहाँ लक्षणा-शक्ति सर्वत्र अर्थ को गौरवान्वित करती हैं।

इस अध्याय मे 'विहारी सतसई' में आये हुए कुछ लाक्षणिक प्रयोगों को दिया जा रहा है और यह दिखाने का प्रयास किया जा रहा है कि लक्षणा के विविध प्रयोगों द्वारा काव्य का अर्थ किस तरह गौरवान्वित हुआ है।

निरूढ़ा लक्षणा—

"खरी पातरी कान की कौन वहाऊ वानि।
आक कली न रली करै अली-अली जिय जानि॥[2]

'खरी पातरी कान की' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है सुनते ही विना सोचे विचारे विश्वास कर लेने वाली। मुहावरा अपने लक्ष्यार्थ मे ही रूढ़ हो गया है।

---

१. हि० सा० इति०, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, सं० परि० सं० २००२, पृ० २१७-२१८
२. बिहारी रत्नाकर, सं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर' प्र० सं० दोहा—१४

"लौनें मुँह दीठि न लगै यों कहि दीनी ईठि ।
दूनी है लागन लगी दियें दिठौना दीठि ॥"[1]

'लौनें' 'दीठि न लगै' और 'लागन लगी' लाक्षणिक पद है। दीठि न लगै मुहावरा है इसका लक्ष्यार्थ है—किसी की कुदृष्टि न लगे । यह अपने लक्ष्यार्थ मे ही रूढ़ है। 'लौनें' शब्द का वाच्यार्थ नमकीन है पर इसका लक्ष्यार्थ सुन्दर ग्रहण किया गया है। इसी तरह 'लागन लगी' का लक्ष्यार्थ जमने लगी अथवा ठहरने लगी ग्रहण किया गया है। इन दोनों पदों का लक्ष्यार्थ कवि प्रौढ़ोक्ति के कारण रूढ हो गये हैं।

"सबही त्यों समुहाति छिनु चलति सबनु दै पीठि ।
वाही त्यों ठहराति यह किबलनुमा लौं दीठि ॥"[2]

'चलति सबनु दै पीठि' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है—लौटना ।

"छ्वै छिगुनी पहुँचौ गिलत अति दीनता दिखाइ ।
बलि बावन की ब्यौंतु सुनि को, बलि तुम्हैं पत्याइ ।"[3]

'छ्वै छिगुनी पहुँचौ गिलत' और 'वलि बावन की ब्यौतु' मुहावरे है। इनका क्रमशः लक्ष्यार्थ है—थोड़ा अधिकार पाने पर सम्पूर्ण पर अधिकार पाने की चेष्टा करना तथा धोखा देना । वलि शब्द भी लाक्षणिक है। इसका लक्ष्यार्थ है धोखा खाने वाला कवि प्रयोग प्रसिद्धि से यह भी अपने लक्ष्यार्थ मे ही रूढ़ हो गया है।

"चित तरसत मिलत न बनत बसि परोस के बास ।
छाती फाटी जाति सुनि टाटी ओट उसास ॥"[4]

'छाती फाटी जाति' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है अत्यधिक कष्ट होना ।

"बिनु मधु मधुकर कै हियैं गड़ै न, गुड़हर, फूल ॥"[5]

'हियैं गड़ै' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है हृदय मे स्थान बनाना अथवा हृदय को विमुग्ध करना ।

"सींचि गुलाब घरी घरी, भरी बरीहिं न बारि ॥"[6]

'बरीहि न बारि' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है जो दुखी है उसे और दुखित न करो ।

---

१. बिहारी-रत्नाकर, सं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर' प्र० सं०, दोहा—२८
२. वही दोहा—३०
३. वही दोहा—१५६
४. वही दोहा—२६२
५. वही दोहा—२८२
६. वही दोहा—३०८

"भरि गुलाल की मूठि सों, गई मूठि सी मारि ।"[१]

'मूठि मारना' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है जादू कर जाना या मार डालना। भाव ग्रहण है स्नेह मे वशीभूत करना।

"अमित, अपार, अगाध-जलु मारौ मूड़ पयोधि ॥"[२]

'मारौ मूड़' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है व्यर्थ प्रयत्न करना अथवा पश्चाताप करना।

"रह्यौ ऐंचि, अन्तु न लहै अवधि-दुसासनु बीर।
आली, वढ़तु विरह ज्यौं पंचाली कौ चीरु ॥"[३]

'पंचाली को चीरु' लोकोक्ति है। इसका लक्ष्यार्थ है जिसका अन्त न हो। किन्तु यह लोकोक्ति अपने लक्ष्यार्थ मे ही रूढ़ हो गई है। इस तरह के प्रयोगो से भाव सहृदय के हृदय को वड़ी सरलता से स्पर्श कर लेते है।

"सुख मोटैं लूटी ललन—।"[४]

'सुख मोटें लूटी' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है वहुत अधिक आनन्द प्राप्त करना। अपने लक्ष्यार्थ में ही यह रूढ़ हो गया है।

"दिन दस आदर पाय कै करि लै आपु बखान।
जौ लौं काग सराध-पख तौ लौं तो सनमान ॥"[५]

'दिन दस' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है अल्पकाल।

"सुभर भर्यौ तुव गुन-कननि पचर्यौ कपट कुचल।
क्यौं धौं दार्यौ लौं हियो दरकत नाहिन लाल ॥"[६]

'हियो दरकत' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है हृदय मे दर्द पैदा होना।

"रह्यौ राखि हठि लै गए हथाहथी मनु हाथ।"[७]

'हथाहथी मनु लै गए' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है-देखते-देखते स्नेह के वशीभूत कर गए।

---

१. बिहारी रत्नाकर, सं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर' प्र० सं० दोहा—२५०

२. वही दोहा—३६७

३. वही दोहा—४००

४. वही दोहा—४२४

५. बिहारी' स० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, तृ० सं० दोहा—३००

६. वही दोहा—६७४

७. बिहारी-रत्नाकर सं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर' प्र० सं० दोहा-५५०

"भले पधारे, पाहुने ह्वै गुड्हर को फूलु ।"[1]

'गुड्हर का फूल होना' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है कलह का कारण बन-कर आना।

"मूड़ चढाएँउ रहै परयौ पीठ कच भार।
रहे गरें परि, राखियै तऊ हियें पर हार।"[2]

'मूड चढाएँ', 'परयो पीठि' गरे परि' और हिये पर मुहावरे है। इनका लक्ष्यार्थ क्रमश: है-वल पूर्वक आक्रान्त करना, उपेक्षा कर देना, अनुनय पूर्वक संग लगना और प्रीति पूर्वक स्वीकार करना।

"जब-जब वै सुधि कीजियै तब तब सब सुधि जाहिं।
आंखिन आँखि लगी रहै, आंखै लागति नाहि।"[3]

'आखिन आखि लगी रहै तथा आंखे लागति नाहि मुहावरे हैं। इनका लक्ष्यार्थ है-नायक नायिका की आंखें एक दूसरे से मिलकर स्थिर हो गई एव नीद नही आती है। दोनो विरोधी मुहावरो को लेकर कथन मे चमत्कार पैदा किया गया है।

"दृग उरझत टूटत कुदुम जुरत चतुर-चित प्रीति।
परति गांठि दुरजन-हियें दई नई यह रीति॥"[4]

"दृग उरझत,' 'टूटत कुदुम,' 'जुरत चतुर-चित प्रीति,' तथा परति गाँठि मुहावरे हैं। इनका लक्ष्यार्थ है-स्नेह होते ही, पिता के घर से लड़की पति के घर चली जाती है, पति-पत्नी मे घनिष्ट स्नेह संवन्ध स्थापित हो जाता है और यह कार्य सूत्र-वध से संपन्न होता है। इन मुहावरो द्वारा असंगति मे चमत्कार पैदा किया गया है।

शुद्धा लक्षण लक्षणा:—

"विषय-तृषा परिहरि अजौं नरहरि के गुन गाउ।"[5]

'तृषा' लाक्षणिक पद है। तृषा का वाच्यार्थ प्यास है पर इस पद में कामना अथवा इच्छा लक्ष्यार्थ ग्रहीत है।

"कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिजत, खिलत, लजयात।
भरे भौन में करत है नैननि ही सों वात॥"[6]

'खिलत,' 'भरे भौन, और वात' लाक्षणिक पद है। इनका लक्ष्यार्थ है प्रसन्न

---

१. बिहारी, सं० जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' प्र० सं० दोहा ५६५
२. बिहारी, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, तृ० सं०, दोहा ५२३
३. वही दोहा २१४
४. वही दोहा ३१६
५. बिहारी-रत्नाकर. सं० जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' प्र० सं०, दोहा-२०
६. वही दोहा ३२

होना, घर में तमाम आदमियों का होना और सैन करना अर्थात् संकेत द्वारा इशारा करना। खिलना पुष्प धर्म है और बात करना मुख का धर्म है पर यहाँ खिलना नायिका के लिए और बात करना नेत्रो के लिए कहा गया है। 'भरे भौन' मे उपादान शुद्धा लक्षणा है।

"नेह न नैनन कों कछू उपजी बड़ी बलाइ।
नीर-भरे नित प्रति रहैं तऊ न प्यास बुझाइ॥"[1]

'तऊ न प्यास बुझाइ' लाक्षणिक पद है। न प्यास बुझाइ का लक्ष्यार्थ है दर्शन की अभिलाषा नही समाप्त होती है। इस पद मे नीर भरे और प्यास बुझाइ का एक साथ प्रयोग करके वक्रोक्ति विधान किया गया है। इस तरह के विरोधाभास में ही चमत्कार है।

"गदराने तन गोरटी ऐपन-आड़ लिलार।"[2]

'गदराने' पद लाक्षणिक है। इसका वाच्यार्थ है पकने पर आया हुआ। इसका लक्ष्यार्थ है युवावस्था को प्राप्त होने वाला।

"नारि सलोनी साँवरी नागिन लौं डसि जाइ।"[3]

'डसि जाइ' पद लाक्षणिक है। सर्पिणी तो डस सकती है पर नारी के पक्ष में डसना असंभव है। अतः इसका लक्ष्यार्थ है स्नेहासक्त करना।

"छुटे छुटावैं जगत तें सटकारे सुकुमार।
मन बाँधत वेनी बँधे नील छबीले बार॥"[4]

'बाँधत' पद लाक्षणिक है। मन कोई वस्तु तो है नही, जो बाँधा जा सके। इसलिए बाँधत का लक्ष्यार्थ है—वशीभूत होना। इसी तरह 'छुटावैं जगत तें' लाक्षणिक पद है। इसका वाच्यार्थ है ससार छुड़ा देना पर लक्ष्यार्थ है संसार से विमुख-कर अपनी ओर तीव्रावेग से आकर्षित करना। इस दोहे का अभिप्राय है कि नायिका के सटकारे सुकोमल बाल जैसे ही छूटे हुए दिखाई पड़ते है वैसे ही उनके सौन्दर्य का तीव्राकर्षण नायक को ससार से विमुख कर देता है। नीले सौन्दर्ययुक्त बालो को समेट जब नायिका बाँध लेती है और उस पर वेणी बाँधती है तो उसी बालो के झुरमुट मे नायक का मन वशीभूत हो रम जाता है। इस तरह बाँधत और छुटावे शब्दों को नया अर्थ देकर बदले हुए परिवेश प्रभविष्णु बना दिया है।

---

१. बिहारी-रत्नाकर, सं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर', प्र० सं०, दोहा ३७
२. वही दोहा ६३
३. वही दोहा १६६
४. बिहारी, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, तृ० सं०, दोहा २००

"मुह मिठास दृग चीकने भौंहे सरल सुभाइ।"[1]

'मिठास' और चीकने लाक्षणिक पद है। मिठास मिठाई का गुण है तथा चीकना होना वस्तु के पक्ष मे उपयुक्त है पर इस पद मे मुह के साथ मिठास एवं दृग के साथ चीकना का प्रयोग किया गया है। इनका लक्ष्यार्थ है विनम्रतापूर्ण वचन तथा स्नेह व्यक्त करने वाले।

"लगे दुहुन के इक वेर ही चल चित, नैन गुलाल।"[2]

'गुलाल' पद लाक्षणिक है। इसका वाच्यार्थ लाल रंग है पर लक्ष्यार्थ है अनुराग। पूरे पद का अर्थ है—नायक और नायिका के एक साथ चित्त चलायमान हुए अर्थात् एक दूसरे का एक दूसरे के प्रति आकर्षण हुआ और स्नेह सिक्त नेत्र दोनो के मिले। इस कथन में गोपनीयता भी वनी रही तथा वचन भगिमा मे वैदग्ध भी आ गया।

"यह न कहूँ अव लौं सुनी मरि मारियै जु मीतु।"[3]

'मरि' तथा मारियै पद लाक्षणिक है। इनका क्रमशः लक्ष्यार्थ है—दुखी होना और दुख देना। सम्पूर्ण पद उपालंभ का है जिसमे कहा गया है कि ऐसे मित्र के सम्बन्ध में अव तक नही सुना गया है जो स्वय दुखी होकर अपने मित्र को दुखी वनाता है।

"फूली फाली फूल सी फिरति जु विमल विकास।
भोरतरैयाँ होहु ते चलत तोहि पिय पास।"[4]

'भोरतरैयाँ' पद लाक्षणिक है। इसका लक्ष्यार्थ है प्रभाहीन होना।

'सुभर भरयौ तुव गुन-कननि पचयौ कपट कुचाल।"[5]

'गुन' पद लाक्षणिक है। गुन का विपरीत भाव से इस पद में लक्ष्यार्थ अवगुण है।

"करे चाह सौं चुटकि कै खरे उड़ौहैं मैन।
लाज नवाए तरफरत करत खूँद सी नैन।।"[6]

'खूंद' पद लाक्षणिक है। इसका वाच्यार्थ है पैर से भूमि खोदना। खूंद का प्रयोग घोड़े के लिए किया जाता है। इस पद मे खूंद का प्रयोग नेत्रो के लिए किया गया है। इसका लक्ष्यार्थ है—नायिका के नेत्र लज्जावश झुके तो है पर नायक को

---

१. विहारी-रत्नाकर, सं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर', प्र० सं० दोहा ३२३
२. वही दोहा ३५२
३. वही दोहा ३७०
४. वही दोहा ४५८
५. विहारी, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, तृ० सं०, दोहा ६७४
६. वही दोहा ८०

देखने के लिए कनखियो से हर सम्भव उपाय कर रहे है। कवि मध्या नायिका के नेत्रों का बिंब इस पद मे प्रस्तुत किया है।

"भौंहनि त्रासति, मुँह नटति, आँखिन सो लपटाति।
ऐंचि छुड़ावति कर, इँची आगें आवत जात॥"[1]

'लपटाति' लाक्षणिक पद है। लपटाति का वाच्यार्थ लिपटना, आलिगन करना है पर इस पद का इस दोहे मे नेत्रों के पक्ष में प्रयोग किया गया है। नेत्र लिपटने में असमर्थ हैं इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है नेत्र मे स्नेह का भाव छलक रहा है। इस सम्पूर्ण दोहे मे नायिका की चेष्टाओ का वर्णन है। इस तरह 'लपटाति' पद से नए अर्थ की योजना कवि को अभिप्रेत है।

सारोपा गौणी लक्षणाः—

"डारे ठोढ़ी-गाड़ गहि नैन-बटोही मारि।
चिलक-चौंध में रूप-ठग हाँसी-फाँसी डारि॥"[2]

'ठोढ़ी-गाड़', 'नैन-बटोही', 'रूप-ठग' और हाँसी-फाँसी लाक्षणिक पद हैं। ठोढी, नैन, रूप एव हाँसी उपमेय है। गाड, बटोही, ठग तथा फाँसी उपमान है। इन पदो का आधार सादृश्य और धर्म साम्य है। इस तरह उपमेय पर उपमान का पूर्णारोप करके अर्थ वैशिष्ट्य उत्पन्न किया गया है। इस तरह के कथन से बिंब गोचर हो गया है और सवेदन सकेतित सौंदर्य को नया आयाम मिल गया है।

"सनि-कज्जल चख-झख-लगन, उपज्यौ सुदिन सनेहु।
क्यों न नृपति ह्वै भोगवै लहि सुदेश सब देहु॥"[3]

चख-झख लाक्षणिक पद है। 'चख' उपमेय है और झख उपमान है। आधार सादृश्य है। इस तरह उपमेय पर उपमान का पूर्णारोप करके कवि वस्तु को गोचर बनाया है तथा लौकिक सौंदर्य का आलौकिक विधान किया है।

"ज्यौं-ज्यौं जोबन-जेठ दिन-कुच मिति अति अधिकाति।
त्यौं-त्यौं छिन-छिन कटि-छपा छीन परति नित जाति॥"[4]

'जोवन-जेठ' और कटि-छपा लाक्षणिक पद है। जोवन तथा कटि उपमेय हैं। जेठ और छपाकर उपमान है। इनका आधार साधर्म्य है। इस तरह वस्तु को गोचर कराने के लिए कवि ने उपमेय पर उपमान का पूर्णारोप किया है।

"दृग-खंजन गहि लै चल्यौ चितवनि-चैंपु लगाइ।"[5]

---

१. बिहारी, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, तृ० सं०, दोहा ४९५
२. वही दोहा २५५
३. वही दोहा ६४८
४. बिहारी-रत्नाकर, सं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर', प्र० सं० दोहा ११८
५. वही दोहा १४७

'दृग-खजन' तथा 'चितवनि चेपु' लाक्षणिक पद है। दृग और चितवनि उपमेय है। खंजन एव चेपु उपमान है। इनका आधार रूप साम्य एव साधर्म्य है। दृग पर खंजन के सौंदर्य का पूर्णारोप करके तथा चितवनि पर चेपु के चिपकने के गुण का आरोप करके कवि ने विंव को स्पष्ट किया है और इस तरह वस्तु को सवेदनीय बनाया है।

"वाला-वेलि सूखी सुखद इहि रूखी रुख-घाम।
फेरि डह डही कीजिए सुरस सींचि घनश्याम।।"[1]

'वाला-वेलि' और 'रूखी रुख-घाम' लाक्षणिक पद है। वाला तथा रूखी रुख उपमेय है। वेलि एवं घाम उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके कवि ने विंव को सप्रेषणीय बनाया है।

"नव नागरितन-मुकुल लहि जोवन-आमिर जोर।"[2]

'तन-मुलुक' और 'जोवन-आमिर' लाक्षणिक पद है। तन तथा जोवन उपमेय है। मुलुक एव आमिर उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। इस तरह उपमेय पर उपमान का आरोप करके कवि ने विंव को गोचर बनाया है।

"सब अँग करि राखी सुंघर नाइक-नेह सिखाइ।
रसजुत लेति अनंत गति पुतरी-पातुर राय।।"[3]

'नाइक नेह' तथा 'पुतरी-पातुर' लाक्षणिक पद है। नाइक एव पुतरी उपमेय है। नेह तथा पातुर उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके वस्तु को गोचर बनाया गया है।

"वढ़त वढ़त संपति-सलिलु मन-सरोजु वढ़ि जाइ।"[4]

'संपति-सलिलु' तथा 'मन-सरोज' लाक्षणिक पद है। सपति तथा मन उपमेय और सलिलु एव सरोज उपमान है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके विंव को स्पष्ट किया गया है।

"ए तेरे सब तै विषम ईछन-तीछन बान।[5]

'ईछत तीछन वान' लाक्षणिक पद है। ईछन (कटाक्ष) उपमेय और तीछन वान उपमान है। आधार गुण साम्य है। इस तरह नेत्र के विंव को गोचर किया गया है।

---

१. बिहारी-रत्नाकर, सं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर' प्र० सं०, दोहा २१६
२. वही दोहा २२०
३. वही दोहा २८४
४. वही दोहा ३३१
५. वही दोहा ३४६

"अलि इन लोइन-सरनु कौ खरौ विषम संचार।"[1]

'लोइन-सरनु' लाक्षणिक पद है। लोइन (नेत्र) उपमेय और सरनु उपमान है। आवार सादृश्य है। नेत्रो पर वाण की तीव्रता एवं विपमता का आरोप करके कवि ने विव को प्रभविष्णु वनाया है।

"अरुन सरोरुह-कर-चरन, दृग-खंजन, मुख चन्द।
समै आइ सुन्दरि सरद काहि न करति अनन्द॥"[2]

'दृग खंजन', मुख चन्द' और सुन्दरि सरद लाक्षणिक पद हैं। दृग, मुख तथा सुन्दरि उपमेय एवं खंजन चन्द और सरद उपमान हैं। इनका आधार सादृश्य है। कवि ने वस्तु को संवेदनीय एवं गोचर वनाने के लिए इन पदों मे विव विधान किया है।

"लाज-लगाम न मानहीं नैंना मो वस नाहि।
ये मुँह जोर तुरंग लौं ऐंचत हूँ चलि जाहि॥"[3]

'लाज-लगाम' लाक्षणिक पद है। लाज उपमेय और लगाम उपमान है। इनका आधार गुण साम्य है। लाज पर लगाम का आरोप करके कवि ने लाज के धर्म का विव संवेदनीय वनाया है।

"रूप-सुधा-आसव छक्यो आसन पियत वनै न।
प्यालै ओठ प्रिया-वदन रह्यौ लगाएँ नैंन॥"[4]

'रूप-सुधा-आसव' लाक्षणिक पद है। रूप सुधा उपमेय और आसव उपमान है आधार सादृश्य है इस तरह उपमेय पर उपमान की मादकता का आरोप करके कवि ने विम्व को प्रभावशाली वनाया है।

"चुनरी श्याम सतार नभ मुख ससि की उनहारि।
नेह दवावत नींद लौं निरखि निसा सी नारि॥[5]

'चुनरी स्याम सतार नभ' तथा मुख ससि', लाक्षणिक हैं। चुनरी एवं मुख उपमेय हैं। स्याम सतार नभ और ससि उपमान है। कवि ने उपमानो का उपमेय पर आरोप करके भाव विंवों को गोचर करके संवेदना उत्पन्न किया है।

'खौरि-पनिच, भृकुटी-धनुष, वधिक-समर तजि कान।
हनत तरुन-मृग, तिलक-सर, सुरक-भाल भरि तानि॥"[6]

---

१. विहारी सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, तृ० सं० दोहा २४
२. विहारी-रत्नाकर, सं० जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' प्र० सं० दोहा ४८७
३. विहारी सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, तृ० सं० दोहा ६१३
४. वही तृ० सं० दोहा ५८६
५. वही तृ० सं० दोहा १८४
६. वही तृ० सं० दोहा १३५

'खोरि-पनिच', 'भृकुटी-धनुष', 'तिलक-सर' और तरुण-मृग लाक्षणिक पद है। खोरि भृकुटी, तिलक तथा तरुन, उपमेय एव पनिच, धनुप, सर और मृग उपमान है। इस तरह कवि ने उपमेयो पर उपमानो का आरोप करके बिंब को स्पष्ट कर सवेदनीय बनाया है।

"कौड़ा आँसू बूँद, कसि साँकर बरुनी सजल।
कीने वदन निमूँद, दृग-मलंग डारे रहत॥"[1]

दृग-मलंग लाक्षणिक पद हैं। इसमे दृग उपमेय और मलग उपमान है। इस तरह कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके नेत्रो को योगी के रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

साध्यवसाना गौणी लक्षणा :-

"हाहा वदन उघारि दृग सफल करैं सव कोय।
रोज सरोजन कें परैं हँसी ससी की होय॥"[2]

'सरोजन' तथा 'ससी' पद लाक्षणिक है। ये क्रमशः उपमान है नेत्र एवं मुख के कवि का कथन संकेतित है। इस तरह से सौन्दर्य को एक नया आयाम प्राप्त हो गया है।

"कहि लहि कौन सकै दुरी सौनजाइ मै जाइ।
तन की सहज सुवास बन देती जौ न बताइ॥"[3]

'सौनजाइ' लाक्षणिक पद है। सादृश्य के आधार पर इसका लक्ष्यार्थ है गौर वर्णीय-यौवन गन्ध से युक्त नायिका इस तरह कवि ने उपमान के माध्यम से बिंब को सापेक्ष्य और संवेदनीय बनाया है।

"स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा देखि विहग विचारि।
बाज पराएँ पानि परि तूँ पच्छीन न मारि॥"[4]

'वाज' तथा 'पच्छीन' लाक्षणिक पद हैं। वाज का लक्ष्यार्थ है समर्थ सेनानी एव पच्छीन का लक्ष्यार्थ है सजातीय। इस तरह वाज और पच्छीन उपमान है। कथ्य सकेतित है और उपमानो के सहारे बिंब को सवेदनीय बनाया गया है।

"रनित भृंग-घटावली झरित दान मधुनीर।
मन्द-मन्द आवतु चल्यौ कुंजरु कुंज समीर॥"[5]

---

१. बिहारी सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र तृ० सं० दोहा १२१
२. वही तृ० सं०, दोहा ७००२
३. बिहारी रत्नाकर, सं जगन्नाथदास 'रत्नाकर' प्र० सं, दोहा १३३
४. बिहारी सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, तृ० सं० दोहा ६८६
५. बिहारी-रत्नाकर, सं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर' प्र० सं०, दोहा ३८८

इस सपूर्ण दोहे में वसन्त की वायु और हाथी के आगमन की तुलनात्मक वात कही गई है पर वसन्त का नाम नही लिया गया है। इस पद में वसन्त आगमन ही व्यग है।

"को छूट्यो इहिं जाल परि कत कुरंग अकुलात।
ज्यों ज्यों सुरझि भज्यौ चहत त्यौं त्यौं उरझत जात॥"[1]

'कुरग' पद लाक्षणिक है। कुरग उपमान है मन का इसका आधार गुण साम्य है। कवि ने मन की सासारिक उलझनो मे फँसे रहने की स्थिति को कुरङ्ग उपमान के माध्यम से चित्रित किया है। इस तरह भाव गोचर भी हो जाता है साथ ही कथ्य संवेदनीय भी हो गया है।

निष्कर्ष—

'बिहारी सतसई' की भाषा बड़ी मँजी हुई, कसी हुई, व्याकरण सम्मत और चुस्त है। भाषा मँजी तथा चुस्त होने के कारण उसमें मुहावरे और लोकोक्तियों का स्वाभाविक प्रयोग होना अभिव्यंजना की दक्षता है। अभिव्यजन के इस कौशल के कारण मुहावरे और लोकोक्तियाँ अपने चमत्कार युक्त लाक्षणिक स्वरूप में ही रूढ़ होती जा रही है और धीरे-धीरे-अभिधा-शक्ति के क्षेत्र मे प्रवेश करती जा रही हैं। प्रारंभ मे इनके प्रयोग के साथ जो 'प्रयोजन' था वह इनका साथ छोड़ चुका है। इसीलिए अब ये निरूढा के क्षेत्र में प्रवेश कर गई हैं। बहुत से इनकी बिरादरी के बन्धु बान्धव अभिधा के क्षेत्र में पहुँच चुके है और कालान्तर मे ये भी पहुँचने वाले हैं। समस्त सृष्टि ही परिवर्तनशील है, फिर शब्द सृष्टि ही क्यो न परिवर्तशील हो ?

निरूढ़ा लक्षणा के अन्तर्गत जिन मुहावरो के उदाहरणों को उद्धृत किया गया है वे उपर्युक्त कथन के अनुसार हैं जैसे'—'खरी पातरी कान की तथा छै छिगुनी पहुँचो गिलत आदि मुहावरों का प्रयोजन नष्ट हो गया है क्योंकि इनके सुनते ही इनका लक्ष्यार्थ ही मुख्यार्थ के रूप मे आ उपस्थित होता है। विद्वान श्रोता अथवा पाठक तो इनके मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ का अन्तर अवश्य बनाए हुए है पर साधारण पाठक अथवा श्रोता इनके लक्ष्यार्थ को ही मुख्यार्थ के रूप में ग्रहण करता है।

निरूढ़ा लक्षणा के क्षेत्र मे ही कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध शब्द भी आते हैं। इस तरह भाषा के क्षेत्र में लक्षणा शक्ति सदैव नए अर्थो की खोज करती रहती है और भाषा की परिवर्तनशील प्रकृति के कारण ऐसे लाक्षणिक शब्द कालान्तर मे प्रयोजन त्यागकर रूढ़ तथा अभिधेय होते रहते हैं।

लोकोक्तियाँ अपने साथ एक पूरी कथा लिए हुए होती है। इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि एक कथा काल प्रवाह में घिसते-घिसते अपने सूक्ष्म रूप मे हमारे

---

१. बिहारी-रत्नाकर, सं० जगन्नथदास 'रत्नाकर' प्र० सं० दोहा ६७१

समक्ष रह गई हैं। किन्तु ये कथाएँ जन साधारण के मस्तिष्क की विचार सरणि मे इस तरह घुल मिल गई हैं कि उनका लक्ष्यार्थ ही आज हमारे सामने उपस्थित होता है जैसे 'गुडहर का फूल होकर आ गए हो', 'एवं पचाली का चीर होना। इनके सुनते या पढते ही लड़ाई-झगड़ा होना और बढ़ना ही अर्थ सामने आता है। वलि यवन की व्यांतु कहते ही छल-कपट की बात सामने आती है। प्राचीन लाक्षणिक कहानियो का जो रूप आज सुरक्षित है उन्हे देखकर यही प्रतीत होता है कि ये लोकोक्तियाँ भी कभी इसी कोटि की थी। काव्य रचना कार ने एक दिन 'प्रयोजन'से ओत-प्रोत हो उन-कथाओ की अर्गला खटखटाई होगी। आज वे ही अपने लक्ष्यार्थ मे रूढ हो गई हैं। इसी तरह से निरन्तर लक्षणा अर्थ के नए क्षेत्र का शोध करती है और उन्हे लोक प्रसिद्ध बनाकर अभिधा का शब्द भडार भरती रहती है।

शुद्धा उपादान लक्षणा का प्रयोग विहारी-सतसई मे प्रायः नही के बराबर है। इसका कारण यह है कि वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ का इसमे घनिष्ट सम्बन्ध होता है। अर्थ मे प्रयोजन तथा चमत्कार निहित रहने पर भी काव्य की रमणीयता मे कोई विशेष वृद्धि नही होती है। जब हम कहते है कि 'भाले जा रहे हैं।" तब इस कथन के साथ हमारे मन मे जड यंत्र और ले जाने वालो की स्थिति स्पष्ट रहती है। वास्तविकता यह है कि जिस शब्द का हम प्रयोग करते हे,उसका अंशतः आधार भाव और अशतः सामाजिक एव मनोवैज्ञानिक तत्व होते है। रीति-कालीन काव्य विशेष रूप से चमत्कार को तथा दूर की कौडी लाने को अधिक आश्रय देता था। इसी कारण उपादान शुद्धा लक्षणा को इसमे अधिक अवकाश नही मिल सका।

शुद्धा लक्षण लक्षणा के प्रयोग 'सतसई' मे पर्याप्त मात्रा मे हुए हैं। इस तरह के प्रयोगो मे वाच्यार्थ तथा लक्ष्यार्थ का सबन्ध-दूर का होता है। लक्षण-लक्षणा के क्षेत्र में नए अर्थ की खोज निरंतर चलती रहती है। इस विभिन्न भावो का आरोप विभिन्न परिस्थितियो, वस्तुओ, चेष्टाओ तथा अवस्थाओ पर होता रहता है। जब कवि 'तृपा' का प्रयोग दर्शन के लिए करता है तो तृपा की वेदना, चाह, आकर्षण, अनिवार्यता और उसके तीव्रावेग का एक साथ अर्थारोप करता है। इस तरह तृपा जन्य समस्त भाव अर्थ की रमणीयता और चमत्कार की अभिवृद्धि करने लगते है उदाहरण के लिये 'गदराने', 'डसि जाइ'बाँधत आदि के प्रयोग ऐसे ही हैं। 'गदराना' शब्द फसल की वाली अथवा फल के लिए-प्रयुक्त होता है, डसना साँप का धर्म है, तथा बँधना किसी स्थूल वस्तु का सभव है पर कवि नारी की युवावस्था का सकेत गदराने से उसकी विरह वेदना की पीडा का सकेत डसने से एव मन को नियन्त्रित करने के लिए बाँधने शब्द का प्रयोग करता है। लक्षणा के कारण यहाँ इन शब्दो को नया अर्थ विस्तार मिला है। इस तरह के प्रयोग सतसई मे स्थान-स्थान पर देखे जा सकते हे।

'सतसई' का विषय नारी के नख-शिख वर्णन तथा उसकी विविध चेष्टाओ से

संवन्धित है। काव्य के माध्यम से नारी के रूप, गुण, भाव, चेष्टा एव अवस्था का विव प्रस्तुत करना ही कवि का विशेष लक्ष्य था। अति विरल यद्यपि इस प्रकार की अर्थ योजना द्वारा कार्य कारणादि आधाराधेय विंबों की सुन्दर योजना संभव थी, किन्तु कवि का इस ओर विशेष आकर्षण नही था।

गौणी सारोप एवं गौणी साध्यावसाना का प्रयोग विहारी सतसई' में पर्याप्त मात्रा मे पाया जाता है। इसका प्रमुख कारण तो यह है कि इनकी भित्ति सादृश्य पर आधारित है और कवि को नारी के रूप, अवस्था, चेष्टा आदि भावों को सवेदन-शील एव अनुभूति गम्य वनाने के लिए सादृश्य के आधार पर अप्रस्तुत विधान करना आवश्यक था। रीति-काल में अलंकरण की प्रवृत्ति भी अधिक थी इसीलिए तो बिहारी के एक-एक दोहे मे अनेकों अलकार उलझे पड़े है। इन अलंकारों के विधान मे रूपक, परिकराकुर, अतिशयोक्ति, अप्रस्तुत प्रशंसा आदि मूल में लक्षणा शक्ति व्याप्त रहती है। इसी तरह उस काल मे नायिका भेद का विशेप प्रचलन होने के कारण विहारी के दोहों मे अनेक प्रकार की नायिकाओं की झाँकियाँ देखी जा सकती है। इन्ही प्रसंगो मे लक्षणा के प्रयोग भी उपलव्ध होते है। इन प्रयोगों से अर्थ की सवेदनीयता मे वृद्धि हुई है। उपमेय और उपमान के माध्यम से बिंव में अलौकिकता उत्पन्न की गई है तथा अनुभूतियो को तीव्रावेग के साथ विस्तार मिला है। इस तरह के प्रयोगों से काव्य की रमणीयता एवं चमत्कार मे पर्याप्त मात्रा मे वृद्धि हुई है।

रीति सिद्ध कवि बिहारी ने रीति सम सामयिक रूढियो को अनावश्यक रूप से कही भी स्वीकार नही किया है फिर भी उन पर परम्परागत रूढ़ियों का प्रभाव तो था ही। इसी कारण 'सतसई' में ऐसे उदाहदण भी मिल जाते है—

"बुधि अनुमान प्रमान स्रुति किए नीठि ठहराय।
सूछम कटि पर ब्रह्म की, अलख लखी नहिं जाय ॥"[1]

इस दोहे मे कटि की सूक्ष्मता का वोध कराने के लिए ब्रह्म की निराकारता का सहारा लिया गया है। इससे सूक्ष्मता का वोध तो अवश्य हो जाता है पर काव्य के सौन्दर्य मे कोई अभिवृद्धि नही होती है। इसी तरह का एक दूसरा सोरठा देखिए जिसमें कवि नेत्रों को मलंग (मुस्लिम फकीर) कहता है।

"कोड़ा आँसू बूँद, कसि साँकर वरुनी सजल।
कीने बदन निमूँद, दृग मलंग डारे रहत ॥"[2]

इस सोरठे मे नेत्र के योगी रूप का विंव अवश्य सापेक्ष्य हो जाता है, पर

---

१. बिहारी, सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, तृ० सं० दोहा ४७५
२. वही दोहा १२१

इससे काव्य के सौन्दर्य की वृद्धि नही होती है । इस तरह के प्रयोगों से अर्थ की रमणीयता की अभिवृद्धि नही होती है । यद्यपि ऐसे उदाहरण विहारी मे बहुत थोड़े पाए जाते है ।

'मतिराम'

रीतिकाल की सामान्य प्रवृत्ति के अनुकूल मतिराम में भी अलंकरण की प्रवृत्ति प्रचुर मात्रा में पाई जाती है । इनकी अलकार योजना बडी स्पष्ट और स्वच्छ है । अलंकार योजना का उद्देश्य भाव और वस्तु को अधिक प्रेषणीय और गोचर-प्रत्यक्षीकरण के उपयुक्त बनाना है । अनुभूतियो को मूर्तरूप प्रदान करने के लिए चित्रो की जितनी आवश्यकता होती है, उतनी ही आवश्यकता चित्रों को रूप-रग देने के लिए अलकार की होती है । सौन्दर्य की आधारशिला रूप, रङ्ग, क्रिया, गुण एव भाव होते हैं ।

साम्य-मूलक अलंकार के अन्तर्गत जो सामान्य विषय गृहीत होते है उन्हे अप्रस्तुत कहा जाता है । अप्रस्तुत के ग्रहण का मूल उद्देश्य रूप, गुण, क्रिया और भाव को स्पष्ट करना है । इनका चयन प्रकृति एवं उससे इतर जगत से किया जाता है । कवि सादृश्य, आरोप, संभावना आदि के प्रयोगो द्वारा मुख्य विषय की अनुभूति को जितना ही तीव्र बना सकता है उतनी ही उसकी कला निखर पड़ती है । मतिराम ने अप्रस्तुत योजना प्रकृति और लोक दोनो से की है । रूप सौन्दर्य चित्रण का विषय होने के कारण प्रकृति की स्थिति उद्दीपन तथा अप्रस्तुत रूप मे ही ग्रहण की गई है । उद्दीपन के अतिरिक्त आलम्बन आदि प्रकार से भी प्रकृति का उपादान इनके काव्य मे मिलता है । प्रकृति से ग्रहण किए गए परम्परागत उपमानो को मतिराम ने नवीन ढंग से प्रस्तुत किया है । इसी तरह लोक से ग्रहण किए गए अप्रस्तुत भी उनके अपने है । दोनो प्रकार के अप्रस्तुत उपमान लक्षणा शक्ति पर आधृत होने के कारण मुख्य विषय के रूप, गुण, क्रिया एवं भावो की अनुभूति कराने मे वडे सशक्त है ।

मतिराम ने अलंकारो के लक्षण और उदाहरण वाले ग्रन्थ भी लिखे हैं, साम्य-मूलक अलकार इन्हे बहुत रुचते थे, इसलिए इनके विवेचन मे इनकी प्रवृत्ति अधिक रमी है । उपमा, रूपक, और उत्प्रेक्षा उनकी, रचनाओ के अभिन्न अंग है । इनके सफल प्रयोग के लिए उन्होने मूर्त, अमूर्त सभी प्रकार के अप्रस्तुतो को जुटाने का प्रयास किया है । डा० महेन्द्रकुमार, 'मतिराम' कवि और आचार्य' में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं—"कहने का अभिप्राय यह है कि अलंकारो के लक्षण उदाहरण लिखने के नाते यो तो मतिराम ने किसी भी अलकार को अपनी रचनाओ मे बिना उपयोग के छोड़ा नही, पर जहाँ तक उनके प्रिय अलंकारो का प्रश्न है, उसके सम्बन्ध मे यह कहा सकता है कि सामान्यतः साम्य और औचित्य की ओर उनकी विशेष प्रवृत्ति रही है ।"[1]

---

१. मतिराम कवि और आचार्य, डॉ० महेन्द्रकुमार, पृ० २०२

वाच्यार्थ रमणीयता के कारण रसास्वाद में सहायक होते है, किन्तु रस की आस्वादनीयता की वृद्धि के लिए वाच्यार्थ को सूक्ष्मता प्रदान की जाती है। अर्थगत सूक्ष्मता लक्षणा और व्यजना शक्तियों के प्रयोग से ही आती है। अभिधा काव्य-विपय को ग्रहण कराके दूर हट जाती है, जबकि लक्षणा उसके मूर्तरूप की अपेक्षा उसके गुणो के निकट ले जाती है और व्यंजना से इन गुणों के अन्तः क्षेत्र की झलक मिल जाती है। मतिराम ने इन तीनो शक्तियो के प्रयोग मे सिद्ध हस्तता दिखाई है। लक्षणा के प्रयोग अलंकारिक है एवं अनुभूति को स्पष्टता प्रदान करते है।

यहाँ 'मतिराम सतसई मे आए हुए कुछ लाक्षणिक प्रयोग, जिनसे काव्य का अर्थ चमत्कृत हुआ है, उदाहरण स्वरूप दिए जा रहे है—

निरूढ़ा लक्षणा—

"राधा मोहन लाल को जाहि न भावत नेह।
परियौ मुठी हजार दस ताकी आँखिन खेह॥"[1]

'परियो मुठी हजार दस ताकी आँखिन खेह' मुहावरा है। दस हजार मुट्ठी धूल आँख में पडना तो असंभव ही है। इसका लक्ष्यार्थ है आँखों मे देखने की शक्ति न रह जाए। इस मुहावरे में लक्ष्यार्थ ही परम्परा से रूढ़ हो गया है।

"नींद, भूख अरु प्यास तजि करती हो तन राख।
जलसाई बिन पूजिहैं क्यों मन के अभिलाख॥"[2]

'करती हो तन राख' लाक्षणिक पद है। इसका वाच्यार्थ है शरीर को राख करती हो। शरीर का राख होना तो तभी सम्भव है जब मृत्यु के पश्चात् चिता पर जला दिया जाए, किन्तु इसका लक्ष्यार्थ है कि शरीर को क्यों क्षीण बनाती हो। अपने लक्ष्यार्थ मे ही यह मुहावरा रूढ़ हो गया है।

"सूखी सुता पटेल की सूखी ऊखनि देखि।
अब फूली फूली फिरै फूली आहरि वेखि॥"[3]

'फूली-फूली फिर' लाक्षणिक पद है। फूलना पुष्प धर्म है, पर इस पद मे नारी के पक्ष मे कहा गया है। इसका लक्ष्यार्थ है प्रमुदित होकर प्रसन्नता व्यक्त करना। इसी लक्ष्यार्थ में ही यह मुहावरा रूढ हो गया है।

"सब सिंगार सुन्दरि सजे बैठी सेज बिछाइ।
भयो द्रौपदी को बसन, बासर नहिन बिहाइ॥"[4]

---

१. महाकवि मतिराम, परिशिष्ट, मतिराम सतसई, सं० डॉ० त्रिभुवनसिंह, प्र० सं०, दोहा ४
२. वही दोहा २२
३. वही दोहा ६७
४. वही दोहा २७३

'भयौ द्रोपदी को वसन' लाक्षणिक पद है। इसका लक्ष्यार्थ है वृद्धि को प्राप्त हो गया है अर्थात् जिसका अन्त ही नही होता है। इसी लक्ष्यार्थ मे यह लोकोक्ति रुढ हो गई है।

"तरु ह्वै रह्यो करार को, अब करि कहा करार।
उर धरि नन्दकुमार कौं, चरन कमल सुकुमार॥"[1]

'तरु ह्वै रह्यौ करार को' लाक्षणिक पद है। इसका लक्ष्यार्थ है कि अगले क्षण सत्ता समाप्त होने वाली है। यह मुहावरा अपने लक्ष्यार्थ मे ही रूढ़ हो गया है। वाच्यार्थ पर इसके अब श्रोता अथवा पाठक का ध्यान नही जाता है।

शुद्धा लक्षण लक्षणा.—

"सूखति है वह सुन्दरी कनक वेलि अभिराम।
वाकी तपनि मिटै, जु रस बरसो घन घनश्याम॥"[2]

'सूखति है' और 'रस बरसो' पद लाक्षणिक है। सूखना पेड, पौधो तथा वनस्पतियों का संभव है सुन्दरि का नही। इसका लक्ष्यार्थ है—क्षीण होना और इसी प्रकार रस बरसो का लक्ष्यार्थ है दर्शन दो। इस तरह लक्षणा ने शब्दो को अर्थ का नया आयाम देकर गौरवान्वित कर दिया है। पद का भावार्थ यह हो गया है कि सुन्दरि क्षीण होती जा रही है अत घनश्याम दर्शन देकर विरह वेदना से मुक्त करो।

"नारि नैन के नीर को नीरधि बढ़ै अपार।
जारे जौन वियोग की बड़वानल की झार॥"[3]

'नीरधि बढ़ै अपार' लाक्षणिक पद है। इसका लक्ष्यार्थ है विरहिनी ने अत्यधिक रुदन किया। इस तरह के कथन द्वारा कवि प्रतिभा शब्दो मे नए अर्थ का विधान करके लक्षणा के क्षेत्र को विस्तृत करता है।

"ग्रीषम हूं रितु मे भरो तुहूं फूल पैराउ।
खारे जल की वहति है नदी तिहारे गाँउ॥"[4]

'खारे जल' पद लाक्षणिक है। इसका वाच्यार्थ है खारा जल पर लक्ष्यार्थ है आँसू अर्थात् निरन्तर आँसुओ की वर्षा होती रहती है। इसी 'ग्रीषम रितु' भी लाक्षणिक पद है। इसका वाच्यार्थ गर्मी का मौसम है पर लक्ष्यार्थ है विरहावस्था। इस

---

१. महाकवि मतिराम, परिशिष्ट, मतिराम सतसई, सं० डॉ० त्रिभुवनसिंह, प्र० सं० दोहा ३४२
२. वही दोहा २८
३. वही दोहा ३९
४. वही दोहा ६१

तरह मौसम और नदी की बात प्रत्यक्ष में कवि करता है पर परोक्ष रूप से विरहावस्था मे वियोगिनी की अवस्था का बिंब प्रस्तुत करता है।

"कोटि-कोटि मतिराम कहि जतन करो सब कोइ।
फाटे मन अरु दूध मै नेह न कबहूँ होइ॥"[1]

'फाटे' और 'नेह' पद लाक्षणिक है। वस्त्रादि के पक्ष में फाटना तो सम्भव है पर मन के पक्ष में नही। इसका लक्ष्यार्थ है अप्रसन्नता अथवा रुष्टता। नेह मन के पक्ष में तो उचित है पर दूध के पक्ष में सम्भव नही है। अतः इसका लक्ष्यार्थ घृत है।

'मो मन तम-तोमहि हरौ राधा को मुखचंद।
बढ़ै जाहि लखि सिंधु लौं नंद नंदन आनन्द॥"[2]

'तम-तोमहि' पद लाक्षणिक है। इसका वाच्यार्थ अन्धकार है पर लक्ष्यार्थ अज्ञान तथा बुराइयाँ हैं। अपने लक्ष्यार्थ मे ही यह पद इतना अधिक प्रसिद्ध हुआ कि अब यह कवि प्रयोग प्रसिद्धि के कारण निरूढा के क्षेत्र मे जा पहुँचा है।

गौणी सारोपा लक्षणा—

"मो मन तम-तोमहि हरौ राधा को मुखचंद।
बढ़ै जाहि लखि सिंधु लौं नंद नंदन आनन्द॥"[3]

'मुखचद' पद लाक्षणिक है। मुख उपमेय और चद उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। कवि ने उपमेय पर उपमान की विशेषताओ का आरोप करके बिंब को संवेदनीय बनाया है। इस तरह समस्त पद का भावार्थ यह हुआ कि जिस राधा के मुखचंद के दर्शन से श्रीकृष्ण का आनन्दित हृदय सागर की तरह लहराने लगता है, वही मुख मुझे भी दर्शन देकर मेरे अन्तर की मलिनताओ तथा अन्धकार को दूर कर, आनन्द का संचार करे।'

"नागरि नैन कमान सर करत न ऐसी पीर।
जैसे करत गँवारि के दृग-धनुहीं के तीर॥"[4]

"नैन कमान सर' तथा 'दृग धनुही के तीर' लाक्षणिक पद है। इनमे 'नैन' और 'दृग' उपमेय है। 'कमान सर' एवं 'धनुही के तीर' उपमान हैं। कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके नेत्रो के प्रभाव के बिंब को संवेदनीय बनाया है। इसका आधार गुण साम्य है।

---

१. महाकवि मतिराम परिशिष्ट, मतिराम सतसई सं० डॉ० त्रिभुवनसिंह प्र० सं० दोहा ७०
२. वही दोहा १
३. वही दोहा १
४. वही दोहा ५

"पानिप में घर मीन को कहत सकल संसार।
दृग मीनन को देखियत पानिप पारावार॥"[1]

'दृग मीनन' तथा 'पानिप पारावार' लाक्षणिक पद है। दृग एव पानिप उपमेय और मीनन तथा पारावार उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। दृग पर मीन का आरोप करके सौन्दर्य एवं चचलता को संवेदनीय बनाया है। इसी प्रकार पानिप पर पारावार का आरोप करके सौन्दर्य की व्यापकता का बिंब को गोचर कराया है।

"सूखति है वह सुन्दरी कनक वेलि अभिराम।
वाकी तपनि मिटै, जु रस बरसो घन घनश्याम॥[2]

'सुन्दरी कनक वेलि' लाक्षणिक पद है। इसमे सुन्दरी उपमेय है और कनक वेलि उपमान है। आधार सादृश्य है। सुन्दरी पर कनक वेलि के रग सौन्दर्य तथा नाजुकता का आरोप किया गया है। इस तरह कवि ने लौकिक चित्रो को अलौकिकता प्रदान की है।

"खेलत मार सिकार है डोरे पास समेत।
नैन मृगन सों बांधि कै नैन मृगन गहि लेत॥"[3]

'नैन मृगन' पद लाक्षणिक है। नैन उपमेय और मृगन उपमान है। इसका आधार सादृश्य है। नैन पर मृग का आरोप करके मृग नेत्र का सौन्दर्य और उसके निरीह शिकार बनने के गुण का आरोप किया गया है। इस तरह स्नेह की स्थिति का सुन्दर बिंब कवि ने सवेदनीय बनाया है।

"पानिप पूर पयोधि में रूप जाल बगराइ।
नैन मीन ए नागरनि वरवट बांधत आइ॥"[4]

'पानिप पूर पयोधि', 'रूप जाल', 'नैन मीन' और वरवट लाक्षणिक पद है। पानिप, रूप, नैन तथा वर उपमेय है एव पयोधि, जाल, मीन और वट उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके कवि ने पानिप की अगाधता, रूपाकर्पण तथा उसमे नेत्रो के फँसने की स्थिति का बिंब सवेदनीय बनाता है और वर पर वट का आरोप करके दाम्पत्य जीवन की अविछिन्नता का सकेत कवि करता है। इस तरह इन बिंबो के द्वारा सम्पूर्ण भाव सहृदय के समक्ष उपस्थित हो जाता है।

---

१. महाकवि मतिराम, परिशिष्ट, मतिराम सतसई सं० डॉ० त्रिभुवनसिंह, प्र० सं० दोहा १७
२. वही दोहा २८
३. वही दोहा ३३
४. वही दोहा ७२

'क्यों न फिरै सब जगत में करत दिगविजै मार ।
जाके दृग सावंत सर कुवलय जीतनवार ।।"[1]

'दृग सावंत सर' लाक्षणिक पद है। इसमे दृग उपमेय और सावत सर उपमान है। इसका आधार सादृश्य है। इस तरह कवि ने नेत्र के सौन्दर्य के प्रभाव को सवेदनीय वनाया है।

"जोवन मद गज मंद गति चली वाल पति गेह ।
पगनि लाज: आंदू परी, चढ़्यो महावत नेह ।।"[2]

जोवन मद' तथा 'लाज आंदू' पद लाक्षणिक हैं। इन पदो मे उपमेय और उपमान दोनों है। कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके विंवो को गोचर एव सवेदनीय वनाया है।

"चढ़ै उरोज पहार ए, उर उनके अठिलाहिं ।
तो तन नित लाली चढ़ै, ललित लाल पियराहिं ।।"[3]

'उरोज पहार' लाक्षणिक पद है। उरोज पर 'पहार' की ऊँचाई का आरोप करके विव को गोचर किया गया है। इसका आधार सादृश्य है।

"मेरे दृग बारिद वृथा बसत वारि प्रवाह ।
उठत न अंकुर नेह को तो उर ऊसर माँह ।।"[4]

'दृग वारिद' तथा उर ऊसर पद लाक्षणिक है। इनमे दृग और उर उपमेय तथा वारिद एव ऊसर उपमान है। उपमेय पर उपमानों के गुण विशेष का आरोप करके भाव को गोचर वनाया गया है। इनका आधार गुण साम्य है।

"राधा चरन सरोज नख इन्द्र किए ब्रजचन्द ।
मोर मुकुट,चन्द्रकनि तूं चख चकोर आनन्द ।।"[5]

'चरन सरोज', 'नख इन्द्र' तथा 'चख चकोर' लाक्षणिक पद हैं। चरन, नख एवं चख उपमेय और सरोज, इन्द्र तथा चकोर उपमान हैं। चरन पर सरोज के सौन्दर्य का, नख पर इन्द्र की काति का और चक्षुओं पर चकोर की स्नेह निष्ठा का आरोप करके कवि ने विव को गोचर कराया है।

---

१. महाकवि मतिराम, परिशिष्ट, मतिराम सतसई, सं० डा० त्रिभुवनसिंह, प्र० सं० दो० २३८
२. वही दोहा २७७
३. वही दोहा ३७७
४. वही दो० ३८९
५. वही दो० ३९०

"धरै कौन विधि धीर वह, सुनो धीर बलवीर।
काम तीर को भीर भरि हियरो भरयो तुनीर॥"[1]

'काम तीर' तथा 'हियरो तुनीर' लाक्षणिक पद है। काम एव हियरो उपमान हैं और तीर तथा तुनीर उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को संवेदनीय बनाया गया है।

"सिला सघन घनस्याम उर तिय कुच सैल कठोर।
मुकुत हार दुरि जात हैं परिरम्भन के जोर॥"[2]

'कुच सैल' लाक्षणिक पद है। इसमे कुच उपमेय है और 'सैल' उपमान है। इनका आधार सादृश्य है।

"जो वियोग बड़वागि की ज्वाल न नेक जर्यो न।
सो सागर अनुराग को सूखत जानि पर्यो न॥"[3]

'वियोग बड़वागि' लाक्षणिक पद हैं। वियोग उपमेय और बड़वागि उपमान हैं। इनका आधार सादृश्य है।

"करो कोटि अपराध तुम, वाके हिये न रोष।
नाह सनेह समुद्र में, बूड़ि जात सब दोष॥"[4]

'सनेह समुद्र' लाक्षणिक पद है। सनेह उपमेय और समुद्र उपमान है। आधार सादृश्य है। 'सनेह' पर समुद्र की अगाधता का आरोप करके कवि ने स्नेह की उत्कृष्टता को गोचर कराया है।

गौणी साध्यवसानाः—

"पावै ऐपन ओपनी, कहै कुरण्टक कौन।
सोनो सोनजुही लहै ललित देह दुति सोन॥"[5]

'सोनजुही' पद लाक्षणिक है। सुन्दर गौर वर्णीय नारी का सोनजुही उपमान है। इसका आधार सादृश्य है। उपमान द्वारा ही उपमेय का यहाँ बोध कराया गया है।

"सुबरन बरन सुबास जुत, सरस दलनि सुकुमार।
ऐसे चम्पक कौं तजैं ते ही भौंर गवांर॥"[6]

---

१. महाकवि मतिराम, परिशिष्ट, मतिराम सतसई, सं० डा० त्रिभुवनसिंह, प्र० सं० दो० ५१८
२. वही दो० ५३३
३. वही दो० ६२६
४. वही दो० ६६४
५. वही दो० ३७
६. वही दो० ७४

चम्पक तथा भौंर लाक्षणिक पद है। दोनों पद क्रमशः प्रेमिका और प्रेमी के उपमान हैं। इनका आधार सादृश्य है। इस तरह कवि ने कथन की गोपनीयता बनाए रखकर सहृदय के समक्ष्य भाव को संवेदनीय बना दिया है। इस तरह इसका लक्ष्यार्थ यह हुआ कि गौर वर्णीय, यौवन गन्ध से युक्त और रस पूर्ण नायिका का नायक क्यो परित्याग कर रहे हो ? यह परित्याग का समय नही है।

"दिनकर-तनया श्याम जल द्वै घट भरे बनाइ।
ताके भर गरुए भए हरए धारति पाइ॥"[1]

'द्वै घट' पद लाक्षणिक है। यह पद नारी के दोनो उरोजो का उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। इस तरह कवि ने उपमान द्वारा ही उपमेय के बिंब को सवेदनीय बना दिया है।

"चलो लाल वह बाग मे, लखो अपूरब केलि।
आलबाल घन समय को ग्रीषम रितु की बेलि॥"[2]

ग्रीषम रितु की बेलि' लाक्षणिक पद है। यह पद वियोगिनी नायिक का उपमान है। इसका आधार सादृश्य है। कवि ने ग्रीषम ऋतु की वेलि कहकर विरह विदग्धा की क्षीणता तथा वेदना का बिंब गोचर करा दिया है।

"लोक प्रसून पराग तें लखत पिंजरनि भृंग।
भए चँवेली के विरह पीत रंग सब अंग॥"[3]

'भृंग' और 'चँवेली' पद लाक्षणिक है। ये क्रमशः नायक तथा नायिका के उपमान हैं। कवि ने उपमान के माध्यम से ही उपमेय के बिंब को सवेदनीय बना दिया है। इनका आधार सादृश्य है।

"भौंर भाँवरे भरत है कोकिल कुल मँडरात।
या रसाल की मंजरी सौरभ सुभ सरसात॥"[4]

'भौंर', 'कोकिल' तथा मजरी पद लाक्षणिक हैं। ये क्रमशः नायक सखी और नायिका के उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। कवि ने कथन को गोपनीय रखते हुए भी सहृदय के समक्ष भाव को सवेदनीय बना दिया है।

---

१. महाकवि मतिराम, परिशिष्ट, मतिराम सतसई, प्र० सं० डा० त्रिभुवनसिंह, दो० १९०
२. वही दो० २३१
३. वही दो० ३७२
४. वही दो० ५६६

निष्कर्ष:—

मतिराम के समय तक काव्य मे निरन्तर प्रयोग के कारण ब्रज-भाषा मे पर्याप्त परिमार्जन हो चुका था। अत: मतिराम सतसई की भाषा बड़ी मँजी हुई तथा चुस्त है। इसमे मुहावरो और लोकोक्तियो का जो स्वाभाविक प्रयोग हुआ है, उससे मतिराम का कौशल प्रकट होता है। इस प्रकार के प्रयोग निरूढा लक्षणा पर आश्रित है। इनसे वाक्य मे एक विशेष प्रकार का चमत्कार उत्पन्न होता है। ऊपर के उदाहरणों मे आए हुए कुछ मुहावरे और लोकोक्तियाँ यहाँ इसी दृष्टि से विचारणीय है। वे इस प्रकार है.—'करती हो तन राख', फूली फूली फिरै', 'परियौ आँखिन खेह', 'भयौ द्रौपदी को वसन' आदि। ये प्रयोग आरम्भ मे सप्रयोजन थे, किन्तु आगे चलकर वे रूढ़ हो गए। तन को राख करने का लक्ष्यार्थ है शरीर को क्षीण करना, फूली-फूली फिरै का लक्ष्यार्थ है आनन्दित होना, परियौ आँखिन खेह का लक्ष्यार्थ है आँखो मे देखने की शक्ति न रह जाना और भयो द्रौपदी को वसन का लक्ष्यार्थ है जिसका अन्त न हो। कवि-प्रौढोक्ति के कारण ये लोकोक्तियाँ और मुहावरे अपने वाच्यार्थ को छोड़ चुके है और लक्ष्यार्थ मे ही रूढ हो गए है।

लक्षण-लक्षणा निरन्तर नए अर्थो का शोध करती रहती है और शब्दो को अर्थ का नया आयाम देती रहती है। मतिराम सतसई मे लक्षण-लक्षणा का पर्याप्त मात्रा मे प्रयोग हुआ है। इस तरह के प्रयोग मे वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ का दूर का सम्बन्ध होता है। कवि विभिन्न चेष्टाओं, परिस्थितियो तथा दशाओ की अभिव्यक्ति के लिए नए प्रतीको को खोजता रहता है। जब कवि कहता है कि—'नीरधि बढ़ै अपार' तो उसका प्रयोजन होता है नारी के रुदन को प्रस्तुत करना अथवा जब वह कहता है कि तुम्हारे गाँव मे खारे जल की नदी बहती है तो भी उसका प्रयोजन यही होता है कि वियोगिनियाँ निरन्तर रुदन करती रहती हैं। इसी प्रकार लक्षण-लक्षणा के प्रयोग द्वारा कवि शब्दो को नए अर्थ से मण्डित करते रहते है। 'मतिराम सतसई' मे स्थान-स्थान पर ऐसे प्रयोगो को देखा जा सकता है।

समस्त रीतिकाल मे अलकरण की प्रवृत्ति प्रधान थी, इसीलिए मतिराम सतसई मे भी अलकरण की प्रवृत्ति अधिकाधिक है। कथन को सशक्त, चमत्कार युक्त तथा बिंबो को सवेदनीय बनाने के लिए कवि को अप्रस्तुत विधान करना पड़ता है। रूपक, अतिशयोक्ति, परिकराकुर, अप्रस्तुत प्रशसा आदि के मूल मे लक्षणा-शक्ति निहित रहती है। सारोपा और साध्यावसाना गौणी लक्षणा का प्रयोग 'मतिराम सतसई' मे अत्यधिक हुआ है। इस तरह कवि अपनी अभिव्यक्ति मे प्रेषणीयता लाता है और लौकिक सौन्दर्य को अलौकिकता प्रदान करता है।

मतिराम रीतिकालीन कवि थे। रीतिकालीन रूढियो का भी इनके अप्रस्तुत विधान पर प्रभाव दिखाई पड़ता है। ऐसे स्थलो मे कवि भाव को प्रेषणीय बनाने में

सफल अवश्य हो जाता है पर सौन्दर्य की वृद्धि नही कर पाता है। यद्यपि ऐसे उदाहरण मतिराम के काव्य में विरल हैं जैसे:—"नैन मीन ए पलक मे मन जहाज गिल जाइ।" इस पद में कवि मन की अवस्था का बिंब प्रेषण करने के लिए जहाज उपमान का सहारा लेता है पर बिंब में सौन्दर्य का विधान नहीं हो पाता। ऐसे प्रयोग लक्षणा के असाधु प्रयोग कहे जाएंगे।

'रसनिधि' (संवत् १६६० से संवत् १७१७)

रसनिधि का वास्तविक नाम पृथ्वीसिह था। ये दतिया रियासत के अन्तर्गत बरौनी इलाके के जागीरदार थे। 'रसनिधि-सतसई' इनके 'रतन-हजारा' का संक्षिप्त संस्करण है।[1] इनके रतन-हजारा, विष्णु पद और कीर्तन, कवित्त, बारहमासी, गीत संग्रह, स्फुट दोहा, रसनिधि सागर, अरिल्ल, हिंडोले आदि कई ग्रन्थ खोज मे प्राप्त हुए हैं। इनके अधिकतर ग्रन्थ प्रेम भावना की अभिव्यक्ति से सम्बन्धित है। इनकी कविता से इनके प्रेम की तन्मयता का सर्वत्र परिचय मिलता है। इनकी कविता में फारसी तवियतदारी के भी दर्शन होते है, इसी कारण से इनके प्रेम की तन्मयता के साथ ही साथ अभिव्यंजना मे संयम की कमी भी दिखाई पड़ती है।

स्नेहाभिव्यक्ति में बिंबो की स्पष्टता, भावों की तीव्रता, सम्प्रेषणीयता एवं संवेदनशीलता के लिए कवि ने जहाँ प्रयास किया है वह लक्षणा पर ही आधारित है। विरह की विविध अवस्थाओ के चित्रण के लिए इन्होंने जहाँ अप्रस्तु-योजना की है वहाँ भी प्राय: लक्षणा-शक्ति का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इन्होने मुहावरे और लोकोक्तियों का कम प्रयोग किया है। फिर भी इनके प्रयोग स्वाभाविक हैं और अपने स्थान पर चमत्कार उत्पन्न करने की सामर्थ्य रखते हैं। ऐसे ही लाक्षणिक प्रयोगों के कुछ उदाहरण यहाँ दिए जा रहे हैं, जिनके आधार पर इनके काव्य मे प्रयुक्त लाक्षणिक प्रयोगों की रूप-रेखा सामने आएगी। यहाँ पर इनकी 'सतसई' मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोग दिए जा रहे है जो इस प्रबन्ध से सम्बन्धित है।

निरूढ़ा लक्षणा :—

"जिन काढ़ो ब्रजनाथ जू मो करनी को छोर।
मो कर नीके कर गहो रसनिधि नन्दकिसोर॥"[2]

इसमे 'कर गहो' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है सहारा देना अथवा शरण देना। यही लक्ष्यार्थ ही मुहावरे का मुख्यार्थ हो गया है।

---

१. रसनिधि-सतसई रसनिधि कवि के 'रतन-हजारा' का संक्षिप्त संस्करण है। ['सतसई-सप्तक' प्रस्तावन, सं० बाबू श्यामसुन्दरदास, सं० १९३१ ई० पृ० ३५]

२. सतसई-सप्तक, रसनिधि सतसई, सं० बाबू श्यामसुन्दरदास, १९३१, दो० २२

"सज्जन पास न कहु अरे ये अनसमझी बात।
मोम-रवन कहुँ लोह के चना चबाए जात॥"[1]

इसमे 'लोहे के चने चबाना' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है कठिन कार्य करना। इसी लक्ष्यार्थ मे ही मुहावरा रूढ हो गया है।

"बहुत निकाइन तै लख्यो तेरो रूप निकाइ।
तव अनुरागी दृग रहे तेरे हाथ विकाइ॥"[2]

इसमे 'हाथ विकाना' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है वशीभूत होना। इसी लक्ष्यार्थ मे ही मुहावरा रूढ़ हो गया है।

"दृग-दुस्सासन लाल के ज्यो-ज्यों खैंचत जात।
त्यो-त्यों द्रौपदि-चीर लों मन पट बाढ़त जात॥"[3]

इसमे 'द्रौपदि-चीर लो बाढत जात' लोकोक्ति है। इसका लक्ष्यार्थ है जिसका अन्त न हो। यही लक्ष्यार्थ ही लोकोक्ति का मुख्यार्थ हो गया है।

"धरि सोनै कै पींजरा राखौ अमृत पिवाइ।
विष कौ कीरा रहत है विष ही में सुख पाइ॥"[4]

इसमें 'विप का कीड़ा विष मे ही सुखी रहता है' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है नीच व्यक्ति नीचता में ही सन्तुष्ट रहता है।

शुद्धा लक्षण-लक्षणा—

"चित चुगली लागे करन नैना लगि लगि कान।
सिद्ध कला जब तै इन्हें लला पढ़ाई मैन॥"[5]

इसमे 'नैना लगि लगि कान' लाक्षणिक पद है। इसका लक्ष्यार्थ है नैन कटाक्ष करने लगे हैं। इस प्रकार इस पद को अर्थ का नया आयाम मिल गया है।

"जो भावै सो कर लला इन्हें बांध वा छोर।
है तुव सुवरन रूप के ये मेरे दृग चोर॥"[6]

इस दोहे मे नेत्रो के लिए बांधना तथा चोर पद का प्रयोग किया गया है

---

१. सतसई-सप्तक, रसनिधि सतसई, सं० बाबू श्यामसुन्दरदास, १६३१, दो० ८५
२. वही दोहा १३४
३. वही दोहा २४७
४. वही दोहा ६५३
५. वही दोहा १०८
६. वही दो० १४४

किन्तु नेत्र न तो बांधे ही जा सकते हैं और न ही चुरा सकते है। इसलिए इनका क्रमश. लक्ष्यार्थ है इनको वशीभूत करो एवं स्वरूप के प्रति आसक्त है। इस प्रकार कवि ने इन पदो को नए अर्थ से मण्डित कर दिया है।

'पल पिंजरन मैं दृग-सुवा जदपि मरत है प्यास।
तदपि तलफ जिय राख ही रूप-दरस-रस आस ।।"[1]

इसमे 'प्यास' पद लाक्षणिक है। नेत्र के पक्ष में प्यास पद का प्रयोग किया है जो असम्भव है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है दर्शन की तीव्र-अभिलाषा।

"खोर खोर सब देत हैं मेरे नैनन खोर।
लता मनोहर रूप कौ देत न कोऊ खोर ।।"[2]

इसमे दोहे के अन्तिम पक्ति का 'खोर' पद लाक्षणिक है। नेत्रो मे रूप का 'खोर' देना असम्भव है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है दर्शन देना।

"रूप किरकिरी पर गई जब तै दृगन मँझार।
लाल भए तब तै रहत बरषत अँसुवन धार ।।"[3]

इसमें 'बरषत' पद लाक्षणिक है। वर्षा करना बादल का धर्म है किन्तु यहाँ नेत्रो के लिए कहा गया है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है निरन्तर आँसू बहता रहता है।

"अरे बैद चहिए दवा सो नहिं तेरे पास।
नैन जखम तिनि रूप रस आवत हैगो रास ।।"[4]

इसमे 'जखम' पद लाक्षणिक है। नेत्र से जख्म होना सम्भव नही है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है स्नेह-वेदना। इस प्रकार इस पद को अर्थ का नया आयाम मिल गया है।

"अब लग बेधत मन हुते दृग अनियारे बान।
अब बंसी बेधन लगी सप्त सुरन सौं प्रान ।।"[5]

इसमें 'वेधत' पद लाक्षणिक हैं। इसका मुख्यार्थ है छेदना। इस दोहे मे दृग और बंशी के पक्ष में बेधना शब्द का प्रयोग हुआ है जो असम्भव है साथ ही प्राण का बिंधना भी असम्भव है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ स्नेह-वेदना उत्पन्न करना है।

---

१. सतसई-सप्तक, रसनिधि-सतसई, सं० बाबू श्यामसुन्दरदास, १९३१, दोहा १५४
२. वही दो० १५७
३. वही दो० १६०
४. वही दो० १६८
५. वही दो० १९२

"तोहि वजै विष जात चढ़ि आइ जान मन मैर।
वंसी तेरे वैर को घर घर सुनियत घैर॥"[1]

इसमे 'विप जात चढि' लाक्षणिक पद है। वशी के वजने से विप चढना असम्भव है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है काम वेदना व्याप्त हो जाती है।

"भावंता लखि लगत पल जानत को कहि देत।
पल ओटन सों नैन ये रूप स्वाद को लेत॥"[2]

इसमे स्वाद लेना पद लाक्षणिक है। स्वाद लेना जीभ द्वारा ही सम्भव है पर यहाँ दृग के लिए कहा है जो असम्भव है। अत' इसका लक्ष्यार्थ है रूप दर्शन का आनन्द प्राप्त करना।

"यातैं पल-पलना लगत हेरत आनन्दकन्द।
पियत मधुर छवि दृगन के जात ओठ ह्वै वन्द॥"[3]

इसमे 'पलना लगत', 'पियत' तथा 'ओठ वन्द होना' पद लाक्षणिक है। इनका क्रमश: लक्ष्यार्थ है वेचैन रहना, दर्शन करना और आनन्द निमग्न हो जाना। इस प्रकार कवि ने इन पदो को अर्थ का नया आयाम प्रदान कर दिया है।

"जो कहियै तौ सांच कर को मानै गह बात।
मन के पग छाले परे पिय पै आवत जात।"[4]

इसमे 'मन के पग छाले परे' पद लाक्षणिक है। इसमे मन के पग मे छाले पड़ना कहा गया है। मन को पैर ही नही होते फिर छाला पड़ना तो विल्कुल असभव है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है मन वार-वार प्रिय के पास जाने का श्रम करता हे।

सारोप गौणी लक्षणा:—

"काल-पखेरू तें सही यो तन खेत उवेर।
यह विरियाँ ऐसे समय हरिया हरिया टेर॥"[5]

इसमे 'काल-पखेरू' तथा तन खेत' लाक्षणिक पद है। इनमे—काल एवं तन उपमेय है और पखेरू तथा खेत उपमान है। इनके एकात्म्य का आधार सादृश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके विंव को सप्रेषणीय वनाया गया है।

---

१. सतसई-सप्तक, रसनिधि-सतसई, सं वावू श्यामसुन्दरदास, १६३१, दो० १६४
२ वही दो० २५०
३. वही दो० ३३१
४. वही दोहा ३६१
५. वही दोहा १६

"रसनिधि मन मधुकर रमहि जो चरनांबुज माहि ।
सरस अनखुलो खुलत है खुलो खुलोई नाहिं ।।"[1]

इसमे 'मन मधुकर' तथा 'चरनांबुज' लाक्षणिक पद है। इनमें मन एव चरण उपमेय है और मधुकर तथा अंबुज उपमान हैं। इनका आधार सादृश्य है। उपमेय का उपमान पर आरोप करके भाव को तीव्र बनाया गया है।

"अबलख नैन तुरंग ये पलकै पाषर ढार ।
आयो मदनसवार ह्वै अब को सकै सम्हार ।।"[2]

इसमे 'नैन तुरग' 'पलकै पापर' तथा मदन सवार पद लाक्षणिक है । इनमे नैन, पलकें एव मदन उपमेय हैं और तुरंग, पाषर तथा सवार उपमान है । इनके एकात्म्य का आधार सादृश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को संवेदनीय बनाया गया है।

"वदन-सरोवर तै भरे सरस रूप रस मैन ।
डीठ-डोर सौं बाँधि कै डोलत सुन्दर नैन ।।"[3]

इसमें 'वदन-सरोवर' तथा 'डीठ-डोर' लाक्षणिक पद है। इन वदन एव डीठ उपमेय है और सरोवर तथा डोर उपमान हैं। इनका आधार सादृश्य है । उपमेय पर उपमान का आरोप करके भाव को गोचर कराया गया है।

"रूप-नगर बस मदन नृप दृग-जासूस लगाइ ।
नेहिन-मन को भेद उन लीनो तुरत मँगाइ ।।"[4]

इसमे 'रूप-नगर' मदन नृप' तथा दृग जासूस' लाक्षणिक पद है। इनमें रूप, मदन एवं दृग उपमेय हैं और नगर, नृप तथा जासूस उपमान हैं। इनके एकात्म्य का आधार सादृश्य है। कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके भाव को सवेदनीय बनाया है।

"रूप-समुद छबि-रस भरो अति ही सरस सुजान ।
ता मै ते भर लेत दृग अपनै घट उनमान ।।"[5]

इसमें 'रूप-समुद' तथा 'छवि-रस' लाक्षणिक पद हैं। इनमें रूप एवं छवि उपमेय हैं और समुद्र तथा रस उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को संप्रेपणीय बनाया गया है।

---

१. सतसई-सप्तक, 'रसनिधि-सतसई' सं० बाबू श्यामसुन्दर दास, १९३१, दोहा ३५
२. वही दोहा ९८
३. वही दोहा १०५
४. वही दोहा ११३
५. वही दोहा ११८

"रूप-बाग में रहत हैं बागबान तुव नैन।
मन-धन लै छबि-अमृत-फल दैन कहत पै दे न ॥"[१]

इसमें 'रूप बाग,' 'मन-धन' तथा 'छबि-अमृत-फल' लाक्षणिक पद है। इनमें रूप, मन, छवि उपमेय है और बाग, धन तथा अमृत-फल उपमान है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को सम्प्रेपणीय बनाया गया है।

"तौ कै से तन पाते नेही-नैन मराल।
जौ न पावते रूप-सर छबि मुक्ताहल लाल॥"[२]

इसमे 'नैन-मराल' 'रूप-सर' तथा 'छवि-मुक्ताहल' लाक्षणिक पद है। इनमे नैन, रूप, एव छवि उपमेय है और मराल, सर तथा मुक्ताहल उपमान है इनका आधार सादृश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को स्पष्ट किया गया है।

"सुमन सहित आँसू-उदक पल-अंजुरिन भरि लेत।
नैन-व्रती तुव चंद-मुख देखि अरघं कौं देत॥"[३]

इसमे 'आँसू-उदक,' पल-आँजुरिन' तथा नैन व्रती लाक्षणिक पद है। इनके एकात्म्य का आधार सादृश्य है। इनमे आँसू, पल तथा नैन उपमेय है और उदक, अँजुरिन एव व्रती उपमान हैं। इस प्रकार उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को सवेदनीय बनाया गया है।

"रूप-नगर दृग-जोगिया फिरत सु फेरी देत।
छबि-मन पावत है जहाँ पल-झोरी भरि लेत॥"[४]

इसमे 'रूप-नगर,' 'दृग जोगिया, 'छवि-मन' तथा 'पल-झोरी' लाक्षणिक पद हैं। इनमे रूप, दृग, छवि, एव पल उपमेय है और नगर, जोगिया मन तथा झोरी उपमान हैं। इनके एकात्म्य का आधार सादृश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को संप्रेपणीय बनाया गया है।

साध्यवसाना गौणी लक्षणा:—

"त्रपत न मानत नैन ये लेत रूप-रस-दान।
रहत पसारैं लोभिया निस वासर पल-पान।"[५]

इसमे 'लोभिया' पद लाक्षणिक है। यह पद नेत्रों का विशेपण है, किन्तु यहाँ उपमान

---

१. सतसई-सप्तक, रसनिधि-सतसई, सं० बाबू श्यामसुन्दर दास सं० १९३१ दोहा, १२०
२. वही दोहा १२९
३. वही दोहा १७६
४. वही दोहा १९७
५. वही दोहा २२९

की तरह प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार कवि ने इसी उपमान द्वारा ही नेत्र उपमेय का वोध कराया है।

"को अवराधे जोग सुध रहु रे मधुकर मौन।
पीतांवर के छोर तं छोर सकै मन कौन॥"[1]

इसमें 'मधुकर' पद लाक्षणिक है। गोपियों ने उपालंभ में उद्धव को मधुकर कहकर सवोधित किया था। यहाँ भी मधुकर उद्धव का उपमान होकर आया है। कवि ने इसी उपमान द्वारा ही उपमेय की प्रतीति करा दिया है।

"सूरस मधुप गुंजत रहै लेत सुमन की वास।
कुम्हल्यानै फिरता नहीं अली रली ता पास॥"[2]

इसमे मधुप' तथा 'सुमन' पद लाक्षणिक है। ये दोनों पद क्रमशः—नायक नायिका के उपमान है। इनके एकात्म्य का आधार गुण साम्य है। यहाँ उपमान द्वारा ही उपमेय को प्रतीति कराई गई है।

'ससि चकोर के दरद कौ जव तुहिं असर न होइ।
कुहू निसा षोड़स कल तब तें वैठत खोइ॥"[3]

इसमे 'ससि' तथा 'चकोर' लाक्षणिक पद हैं। ये दोनों पद क्रमशः नायक एवं नायिका के उपमान है। इनका आधार गुण साम्य है। कवि ने उपमान द्वारा ही विंव को संप्रेपणीय वना दिया है।

"जानत सही चकोर कर ससि सौ प्रेम सलूक।
अमृत सरावी के रसहि समुझहि कहा उलूक॥"[4]

इसमे 'चकोर', 'ससि', तथा 'उलूक' लाक्षणिक पद हैं। ये पद क्रमशः नायिका, नायक और स्नेह-रस हीन व्यक्ति के उपमान है। इनके एकात्म्य का आधार गुण साम्य है। उपमान के माध्यम से ही यहाँ उपमेय की प्रतीति करा दी गई है।

रस निधि के लाक्षणिक प्रयोग स्वाभाविक हैं। इनके द्वारा भावों में तीव्रता आई है, विंव की संप्रेपणीयता मे वृद्धि हुई है और विंवो की संवेदन सामर्थ्य बढ़ी है। पदों के अर्थ को नया आयाम देने मे भी इन्हे सफलता मिली है। लोकोक्तियो तथा मुहावरों के स्वाभाविक प्रयोग इनकी सतसई मे पाए जाते है। ऐसे स्थलों पर भी लक्षणा का चमत्कार होता है। इनकी भावाभिव्यक्ति का क्षेत्र शृंगार-रस है।

---

१. सतसई-सप्तक, रसनिधि-सतसई, सं० वावू श्यामसुन्दर वास, सं० १९३१ ई० दोहा ३६५
२. वही दोहा ६६४
३. वही दोहा ६६६
४. वही दोहा ६७३

इसलिए जीवन के विविध रूपों की छटा इनकी 'सतसई' मे नही दिखाई पड़ती है। इसी कारण से इनके लाक्षणिक अप्रस्तुत-विधान एक निश्चित सीमा मे ही बँधे हुए है।

महाराज विक्रमसाहि (संवत् १८३९-१८८६)

महाराज विक्रमसाहि बुन्देलखड की चरखारी रियासत के राजा थे। इनका पूरा नाम विक्रमादित्य था। ये बड़े साहित्यानुरागी और गुणग्राही नरेश थे। 'सतसई' हरिभक्ति-विलास, ब्रजलाला आदि इनकी रचनाएँ है। इनकी कविता साधारणतया अच्छी और सरस है। बिहारी को आदर्श मानकर इन्होने सतसई की रचना की, पर कला का वह उत्कर्ष इनकी कविता में नही पाया जाता जो बिहारी और मतिराम की कविता मे पाया जाता है। विक्रम सतसई मे भी पर्याप्त मात्रा मे लाक्षणिक प्रयोग हुए हैं, उनमे से कुछ यहाँ उदाहरण के रूप मे दिए जा रहे हैं।

शुद्धा लक्षण-लक्षणा—

"रूप-सिंधु तेरो भर् यो अति घनि अधिक अथाह।
जे बूड़त है बिन कसर ते पावत मन चाह॥"[1]

इसमे 'बूड़त' पद लाक्षणिक है। इसका लक्ष्यार्थ है एक निष्ठ भाव से स्नेह मे तन्मय होना। इस प्रकार पद नए अर्थ से मडित हो गया है।

'जलचर थलचर गगनचर मोहि रहत सब जीव।
चढ़ी रहत मोहन दृगन तेरी छवि सब जीव॥"[2]

इसमे चढी रहत' पद लाक्षणिक है। दृग पर छवि का चढना असम्भव है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है मोहन के नेत्रो को तुम्हारी छवि ही भाती है। इस प्रकार पद को नए अर्थ का आयाम मिल गया है।

"बन तज चलिए कुंज कौ परत सघन सखि वृन्द।
नहिं जानत इहि गाउं के पयौरे हे मुख मुन्द॥"[3]

इसमे 'चलिए कु ज कौ' पद लाक्षणिक है। इसका लक्ष्यार्थ है 'रति' अभिलाषा का सकेत। इस प्रकार भाव मे प्रेषणीयता उत्पन्न की गई है।

"मानि सु यह साँची कहत मोहि रावरी आन।
लगी रहत उनके दृगनि सो मुख की मुसक्यान॥"[4]

इसमे 'लगी रहत' पद लाक्षणिक है। 'मुसक्यान' दृग मे लगी रहना असम्भव है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है उनको देखते ही प्रसन्न हो जाती हो।

---

१. सतसई-सप्तक, विक्रम-सतसई, सं० बाबू श्यामसुन्दरदास, सं० १९३१ ई० दोहा ७२
२. वही दोहा ८०
३. वही दोहा ८८
४. वही दोहा ९२

सारोपा गौणी लक्षणा—

"राते पट विच कुच-कलस लसत मनोहर आव ।
भरे गुलाब सराव सौं मनो मनोज नवाव ॥"[1]

इसमे 'कुच-कलस' लाक्षणिक पद है । इस पद में कुच उपमेय और कलश उपमान है । इसका आधार सादृश्य है । उपमेय पर उपमान का आरोप करके विंव को स्पष्ट किया गया है ।

"गति गयंद कटि केहरी श्रीफल उरज उतंग ।
वदन चन्द दृग झख जितो भौंहैं धनुष अनंग ॥"[2]

इसमें 'गति गयद', 'कटि केहरी', 'वदन चंद', 'दृग झख' तथा 'भौहैं धनुष' पद लाक्षणिक है । इनमे गति, कटि, वदन, दृग एवं भौह उपमेय है और गयंद, केहरि, चन्द, झख तथा धनुप उपमान हैं । इनके एकात्म्य का आधार सादृश्य है । कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके विंव को सवेदनशील वनाया है ।

"नहि नजरत हियरौ जरत चकित चितै चहुँ ओर ।
तिय तेरे मुख चन्द के मेरे नैन चकोर ॥"[3]

इसमें 'मुख चन्द' तथा 'नैन चकोर' लाक्षणिक पद हैं । इनमे मुख तथा नैन उपमेय है और चन्द एव चकोर उपमान है । इनका आधार सादृश्य है । उपमेय पर उपमान का आरोप करके विंव को सप्रेपणीय वनाया गया है ।

साध्यवसाना गौणी लक्षणा:—

"तरुन तिहारे दृगनि की भए नहीं छबि लीन ।
ताते वनचारी भए अलि खंजन मृग मीन ॥"[4]

इसमे 'अलि' 'खजन' :मृग' तथा 'मीन' लाक्षणिक पद हैं । ये सभी पद नेत्र के उपमान है । इनका आधार सादृश्य है । कवि ने इन्ही उपमानों के ही माध्यम से विंव को संप्रेपणीय वनाया है ।

"जो पराग मकरन्द मधु कमल फूल में होइ ।
मधुकर तू चाहत लह्यौ कनक कली में सोइ ॥"[5]

इसमे 'कमल' 'मधुकर' तथा 'कनक कली' लाक्षणिक पद है । ये क्रमशः प्रतीक है स्वनायिका, नायक एव परकीया नायिका के । इनके एकात्म्य का आधार

---

१. सतसई-सप्तक, विक्रम-सतसई, सं० वावू श्यामसुन्दर दास सं० १९३१ ई० दोहा ५६
२. वही दोहा ६६
३. वही दोहा ८१
४. वही दोहा १८७
५. वही दोहा ३३०

गुण सादृश्य है। इस प्रकार प्रतीकों के माध्यम से ही भाव को सप्रेषणीय बनाया गया है।

"पंकज के धोखे मधुप कियो केतकी संग।
अन्ध भयो कंटक विधो भयो मनोरथ भंग।।"[1]

इसमे 'मधुकर', 'पंकज' तथा 'केतकी' लाक्षणिक पद हैं। ये सभी प्रतीक है नायक, स्वकीया नायिका एव परकीया नायिका के। इनके एकात्म्य का आधार गुण साम्य है। इस प्रकार कवि ने इन्ही प्रतीको के ही माध्यम से भाव को सवेदनशील बनाया है।

इनके लाक्षणिक प्रयोग सवेदन तथा सप्रेषण की सामर्थ्य रखते है। इस प्रकार के अनेक प्रयोग 'सतसई' के ७०० पदो मे बिखरे पड़े है। इनसे काव्य की रमणीयता, भाव की तीव्रता तथा विब की सप्रेषणीयता मे शक्ति आ गई है। क्रिया पदो के लाक्षणिक प्रयोगो की भी इनकी रचना मे बहुलता है, जिससे बिंब गोचर कराने की सामर्थ्य मे वृद्धि हुई है।

रामसहाय दास (सं० १८६० – १८८० तक)

रामसहाय दास की प्रमुख रचना 'राम सतसई' है। इनकी 'सतसई' सरस और स्वाभाविक रचना है। इसमे माधुर्य एवं प्रसाद गुण की प्रचुरता है। स्थान-स्थान पर इनकी रचना मे लाक्षणिक प्रयोग पाए जाते है। यहाँ उनमें से कुछ उदाहरण दिए जा रहे है।

शुद्धा लक्षण-लक्षणा:—

"विधु बंधुर मुख मा बड़ो बारिज नैन प्रभाति।
भौंह तिरीछी छबि गड़ी रहति हिये दिन राति।।"[2]

इसमे 'गड़ि' लाक्षणिक पद है। हृदय मे छवि का गडना असभव है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है वशीभूत करना। इस प्रकार इस पद को अर्थ का नया आयाम मिल गया है।

"हंसि आवै हंसि जात है कसि अंगियं अंगिराय।
मोहनि कों सतराय कै अंखियान सो बतराय।।"[3]

इसमें 'बतराय' पद लाक्षणिक है। आँखो से बात करना असंभव है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है आँखो से इशारा करना। इस प्रकार यह पद नए अर्थ से मडित हो गया है।

---

१. सतसई-सप्तक, विक्रम-सतसई, सं० बाबू श्यामसुन्दर दास, सं० १९३१ ई० दोहा ३३५
२. वही दोहा ५७
३. वही दोहा ९३

"पुहुपित देखि पलास-वन तव पलास तन होइ।
अव मधुमास पलास भो सुचि जवास सम सोइ॥"[१]

इसमे 'पलास' लाक्षणिक पद है। तन का पलास वृक्ष होना तो संभव नही है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है आनन्दित होना। इस प्रकार शब्द को अर्थ का नया आयाम मिल गया है।

सारोपा गौणी लक्षणा:—

"मन नितंव पर गामरू तरफरात परि लंक।
वर वेनी नागिन हन्यौ रवर वीछी को डंक॥"[२]

इसमें वेनी नागिन' लाक्षणिक पद है। इस पद मे वेनी उपमेय और नागिन उपमान है। इसका आधार साहृश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके विंव को सप्रेपणीय वनाया गया है।

"गहि वरुनी वरछी वनी अरु कटाक्ष तरवारि।
नैन वीर लै भीर घसि घीर अमी रहि मारि॥"[३]

इसमे 'वरुनी वरछी' तथा 'कटाक्ष तरवारि' लाक्षणिक पद हैं। इनमे वरुनी एवं कटाक्ष उपमेय और वरछी तथा तरवारि उपमान है। इनके एकात्म्य का आधार गुण साम्य है। उपमेय का उपमान पर आरोप करके भाव को संवेदनशील वनाया गया है।

"अंग कंप स्वर भंग भो विवरन अति मन रंज।
नैननंद मुखचंद सों मूंदि गए दृगकंज॥"[४]

इसमे 'मुखचन्द' तथा 'दृग कज' लाक्षणिक पद है। इनमे मुख एव दृग उपमेय हैं और चन्द तथा कंज उपमान हैं। इनके एकात्म्य का आधार साहृश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके विंव को स्पष्ट किया गया है।

साध्यवसाना गौणी लक्षणा.—

"रमन गमन सुनि सखिन तन तकि न कहत कछु वार।
नैननि इन्दीवरनि तें वहति कलिंदी धार॥"[५]

इसमे 'कलिदीधार' पद लाक्षणिक है। यह पद आँसू के उपमान के रूप में

---

१. सतसई-सप्तक, राम-सतसई, सं० वावू श्यामसुन्दर दास, सं० १६३१ ई० दोहा १३०
२. वही दोहा ६६
३. वही दोहा १५६
४. वही दोहा १६५
५. वही दोहा १४३

यहाँ प्रयुक्त है। आधार गुण सादृश्य है। उपमान द्वारा ही भाव को सम्प्रेपणीय प्रदान की गई है।

"ससि लखि जगत विदित कहो जाय कमल कुँमिलाय।
यह ससि कुँमिलानो अहो कमलहि लखि केहि भाय॥"[1]

इसमे द्वितीय पक्ति मे आए हुए ससि तथा कमल लाक्षणिक पद है। ये दोनो पद क्रमशः नायिका और नायक के उपमान हैं। इनका आधार सादृश्य है। कवि ने यहाँ उपमान के ही द्वारा भाव को संप्रेपणीय बना दिया है।

'राम-सतसई' मे लाक्षणिक प्रयोगो की बहुलता नही है, फिर भी पर्याप्त लाक्षणिक प्रयोग इसमे हुए हैं। इन प्रयोगो द्वारा पर्याप्त चमत्कार एव काव्य मे चारुता उत्पन्न हुई है।

---

१. सतसई-सप्तक, राम-सतसई, सं० बाबू श्यामसुन्दर दास, सं० १९३१ ई० दोहा ११३

चतुर्थ अध्याय

"रीति-मुक्त स्फुट काव्य और लक्षण का सौन्दर्य"

शृंगारिक धारा:—

आलम

आलम रीति-मुक्त धारा के प्रमुख कवि थे। इन्होने प्रेमोन्मत्त पपीहे की भाँति अपनी 'प्रेम पीर' काव्य में उँड़ेल दी है। इन्होने काव्य मे शृंगार रस की ऐसी उन्मादिनी सरिता प्रवाहित की कि सहृदय रसिको का मन उसमे आकंठ निमग्न होने को लालायित हो उठा। इनकी रचनाओ मे तन्मयता और सच्ची निष्ठा पाई जाती है, इसका कारण इनका उदात्त प्रेम है। भाषा, भाव तथा अभिव्यंजना-शैली की दृष्टि से व्रजभाषा काव्य मे इनका स्थान घनानन्द के समकक्ष है।

ये प्रेमोन्मत्त गायक तो थे ही, इनकी दृष्टि विरह की अन्तर्वृत्तियो के निरूपण पर विशेष रूप से जमी रही। इसी कारण रीति से मुक्त हो कर काव्य का एक स्वच्छन्द प्रवाह इन्होने प्रवाहित किया। हृदयानुभूतियों को ठीक-ठीक अभिव्यक्त करने के लिए इन्होने लाक्षणिक और व्यग्यमूलक पदावलियो की रचना की। इस कारण इनकी रचना मे लाक्षणिक चित्रात्मकता उत्पन्न हो गई। इन्होने अभिव्यंजना कौशल के लिए अलंकृत शैली का तो प्रयोग किया, पर उसमे अस्वाभाविकता नही आने दी।

यहाँ इनकी रचना 'आलमकेलि' मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोगों का दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

निरूढ़ा लक्षणा:—

'आलम' लै राई लोन वारि फेरि डारि नारि
 वोलि घौं सुनाइ धुनि कनक कँगन की॥"[1]

'राई लोन वारना' मुहावरा है। इसका लाक्ष्यार्थ है सौन्दर्य को दृष्टि न लगे इसका उपाय करना।

"छाह हूँ के छल मिलि हौंही भई तेरी छाँह,
 जौ लौं परछाँही पर छाही आनि छाई है।"[2]

'हौंहू भई तेरी छाँह' एक मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है तुम्हारे आत्यधिक निकट आ गई हूँ अथवा तुम्हारे साथ-साथ लगी रहती हूँ। इसी लक्ष्यार्थ में मुहावरा रूढ हो गया है।

"अधर सुखात लूसें आधिया न आवै वात,
 आधो मुख देखि मन आधोआध ह्वै गयो॥"[3]

---

१. आलमकेलि, सं० लाला भगवानदीन, सं० १९७९ प्रथमावृत्ति पृ० ३, पं० सं० ६
२. वही पृ० १४ पं० सं० ३१
३. वही पृ० २० पं० सं० ४७

'मन आधोआध ह्वै गयो' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है मन घायल हो गया। अपने इसी लक्ष्यार्थ मे मुहावरा रूढ हो गया है।

"कमल से हाथ रंभ जंघा गौन हाथी को सो,
हाथ ही हाथन सब स्थान मूसि लै गई।"[१]

'हाथ ही हाथन मूसि लै गई' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है देखते-देखते चुरा ले गई। इसी लक्ष्यार्थ मे ही अब मुहावरे का मुख्य अर्थ व्यक्त होने लगा है।

"कहै कवि 'आलम' कुमारी वृषभान की सु,
ऐसी सुकुमारि देखि छतिया सिराति है।।"[२]

'छतिया सिराति है' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है मन आनन्दित होता है अथवा मन मे चाह पैदा होती है। यही लक्ष्यार्थ अब मुहावरे का मुख्यार्थ हो गया है। लक्ष्यार्थ जब लोक प्रसिद्ध पा जाता है तब शब्द का मुख्यार्थ हो जाता है और निरूढा लक्षणा के अन्तर्गत आ जाता है।

"खरी है निसांसी तै तौ कीनी है बिसासी मारि,
दसई दसा सी लाख भाँति लखि लेखिहौ।"[३]

'दसई दसा' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है विरहावस्था की दसई दशा अर्थात् मृत्यु। इसी लक्ष्यार्थ मे ही मुहावरा रूढ हो गया है।

"डोले डोले बोलौ बैन जी पर ते डोलति हैं,
पी पर तिया ते भये पीपर के पात हौ।।"[४]

'भए पीपर के पात हौ' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है चचल हो गए हो। इसी लक्ष्यार्थ मे मुहावरा रूढ हो गया है।

"अंज भरे कंचनहिं कीरा कहूँ कोरत है,
कंटक की कोर कहूँ हीरा बेधे जात है।"[५]

'कटक की कोर कहूँ हीरा वेधे जाते है' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है सुकोमल वस्तु का प्रभाव कठोर वस्तु पर नही पडता। इसी लक्ष्यार्थ मे ही अब मुहावरे का मुख्यार्थ प्रतीत होने लगा है।

"सीस चढ्यो रजनीस जबै तन की थिक बवन छांह भई है।"[६]

---

१. आलमकेलि, स० लाला भगवानदीन, प्रथमावृत्ति,सं० १९७९,पृ० ५२ प० सं० ६२
२. वही पृ० ३३ प० सं० ७६
३. वही पृ० ५२ प सं १२३
४. वही पृ० ९२ प० सं० १७२
५. वही पृ० ८३ प० स० १९८
६. वही पृ० १४४ प० सं० ३७२

'बावन छाँह भई है' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है अत्यधिक छोटी हो गई है। सम्पूर्ण पंक्ति का अभिप्राय है अर्द्ध रात्रि के समय अभिसारिका के तन की स्थिरता अत्यधिक छोटी हो गई है अर्थात् स्थिरता समाप्त हो गई है।

शुद्धा उपादान लक्षणा—

"फूल्यो सुजुन्हाई कुसुमाकर' की औ, फूल्यो वन वन रसवीथिन बिहरि लै।"[1]

'फूल्यो वन' पद लाक्षणिक है। इसका लक्ष्यार्थ है वन के पेड़-पौधे फूले।

शुद्धा लक्षण-लक्षणा:—

"आलम कहै हो रूप आगरो समातु नाहीं,
छवि छलकति इहाँ कौन की समाई है।"[2]

'समातु' और 'छलकति' लाक्षणिक पद है। समाना तथा छलकना का जल आदि पदार्थो के सम्बन्ध मे प्रयोग तो उपयुक्त हो सकता है पर रूप के सम्बन्ध मे समाना एवं छलकना असम्भव है। इसलिए इन पदो का लक्ष्यार्थ है रूप अत्यधिक द्युतिमान हुआ है तथा छवि सौन्दर्य अपनी सीमा को पार कर गया है। इस प्रकार कवि ने शब्द के अर्थ को नया आयाम दिया है।

"आली तौ लौं चलि जौ लौं लाली में लपेटो ससि,
रवि को न छवि छिन जोन्ह ना जनाई है।"[3]

'लपेटो' 'रवि को न छवि' तथा 'जोन्ह ना जनाई है' लाक्षणिक पद है। लाली के पक्ष मे लिपटना कहना असम्भव है क्योकि लाली वस्त्रादि की तरह लिपटने वाली वस्तु नही है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ लाली से युक्त है। 'रवि को न छवि' का लक्ष्यार्थ है सूर्यास्त हो चुका है और 'जोन्ह ना जनाई' का लक्ष्यार्थ है चन्द्र की किरणें स्पष्ट नही हुई है अर्थात् प्रकाश नही हुआ है। दोनो पदो का सम्मिलित लक्ष्यार्थ है अभी धुँधलका अर्थात् गोधूली का समय है।

"फूली सुजुन्हाई कुसुमाकर' की रैन की औ,
फूल्यो वन घन रसवीथिन बिहरि लै।"[4]

'फूली' पद लाक्षणिक है। फूलना पुष्प धर्म है किन्तु इसमे चन्द्र के लिए प्रयुक्त है। अतः इसका लक्ष्यार्थ है प्रकाशित होना।

---

१. आलमकेलि, सं० लाला भगवानदीन, प्रथमावृत्ति, सं० १९७९, पृ० १५ प० सं० ३३
२. वही पृ० ८ प० सं० १७
३. वही पृ० १४ प० सं० ३१
४. वही पृ० १५ प० सं० ३३

"चूर ह्वै के फेत्यो फेहू बांकी सूधी चालि आली,
तू तो चलि आई वाके नैनाऊ न चले हैं।"[1]

'चूर ह्वै के' तथा 'नैनाऊ न चले हैं' लाक्षणिक पद हैं। व्यक्ति के पक्ष मे चूर होना असम्भव है क्योंकि चूर तो कोई वस्तु ही हो सकती है। नेत्रो को पद नही होते कि वे चल सकें। इसलिए पद के अर्थ प्राप्ति मे मुख्यार्थ से बाधा पड रही है। इस प्रसग में इन पदों का लक्ष्यार्थ दुखी होकर निराश होना और दिखाई न पड़ना अथवा एकटक देखते रह जाना है। कवि प्रतिभा ने इन पदो को नए अर्थ से मण्डित कर दिया है।

"तरल तुरग नैन तरुनाई भरि आई,
गोरे मुख सोहै अरुनाई अधरन की।"[2]

'तरल' तथा 'भरि' पद लाक्षणिक है। तरलता तो जल आदि पदार्थों मे होती है 'तुरग नैन' के पक्ष मे तरल का प्रयोग असम्भव है। इसी प्रकार भरना वस्तु का धर्म है तरुणाई का नही। इसलिए इनका लक्ष्यार्थ है 'चचल' और छाना। पद का अभिप्राय है चंचल नेत्र रूपी तुरगों मे तरुणाई छा गई है अथवा प्रतीत होने लगी है।

"फूल हो के भार भरि सीस फूल फूलि रहे,
फूली साँझ फूली आवै फूलन की माल सी।"[3]

'फूलि' तथा 'फूली' लाक्षणिक पद हैं। फूलना पुष्प धर्म है किन्तु यहाँ फूलना आभूषण, सध्या एवं व्यक्ति के लिए प्रयुक्त है। इसलिए क्रमश इनका लक्ष्यार्थ है शीश फूल का शोभित होना, सध्या का विकसित रूप और हर्षित होना।

"सोयवो है कान्ह सु तो सोयबो को नेहु नहीं,
नेम यहै पेम-पथु आए दुख बोयगो।"[4]

'सोयवो' तथा 'वोयगो' पद लाक्षणिक है। स्नेह के पक्ष मे सोना एव दुख के पक्ष मे वोना असम्भव है। इसलिए इनका लक्ष्यार्थ है। 'स्नेह मे आनन्द' और दुख का प्रारम्भ। इस प्रकार के प्रयोग द्वारा कवि ने इन पदो को नए अर्थ से विभूषित कर दिया है।

"भली भई भोर भए पावं धारे भावते जू,
हम अन भावती है भावतिनु भाए हौं।"[5]

---

१. आलमकेलि सं० लाला भगवानदीन, प्रथमावृत्ति, सं० १९७९ पृ० २० प० सं० ४
२. वही पृ० ३७ प० सं० ८७
३. वही पृ० ३८ प० सं० ८९
४. वही पृ० ४२ प० सं० ९९
५. वही पृ० ७३ प० सं० १७४

'भलीभई' तथा 'भावते जू' लाक्षणिक पद हैं। खंडिता नायिका प्रातः नायक के आने पर कहती है जबकि नायक के शरीर पर पूर्व रति के चिन्ह वर्तमान है। अतः विपरीत लक्षणा द्वारा इन पदो का लक्ष्यार्थ है बुरा किया और न भाने वाले।

गौणी सारोपा लक्षणा:—

> "तेरोई मुखारविंद निंदै अरविन्दै प्यारी,
> उपमा को कहै ऐसी कौन जिय में खगै।"[1]

'मुखारविंद' पद लाक्षणिक है। मुख उपमेय और अरविंद उपमान है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके मुख सौन्दर्य को सम्वेदनीय बनाया गया है। इनका आधार भी साहृश्य है।

> "हीरा से दसन मुख बीरा नासा कीर चारु,
> सोने से सरीर रचि चीर चली धाम को।"[2]

'नासा कीर' पद लाक्षणिक है। इसमें नासा उपमेय और कीर उपमान है। इनका आधार साहृश्य है। कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को संप्रेषणीय बनाया है।

> "मंजन के आवि ते वै न्यारे हैं सिंगार हार,
> अंजन की रेख हग खंजनु मैं धारिलै।"[3]

'हग खञ्जनु' पद लाक्षणिक है। इसमे हग उपमेय और खजनु उपमान है। इनका आधार साहृश्य है। हग पर खंजन का आरोप करके हग के सौन्दर्य के बिंब को सवेदनीयता प्रदान की गई है।

> "सेत संख विधु जोति अंजन जहर सजि,
> वक्रधनु अरुन सुमनि संग लाए हैं।
> पेम सुरा सूधे घेनु सुन्दर समान रंभा,
> 'आलम' चपल हय काय के सघाए हैं।
> प्रीति मधु पूतरी कलय लच्छी पूरन,
> धनन्तरि सुदिष्टि गज गति पलटाए हैं।
> काहे को समुद्र मथि देव तान श्रम कीनो,
> चौदह रतन तिय नैननि में पाए हैं॥"[4]

---

१. आलमकेलि, सं० लाला भगवानदीन, प्रथमावृत्ति सं० १९७६, पृ० १० पद सं० २१
२. वही पृ० १०, पद २२
३. वही पृ० १५, पद ३३
४. वही पृ० १५, पद ३४

'सेत सख', 'अंजन जहर', 'वक्रधनु', 'अरुन सुमनि', 'पेमसुरा', सूधे धेनु', 'चपल हय', 'प्रीति मधु', 'पूतरी लच्छी' और 'गज गति' लाक्षणिक पद है। इनमे उपमेय और उपमान दोनो वर्तमान है। इनका आधार भी सादृश्य है। कवि ने उपमेयो पर उपमानो का आरोप करके समुद्र विमन्थन की उपलब्ध वस्तुओ का चित्र प्रस्तुत कर दिया है। नेत्रो मे सभी रत्नो की व्याप्ति बताकर साग रूपक का अद्भुत रूपक खड़ा कर दिया है।

"पग डगमगात हेरत हँसत विरह भुअंगम को डस्यो।"[1]

'विरह भुअगम' लाक्षणिक पद है। इसमे विरह उपमेय और भुअङ्गम उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। विरह पर भुअङ्गगम के डसने का आरोप करके कवि ने विरह वेदना की भयकरता को प्रस्तुत किया है। विरह की वेदना के बिंब को सम्वेदनीय बनाने के लिए ही विरह को भुअङ्गम कहना पड़ा है।

गौणी साध्यावसाना लक्षणा :—

"काम रस माते ह्वै करेरी केलि कीन्ही कान्ह,
फूलनि की मालिका हू मीड़ि मुरझाई है।"[2]

'फूलन की मालिका' पद लाक्षणिक है। यह पद उपमान है नायिका का कवि ने उपमान द्वारा ही उपमेय की प्रतीति करने का प्रयास किया है इस प्रकार कथ्य भाव गोपनीय रहते हुए भी सहृदयजनो को सुलभ करा दिया है। उपमेय और उपमान का आधार सादृश्य है।

"बदन बिलोकि साध सुधा की विबुध करें,
कुमुदिनि फूली जानि कुमुद को बन्धु है।
चंपा, सिंह, सारस करिनि, कोकिला, कदलि,
बीजु, बिंब, लीने सब ही को मन बन्धु है।"[3]

'चपा', 'सिंह', 'सारस' 'करिनि', 'कोकिला', 'बजु' और 'बिंब' लाक्षणिक पद है। ये सभी नारी के अवयवो के उपमान है। चपा शरीर का, सिंह कटि का, सारस उरोज का, करिन गति का कोकिला कठ माधुर्य का कदली जाहु का, बीजु दत का और बिंब अधर का उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। कवि ने यहाँ उपमानो के माध्यम से ही नारी सौन्दर्य को सवेदनीय बनाया है।

---

१ आलमकेलि, सं० लाला भगवानदीन, प्रथमावृत्ति, सं० १९७९, पृ० १५२ पद सं० ३९७

२. वही पृ० २५, पद ५७

३. वही पृ० ३४, पद ७९

" 'आलम' मयंक पूरो परिवा सो ह्वै गयो है,
कुहू जो न परे तो रही ही कला एक हूँ ।"[1]

'मयक' तथा 'परिवा' लाक्षणिक पद है । मयक उपमान है मुख का और परिवा उपमान है विरह जन्य वेदना का । इनका आधार सादृश्य है । कवि ने उपमान द्वारा ही उपमेय का सौन्दर्य संवेदनीय बनाया है । विरह जन्य वेदना के मुख पर लक्षित होने के भाव को कवि ने मयक पूरो परिवा सो कहकर भाव को प्रस्तुत कर दिया है ।

"फूलि फुलवारी रही उपमा न जाइ कही,
कहां धों सराहौं ताते जोति अधिकानी है ।
'आलम' कहूँ हो धरी मोतिन की पाँति खरी,
हीरन की कांति छवि देखि कै लजानी है ।"[2]

'फूलि फुलवारी' पद लाक्षणिक है । यह नव यौवना नायिका का उपमान है । उपमान द्वारा ही उपमेय के सौन्दर्य को संप्रेपणीय बनाया गया है ।

'आलमकेलि' मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोग बड़े स्वच्छ और सस्पष्ट हैं । इनसे काव्य की चारुता की वृद्धि हुई है । भावों की संप्रेपणीयता, सवेदनीयता और विंव-गोचरता मे इन लाक्षणिक प्रयोगो से पर्याप्त सहायता मिली है । इस प्रकार कवि ने इन प्रयोगों द्वारा भावो में तीव्रता उत्पन्न कर दी है । इस लाक्षणिक मूर्तिमत्ता के कारण इनका काव्य प्रभावशाली हो उठा है और पद-पद पर अभिव्यजना की दक्षता के भी दर्शन होते हैं ।

'घनानन्द'

रीतिकाल के फुटकर कवियो में कुछ ऐसे कवि है, जिन्हे प्रेम के उन्मत्त गायक के रूप में स्वीकार किया गया है । इन्ही प्रेम के उन्मत्त गायकों मे एक प्रमुख गायक [illegible] प्रा[illegible]ानन्द अपने आन्तरिक प्रेम को अभिव्यक्त करने के लिए काव्य की धनानन्द थे । घ[illegible] वे रीतिकाल की वँधी-वँधाई रूढ़ियों मे उलझना नही चाहते चौड़ी भूमि चाहते [illegible] रचना अधिकतर वहिर्वृत्ति के निरूपण मे व्यस्त थी और थे, क्योकि रीतिवद्ध [illegible]तर्वृत्ति के निरूपण मे लगाना था । इसी प्रवृत्ति के कारण इन्हे अपने हृदयवेग [illegible] एक स्वच्छन्द मार्ग पर अपनी काव्य सरिता को प्रवाहित उन्होने रीति से मुक्त ह[illegible] दिखाने में इन्होने अपने को परेशान नही किया, बल्कि किया । कला की कारीग[illegible]कविता .का रूप धारण करके प्रकट हुआ है । वस्तुतः वे इनके हृदय का वेग ह[illegible]

१. आलमकेलि, सं० लाला भ[illegible]वानदीन, प्रथमावृत्ति सं० १९७९ पृ० ४७ प० सं० १११
२. वही पृ० १४६ प० सं० ३[illegible]९१

काव्यमूर्ति थे। इनके काव्य ने ही इनका निर्माण किया था।[1] इनके काव्य मे वाणी का विस्तार हुआ है और वे इसकी सीमा से भली भाँति परिचित थे। इन्होने अपनी रचना में लाक्षणिक और व्यग्यमूलक पदावली को अपनाकर हृदयानुभूतियो को ठीक-ठीक व्यक्त करने का अद्भुत कौशल दिखाया है। इसीलिए इनके भावो के कोश का वाणी के द्वारा समुचित रूप से उद्घाटन हो सका। इन्होने हृदय की अनेक सूक्ष्म से सूक्ष्म अन्तर्वृत्तियो को विरोध मूलक या वक्रोक्ति पद्धति से अभिव्यक्ति किया है। इस सम्वन्ध मे पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र का मत द्रष्टव्य है—

"वाणी के विस्तार की सीमा वस्तुतः ये ही जानते थे। भावो का कोश वाणी के प्रतीको द्वारा उद्घाटित करने की शक्ति इन्ही मे थी। हृदगत अनुभूतियो को ठीक-ठीक व्यक्त करने के लिए भापा की गति निरतर वाधित होती रहती है। इन (रीतियुक्त) कवियों ने लाक्षणिक और व्यग्यमूलक पद्धति पर अधिकाधिक चलकर यह वाधा दूर कर दी है।"[2]

घनानन्द कवित्त' के प्रायः प्रत्येक पद मे लक्षणा का कोई न कोई स्वरूप अवश्य वर्तमान है। मुहावरो का सुन्दरतम प्रयोग इनकी रचना मे पाया जाता है। इस प्रकार इनकी रचना अर्थ की शक्ति से सपन्न होकर सामने आती है। वाग्योग का ऐसा सुन्दरतम विधान रीतिकाल मे अन्यत्र दुर्लभ है। इन्होने अलकृत शैली का व्यवहार अपनी रचना मे किया है, पर पाडित्य प्रदर्शन के लिए नही वल्कि हृदय की स्थिति का सच्चा आभास देने के लिए। प्रेम की विपमता के निरूपण के लिए इन्होने 'विरोधाभास' का सहारा लिया है, पर इससे मुहावरे दानी मे कही वल नही पड़ने पाया है। इन्ही मे से कुछ लाक्षणिक प्रयोगो के उदाहरण यहाँ दिए जा रहे हैं।

निगूढ़ा लक्षणा.—

"पहिलें अपनाय सुजान सनेह सों, क्यों फिरि तेह कै तोरियै जू।
निराधार अधार दै धार-मझार, दई! गहि वाँह न वोरियै जू।
घन आनंद आपने चातिक कों, गुन-वाँधि लै, मोह न छोरियै जू।
रस प्यास कै प्याय, वढ़ाय कै आस, विसास मैं यो विस घोरियै जू॥"[3]

'गहि वाँह न वोरियै' तथा 'विसास मैं यो विस घोरियै' लाक्षणिक पद हैं। दोनों मुहावरे है। इनका लक्ष्यार्थ है 'सहारा देकर वेसहारा करना' और विश्वास को अविश्वास मे वदलना'। अपने इन्ही लक्ष्यार्थो मे ये मुहावरे रूढ हो गए हैं।

---

१. 'लोग है लागि कवित्त वनावत मोहि तौ मेरे कवित्त वनावत।' 'घनानन्द कवित्त' सं० वि० प्र० मिश्र, च० सं० पद २०६
२. घनानन्द कवित्त सं० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रस्तावन, चतुर्थ सं०, पृ० ५
३. घनानन्द कवित्त, सं० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, चतुर्थ सं०, पृ० ४६, पद सं० १४

"जब तें निहारे घन आनंद सुजान प्यारे
तब ते अनोखी आगि लागि रही चाह की ॥"[१]

'आग लगना' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है तीव्राकर्षण । इसी लक्ष्यार्थ में ही यह मुहावरा रूढ हो गया है।

"जीवनि मूरति जान को आनन है बिन हेरें सदाई अमावस ॥"[२]

'सदाई अमावस' मुहावरा है । इसका लक्ष्यार्थ है सदैव उदासीनता छाई रहती है। अपने इसी लक्ष्यार्थ मे ही यह मुहावरा रूढ़ हो गया है।

"हाय दई ! न बिसासी सुनै कछु, है जग बाजति नेह की डौंडी ।"[३]

'है जग बाजति नेह की डौडी' में डौडी बजना मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है प्रसिद्ध होना। इसी अर्थ में मुहावरा रूढ़ हो गया है।

"अब बिन देखें जान प्यारे यों अनन्दघन,
मेरा मन भँवै भटू, पात ह्वै बघूरे को ॥"[४]

'पात ह्वै बघूरे को' लाक्षणिक पद है। यह एक मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है चक्कर खाते रहना। इसी लक्ष्यार्थ में ही मुहावरा रूढ़ हो गया है।

"जरि बरि छार ह्वै न जाय हाय ऐसी बँसि,
चित्त-चढ़ी मूरति सुजान क्यों उतारियै ।"[५]

'छार होना' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है नष्ट हो जाना। इसी लक्ष्यार्थ मे ही यह मुहावरा रूढ हो गया है।

"तिन्हैं यें सिराति छाती तोहि वे लगति ताती,
तेरे बाँटें आयो है अँगारनि पै लोटिबो ॥"[६]

'सिराति छाती', तोहि वे लगति ताती' तथा 'अँगारनि पै लोटिबो' मुहावरे हैं। इनका लक्ष्यार्थ क्रमशः है आनन्द मिलता है, तुमको सताप होता है और दुख सहना। इन्ही लक्ष्यार्थो मे ये मुहावरे रूढ़ हो गए हैं। इस प्रकार के कथन द्वारा जहाँ एक ओर साहित्यिक कलात्मक अभिरुचि का पता लगता है वही दूसरी ओर भगिमा मे वक्रता और चमत्कार भी उत्पन्न होता है।

---

१. घनानन्द कवित्त, सं० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, चतुर्थ सं०, पृ० ४८ प० सं १८
२. वही पृ० ५२ प० सं० २४
३. वही पृ० ५२ प० सं० २५
४. वही पृ० ५८ प० सं० ३५
५. वही पृ० ६८ प० सं० ५१
६. वही पृ० ७२, पद सं० ५६

"अब तो सब सीस चढ़ाय लई जु कछू मन भाई सु कीजियै जू।"[1]

'सब सीस चढ़ाय लई' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है सब कुछ स्वीकार कर लिया है। इसी अपने लक्ष्यार्थ मे मुहावरा रूढ हो गया है।

"जीवन अधार जान सुनियें पुकार नेकु,
आनाकानी दैबो दैया घाय कै सो लौन है।"[2]

'दैवो घाय लोन है' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है 'कष्ट को और भी कष्ट-दायक बनाना।' इस लक्ष्यार्थ मे ही यह मुहावरा रूढ हो गया है।

"तपति-बुझावनि अनंदघन जान बिन,
होरी सी हमारे हियें लागियै रहति है॥"[3]

'होरी सी हमारे हिये लागियै रहति है' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है 'हृदय सदैव तुम्हारे विरह में दग्ध रहता है अर्थात् विरहाग्नि जलती रहती है। इसी लक्ष्यार्थ मे मुहावरा रूढ हो गया है।

'लखि सूनो सर्क कित, रावरो ह्वै, विरहा नित फाग मचाय रह्यौ॥"[4]

'विरहा नित फाग मचाय रह्यौ' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है 'विरह नित्य-प्रति कष्ट को बढ़ा रहा है।' अपने इसी लक्ष्यार्थ मे ही मुहावरा रूढ हो गया है।

"पौन को प्रवेश हो न जहाँ घनआनन्द पै,
तहाँ लै कहाँ तै बीच पारे परवत हैं॥"[5]

'बीच पारे परवत है' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है 'दूर जा बसे हो'। इसी लक्ष्यार्थ मे ही मुहावरा रूढ हो गया है।

'तेरी बाट हेरत हिराने औ' पिराने पल,
थाके ये विकल नैना ताहि नपि नपि रे॥"[6]

'बाट हेरत' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है—'प्रतीक्षा करना'। अपने इसी लक्ष्यार्थ मे मुहावरा रूढ़ हो गया है।

---

१. घनानन्द कवित्त, सं० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, चतुर्थ स०, पृ० ७६ प० स० ६८

२. वही पृ० ८१ प० सं० ७१

३. वही पृ० ८३ प० सं० ७४

४. वही पृ० ८४ प० सं० ७६

५. वही पृ० ६६, प० सं० १०३

६. वही पृ० ६६, प० सं० १०६

"बुरो जनि मानौ जौ न जानौ कहूँ सीखि लेहु,
रसना के छाले परें प्यारे नेह-नावं छ्वैं ॥"[१]

'रसना के छाले परें' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है 'अत्यधिक कष्ट होना।' इसी लक्ष्यार्थ मे मुहावरा रूढ हो गया है।

"पौन सों जागति आगि सुनो ही पै पानी ते लागति आँखिन देखी।"[२]

'पानी ते आगि लागति' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है 'रोते-रोते हृदय में असह्य वेदना होने लगती है। इसी लक्ष्यार्थ मे मुहावरा रूढ हो गया है।

"जब तें तुम आवनि-औधि बदी,
तब तें अँखियाँ मग मांपति है ॥"[३]

'मग मांपति है' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है 'प्रतीक्षा करना।' इसी लक्ष्यार्थ मे मुहावरा रूढ़ हो गया है।

"आवरी ह्वै बावरी तू तावरी परति काहे,
ते ह्याँ घर वसे, ह्याँ उजारि वसि को रहै ॥"[४]

'घर बसाना' तथा 'घर उजाड़ना' मुहावरे है। इनका क्रमशः लक्ष्यार्थ है— 'प्रेम करना' और प्रेम को समाप्त करना।" अपने इन्ही लक्ष्यार्थो मे ये मुहावरे रूढ़ हो गए है।

शुद्धा लक्षण-लक्षणा:—

लाजनि लपेटी चितवनि भेद-भाव-भरी,
लसति ललित लोल चख-तिरछानि मैं।"[५]

'लपेटी' लाक्षणिक पद है। वस्त्रादि का लपेटना तो संभव है पर लाज के पक्ष मे लपेटना संभव नही है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है 'युक्त'। इस प्रकार कवि ने अवस्था विशेष के नेत्रो की छवि को कलात्मक सौन्दर्य के साथ प्रस्तुत किया है। 'लपेटी' पद प्रयोग द्वारा लाज की व्यापकता भी व्यक्त की गई है और शब्द को नया आयाम भी मिल गया है।

"झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत काननि ह्वै।
हँसि बोलन मैं छवि-फूलन की बरषा, उर-ऊपर जाति है ह्वै।

---

१. घनानन्द कवित्त, सं० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, चतुर्थ सं०, पृ० १०१, प सं० १११
२. वही पृ० ११२, प० सं० १३२
३. वही पृ० १३०, प० सं० १६२
४. वही पृ०१३६, प० सं० १७४
५. वही पृ० प० ४०, सं० १

लट लोल कपोल कलोल करैं, कल कंठ वनी जलजावलि द्वै ।
अंग-अंग तरंग उठैं दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै ॥"[1]

'काननि द्वै' 'तरग उठैं' तरंग उठैं' तथा 'रूप अबै धर च्वै' लाक्षणिक पद है। इनका मुख्यार्थ है कानो को छूना, लहर उठना और रूप का चूना कानो को छूकर नेत्र शोभित है। इस कथन से काव्य सौन्दर्य मे वृद्धि नही होती है इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है विशाल नेत्र तरग का उठना जल मे ही सभव है, किन्तु यहाँ अग मे तरंग उठना कहा गया है जो असम्भव है। अतः इसका लक्ष्यार्थ है 'सौन्दर्य' रूप कोई तरल पदार्थ नही है जो कि चू पडेगा। इस वचन भगिमा का लक्ष्यार्थ है अत्यधिक रूपवान होना। इस प्रकार कवि ने विशाल नेत्रो की शोभा, अङ्ग-अङ्ग मे सौन्दर्य की कान्ति और श्रेष्ठ स्वरूप का बिंब प्रस्तुत किया है।

"तब तौ छबि पीवत जीवत हे, अब सोचन लोचन जात जरे।"[2]

'छवि पीवत' तथा लोचन जात जरे' पद लाक्षणिक हैं। छवि जल नही है कि उसे पीया जा सके और सोच अग्नि नही है कि उससे नेत्र जल सके। अतः इनका लक्ष्यार्थ है—'सौन्दर्य दर्शन' और दुखी होना। इस प्रकार इन पदो को अर्थ का नया आयाम मिल गया है।

"जहाँ ते पधारे मेरे नैननि ही पाँव धारे,
वारे ये बिचारे प्राव पैड पैड पै मनो।"[3]

'नैननि ही पाँव धारे' पद लाक्षणिक है। इसका मुख्यार्थ है—मेरे नेत्रो पर पैर रखकर गए। किन्तु नेत्रो पर पैर रखकर जाना समव नही है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है मेरे नेत्र निरतर उनका जाना एकटक देखते रहे। इस वचन भंगिमा से कवि ने स्नेहाभाव के आधिक्य और विरह वेदना दोनो को एक साथ प्रस्तुत करके काव्यानन्द की वृद्धि की है।

"जीवनमूरति जान को आनन है बिनु हेरें सदाई अमावस।"[4]

'सदाई अमावस' लाक्षणिक पद है। इसका मुख्यार्थ है सदैव अमावस बना रहता है पर इसका लक्ष्यार्थ है सदैव उदासीनता बनी रहती है। इस प्रकार 'अमावस' शब्द को कवि प्रतिभा ने नए अर्थ से मण्डित कर दिया है।

---

१. घनानन्द कवित्त, सं० पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, चतुर्थ संस्करण, पृ० ४०, पद सं० २
२. वही पृ० ४५, पद १३
३. वही पृ० ४६, पद २०
४. वही पृ० ५२, पद २४

"देखियै दसा असाध अँखियाँ निपेटनि की,
मसमी विथा पै नित लंघत करति हैं।"[१]

'निपेटनि' तथा 'लघन करति है' पद लाक्षणिक है। इनका मुख्यार्थ है पेटू (अधिक खाने वाली) और भूखे रहना, किन्तु आँखे खा नही सकती है फिर भूखे रहने का प्रश्न ही नही उठता है। अत. इनका लक्ष्यार्थ है आँखें अधिक दर्शन चाहती है एवं अब दर्शन ही नही होता है। इस प्रकार कवि ने वचन वक्र भगिमा द्वारा काव्य मे सौन्दर्य का सृजन किया है।

"सींचे रस रंग अंग-अंगनि अनंग सौंपि
अंतर मै विषम विषाद-वेलि वै चलै।"[२]

'सीचे' पद लाक्षणिक है। सीचना जल के पक्ष में तो सम्भव है पर अग-अंग के रस से सीचना असम्भव है। अतः इसका लक्ष्यार्थ है स्नेह उत्पन्न करना। इस प्रकार कथन का अभिप्राय यह है कि—अपने प्रेम के रंग से युक्त मेरे अंगों को काम के हवाले करके और मेरे अन्तर में भीषण विरहाग्नि को अकुरित करके स्वय चले गए।

"विष लै बिसार्यौ तन, कै बिसासी आपचार्यौ,
जान्यौ हुतौ मन, तै सनेह कछु खेल सो।"[३]

'विष' पद लाक्षणिक है। इसका मुख्यार्थ जहर है पर इसका लक्ष्यार्थ है 'विरह-व्यथा'। इस प्रकार कवि ने शब्द को एक नए अर्थ से मण्डित किया है।

"तपति उसास, औधि रूँधियै कहाँ लौं वैया,
बात बूझें सैननि ही उत्तर उचारियै।
उड़ि चल्यौ रंग कैसें राखियै कलंकी मुख,
अनलेखें कहाँ लौ न घूँघट उघारियै।।"[४]

'रूँधियै' तथा 'रग उड़ना' लाक्षणिक पद है। वृक्षादि रूँधे जा सकते हैं पर प्राण नही। इसी प्रकार रंग कोई पक्षी नही है कि उड़ जाएगा। अतः इनका लक्ष्यार्थ है 'प्राण रखना' और विवर्ण होना।

"कित को ढरिगौ वह ढार अहो जिहि मो तन आँखिन ढोरत है।"[५]

---

१. घनानंद कवित्त, सं० पं० विश्नाथ प्रसाद मिश्र, सं पृ० ५४ प० सं० २६
२. वही पृ० ५५ प० सं० ३१
३. वही पृ० ५८, प० सं० ३७
४. वही पृ० ६८ पं० सं० ५१
५. वही पृ० ८६ पद ८७

'आँखिन ढोरत' पद लाक्षणिक है। इसका मुख्यार्थ है आँखे ढुलकाना। भाव की स्पष्टता के लिए इसका लक्ष्यार्थ 'कृपा दृष्टि करते थे' ग्रहण किया जाता है।

"सुख मैं मुख चन्द विना निरखें नख तें सिख लों विष पागनि है।"[1]

'विष पागनि' लाक्षणिक पद है। इसका मुख्यार्थ है जहर मे लिपटना। पर यहाँ इसका लक्ष्यार्थ है विरह वेदना का व्याप्त होना। इस प्रकार कवि अन्तर दशा का सुन्दर भाव सहृदय तक प्रेषित कर सका है।

"ह्वै है सोऊ घरी भाग-उघरी अनन्दघन,
सुरस वरसि लाल देखिहो हरी हमें॥"[2]

'घरी भाग उघरी,' 'सुरस' वरसि' तथा 'देखिहो हरी' लाक्षणिक पद हैं। इनका मुख्यार्थ है- खुले भाग्य वाली घड़ी' 'रस वरसना' और हरी देखना और इनका लक्ष्यार्थ है 'सौभाग्य युक्त क्षण,' दर्शन देना एवं प्रसन्न देखना। इस प्रकार की वचन वक्रोक्ति द्वारा कवि ने अभिव्यंजना का सौन्दर्य बढा दिया है।

"जान घन आनन्द यों दुसह दुहेली दसा-
बीच परि परि प्रान पिसे चपि चपि रे।"[3]

'प्रान पिसे चपि चपि रे' लाक्षणिक पद है। प्राण का पिसना और दवना असभव है इसलिए इस पद का लक्ष्यार्थ 'विरह मे घुटना' ग्रहण किया गया है। कवि ने इस प्रकार अन्तर्दशा की मार्मिक अभिव्यक्ति इस प्रसंग मे की है।

"घन आनन्द जीवन-रूप सुजान ह्वै पावत क्यों दृग-प्यास नहीं।
अरु फूलि रहे कुसुमाकर से सु कहूं पहचान की बास नहीं॥"[4]

'दृग-प्यास' फूलि रहे' तथा 'पहचान की वास नहीं' लाक्षणिक पद है। इस पद में दृग के पक्ष मे प्यास का, कृष्ण के पक्ष मे फूलि' का और पहचान के पक्ष में 'वास' का प्रयोग किया गया है। प्यास व्यक्ति का, फूलना और वास पुष्प का धर्म है। अतः इसका लक्ष्यार्थ है दर्शन की चाह, प्रसन्नता एवं नामोनिशान नही है।

"उघरि नचे हैं, लोक लाज तें बचे हैं पूरी
चोपनि रचे हैं, सुबरस लोभी रावरे॥"[5]

'उघरि नचे हैं' तथा 'लोक लाज ते बचे हैं' लाक्षणिक पद हैं। इनका मुख्यार्थ है खुल्लमखुल्ला नाच रहे है और लोक लाज से दूर ही रहते है पर लक्ष्यार्थ है-

---

१. घनआनंद कवित्त, सं० पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, चतुर्थ सं० पृ० ९३ प० सं० ९४
२. वही पृ० ९८ प० १०६
३. वही पृ० १०० प० १०९
४. वही पृ० १०१ प० ११२
५. वही पृ० १०३ प० ११५

विना किसी की चिन्ता किए नेत्र प्रिय को देखते है एवं लोक लज्जा का भी त्याग कर दिया है ।

"चूर भयो चित पूरि परेखनि एहो कठोर, अजौं दुख पोसत ।
सांस हियें न समाय सकोचनि, हाय इते पर बान कसीसत ॥"[1]

"चूर भयो चित' तथा 'सांस हियें न समाय' लाक्षणिक पद हैं । इसमें चित के चूर होने की बात कही गई है, पर चित्त कोई वस्तु तो है नही कि चूर हो जाए । इसी प्रकार हृदय में श्वांस नही समाती है कहना उचित नही प्रतीत होता है क्योकि श्वांस तो हृदय में ही समाती है । इसलिए इनका लक्ष्यार्थ है चित्त दुखी हो गया है और मुँह से एक बात भी नही निकल सकी ।

"ह्वै है कौन घरी भाग-भरी पुन्य-पुंज-फरी
खरी अभिलाषनि सुजान पिय भेटिहौं ।
अमी-ऐन आनन कों पान, प्यासे नैननि सौं
चैननि ही करिकै, वियोग-ताप मेटिहौं ।"[2]

'पुन्य-पुंज-फरी' तथा 'आनन को पान' लाक्षणिक पद है। फलना फल का धर्म है और तरल पदार्थ का पान हो सकता है । इसलिए इनका लक्ष्यार्थ क्रमश: 'पुण्य के परिणाम स्वरूप मिला हुआ सुख' एवं 'मुख का दर्शन । इसी प्रकार 'प्यासे' पद भी लाक्षणिक है । इसका लक्ष्यार्थ है दर्शन की इच्छा रखने वाले ।

"दृग नीर सौं दीठिहि देहुँ वहाय पै वा मुख को अभिलाखि रही ।
रसना विष बोरि गिराहिं गसौं, वह नाम सुधानिधि भाखि रही ॥"[3]

'दीठिहि देहुं वहाय' तथा 'रसना विष बोरि' लक्षणिक पद है। इनका लक्ष्यार्थ है 'नेत्रों' से देखने की शक्ति समाप्त हो जाए' और जिह्वा को कठोर तम दण्ड देना ।

"हम नामं-अधार जिवावत ज्यों तुम दै बिसवास-विषै बरसौ ।"[4]

'विषै बरसौ' पद लाक्षणिक है । इसका मुख्यार्थ है विष की वर्षा करते हो पर लक्ष्यार्थ है विरह जन्म दुख की वृद्धि करते हो ।

घनआनंद जीवन-दायक हौ कछू मेरियौ पीर हियें परसौ ।"[5]

हिये परसौ पद लाक्षणिक है । इसका मुख्यार्थ है हृदय को स्पर्श करो पर-लक्ष्यार्थ 'हृदय में अनुभव करो' ।

---

१. घनआनन्द कवित्त, सं० पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, चतुर्थ सं०, पृ० १०४ पद ११७
२. वही पृ० १०५, पद ११९
३. वही पृ० १०६, पद १२१
४. वही पृ० १०९ पद १२७
५. वही पृ० १०९ पद १२८

"न खुली मुँदी जानि परै कछु ये दुखहाई जगे पर सोवति हैं।"[1]

'जागे पर सोवित हैं' लाक्षणिक पद है। इसका मुख्यार्थ है 'जागने पर भी सोती है पर इसका लक्ष्यार्थ है आँखें किसी पदार्थ को नही देखती है। कवि ने आखो की तन्मयता एव व्यग्रता को इस वचन वक्रता द्वारा व्यक्त किया है।

"स्रोन सुधाई सनी बतियनि बिना इन कानिनि लै कहा प्याऊँ।"[2]

'प्याऊ' पद लाक्षणिक है। कान के द्वारा पीना सभव नही है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है 'सुनना'। इस प्रकार कवि ने शब्द को अर्थ से मडित कर दिया है और इससे अनुभूति मे भी तीव्रता आ गई है।

'औसर सम्हारी न तौ अनआयवे के संग,
दूरि देस जायवे कौं प्यारी नियराति है।"[3]

'दूर देस जायवे' लाक्षणिक पद है। इसका मुख्यार्थ है दूर देश जाना पर इससे अर्थ की मार्मिकता की सिद्धि नही होती है। अतः इसका लक्ष्यार्थ मृत्यु के निकट पहुंचना ग्रहण किया जाता है।

"लोयन लाल गुलाल भरे कि खरे अनुराग सों पागि जगाए।
कै रस-चांचरि-चौचँद मैं छतिया पर छैल नखच्छत छाए।
भीजि रहे स्रम-नीर सुजान घरौ डग ढीलियै लागो सुहाए।
मोरहू ऐसी खिलारिनि पै, घनआनँद का छल छूटन पाए॥"[4]

'लोयन लाल गुलाल भरे' लाक्षणिक पद है। इसका मुख्यार्थ है नेत्रो मे गुलाल भरा है पर इससे उक्ति सौन्दर्यमयी नही होती है। अतः इसका लक्ष्यार्थ है रात भर जागने के कारण नेत्रो मे अरुणिमा छायी है। इसी प्रकार 'नखच्छत' 'स्रम-नीर' तथा डग ढीलियौ पदो द्वारा रति क्रीडा की ओर सकेत किया गया है। रति खंडिता नायिका प्रात आए हुए नायक को इस तरह उपालंभ देती है कि आपके आंखो की अरुणिमा, वक्षस्थल पर के नखक्षत पसीने की बूँद और शरीर की शिथिलता इस बात की सूचक है कि रात आप कही अन्यत्र रम कर आए है।

'सैननि ही बरस्यौ घनआनद भीजनि पै रंग रीझनि मोहै।"[5]

'रग रीझनि मोहै' लाक्षणिक पद है। इसमे रग के रीझकर मुग्ध होने की बात कही गई है पर जड़ रंग क्या रीझेगा और मुग्ध होगा। इसलिए पद का लक्ष्यार्थ है 'स्नेह स्नेह-सिक्त होकर स्वयं विमुग्ध हो गया अर्थात् प्रियतम के स्नेहाभिव्यक्ति

---

१. घनआनंद कवित्त, सं०प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, सं०पृ० ११६ प०सं० १३६
२. वही पृ० १२६ प० १५५
३. वही पृ० १४४ प० १६०
४. वही पृ० २०१ प० ३११
५. वही पृ० २०२ प० ३१६

द्वारा प्रियतमा स्नेह-सिक्त हो गई। परस्पर की स्नेहावस्था विमुग्ध सी प्रतीत हो रही थी। इस प्रकार की वचन भंगिमा द्वारा कवि ने स्नेहावस्था की उच्च-भूमि की अनुभूति पाठक तथा श्रोता तक संप्रेपित करने का प्रयास किया है।

"झूठ की सचाई छाक्यौ त्यौं हित-कचाई पाक्यौ
ताके गुन गन घन आनंद कहा गनौ।"[1]

'गुन' पद लाक्षणिक है। विपरीत लक्षणा से इसमे लक्ष्यार्थ अवगुण ग्रहण किया जाता है। समस्त पक्ति विरोध मूलक वैचित्र से द्युतिमान हो उठी है।

"उजरनि बसी है हमारी अँखियान देखौ,
सुबस सुदेस जहाँ भावते बसत है।"[2]

'उजरनि बसी है' लाक्षणिक पद है। उजड़ना और बसना मे विरोध मूलक वैचित्र्य भी है। 'उजरनि' का लक्ष्यार्थ है उदासी। इसका अभिप्राय यह है कि हमारी आँखों मे उदासी छायी है।

"तेरे तौ न लेखो, मोहि मारत परेखो महा,
जान घनआनंद पै खोइबो लहा लहौं।"[3]

'मारत परेखो' और 'खोइबो लहा लहौं' लाक्षणिक पद है। मारना तो किसी व्यक्ति के पक्ष में सम्भव है। पश्चाताप के नही। खोना और लाभ पाना मे विरोध मूलक वैचित्र है। इस प्रकार इन पदो का लक्ष्यार्थ है-पश्चाताप के दुख से अत्यधिक दुखी और उनके प्रेम मे पड़कर सब कुछ भूल जाती हूँ।

"गतिन तिहारी देखि थकिन मै चली जाति,
थिर चर दसा कैसी ढकी उघरति है।
कल न परति कहूँ कल जो परति होय,
परनि परी हौं जानि परी न परति है।
हाय! यह पीर प्यारे कौन सुनै, कासों कहौं,
सहौं घनआनंन क्यों अंतर अरति है।
भूलनि चिन्हारी दोऊ है न हो हमारें तात
बिसरनि रावरी हमै लै बिसरति है॥"[4]

---

१. घनआनंद कवित्त, सं० पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र चतुर्थ सं० पृ० २०, प० सं० २०
२. वही पृ० ६७ प० ५९
३. वही पृ० ७५ प० ६१
४. वही पृ० ११६ प० १४८

'ढकी उघरति है, 'परनि परी हौ' तथा बिसरनि रावरी हमैं लै बिसरति है' लाक्षणिक पद है। इनका क्रमश. लक्ष्यार्थ है 'स्थिर और अस्थिर दशाएँ स्पष्ट नही है', 'ऐसी अवस्था मे हूँ' और आपके भूलने मे मैं अपनी सत्ता भूल जाती हूँ। समस्त कवित्त मे विरोधाभास का चमत्कार है। इस प्रकार कवि ने अद्भुत लाक्षणिक प्रयोगो द्वारा विरह जन्य अन्तर्दशा का चित्रण किया है।

गौणी सारोपा लक्षणा:—

"हिय खोपनि चोपनि-कोंपनि झालरि लाज के ऊपर छाय गई।"[1]

'हिय खोपनि' लाक्षणिक पद है। हिय उपमेय और खोपनि (छप्पर) उपमान है। इसका आधार सादृश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके कवि ने बिंब को सवेदनीय बनाया है।

छवि को सदन, मोद मंडित बदन चंद,
तृषित चखनि लाल कब धौं दिखायहौ।[2]

'बदन चद' लाक्षणिक पद है। बदन (मुख) उपमेय और चंद उपमान है। इसका आधार सादृश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके कवि ने बिंब को सवेदनीय बनाया है।

"एक बिसास की टेक गहें लगि आस रहे बसि प्रान-बटोही।"[3]

'प्रान-बटोही'लाक्षणिक पद है। प्राण उपमेय और बटोही उपमान है। आधार गुण सादृश्य है। प्राण पर बटोही का आरोप करके कवि ने मरणासन्न दशा का बिंब सवेदनीय बनाया है।

"आस ही अकास-मधि अवधि-गुनै बढ़ाय,
चोपनि चढ़ाय दीनौ, कीनौ खेल सो यहै।
निपट कठोर ये हो ऐचत न आप-ओर
लाड़िले सुजान सो दुहेली दशा को कहै।
अचिरजमई मोहि भई घनआनँद यौं
हाथ साथ लग्यौ, पै समीप न कहूं लहै।
बिरह समीर की झकोरनि अधीर, नेह-
नीर भीज्यौ जीव,तऊ गुड़ी लौ उड्यौ रहै।।"[4]

---

१. घनआनंद कवित्त,स ं पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, चतुर्थ सं० पृ० १०८,प० स ं १२५

२. वही पृ० ४१ प० सं० ३

३. वही पृ० ४४ प० सं० ६

४. वही पृ० ४६-४७ प० सं० १६

'आशा अकास', 'अवधि-गुनै', और विरह-समीर लाक्षणिक पद है। इन पदों मे आशा, अवधि तथा विरह उपमेय है एव आकाश, गुन और समीर उपमान है। इस प्रकार कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को सवेदनीय बनाया है। इस समस्त रूपक मे जीव को गुड्डी बनाकर उड़ाने की बात की गई है। समस्त छन्द में कई मुहावरे भी फँसे पडे है जैसे—डोर बढ़ाना, चोप चढाना, खेल करना, हाथ लगा होना आदि।

"सु न जानियै धौं कित छाय रहे दृग-चातिग-प्रान तपे तरसे।"[1]

'दृग-चातिग' लाक्षणिक पद है। दृग उपमेय और 'चातिग' उपमान है। इनका आधार गुण साम्य है। इस प्रकार कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को सप्रेषणीय बनाया है।

"आसा-गुन बाँधि कै भरोसो-सिल धरि छाती
पूरे पन-सिंधु मै न बूड़त सकाय हौं।
दुख-दव हिय जारि, अंतर उदेग-आँच
रोम रोम त्रासनि निरन्तर तचाय हौं।।"[2]

'आसा-गुन' 'भरोसा-सिल' 'पन-सिंधु' 'दुख-दव' और उदेग-आँच सभी पद लाक्षणिक है। इनमे आशा भरोसा, पन, दुख तथा उदेग उपमेय हैं और गुन, सिल, सिंधु, दव एवं आँच उपमान है। सबका आधार साहृश्य है। इस प्रकार कवि ने उपमेय पर उपमान का पूर्णारोप करके बिंब को स्पष्ट एव सप्रेषणीय बनाया है।

"क्यों करि थाह लहै घनआनंद चाह-नदी तट ही अति औंडी।"[3]

'चाह-नदी' लाक्षणिक पद है। चाह उपमेय है और नदी उपमान है। इसका आधार गुण साहृश्य है। उपमेय पर उपमान का पूर्णारोप करके बिंब को सवेदनीय बनाया गया है।

"उठि न सकत, ससकत नैन-बान बिधे,
इते हू पै विषम विषाद-जुर लू बरै।
सूरे पन-पूरे हेत-खेत तें हटै न कहूँ,
प्रीति बोझ बापुरे भए हैं दबि कूलरे।।"[4]

'नैन-बान' तथा 'हेत-खेत' लाक्षणिक पद है। इनमें नैन एवं हेत (प्रेम) उपमेय और बान तथा खेत उपमान है। इनका आधार साहृश्य है। उपमेय पर

---

१. घनआनन्द कवित्त, सं० पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, चतुर्थ सं०, पृ० ४७ प० १७
२. वही पृ० ५१ पद २३
३. वही पृ० ५२ पद २५
४. वही पृ० ६६ पद ४९

उपमान का आरोप करके भावो को स्पष्टता तथा बिंब को संवेदनीयता प्रदान की गई है।

"कहाँ ऐतो पानिप विचारी पिचकारी धरै,
आँसू-नदी नैननि उमगियै रहत है।"[१]

'आँसू-नदी' लाक्षणिक पद है। आँसू उपमेय और नदी उपमान है। इसका आधार सादृश्य है। उपमेय पर उपमान का पूर्णारोप करके बिंब को सम्प्रेषणीय बनाया गया है।

"विरहा-रवि सौं घट व्योम तच्यौ बिजुरी सी खिवें इकली छतियाँ।
हिय सागर तें दृग मेघ भरे उघरे बरसै दिन औं रतियाँ॥"[२]

'विरहा-रवि', घट-व्योम', 'हिम-सागर' और 'दृग-मेघ' लाक्षणिक पद है। इनमे विरहा, घट, हिय तथा दृग उपमेय है एव रवि, व्योम, सागर और मेघ उपमान हैं। आधार सादृश्य है। कवि ने उपमेय पर उपमान का पूर्णारोप करके वाष्पीकरण का बिंब सवेदनीय बनाया है। इस प्रकार लौकिक विरहावस्था का अलौकिक चित्र कवि प्रतिभा ने प्रस्तुत किया है।

"चाह-बेली-सफल करन घनआनँद यौं,
रस दै दै उर-आलवालहि भरत हौ।"[३]

'चाह-बेली' तथा 'उर-आलवाहि' लाक्षणिक पद है। इनमे चाह एवं उर उपमेय और बेलि तथा आलवाल उपमान है। इस प्रकार कवि ने सूक्ष्म बिंबो को स्थूल बिंबो के सहारे स्पष्ट करने तथा सवेदनीय बनाने का प्रयत्न किया है।

गौणी साध्यवसाना लक्षणा:—

चातिक है रावरो अनोखो मोह आवरो,
सुजान रूप बावरो, बदन बरसाय हौ।"[४]

'चातिक' पद लाक्षणिक है। यह पद उपमान है स्नेही का कवि ने उपमान के माध्यम से ही उपमेय की प्रतीति कराने का प्रयास किया है। इस प्रकार बिंब को सहृदयजनो के समक्ष प्रस्तुत किया गया है।

मोंहि तुम एक, तुम्हें मो सम अनेक आँहि,
कहा कछू चंदहि चकोरन की कमी है।"[५]

'चदहि' तथा चकोरन पद लाक्षणिक है। दोनो पद भगवान तथा भक्त

---

१. घनआनन्द कवित्त, सं० प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, चतुर्थ सं०, पृ० ८२ पद ७४
२. वही पृ० ६० पद ८६
३. वही पृ० १३३ पद १६८
४. वही पृ० ४५ पद १०
५. वही पृ० ५७ पद ३३

अथवा प्रेमी एवं प्रेमिका के उपमान है। आधार सादृश्य है। कथन मे गोपनीयता बनाए रखकर भी कवि ने अनुभूति को सवेदनीय वनाया है।

'आरतिवंत पपीहन को घनआनँद जू पहचानी कहा तुम।"[1]

'पपीहन' तथा घनआनद लाक्षणिक पद हैं। दोनो पद भक्त, भगवान अथवा प्रेमिका तथा प्रेमी के उपमान है। उपमान द्वारा उपमेय का बोध कराकर कवि ने साहित्यिक सौन्दर्य को मार्मिक एवं अनुभूति की तीव्रता प्रदान की है। इसका आधार सादृश्य है।

"मृदु तौ चित के पन पै इत के निधि हौ हित के, रचि मीनन की।"[2]

'मीनन' पद लक्षणिक है। यह पद उपमान है भक्त अथवा स्नेही का। आधार सादृश्य है। कवि ने उपमान के माध्यम से ही उपमेय का बोध कराके अनुभूति में तीव्रता और विब मे सवेदनीयता पैदा कर दी है।

**"मुख-स्वेद कनी मुखचन्द वनी विथुरी अलकावलि भांति भली।
मद-जोवन, रूप छकीं अँखियाँ, अवलोकनि आरस रंग-रली।
घनआनँद ओपित ऊँचे उरोजनि चोज मनोज की ओज वली।
गति ढीली लजीली रसीली लसीली सुजान मनोरथ-वेलि फली॥"[3]**

'मनोरथ-वेलि फली' लाक्षणिक पद है। 'वेलि' नारी का उपमान है। आधार सादृश्य है। कवि ने उपमान के द्वारा उपमेय का बोध कराया है। समस्त कवित्त मे नायिका के स्वरूप का चित्रण किया गया है।

उपर्युक्त उदाहरणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि घनानन्द के काव्य में सर्वत्र लक्षणा का वैभव बिखरा हुआ है। मुहावरे तथा लोकोक्तियो का इतना सुन्दर एवं उचित प्रयोग समस्त रीतिकाल मे अन्यत्र नही दिखाई पडता। इनसे जो लाक्षणिक चित्रात्मकता काव्य मे आई है उससे भावो मे तीव्रता और सप्रेपणीयता प्रचुर मात्रा मे आ गई है। प्रयोजनवती लक्षणा के माध्यम से इन्होने काव्य मे जो लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और प्रयोग-वैचित्र्य की छटा दिखाई है, वह तो अनुपमेय ही है। लक्षणा के इस प्रयोग वैचित्र्य की ओर रीति-वद्ध कवियो ने विशेप ध्यान दिया है। वे शास्त्रीय रूढ़ियो की घिसी-पिटी परम्पराओ के पालन मे ही लगे रहे हैं। आचार्य शुक्लजी ने भी अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास मे अपना मत इसी प्रकार प्रकट किया है:—

"लक्षणा का विस्तृत मैदान खुला रहने पर भी हिन्दी कवियों मे उसके भीतर

---

१. घनआनँद कवित्त, सं० पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, चतुर्थ सं०, पृ० ११३ पद १३४

२. वही पृ० १३१ पद १६४

३. वही पृ० २०२ पद ३१४

बहुत ही कम पैर बढाया। एक घनानन्द ही ऐसे कवि हुए जिन्होने इस क्षेत्र मे अच्छी दौड़ लगाई। लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और प्रयोगवैचित्र्य की जो छटा इनमे दिखाई पड़ी। खेद है कि फिर वह पौने दो सौ वर्ष पीछे जाकर आधुनिककाल के उत्तरार्द्ध मे अर्थात् वर्तमान काल की नूतन काव्यधारा मे ही, 'अभिव्यनावाद के प्रभाव से कुछ विदेशी रंग लिए प्रकट हुई।"[1]

घनानन्द ने अपनी रचनाओ मे जो लक्षणा का वैभव भर दिया है, यह हिन्दी के छायावादी-काव्य मे उपलव्ध होने वाली लाक्षणिकता के लिए पूर्वपीठिका का काम करता है।

'बोधा'

बोधा की गणना रीतिकालीन-काव्य मे रीति-मुक्त कवियो मे की जाती है। ये एक रसिक कवि थे, इसी कारण इन्होने रीति-ग्रन्थ न लिखकर अपनी तरग मे कवित्त और सवैयो की रचना की। इनकी रचना 'इश्कनामा' रीतिकाल की एक प्रमुख कृति है। इसका वर्ण्य-विषय शृंगार-रस है। इस ग्रन्थ मे, इनकी प्रेम भावना की अभिव्यक्ति, मर्मस्पर्शी ढग से हुई है। इस सम्बन्ध मे आचार्य शुक्लजी का मत द्रष्टव्य है—

"प्रेम की पीर' की अभिव्यंजना भी इन्होने वड़ी मर्मस्पर्शिनी युक्ति से की है।"[2] वस्तुतः ये वड़े ही भावुक और रसज्ञ कवि थे। इससे इनकी रचना के प्रत्येक पद मे इनकी प्रेम की उमग छलक उठी है। इन्होने अपने काव्य मे भावो को स्पष्ट करने के लिए लाक्षणिक चित्रात्मकता की सहायता ली है। इनके काव्य मे निरूढा और प्रयोजनवती लक्षणाओ की प्रचुरता है। इन लाक्षणिक प्रयोगो द्वारा काव्य की चारुता मे वृद्धि हुई है। 'इश्कनामा' मे आए हुए कुछ लाक्षणिक प्रयोगो का यहाँ दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

निरूढ़ा लक्षणा—

"वरही कर प्रीति पयोधर सो परलै बृजराज के माये मढ़ै।
पुनि राग सों प्रीति कुरग करी वह राग कुरंग के शिग कढ़ै॥"[3]

'माये मढै' तथा 'शिग कढै' मुहावरे हैं। इनका क्रमश. लक्ष्यार्थ है उत्तरदायित्व वहन करना और मृत्यु का कारण बनना। अपने इन्ही लक्ष्यार्थो मे ये मुहावरे रूढ हो गए हैं। सहृदय का ध्यान अब इनके मुख्यार्थ की ओर नही जाता है।

---

१. हि० सा० इति०, आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० परि० सं० २००२ पृ० २९५
२. वही पृ० ३२३
३. इश्कनामा, बोधाकृत, प्रथम बार १८९३ ई०, पृ० २-३ पद ७

"बड़ी आँखें तिहारी लगै ये लला
लगि जैहैं कहूँ तो कहा करबी ।।"[1]

'आँखे लगै' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है स्नेह के वशीभूत होना। इसी लक्ष्यार्थ मे ही यह मुहावरा रूढ हो गया है और लक्ष्यार्थ ही मुख्यार्थ हो गया है।

"जैसे भये लखि सावन के
अँधेरे नर को सुहरो हरो सूझै।"[2]

'सावन के अँधरे नर को सुहरो हरो सूझै' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है जैसी भावना होती है वैसी ही प्रतीति होती है। अपने लक्ष्यार्थ मे ही मुहावरा रूढ हो गया है।

"ब्याउर के उर की परपीर कों
बाँझ समाज में जानत को है।"[3]

सम्पूर्ण पद एक मुहावरा है 'बाँझ कि जान प्रसव की पीरा।' इसका लक्ष्यार्थ है जो दुख सहे होता है वही दुख के दर्द का अनुमान कर सकता है। अपने इसी लक्ष्यार्थ मे यह मुहावरा रूढ हो गया है।

"नेह तज्यो घर सो वर सों बरहू बटपार के हाथ बिकाने।
त्यागि तिन्हैं तिनुका करि कूबरी हाथ लै अधिक रात पराने ।।"[4]

'हाथ बिकाने' तथा 'तिनुका करि' मुहावरे है। इनका लक्ष्यार्थ है—आत्म-समर्पण करना और कही का न रखना। ये मुहावरे इन्ही लक्ष्यार्थो मे ही रूढ हो गए हैं।

"बोधा दशा अपनी कहु भृंग
किधौं कछू गाँठि तै माल हिरानो।"[5]

'गाँठि ते माल हिरानो' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है पास की सुरक्षित संपत्ति का खोना। इसी लक्ष्यार्थ मे ही मुहावरा रूढ हो गया है।

"रति को ना नेवारी नेवारी व्यथा मन मारी नहीं मन क्यों मथिये।"[6]

'मन मथिए' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है परेशान करना। अपने इसी लक्ष्यार्थ में मुहावरा रूढ हो गया है।

---

१. इश्कनामा, बोधाकृत, प्रथमबार, १८९३ ई०, पृ० १४ पद १८
२. वही पृ० १६ पद २५
३. वही पृ० २५ पद १
४. वही पृ० २६ पद ५
५. वही पृ० २९-३० पद १७
६. वही पृ० ३१ पद २१

"पातहू के खरके छरके
घरके उर लाय रहै सुकुमारी।"[1]

पातहू के खरके' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ थोड़ा-सा भी सन्देह होने पर सावधान हो जाना। यही लक्ष्यार्थ ही इस मुहावरे का मुख्यार्थ हो गया है।

शुद्धा लक्षण-लक्षणा—

'प्रीति करै कमलनि कसि, जनु मनु पीस।
तब कस चढ़ै न मितवा, सिव के सीस॥"[2]

'पीस' पद लाक्षणिक है। तन तथा मन के पक्ष मे पीस शब्द का प्रयोग किया गया है। तन एव मन का पिसना संभव नही है। इस पद का लक्ष्यार्थ है मिटाकर इस प्रकार पीसने शब्द को लक्षण-लक्षणा-शक्ति द्वारा नया अर्थ प्रदान किया गया है।

"यह प्रेम को पन्थ हलाहल है
सु तौ वेद पुरानऊ गावत है।"[3]

'हलाहल' पद लाक्षणिक है। पन्थ का हलाहल होना संभव नही है। इसका लक्ष्यार्थ है दुखदायी। कवि ने दुखदायी न कहकर प्रेम पन्थ को हलाहल कहकर भाव मे तीव्रावेग पैदा कर दिया है।

"बाल रमैं मधु मास छकी
यह क्वैलिया पापिनि पीसई डारति।"[4]

'पीसई' लाक्षणिक पद है। कोयल का पीसना संभव नही है। इसका लक्ष्यार्थ है अत्यधिक दुखी करना। यहाँ शब्द को अर्थ का नया आयाम कवि द्वारा प्रदान किया गया है।

"ता मृगनैनी की चाह चितौनि
चुभी चित्त मै चित्त सो पहिचानत।"[5]

'चुभी' पद लाक्षणिक है। चुभना तो किसी नोकदार वस्तु का सभव है पर यहाँ चाह का चुभना कहा गया है। इसका लक्ष्यार्थ है चाह का हृदय मे स्थान बना लेना।

---

१. इश्कनामा, बोधाकृत, प्र० वा०, १८९३ ई०, पृ० ३३ प० सं० २७

२. वही पृ० ३ प० सं० ८

३. वही पृ० ३ प० सं० १०

४. वही पृ० १०-११ प० सं० ८

५. वही पृ० १३ प० सं० १५

"मुसकाइ कै बोलै तो बाट परै
नखहू शिख लौं विप सों भरिहै ।"[1]

'विप' पद लाक्षणिक है । नख से शिख तक विप भरना तो संभव नही है । विप का यहाँ लक्ष्यार्थ है काम भावना को अथवा स्नेह को प्रज्वलित करना । इस प्रकार कवि ने विप शब्द को एक नए अर्थ से यहाँ मंडित कर दिया है । यही लक्षण-लक्षणा का नए अर्थ की शोध का कार्य है ।

"कुचन बीच मनु उरझो, सकै न छोरि ।
रघवा लै चित अँटको, सँकरी खोरि ॥"[2]

'उरझो' तथा 'अँट को' पद लाक्षणिक है । किसी वस्तु का उलझना और अँटकना तो संभव है पर मन और चित्त का नही । अत. इनका लक्ष्यार्थ है विमुग्ध होना ।

"जिहि गिरवर कर धारिसि, तारसि गीध ।
तेहि चरनन कवि बोधा, मो मनु बीध ॥"[3]

'बीध' लाक्षणिक पद है । इसका मुख्यार्थ है विद्ध करना अथवा छेदना । इस वरवै में इसका लक्ष्यार्थ है, मन मे स्नेह पैदा हो गया है । इस प्रकार शब्द को अर्थ का नया आयाम प्राप्त हो गया है ।

"कवि बोधा छुटैं सुख स्वाद सबै
विन काज हनाहक जीव जरै ।"[4]

'स्वाद' तथा 'जरै' पद लाक्षणिक है । स्वाद तो किसी वस्तु को खाकर जाना जा सकता है पर सुख ऐसी कोई वस्तु नही है जिसे खाया जा सके । इस प्रकार जीव का जलना भी सभव नही है क्योकि जीव सूक्ष्म है और अजर अमर है । अत: इन पदो का लक्ष्यार्थ है आनन्द और कप्ट सहना । यह नव अर्थ की शोध का कार्य लक्षण-लक्षणा द्वारा ही सम्पन्न होता है ।

"वहिये विरहानल दाहन सो निज पापन तापन को सहिये ।
चहियै सुख तौलौ रहै दुख कै दृग वारियै बोधन कै चहिये ॥
कवि बोधा इते पै हितू न मिलै मनकी मनही मैं पचै रहिये ।
गहिये मुख मौन भई सो भई अपनी करि काहू सों का कहिये ॥"[5]

---

१. इश्कनामा, बोधाकृत, प्र० बा०, १८९३ ई०, पृ० १५ प० सं० २१
२. वही पृ० १८, प० सं० ३०
३. वही पृ० १८, प० सं० ३१
४. वही पृ० १९, प० सं० ३५
५. वही पृ० २२, प० सं० २

'तापन' तथा 'पचै' लाक्षणिक पद है। इनका मुख्यार्थ है जलन और पचाना किन्तु पाप अग्नि नही है कि उसमे जलन हो और मन की बात या विचार खाद्य-पदार्थ नही है कि उसे पचाया जा सके। अत. इनका लक्ष्यार्थ है दुख देना और प्रकट न करना। इस प्रकार इन शब्दो को अर्थ का नया आयाम मिल गया है।

"हिय फाटो तू मेरी जोबान सुने
उन ते घटि कमै बखानतु है।"[1]

'फाटो' पद लाक्षणिक है। फटना किसी वस्तु का सभव होता है पर यहाँ हृदय का फटना कहा गया है जो सभव नही है। अत: इसका लक्ष्यार्थ है हृदय का दुखी होना अथवा अप्रसन्न होना। फटने से वस्त्र के अलग-अलग जिस तरह टुकडे हो जाते हैं उसी प्रकार दो हृदयो मे स्नेह का सम्बन्ध जो तादात्म उपस्थित करता है अप्रसन्नता द्वारा पुन: दोनो हृदय दो खडो मे विलग हो जाते है।

गौणी सारोपा लक्षणा—

"तब नेह नफा दिल मोल कियो
छबि आपनी लैकै बयाने दई।"[2]

'नेह नफा' लाक्षणिक पद है। नेह उपमेय है और नफा उपमान। इनका आधार साहृश्य हे। उपमेय पर उपमान का आरोप करके कवि ने विब को स्पष्ट तथा सप्रेपणीय बनाया है। स्नेह को व्यावारिक स्वरूप मे रखकर स्वार्थपूर्ण स्नेह का स्वरूप इस पद मे स्पष्ट किया गया है।

"घाटन बाटन हाटन मे
मृगतृष्णा तरंगिनि लौं तरियै ले।"[3]

'मृगतृष्णा तरगिनी' लाक्षणिक पद है। मृगतृष्णा उपमेय और तरगिनि उपमान है। इनका आधार साहृश्य है। कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके विब को सवेदनीय बनाया है।

"सब जग देख्यो बोधा, एक न दीख।
देह भिखारी दिल को, दरसन भीख।"[4]

'देह भिखारी' तथा 'दरसन भीख' लाक्षणिक पद है। देह एव दरसन उपमेय है और भिखारी तथा भीख उपमान है। इनका आधार साहृश्य है। कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके भावो को सप्रेपणीय बनाया है।

---

१. इश्कनामा, बोधाकृत, प्र० ब्रा० १८६३ ई०, पृ० २८, प० सं० ११
२. वही पृ० ६, प० सं० १६
३. पृ० ७ प० सं० २१
४. वही पृ० ७ प० सं० २४

"बसु रे बसु राधे के पायन मैं
मन जोगिया प्रेम वियोगियारे ।।"[१]

'मन जोगिया' पद लाक्षणिक है। मन उपमेय और जोगिया उपमान है। इनका आधार सादृश्य साम्यता है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को संवेदनीय बनाया गया है।

"प्रेम कोठरी कुलुफ लख, बोधा कठिन अपार।
रची जुलुफ महबूब की, रुचिर कंचुकी तार ।।"[२]

'प्रेम कोठरी' पद लाक्षणिक है। प्रेम उपमेय तथा कोठरी उपमान है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को संवेदनीय बनाया गया है।

"कवि बोधा मनोज के ओजनि सों
बिरही-तन तूल भयो जरिहै।"[३]

'तन तूल' लाक्षणिक पद है। तन उपमेय और तूल उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। तन पर तूल का आरोप करके बिंब की जलनशीलता के बिंब को सप्रेषणीय बनाया गया है।

"पहिचाने प्रेम रकाने जे
बेपरद दरद दरियाव हिलै।"[४]

'दरद दरियाव' लाक्षणिक पद है। इसमे दरद उपमेय और दरियाव उपमान है। इनका आधार विस्तार साधर्म्य साम्य है। 'दरद' के बिंब को दरियाव के आरोप द्वारा सप्रेषणीय बनाया गया है।

"मन भृंग अहे अहरात कहा
बसु रे बसु गोरी के पायन मैं ।।"[५]

'मन भृंग' लाक्षणिक पद है। मन उपमेय और भृंग उपमान है। इनका आधार गुण साम्य है। मन की चंचलता के बिंब को भृंग के आरोप द्वारा संवेदनीय बनाया गया है।

"दहिये विरहानल दाहन सो
निज पावन तापन को सहिये ।।"[६]

---

१. इश्कनामा, बोधाकृत, प्र० बा० १८९३ ई०, पृ० १७ प० सं० २७
२. वही पृ० २४, प० सं० ९
३. वही पृ० ३४, प० सं० २
४. वही पृ० ६, पद सं० ४
५. वही पृ० १७, प० सं० २६
६. वही पृ० २२, पद सं० २

'विरहानल' पद लाक्षणिक है। विरह उपमेय और अनल उपमान है। इनका आधार साहश्य है। विरह की कष्टदायी प्रवृत्ति का बिंब अनल के आरोप द्वारा सप्रेषणीय एव सवेदनीय बनाया गया है।

साध्यवसाना गौणी लक्षणा:—

"लखि चीकने पातन पेड़ बडो रहै फूलन सों छवि छाइ सबै।
तकि ऐसो सुवास सुवाबिल सो पलिवे की तहाँ सघु पाइ सबै॥
कवि बोधा भुवान फँसो फल मे पछिताइ बिवा यहि माँगि अबै।
सठ सेमर ने यह ज्वाब दयो हम सों तुम सों पहिचान कबै॥"[1]

'सुवा' तथा सेमर पद लाक्षणिक है। सुवा उपमान है प्रेमी का और सेमर उपमान है प्रेमिका का। इनका आधार गुण साहश्य है। इस प्रकार कथन की गोपनीयता को स्थापित करते हुए कवि ने सहृदय-जनो तक अपने भावो को सप्रेपित कर दिया है।

'बिन स्वाद पुरानी लता सिगरी तिनहू मे कछू गुन ज्ञान न तो।
लखि केतकी और नेवारी जुही मनमानै न सेवती बीच रतो॥
कवि बोधा न प्रापति आदर को दरकार करो करि येक मतो।
यहि आसरे या बगिया बिलम्यो वा चमेली नवेली सो नेह हतो॥"[2]

'पुरानी लता' तथा 'चमेली' लाक्षणिक पद है। ये दोनो पद उपमान हैं पुरानी प्रेमिका और नवीन प्रेमिका के। इस प्रकार कथन की गोपनीयता के साथ कवि ने बिंब को सवेदनीय बनाया है।

"कछू मालती के बिछुरे तब ते
भ्रमरै भहिरेवे की वाय लगी।"[3]

'मालती' तथा 'भ्रमरै' पद लाक्षणिक है। दोनो पद उपमान है प्रेमिका और प्रेमी के। कवि ने स्नेह की गोपनीय अवस्था को मालती और भ्रमर के माध्यम से सवेदनीय बनाया है।

'इश्कनामा' मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोग हृदय को सवेदनशील बनाने की पर्याप्त सामर्थ्य रखते है। कवि ने अन्तर्वृत्तियो के सूक्ष्म से सूक्ष्म भावो की अभिव्यक्ति के लिए लाक्षणिक चित्रात्मकता की सहायता ली है। इन लाक्षणिक बिंबो की गोचरता से काव्य मे सौष्ठव एव भाव मे तीव्रता और सप्रेषणीयता आ गई है।

---

१. इश्कनामा, बोधाकृत, प्र० बा०, १८६३ ई०, पृ० २८, पद सं० १३
२. वही पृ० ३०, पद २०
३. वही पृ० ३१, पद २२

ठाकुर

ठाकुर स्वच्छन्द काव्य-धारा के गण्यमान कवि है। इनकी रचनाओ के दो सग्रह 'ठाकुर ठसक' और 'ठाकुर शतक' नाम से पाए जाते है। कुछ कवित्त, सवैयों मे तो अवश्य भिन्नता है, पर अधिकतर पद दोनो मे समान ही है। 'ठाकुर ठसक' का पाठ अधिक शुद्ध प्रतीत होता है। ठाकुर के काव्य मे अभिव्यक्ति की स्वाभाविकता सर्वत्र वर्तमान है। इनकी अनुभूति मे तीव्रता, कल्पना मे यथार्थता और शब्द-चयन मे आडम्बर का अभाव है। बोल-चाल की चलती भाषा में अपने भावों को इन्होने व्यक्त किया है, इसलिए इनके काव्य मे लोकोक्तियो और मुहावरो का प्रचुर मात्रा मे प्रयोग हुआ है। इन सभी प्रयोगो मे लक्षणा की चित्रात्मकता वर्तमान है। ठाकुर प्रधानत: शृङ्गारी कवि थे फिर भी इनके काव्य में लोक व्यवहार के अनेक पक्षो का सन्निवेश हुआ है। ऐसे प्रसंगो पर भी लाक्षणिक पदावली द्वारा इन्होने भावो को संप्रेषणीय बनाया है। यहाँ पर ऐसे ही कुछ लाक्षणिक प्रयोगों को दिया जा रहा है।

निरूढा लक्षणा :—

"या जग में फिर जीवो कहा जब आँगुरी लोग उठावन लागे।"[1]

'आँगुरी लोग उठावन लागे' लाक्षणिक पद है। इसका लक्ष्यार्थ है कलंकित होकर जीना। यही लक्ष्यार्थ ही मुख्यार्थ के रूप मे रूढ़ हो गया है।

"थोरिहि बात में धोखो मिटो बढ़ियाई गई कलई कढ़ि आई।"[2]

'कलई कढि आई' लाक्षणिक पद है। इसका लक्ष्यार्थ है सत्यता प्रकट हो गई है। इसी लक्ष्यार्थ मे ही मुहावरा रूढ़ हो गया है।

"जो विष खाय सो प्राण तजै, गुड़ खाय सो काहे न कान छिदावै।"[3]

'गुड़ खाय सो काहे न काम छिदावे' एक लोकोक्ति है। इसका लक्ष्यार्थ है लालच मे पड़कर कष्ट सहना पड़ता है।

"राजा ह्वै कै तजै न्याउ संगी ह्वै कै करै घाउ,
बारी खेत खाय तो उपाय कहा कीजिये।"[4]

'बारी खेत खाय तो उपाय कहा कीजिये' लोकोक्ति है। इसका लक्ष्यार्थ है

---

1. ठाकुर ठसक, सं० लाला भगवानदीन, प्रथमावृत्ति सं० १९८३ पृ० ३८, पद सं० १४९
2. वही पृ० ३८, पद १५०
3. वही पृ० ३८, पद १५२
4. वही पृ० ३८, पद १५४

'रक्षक ही भक्षक हो जाए' अथवा शुभेच्छु ही अपकार करने लगे। इसी लक्ष्यार्थ में ही लोकोक्ति रूढ हो गई है।

"मीर बड़े-बड़े जात वहे तहं ढोलिये पार लगावत का है।"[१]

'ढोलिये पार लगावत को है' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है 'तुच्छ व्यक्ति की कौन गणना करता है अर्थात् तुच्छ व्यक्ति का क्या महत्व है। अपने लक्ष्यार्थ मे ही मुहावरा रूढ़ हो गया है।

"री अब तो घनघोर घटा गरजो बरसो तुम्हे घूर दई है।"[२]

'तुम्हे घूर दई है' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है तुम्हे ललकार दिया है। इसी अपने लक्ष्यार्थ मे ही यह मुहावरा रूढ हो गया है।

"अपने अटके सुन एरी भट्ट निज सौत के माइके जइयत है।"[३]

'अपने अटके सौत के मायके जइयत है' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है अपना स्वार्थ होने पर शत्रु के घर भी जाना पड़ता है। इसी लक्ष्यार्थ को ही यह मुहावरा व्यक्त करता है।

"सब रैन परी न खिझाओ हमे अबै सेर में पोनी कतौ नहियां।"[४]

'अबै सेर मे पोनी कती नहिया' लोकोक्ति है। इसका लक्ष्यार्थ है 'अभी तो सारा समय शेष है'। यह लोकोक्ति इसी लक्ष्यार्थ को ही व्यक्त करती है।

"मूसर चोट की भीति कहां बजिकै जब मूंड़ दियो ओखरी मे।"[५]

'मूसर चोट की भीति कहा जब मूड दियो ओखरी मे' मुहावरा है इसका लक्ष्यार्थ है 'जब जान बूझकर सकटो मे आ पडे हैं तो उनसे भय क्यो माना जाए'। इसी लक्ष्यार्थ को ही यह मुहावरा व्यक्त करता है।

"हमें को गनै कासो परोजन है बुनिवे में न बीन बजाइवे में।"[६]

'बुनिवे मे न बीन बजाइवे मे' एक लोकोक्ति है। इसका लक्ष्यार्थ है महत्व हीन होना। इसी लक्ष्यार्थ में ही यह पद रूढ है।

"अधिरात भई हरि आए नहीं हमें ऊमर को सहिया करिगे।"[७]

'ऊमर को सहिया करिगे' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है गूलर के कीड़े की

---

१. ठाकुर ठसक, सं० लाला भगवानदीन, प्रथमावृत्ति, सं० १९८३, पृ० ३९, पद सं० १५६

२. वही पृ० ३९, पद १५७

३. वही पृ० ३९, पद १५८

४. वही पृ० ३९, प० १५९

५. वही पृ० ३९, प० १६०

६. वही पृ० ४०, प० १६२

७. वही पृ० ४०, प० १६५

तरह हमें अपने आश्रित कर गए। इसी लक्ष्यार्थ को ही यह मुहावरा व्यक्त करता है।

"नाच नचो है तिहारे पिया सतरातीं कहा कोउ स्यान सिखैहै।"[1]

'नाच नचो है' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है 'कार्य व्यस्त होना।' इसी लक्ष्यार्थ को ही यह मुहावरा व्यक्त करता है।

"चल दूर भट्ट हौं वृथा भटकी लगै दूर के ढोल सुहावने रे।"[2]

'दूर के ढोल सुहावने लगते हैं' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है अपने निकट-वर्ती व्यक्ति व्यवहारिक यथार्थता के कारण बुरे प्रतीत होते है और दूर का व्यक्ति जिससे हमारा व्यवहारिक सम्बन्ध नही है भला लगता है पर इसमें सचाई नही है। इसी लक्ष्यार्थ को ही यह मुहावरा व्यक्त करता है।

"माया मिली नहिं राम मिले दुविधा में गए सजनी सुनु दोऊ।"[3]

'दुविधा मे दोऊ गए माया मिली न राम' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है एकाग्रचित्त से एक ही इष्ट की साधना करनी चाहिए तभी सफलता मिल सकती है।

"बिन आपने पायें बिवाई गए कोऊ पीर पराई न जानत है।"[4]

सम्पूर्ण पक्ति एक मुहावरा है। जिसका लक्ष्यार्थ है दुखी व्यक्ति ही दूसरे के दुख का अनुभव कर सकता है। इसी लक्ष्यार्थ को ही यह मुहावरा व्यक्त करता है।

"आंधरे साहब के घर में दमरी को हिसाब हजारा को जात लों।"[5]

पूरी पंक्ति में लोकोक्ति है। इसका लक्ष्यार्थ है जो महत्वपूर्ण है उसे तो महत्व नही दिया जाता और जो नगण्य है उसे अत्यधिक महत्व दिया जाता है। इसी लक्ष्यार्थ को ही लोकोक्ति व्यक्त करती है।

"ऊधो जू बोष तुम्हें न उन्हें हम लीन्हीं है आपने हाथ ही बीछी।"[6]

'अपने हाथ मे बीछी लेना' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है स्वयं जान-बूझ कर दुखों मे आ पड़ना। इसी लक्ष्यार्थ को ही यह मुहावरा व्यक्त करता है।

---

१. ठाकुर ठसक, सं० लाला भगवानदीन, प्रथमावृत्ति, सं० १९८३ पृ० ४०, पद सं० १६७
२. वही पृ० ४१, पद १७३
३. वही पृ० ४०, पद १७५
४. वही पृ० ४२, पद १७६
५. वही पृ० ४२, पद १७८
६. वही पृ० ४२, पद १७९

"हिलिमिलि भाँति भाँति हेत करि देख्यो तऊ
चेट की चवाइन के पेट को न पाई मैं ।।"[1]

'पेट की न पाई' लाक्षणिक पद है। इसका वाच्यार्थ है पेट का न पाना पर लक्ष्यार्थ है-गुप्त विचार का पता न लगना। पेट की न पाई' अपने लक्ष्यार्थ ही रुढ हो गया है और भाषा मे इसे मुहावरे के रूप मे प्रयोग किया जाता है।

अब रैहे न रैहै यही समयो,
बहती नदी पांव पखार लैरी ।।"[2]

'बहती नदी पाव परवार लैरी' लाक्षणिक पद है। इसका वाच्यार्थ है बहती नदी पैर धोलो, पर लक्ष्यार्थ है अवसर से लाभ उठा लो। इसी लक्ष्यार्थ मे ही यह रूढ हो गया है। और अब भाषा मे मुहावरे के रूप मे प्रयोग किया जाता है।

"दस बार बीस बार बरज दई है याहि
एते पै न मानै तौ पै जरन बरन देव।"[3]

'दस बार बीस बार' और जरन बरन देव' मुहावरे हैं। इनका लक्ष्यार्थ है-अनेको बार तथा कष्ट सहने दो अथवा दुख उठाने दो। इन्ही लक्ष्यार्थो मे ही ये मुहावरे रुढ हो गए हैं।

"देखति हौं बृज की लुगाइन भयौ धौं कहां
खेत की कैहे तो खरियान की समझती ।।"[4]

'खेत की कहे तो खरियान की समझती' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है कि-कहने वाला कुछ कहे पर समझने वाला कुछ और ही समझता है। इसी लक्ष्यार्थ मे ही यह मुहावरा रूढ हो गया है।

"बरुनीन मे नैन झुकै उझकै, मनौ खजन प्रेम के जाले परे।
बिन औधि के कैसे गनौं सजनी अँगुरीन के पोरन छाले परे ।।
कवि ठाकुर ऐसी कहा कहियें निज प्रीति करे के कसाले परे।
जिन लालन चाह करी इतनी तिन्हैं देखिबे के अब लाले परे ।।"[5]

'छाले परे', 'कसाले परे' तथा 'ताले परे' मुहावरे हैं। इनका क्रमशः लक्ष्यार्थ है-आत्यधिक कष्ट होना, दुखदाई और अवसर न प्राप्त होना। इन्ही लक्ष्यार्थों मे ही ये मुहावरे रूढ हो गये हैं।

---

१. ठाकुर शतक, सं० बाबू काशी प्रसाद, सं० १९६१ पृ० ५ पद सं० १४
२. वही पृ० ६ प० सं० २६
३. वही पृ० १३ प० सं० ३६
४. वही पृ० १५ प० सं० ४०
५. वही पृ० १६ प० सं० ४४

"दूध की माखी उजागर वीर
सुहाइ मैं आँखिन देखत खाई।"[1]

दूध की माखी खाई' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है बुराई तथा बदनामी को स्वीकार कर लेना। इसी लक्ष्यार्थ में ही यह मुहावरा रूढ़ हो गया है।

" हौ फरिहौं हित फूलों फिरै
मन जानत नहिं अजान है येतो।"[2]

'फूल्यो फिरै' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है आनन्दित होना। यह मुहावरा अपने लक्ष्यार्थ में ही रूढ हो गया है।

"स्याम कौ बुलाइ पिय पाइ कै सुनायो सुख
स्याम स्याम स्यामा सौ कहायो बीस बेर कै।"[3]

'बीस बेर' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है अनेकबार। अपने लक्ष्यार्थ में ही मुहावरा रूढ हो गया है।

"अब होन दे बीस बिसैरी हँसो
हिरदै बसी मूरति साँवरो री।"[4]

'बीस बिसै' एक मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है पूर्ण रूप से। इसी लक्ष्यार्थ मे ही मुहावरा लोक प्रसिद्ध है।

'फूलो न मोहिं अकेली निहारि कै
भूल्यौ ना तुम गाय चरैया॥"[5]

'फूलो न' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ प्रसंग गत है अभिमान न करो। इसी लक्ष्यार्थ मे ही मुहावरा रूढ़ हो गया है।

"ह्वै है नही मुरगा जिहि गाँव
भट्ट तिहि गाँव का भोर न ह्वै है?"[6]

'बिन मुर्गा के क्या सवेरा नही होता?' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ यह है कि किसी के लिए कोई काम रुका नही रहता है। अपने इसी लक्ष्यार्थ मे मुहावरा रूढ़ हो गया है।

---

१. ठाकुर शतक, सं० बाबू काशी प्रसाद, सं० १९६१ पृ० १६ प० सं० ४५
२. वही पृ० १७ प० सं० ४७
३. वही पृ० १७ प० सं० ४८
४. वही पृ० १८ प० सं० ५१
५ वही पृ० २१ प० सं० ५९
६. वही पृ० ३० प० सं० ८४

"अब ऊधो सुनो यह प्रीत की रीत
जु काछिये काछ सुई नचिये ॥"[1]

'जु काछिये काछ सुई नचिये' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है जैसा रूप हो वैसा कार्य भी करना चाहिए। इसी लक्ष्यार्थ मे ही यह मुहावरा रूढ़ हो गया है।

"ऊधौ जु दोष तुम्हैं न उन्हें हम
आपुही पाँव पै पाथर पारे ॥"[2]

'आपुही पाँव पै पाथर पारे' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है अपने आप को दुख दे दिया है। इसी लक्ष्यार्थ मे यह मुहावरा रूढ हो गया है।

"या कुल रीत बड़ेन को प्रीत
जो बाँहि गहे की निवाहियतु है ॥"[3]

'बाँहि गहे' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है आश्रय देना अथवा शरण देना। अपने लक्ष्यार्थ मे ही यह मुहावरा रूढ गया है।

शुद्धा लक्षण-लक्षणा:—

"धिक कान जो दूसरों बात सुनैं अब सुनैं अब एकही रंग रही मिलि डोरी।
दूसरो नाम कुजात कढै रसना जो कहै तो हलाहल बोरी ॥
ठाकुर यों कहती व्रजबाल सुहाग वनिता को सुभाव है भोरो।
ऊधो जू ये अँखियाँ जरि जायँ जो साँवरो छाँड़ि तकै तन गोरो ॥

'हलाहल बोरो' तथा 'जरि जायँ' लाक्षणिक पद हैं। इनका मुख्यार्थ क्रमशः जहर मे डुबाना और जल जाना है किन्तु इनका लक्ष्यार्थ है मृत्यु वेदना की तरह यातना देना एव नष्ट हो जाना। इस तरह कवि ने लक्षण के माध्यम से शब्द को अर्थ का नया आयाम दे दिया है।

'प्रीति हमैं तुमैं टूटि गये की
अबै लौं प्रीतत न मानत कोऊ ॥"[4]

'टूटि' पद लाक्षणिक है। टूटना तो किसी वस्तु का सम्भव है पर यहाँ प्रीति के पक्ष मे इसका प्रयोग किया गया है। इसका लक्ष्यार्थ है समाप्त हो जाना। प्रीति का टूटना कहकर भाव मे तीव्रावेग पैदा किया गया है। इस तरह लक्षणा-शक्ति के द्वारा नए अर्थ की शोध की गई है।

---

१. ठाकुर शतक, सं० बाबू काशी प्रसाद, सं १९६१ पृ० ३५ प० सं० ९९
२. वही पृ० ३६ प० सं० १०१
३. वही पृ० ३७ प सं १०५
४. वही पृ० १, पद सं० २

"जा दिन जान लगे परदेश को,
रौंदि हियो छतिया पै गली करी ।"[१]

'रौंदि' तथा 'गली करी' लाक्षणिक पद है। इनका मुख्यार्थ क्रमशः कुचलना और रास्ता बनाना है। हृदय को कुचलना और छाती पर रास्ता बनाना सम्भव नही है। इन पदो का लक्ष्यार्थ है हृदय को दुखी करना एव छाती में विरह वेदना पैदा करना। इस तरह लक्षण-लक्षणा द्वारा इन पदो को अर्थ का नया आयाम मिल गया है।

"घींच में मीच न नीचहि सूझत,
मोह की कीच के बीच फँस्यो है।"[२]

'कीच' पद लाक्षणिक है। इसका मुख्यार्थ है कीचड़। मिट्टी में ही कीचड़ होना सम्भव है पर मोह मे कीचड होना सम्भव नही है। वस्तुतः इसका लक्ष्यार्थ है उलझाने या फँसाने का साधन। इस तरह कवि ने कीच शब्द को एक नया अर्थ दे डाला है और साथ ही साथ मोह के प्रति घृणा की भावना भी अभिव्यक्त हो गई है।

"ठाकुर हौं अजामेल ते आगरो पापी उजागरो यों हितयो रे।
रावरी ओर चितौत चितौत किते दिन वीते न तू चितयो रे ॥"[३]

'अजामेल ते आगरो', 'चितौत' तथा 'न चितयो' लाक्षणिक पद हैं। इनका मुख्यार्थ क्रमशः है—अजामिल से बढकर, देखना एव न देखना पर मुख्यार्थ से भाव स्पष्ट नही होता है। इन पदों का लक्ष्यार्थ है महान पापी, आशा करना एवं कृपा न करना। इस तरह इन पदों द्वारा नया अर्थ लक्षित किया गया है।

"अब का समझावती को समझे बदनामी के बीजन बोय चुकी री।
इतनो हूँ विचार करो तो सखी यह लाज की साज को धोय चुकी री ॥[४]

'बीजन बोय' तथा 'साज को धोय' लाक्षणिक पद है। इनका वाच्यार्थ है बीज बोना और वस्त्रादि धोना। बदनामी का बीज होता नही है जिसे बोया जा सके एवं लज्जा की साज-सज्जा नही होती है जिसे कि धोया जा सके। अतः यहाँ पर इनका लक्ष्यार्थ कारण उत्पन्न करना और समाप्त करना है अर्थात् बदनामी का कारण अब उत्पन्न करके व्यर्थ में उससे बचने के लिए किसी को क्यों समझाने का प्रयत्न करती हो। ऐ सखी इतना तो तुम्हें सोच ही लेना चाहिये कि तुमने लोक-लज्जा को समाप्त कर दिया है।

---

१. ठाकुर शतक, सं० बाबू काशी प्रसाद, सं १९६१, पृ० ७, प० सं० १९
२. वही पृ० १२, प० सं० ३४
३. वही पृ० १४, पं० सं० ३९
४. वही पृ० १५, पं० सं० ४२

"कवि ठाकुर ये पिय दूर वसेँ तन मँन मरोर मरेरती सी ।
यह पीर न पावति आवति है फिर पापिनी पावस पेरती सी ।।"[१]

'मरोर मरेरती' तथा 'पेरती' पद लाक्षणिक है। इनका क्रमशः मुख्यार्थ है मरोड़ना और पेरना, पर न ही व्यक्ति मरोडा जा सकता है और न ही पेरा । दोनो पदो का लक्ष्यार्थ है वेदना अथवा दुख देना । इस तरह इन पदो को लक्षण-लक्षणा द्वारा नया अर्थ प्रदान किया गया है ।

"खूँद डारी धरनि सरन जल पूरि डारे,
चूर करि डारे सुख विरही तियान के ।"[२]

'खूँद' तथा 'चूर' लाक्षणिक पद है। इनका वाच्यार्थ है खूनना और चूर करना पर धरती को बादल खून नही सकते और न ही सुख कोई वस्तु ही है कि उसे चूर किया जा सके। अत इनका लक्ष्यार्थ है वर्षा से धरती नम हो गई और विरहिणी की विरह व्यथा वढ़ गई अर्थात् उसके सुख का अन्त हो गया ।

'जो अपनो हितकारी महा,
तिनसों कहूँ डीठ मरोरियतु है ।"[३]

'डीठ मरोरियतु है' लाक्षणिक पद है। दृष्टि का मरोडना सम्भव नही है। अतः इसका लक्ष्यार्थ है नाराजगी दिखाना अथवा अप्रसन्नता प्रकट करना ।

"ठाकुर कहत या जहान मैं जवर फैलो,
मैली भई मति कछु जतन वतावरी ।"[४]

'मैली' लाक्षणिक पद है। इसका मुख्यार्थ है गन्दा होना। कपड़ा आदि के पक्ष मे ही मैला होना कहना सम्भव है किन्तु यहाँ मति को मैला होना कहा गया है। इसका लक्ष्यार्थ है वुद्धि का भ्रष्ट होना ।

गौणी सारोपा लक्षणाः--

"गुन गाहक सौं विनती इतनी हकनाहक ना हठ गावने है ।
यह प्रेम बजार के अन्तर सो पर नैन दलाल अँकावने है ।।
कहि ठाकुर औगुन छोड़ि सबै परवीनन लै परखावने है ।
अब देखि विचारि निहारि कै माल जमा पर दाम लगावने हैं ।।"[५]

'प्रेम वजार' तथा 'नैन दलाल' लाक्षणिक पद है। प्रेम एव नैन उपमेय हैं

---

१. ठाकुर शतक, सं० बाबू काशीप्रसाद सं० १९६१, पृ० १८ पद सं० ५०
२. वही पृ० १९ पद सं० ५४
३. वही पृ० २४ पद सं० ६६
४. वही पृ० ३३ पद सं० ९३
५. वही पृ० २५ पद सं० ६६

और बजार तथा दलाल उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके उपमेय के कार्य-व्यापार का बिंब संप्रेपणीय बनाया है।

"मन मेरो मतंग भयौ मदमत्त सु माया समुद्र में आन धस्यौ है।
ज्ञान महावत लाज की अंकुस संक की साकर नाहिं गस्यौ है॥
ठाकुर मै हूँ उपाय किये वह आवै न हाथ कुसंग बस्यौ है।
धीच पै मीच न नीचहिं सूझत मोहि के कीच के बीच फस्यौ है॥"[1]

'माया समुद्र' तथा 'ज्ञान महावत' लाक्षणिक पद हैं। माया एवं ज्ञान उपमेय हैं और समुद्र तथा महावत उपमान हैं। इनका आधार सादृश्य है। उपमेय पर कवि ने उपमान का पूर्णारोप करके उपमेय के बिंब को संवेदनीय एवं भाव को तीव्रावेग प्रदान किया है।

"चारहूँ ओर उदौ मुखचन्द-
की चांदनी चारु निहार लै री॥[2]

'मुख चन्द्र' लाक्षणिक पद है। मुख उपमेय है और चन्द्र उपमान है। इसका आधार सादृश्य है। कवि ने मुख पर चन्द्र का आरोप करके मुख के बिंब को संवेदनीय बनाया है। इस तरह लौकिक सौन्दर्य को अलौकिकता प्रदान की गई है।

"मन मेरो मतंग भयौ मदमत्त सु,
माया समुद्र में आन धस्यौ है।"[3]

'मन मतग लाक्षणिक पद है। मन उपमेय और मतंग उपमान है। इसका आधार गुण साम्य है। कवि ने मन पर मदमत्त मतंग का आरोप करके मन की अवस्था तथा शक्ति के बिंब को सवेदनीय बनाया है। इस प्रकार सूक्ष्म मन का सहृदय के मन पर एक चित्र खिंच कर रह जाता है।

गौणी साध्यवसाना लक्षणा—

"डीलदार सीलदार लाज को अहार जिन्हैं तीछन मृगा से देख-देख रहियत है।
मीन और खंजन से अलसे अनोखे बेख कंज दलहूँ तें ये विशेष चहियत है॥
ललित ललौहैं कसकौहैं चसकौहैं जान ठाकुर कहत सुख पाइ रहियत है।
औरन के नैन कहाँ नैन के लेखें आवैं ऐसे नैन होंइ तब नैन कहियत है॥"[4]

'मृगा', 'मीन', 'खंजन' तथा 'कंज' सभी लाक्षणिक पद हैं। नेत्र उपमेय के सभी पद उपमान हैं। कवि ने उपमान द्वारा ही उपमेय के बिंब को सवेदनीय बनाया है। इनका आधार सादृश्य है।

---

१. ठाकुर शतक, सं० बाबू काशीप्रसाद, सं० १९६१, पृ० ३८ प० सं० १०७
२. वही पृ० ६ प० सं० २६
३. वही पृ० ३८ प० सं० १०७
४. वही पृ० ६ प० सं० १६

कवि ठाकुर के पदो मे सर्वत्र उनका व्यक्तित्व झाँकता है। 'रीतिकालीन कवि होकर भी वे रीति रूढ़ियो मे बँधे नही और उनकी रचनाओ मे सर्वत्र उनका व्यक्तित्व प्रकट होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन्हे अपनी जो बात कहनी थी उसे उन्होने निश्छल हृदय से स्पष्ट रूप मे व्यक्त कर दिया है। इनकी रचना मे रूढ़ियो को लेकर कलाबाजी भी नही दिखाई गई है। लोक मानस के अति निकट सम्पर्क मे होने के कारण इन्होने मुहावरो का खुलकर प्रयोग किया है। मुहावरो के प्रयोग से काव्य मे अभिव्यजना का कौशल इनकी रचनाओ मे सर्वत्र प्रकट हुआ है।

इसके अतिरिक्त कवि की प्रतिभा ने शब्दो को अर्थ का नया आयाम देने मे भी पर्याप्त कुशलता दिखाई है। लक्षणा जो निरन्तर नए अर्थ का शोध करके अभिधा का शब्द भण्डार भरने का प्रयत्न और कथ्य को सौन्दर्य एव सप्रेपणीयता प्रदान करने का कार्य करती है उसका कवि की रचना मे अधिकतर स्थलो पर प्रभाव देखा जा सकता है। लक्षण-लक्षणा के सभी उदाहरण इसी कथन को स्पष्ट करते है।

साध्यवसाना के प्रयोग विरल है। इससे यही कहना पड़ता है कि कवि की प्रवृत्ति अलकारो की योजना की ओर विशेष उन्मुख नही थी, स्वाभाविक कथन मे जो अलङ्कार अपने आप आ गए हैं वही काव्य का सौन्दर्य बढ़ाते हैं।

वीर रसात्मक काव्य-धारा

सम्पूर्ण रीति-काल में एक मात्र वीररस के गायक 'भूषण' है। इस काल के सभी कवि जब नारी के रूप-रंग के चित्रण मे व्यस्त थे, तब भूषण देश-भक्ति के उन्नायक शिवाजी की वीरता का गान कर रहे थे। इन्होने अपनी वाणी से तत्कालीन जन-मानस को वीरता का प्रोत्साहन एव प्रेरणा देकर अनुप्राणित कर दिया। इनके काव्य में ओजस्विता तो अपनी चरम सीमा पर है, किन्तु अभिव्यजना कौशल मे वह दक्षता नही दिखाई पडती है। रीति-काल तो अलकरण का युग ही था। इस प्रवृत्ति से ये भी प्रभावित थे। इसलिए इनके काव्य मे भी पर्याप्त मात्रा मे अलकारो की योजना हुई है। इन्ही अलकारो के माध्यम से इनके काव्य में लाक्षणिक चमत्कार भी उत्पन्न हुए है। इन अलकारो मे जैसा कि पिछले अध्यायो में दिखाया जा चुका है, रूपक, अतिशयोक्ति, समासोक्ति परिकरांकुर आदि मे आधारभूत लक्षणा शक्ति रहती ही है। उन्ही लाक्षणिक प्रयोगो मे से कुछ उदाहरणार्थ यहाँ दिए जा रहे है।

निरूढ़ा लक्षणा—

"आगरे-अगारन की नाँघती पगारन,
सम्हारती न बारन वदन कुम्हलानियाँ।"[1]

इसमे 'कुम्हलानियाँ' पद लाक्षणिक है। कुम्हिलाना पुष्प का धर्म है पर यहाँ वदन (मुख) के लिए प्रयुक्त हुआ है। कवि प्रयोग प्रसिद्धि के कारण यह पद वदन

1. शिवा-बावनी, सं० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रथमावृत्ति, पृ० ४ प० सं० ६

के लिए भी प्रचलित हो गया है। इसका लक्ष्यार्थ चिन्तित, भयभीत अथवा निराश प्रयोग प्रसिद्धि के कारण मुख्यार्थ सा प्रतीत होने लगा है।

"हद्द हिंदुवान की विहद्द तरवारि राखि,
कैयो बार दिल्ली के गुमान झारि डारे हैं।"[1]

इसमे 'गुमान झारि डारे हैं' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है अभिमान चूर-चूर कर देना है। इसी लक्ष्यार्थ मे ही मुहावरा रूढ हो गया है और लक्ष्यार्थ ही मुख्यार्थ हो गया है।

"स्याह भए सारी पातसाही के अमीर खान,
काहू को न रह्यो जोम समर-उमाह को।"[2]

इसमें स्याह भए' पद लाक्षणिक है। यह एक मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है भयभीत होना, चिन्तित होना अथवा निराश होना। प्रचलन में प्रसिद्ध हो जाने के कारण इसका लक्ष्यार्थ ही मुख्यार्थ हो गया है।

'साजि चमू जनि जाहु सिवा पर सोवत जाय न सिंह जगाओ।
तासों न जग जुरौ न भुजंग महाविष के मुख मैं कर नाओ॥
भूषन भाषति वैरि-बधू जनि एदिल औरंग लौं दुख पाओ।
तासु सलाह की राह तजो मति नाह दिवाल की राह न धाओ॥"[3]

इसमे 'सोते सिह को जगाना' 'सर्प के मुख मे अँगुली देना' तथा 'दीवाल की राह दौडना' लोकोक्तियाँ है। प्रथम दो लोकोक्तियों का लक्ष्यार्थ है मौत को निमन्त्रण देना। तीसरी लोकोक्ति का लक्ष्यार्थ है स्वयं की हानि करना। इनके लक्ष्यार्थ ही मुख्यार्थ हो गए हैं।

शुद्धा उपादान लक्षणा—

'हद्द हिन्दुवान की विहद्द तरवारि राखि,
कैयो बार दिल्ली के गुमान झारि डारे हैं।"[4]

इसमे दिल्ली के गुमान झारि डारे है' पद लाक्षणिक है। इसका लक्ष्यार्थ है दिल्ली वालों के गुमान को चूर-चूर कर दिया है। यहाँ दिल्ली से दिल्ली वालों का बोध होता है।

---

१. शिवा बावनी,' सं० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रथमावृत्ति, पृ० ९ प० सं० २४
२. वही पृ०१३ प० सं० ३९
३. वही पृ० २० प० सं ६
४. वही पृ० ९ प सं० २४

"सिवराज तेरे त्रास दिल्ली भयो भुवकंप
थर-थर काँपत बिलाइत अरब की।"[1]

इसमे 'दिल्ली भयो भुवकप' पद लाक्षणिक है। इसका लक्ष्यार्थ है कि दिल्ली के लोग भयभीत होकर काँपने लगे। यहाँ दिल्ली का लक्ष्यार्थ दिल्ली वाले है।

शुद्धा लक्षण-लक्षणा—

"सिवा पूछे सिव सों समाज आजु कहाँ चली,
काहू पै सिवा नरेस भृकुटी चढ़ाई है।"[2]

इसमें 'भृकुटी चढाना' पद लाक्षणिक है। इसका लक्ष्यार्थ है क्रोध करना। इस प्रकार कवि ने नए अर्थ का इस पद पर आरोप करके अर्थ का विस्तार कर दिया है।

"हवा हूँ न लागती ते हवा तें बिहाल भई',
लाखन की भीर मैं सम्हारती न छाती हैं।"[3]

इसमें 'सम्हारती न छाती है' पद लाक्षणिक है। इसका लक्ष्यार्थ है छाती भी नही ढंक पाती। इस प्रकार कवि ने 'सम्हारती' पद को ढकने के अर्थ से मंडित कर दिया है।

"जानि गैरमिसिल गुसीले गुसा धारि मनु,
कीन्हों ना सलाम न बचन बोले सियरे।।
भूषन भनत महाबीर बलकन लाग्यो,
सारी पातसाही के उड़ाय गए जिएरे।।"[4]

इसमे 'सियरे', 'बलकन' तथा 'उडाय गए जियरे' पद लाक्षणिक है। किसी वस्तु के लिए 'सियरे' और दुग्धादि के लिए बलकन का प्रयोग उपयुक्त होता है पर यहाँ वचन के लिए सियरे और शिवा के लिए बलकन का प्रयोग हुआ है। इसलिए इनका क्रमश. लक्ष्यार्थ है विनयपूर्ण वचन तथा क्रोधित होना। इसी प्रकार 'जी' कोई पक्षी तो है नही जो उड़ जाएगा। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है भयभीत होना। इस प्रकार कवि ने भाव को स्पष्ट करने के लिए नए भावपूर्ण अर्थों की सतत खोज की है।

"मारे सुनि सुभट पनारेवारे उदभट,
तारे लागे फिरन सितारे गढ़धर के।"[5]

---

१. शिवा-बावनी, सं० पं०, विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रथमावृत्ति, पृ० १० प० सं० ३०
२. वही पृ० ३ प० सं० ६
३. वही पृ० ४ प० सं० ११
४. वही पृ० १६ प० सं० ४६
५. वही पृ० १२ प० सं० ३६

इसमें 'तारे लागे फिरन' पद लाक्षणिक है। इसका मुख्यार्थ है आँखों में तारे घूमने लगे पर इसका लक्ष्यार्थ है क्रोधित होना। इस प्रकार कवि ने अर्थ को एक नया आयाम प्रदान कर दिया है।

"रावन के राम कार्तवीज के परसुराम,
दिल्लीपति-दिग्गज के सिंह सिवराज हैं।"[1]

इसमे 'दिल्लीपति-दिग्गज' लाक्षणिक पद है। दिल्लीपति उपमेय और दिग्गज उपमान है। इसका आधार सादृश्य है। कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके भाव को सप्रेषणीय बनाया है।

"खग्ग-खगराज महाराज सिवराज जू को,
अखिल-भुजंग मुगलद्दल निगलिगो।"[2]

इसमें 'खग्ग-खगराज' लाक्षणिक पद है। खग्ग (खड्ग) उपमेय और खगराज उपमान है। इसका आधार सादृश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके कवि ने बिंब को सवेदनीय बनाया है।

"कूरम कमल कमधुज है कदंब-फूल,
गौर है गुलाब, राना केतकी बिराज है।
पांडरि पँवार, जुही सोहत है चंदवत,
बकुल बुंदेला, अरु हाड़ा हंसराज है।
भूषन भनत मुचकुन्द बड़गूजर है,
बघेले बसंत सब कुसुम समाज है।
सबही को रस लै के बैठि न सकत आय,
अलि अवरंगजेब चंपा सिवराज है॥"[3]

इसमे 'कूरम कमल', 'कमधुज कदंब' 'गौर गुलाब' 'राना केतकी' हाड़ा हंसराज तथा 'बघेले बसंत' लाक्षणिक पद हैं। इन पदो में उपमेय पर उपमान का आरोप करके कवि ने बिंब को स्पष्ट किया है। इनके एकात्म्य का आधार सादृश्य है।

"दूलहो सिवाजी भयो दच्छिनी दमामे वारो,
दिल्ली दुलहिन भई सहर सितारे की।"[4]

इसमें 'दिल्ली दुलहिन' पद लाक्षणिक है। इस पद में दिल्ली उपमेय और दुलहिन उपमान है। इस प्रकार कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को सप्रेषणीय बनाया है।

---

१. शिवा-बावनी, सं० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रथमावृत्ति, पृ० २ प० सं० ३
२. वही पृ० ११ पद सं० ३१
३. वही पृ० १५ पद ४२
२. वही पृ० १८ पद सं० ५

साध्यवसाना गौणी लक्षणा—

"सिगरे अमीर भए कुन्द मकरंद भरे,
भृंग सों भ्रमत लखि फूल को समाज है।"[1]

इसमें 'भृंग पद लाक्षणिक है। औरगजेब का उपमान है। यहाँ कवि ने उपमान द्वारा ही उपमेय के बोध कराने का प्रयत्न किया है।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भूषण के काव्य मे प्रचुर मात्रा में लाक्षणिक प्रयोग हुए है। ये लाक्षणिक प्रयोग मुहावरे तथा लोकोक्तियो के रूप मे, शब्दो को अर्थ का नया आयाम देने मे और अलकारो के रूप मे हुए है। इन प्रयोगो मे वर्ण्य-विषय के अनुसार स्वाभाविकता भी है। इतने पर भी इनके लाक्षणिक प्रयोगों से काव्य की वह श्रीवृद्धि नही हो पाई जो होनी चाहिए थी। इसका कारण शब्दो की व्यर्थ की तोड़ मरोड़, व्याकरण का उल्लंघन और वाक्य रचना की अव्यवस्था है।

'नीति व्यवहार सम्बन्धी सूक्ति तथा अन्योक्ति काव्य'

रीतिकालीन काव्य में कवियो का एक ऐसा भी वर्ग है जो ब्रह्मज्ञान और वैराग्य की बातो को पद्यों में अभिव्यक्त करता है। इनका उद्देश्य अधिकतर जनसाधारण की बोधवृत्ति को जागृत करना था। इनमे से कुछ एक भावुक तथा प्रतिभा सम्पन्न कवि है, जिन्होने अन्योक्तियो सूक्तियों आदि के द्वारा भगवतप्रेम, संसार के विरक्ति करुणा आदि उत्पन्न करने मे समर्थ हुए है।

'वृन्द-सतसई' के सात सौ दोहो मे नीति व्यवहार सम्बन्वी सूक्तियाँ भरी पड़ी है। वृन्द की प्रसिद्धि इन्ही सूक्तियो के बल पर आधारित है। इन सूक्तियो में लोक-व्यवहार की शिक्षा एवं ज्ञानोपदेश है। दीनदयाल गिरि कृत 'अन्योक्ति-कल्पद्रुम' का वर्ण्य-विषय ब्रह्मज्ञान और वैराग्य है। इनकी अन्योक्तियो को उच्चकोटि का काव्य कहा जा सकता है। इसी वर्ग मे गिरधर कविराय भी आते है। इन्होंने घर-गृहस्थी तथा लोक व्यवहार सम्बन्धित बातों को काव्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इनकी कुण्डलियों में भी अन्योक्तियाँ पाई जाती है। इसी वर्ग के अन्दर बैताल की भी गणना की जाती है। बैताल ने भी कुण्डलियो की रचना की है। इनका वर्ण्य-विषय लौकिक-व्यवहार है। इन्होने अपनी सीधी-सादी बात ज्यो की त्यो छन्द बद्ध कर दी है। इनके कथन में अनूठापन भी है फिर भी इन्हें गद्यकार ही कहना अधिक श्रेयष्कर प्रतीत होता है। इसी प्रकार इस वर्ग के अन्य कवियो ने भी अपनी भावनाओं को पद्यबद्ध किया है।

यहाँ पर 'वृन्द-सतसई' 'अन्योक्ति-कल्पद्रुम' और गिरधर की कुण्डलियां में आए हुए लाक्षणिक प्रयोगो की विवेचना की जा रही है और यह दिखाने का प्रयास

---

१. शिवा-बावनी, सं० पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रथमावृति, पृ० १४ पद ४२

किया जा रहा है कि इन लाक्षणिक प्रयोगों से किस सीमा तक भाव मे तीव्रता, बिंब मे गोचरता और काव्य में चारुता आई है।

वृन्द (सं० १७००—सं० १७८०)

वृन्द जी दरबारी कवि थे। इन्हें औरंगजेब, जयसिंह तथा राजसिंह के दरबारो मे रहने का अवसर मिला था। वे बड़ी स्वतन्त्र प्रकृति के मनुष्य थे। बादशाह औरंगजेब ने इन्हे 'सच्ची कहने वाला कविराज' की उपाधि दी थी।[1] इनके सत्य-स्वरूप रूपक वचनिका, अलकार सतसई, शृङ्गार शिक्षा, हितोपदेशाष्टक, भाव पंचाशिका, वृन्द विनोद सतसई आदि कई ग्रन्थ मिलते है, किन्तु सबसे अधिक प्रसिद्धि इनकी 'सतसई' को ही प्राप्त है। समस्त हिन्दी साहित्य मे वृन्द की टक्कर का सूक्तिकार केवल रहीम को कहा जा सकता है। इनकी सूक्तियो मे सर्वत्र एकरस विदग्धता है। इनकी भाषा सरल है, मुहावरे और लोकोक्तियो की छटा पग-पग पर दिखाई पड़ती है। चमत्कारिक दृष्टान्तों को ढूँढने मे इन्होने अद्भुत कौशल दिखलाया है। इन्होने साधारण सी साधारण घटना में से ऐसे आश्चर्य-जनक एवं असाधारण दृष्टान्त ढूँढ़ निकाले हैं कि श्रोता सुनकर चकित रह जाता है। सभी मुहावरे और लोकोक्तियाँ लक्षणा का आधार लेकर ही चमत्कार की सामर्थ्य प्राप्त करती है। ऐसे ही कुछ लाक्षणिक प्रयोगो के उदाहरण उपर्युक्त कथन के साक्षीभूत, यहाँ दिए जा रहे है।

निरूढ़ा लक्षणा—

"रस अनरस समझै न कछु पढ़ै प्रेम की गाथ।
बीछू मन्त्र न जानई सांप-पिटारे हाथ॥"[2]

इसमे 'बीछू मंत्र न जानई साँप पिटारे हाथ' लोकोक्ति है। इसका लक्ष्यार्थ है 'अज्ञानता का प्रदर्शन'। यही लक्ष्यार्थ ही लोकोक्ति का मुख्यार्थ हो गया है।

"कैसे निबहैं निबल जन कर सबलन सों गैर।
जैसें बसि सागर बिषै करत मगर सो बैर॥"[3]

इसमें 'सागर मे रहकर मगर से बैर' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है शक्तिशाली व्यक्ति से शत्रुता करना मृत्यु को आमन्त्रण देना है। इसी लक्ष्यार्थ में ही मुहावरा रूढ़ हो गया है।

---

१. इनको (वृन्द को) बादशाह ने 'सच्ची कहने वाला कविराज' की उपाधि दी थी।
[सतसई-सप्तक सं० बाबू श्यामसुन्दरदास सं० १९३१, प्रस्तावना, पृ० १६]
२. सतसई सप्तक, 'वृन्द सतसई' सं० बाबू श्यामसुन्दर दास, सं० १९३१ ई० दोहा १५
३. वही दोहा १६

"दीबो अवसर को भलो जासों सुधरे काम ।
खेती सूखे बरसिबो घन को कौने काम ॥"[1]

इसमें 'खेती सूखे बरसिबो घन को कौने काम' मुहावरा है । इसका लक्ष्यार्थ है अवसर बीत जाने पर किसी वस्तु की प्राप्ति निरर्थक होती है । इसी लक्ष्यार्थ में ही मुहावरा रूढ हो गया है ।

"अपनी पहुँच विचारि कै करतव करियै दौर ।
तेते पाँव पसारियै जेती लांबी सौर ॥"[2]

इसमें 'तेते पाँव पसारियै जेती लाबी सौर' मुहावरा है । इसका लक्ष्यार्थ है अपनी सामर्थ्य भर ही कार्य करना चाहिए । इसी लक्ष्यार्थ को ही मुहावरा मुख्यार्थ बना लिया है ।

"पिसुन छल्यो नर सुजन सो करत विसास न चूकि ।
जैसे दाध्यो दूध को पीवत छाछहिं फूँकि ॥"[3]

इसमे 'दूध का जला मट्ठा फूँक कर पीता है' मुहावरा है । इसका लक्ष्यार्थ है 'व्यक्ति एक बार धोखा खा जाने के बाद बहुत सावधान हो जाता है' । यही लक्ष्यार्थ ही मुहावरे का मुख्यार्थ हो गया है ।

"बनती देख बनाइयै परन न दीजै खोट ।
जैसी चलै बयार तब तैसी दीजे ओट ॥"[4]

इसमे 'जैसी चलै बयार तब तैसी दीजे ओट' मुहावरा है । इसका लक्ष्यार्थ है अवसर के अनुसार अपने को ढाल लेना चाहिए । इसी लक्ष्यार्थ मे मुहावरा रूढ हो गया है ।

"फेर न ह्वै हैं कपट सों कीजै व्योपार ।
जैसे हाँड़ी काठ की चढ़ै न दूजी बार ॥"[5]

इसमे 'हांड़ी काठ की चढ़ै न दूजी बार' लोकोक्ति है । इसका लक्ष्यार्थ है किसी को एक ही बार धोखा दिया जा सकता है । यही लक्ष्यार्थ ही लोकोक्ति का मुख्यार्थ हो गया है ।

---

१. सतसई-सप्तक, वृंद-सतसई, सं० बाबू श्यामसुन्दर दास, सं० १९३१ ई दोहा १८

२. वही दोहा १९

३. वही दोहा २०

४. वही दोहा २३

५. वही दोहा ३५

"भाव भाव की सिद्धि है भाव भाव में भेव ।
जो मानौं तो देव है नहीं भीत कौ लेव ।।"[१]

इसमे जो मानो तो देव है नही भीत कौ लेव' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है विश्वास ही फलदायी होता है। इसी लक्ष्यार्थ को ही मुहावरा मुख्यार्थ बना लिया है।

"अति अनीति लहियै न धन जो प्यारौ मन होय ।
पाए सोने की छुरी पेट न मारै कोय ।।"[२]

इसमे 'पाए सोने की छुरी पेट न मारै कोय' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है शक्ति अथवा धन पाकर अन्याय नही करना चाहिए। इसी लक्ष्यार्थ में मुहावरा रूढ़ हो गया है।

"जासों रक्षा होत है ह्वै ताही सों घात ।
कहा करै कोऊ जबै वारि ककरिया खात ।।"[३]

इसमें 'वारि ककरिया खात' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है रक्षक ही भक्षक हो जाए। इसी लक्ष्यार्थ में मुहावरा रूढ़ हो गया है।

"लालच हू ऐसो भलो जासो पूरे आस ।
चाटेहु कहु ओस के मिटै काहु की प्यास ।"[४]
"बिन स्वारथ कैसे सहै कोऊ करुए बैन ।
लात खाय पुचकारियै होय दुधारू धैन ।।"[५]

इसमे 'लात खाय पुचकारियै होय दुधारू धैन' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है जिससे स्वार्थ की सिद्धि हो उसकी कष्टदायक बातें भी सह लेनी चाहिए। इसी लक्ष्यार्थ मे ही मुहावरा रूढ हो गया है।

"स्रम ही तें सब मिलत है बिन स्रम मिलै न काहि ।
सीधी अँगुरी घी जम्यो क्यों हू निकरै नाहि ।।"[६]

इसमे 'सीधी अँगुली से घी नही निकलता' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है प्रत्येक कार्य सज्जनता से ही नही बनते। इसी लक्ष्यार्थ को ही मुहावरे ने मुख्यार्थ बना लिया है।

---

१. सतसई-सप्तक वृंद-सतसई सं० बाबू श्याम सुन्दर दास सं०, १९३१ दोहा ४६
२. वही दोहा ५२
३. वही दोहा ५५
४. वही दोहा ६५
५. वही दोहा १४७
६. वही दोहा १८९

शुद्धा लक्षण-लक्षणा.—

"प्रेम पगत बरजोन पर्यो अब बरजत बेकाज ।
रोम रोम विष रमि रह्यो नाहिन बनत इलाज ।।"[1]

इसमे 'विष रमना' लाक्षणिक पद है। इसका लक्ष्यार्थ है प्रेम का प्रभाव तन मन पर छा गया। इस प्रकार कवि मे इस पद को अर्थ का नया आयाम प्रदान कर दिया है।

"करियै सुख को होत दुख यह कहु कौन सयान।
वा सोने कों जारियै जासों टूटै कान ।।"[2]

इसमे 'टूटना' पद लाक्षणिक है। कान का टूटना तो असभव है । अतः यहाँ इसका लक्ष्यार्थ है 'कष्ट होना'। इस प्रकार इस पद को कवि ने नए अर्थ से मडित कर दिया।

"विरह तपन पिय बात तै उठत चौगुनी जागि।
जल के सीचे बढ़त है ज्यों सनेह की आगि ।।"[3]

इसमे 'तपन' तथा 'आगि' दोनो पद लाक्षणिक है। इसमे विरह के पक्ष मे तपन और स्नेह के पक्ष मे अग्नि का प्रयोग किया गया है जो असभव है। अतः इसका लक्ष्यार्थ है 'वेदना' एव भावना की तीव्रता । इस प्रकार इन पदों को अर्थ का नया आयाम मिल गया है।

साध्यवसाना गौणी लक्षणा—

"अहै अवधि अविवेक की, देखि कौन अनखाय।
काग कनक पिंजर पड़े, हस अनादर माय ।।[4]"

इसमे 'काग' तथा हस लाक्षणिक पद है। ये दोनो पद प्रतीक हैं दुर्जन और सज्जन के। इनके एकात्म्य का आधार गुण साम्य है। इस प्रकार कवि ने प्रतीको के माध्यम से ही बिंब को सप्रेषित किया है।

'वृन्द-सतसई' की सूक्तियो मे पर्याप्त मात्रा मे दृष्टान्त के रूप मे लोकोक्तियो और मुहावरो का प्रयोग हुआ है। ये प्रयोग लक्षणा का आधार लेकर ही यशस्वी होते है। इनके अतिरिक्त अन्योक्तियो मे भी लक्षणा होती है । अन्योक्तियो मे जो प्रतीक ग्रहण किए जाते है उन्ही के माध्यम से काव्य वस्तु सप्रेषित की जाती है। इन

---

१. सतसई-सप्तक, वृन्द-सतसई, सं० बाबू श्याम सुन्दर दास सं० १९३१ दोहा ३४
२. वही दोहा ३६
३. वही दोहा ६२
४. वही दोहा ६९४

प्रतीकों का प्रयोग उपमान की तरह ही होता है । वृन्द के लाक्षणिक प्रयोग लोक जीवन की विविध झाँकियो को प्रस्तुत करते हैं । लोकोक्ति और मुहावरे वस्तुतः ढले हुए साचे है, जिनमें कवि अपने विचारो को ढालते हैं । इससे प्रायः काव्य सौन्दर्य की वृद्धि नही होती है, पर यदि इन्हे जीवन के सहसाथी के रूप में अथवा नए संदर्भ मे प्रस्तुत किया जाए तो निश्चित रूप से ये काव्य को रमणीय बनाने में समर्थ होते है और साथ ही चमत्कार भी उत्पन्न करते हैं । वृन्द की सूक्तियो मे लोकोक्तियो और मुहावरो का प्रयोग काव्य की रमणीयता तथा चमत्कार के विधायक है ।

'दीनदयाल गिरि'

बाबा दीनदयाल गिरि की अन्योक्तियाँ हिन्दी साहित्य की अमूल निधि हैं । संस्कृत साहित्य मे वेदों से लेकर सतसइयो तक इसकी परम्परा विस्तृत है । हिन्दी साहित्य मे भी सूफी, सन्तो तथा भक्तों की रचनाओ मे जहाँ-तहाँ अन्योक्तियाँ पाई जाती हैं । रीतिकाल मे बाबा दीनदयाल गिरि ने अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम पूर्ण रूप से अन्योक्तियों को बनाया । अन्योक्ति एक अलंकार भी है जिसके स्वरूप की चर्चा भरत के 'नाट्यशास्त्र' मे 'मनोरथ' काव्य लक्षण मे निहित है, क्योकि 'मनोरथ' से ही अन्यापदेश की उत्पत्ति मानी जाती है । यही अन्यापदेश ही आगे आकर अन्योक्ति के नाम से प्रसिद्ध हुए । हिन्दी साहित्य मे आचार्य केशव ने सर्वप्रथम अलंकार के रूप मे अन्योक्ति को मान्यता दी ।

अन्योक्ति में अप्रस्तुत अथवा प्रतीको द्वारा ही प्रस्तुत का प्रतिपादन होता है, और प्रस्तुत सदा व्यग्य रहता है । काव्य की उक्ति साधारण उक्ति की अपेक्षा अन्य ही हुआ करती है, चाहे वह शब्द की हो, अर्थ की हो अथवा भाव की हो । उक्ति का अर्थ भी यहाँ वाच्यार्थ अभिधान तक सीमित नही है, प्रत्युत इसमे लक्षणा और व्यंजना द्वारा अर्थ प्रतिपादन भी रहता है । वक्रोक्ति, समासोक्ति आदि में साहित्य के व्याख्याताओ ने उक्ति का अर्थ व्यग्यबोधन परक ही लिया है । अर्थ-क्षेत्र मे अन्य शब्द से यद्यपि सामान्यतः 'उपमान' लिया जाता है, तथापि इसके अधुनातन अर्थ में प्रतीक और संकेत को भी सन्निविष्ट किया जाने लगा है । उपमान को अप्रस्तुत, अप्रकृत या अवर्ण्य भी कहते हैं । इसलिये उपमेय प्रस्तुत, प्रकृत तथा वर्ण्य होता है । प्रस्तुत के रहस्य को समझने मे अप्रस्तुत बड़ा सहायक होता है । प्रस्तुत जीवन से सम्बन्ध रखने वाली कोई भी वस्तु या तथ्य होता है जो काव्य का आधार होता है । अप्रस्तुत काव्य का कल्पना-पक्ष होता है । ये मूर्त, अमूर्त, सूक्ष्म-स्थूल आदि सभी तरह के हो सकते है । यहां पर दीनदयाल गिरि की कुछ अन्योक्तियां उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत की जा रही हैं जिनमे अप्रस्तुत-विधान एव प्रतीको के माध्यम से लाक्षणिक प्रयोग हुए हैं ।

निरूढ़ा लक्षणा—

'पंहो कीरति जगत में पीछे धरो न पाँव।
छत्रीकुल के तिलक हे महासमर या ठाँव॥"[1]

इसमें 'पीछे धरो न पाँव' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है 'युद्धस्थल से पीछे न हटना अथवा न भागना। इस मुहावरे का यही लक्ष्यार्थ मुख्यार्थ हो गया है।

"जनमे हो वरकुल विषे जग गुन गने असंख।
बजे बिजै बहु वार पै रहे संख के संख॥"[2]

इसमे 'रहे सख के सख' पद लाक्षणिक है। यह एक मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है 'मूर्ख ही रह गए' यही लक्ष्यार्थ हो प्रचलन के कारण मुख्यार्थ हो गया है।

शुद्धा लक्षण-लक्षणा—

"वरनै दीन दयाल लोग सब अपने गरजी।
जमा जीरन भयो कहा अब सीवै दरजी॥"[3]

इसमे 'जामा जीरन' लाक्षणिक पद है। इसका लक्ष्यार्थ है शरीर वृद्ध हो गया है। इस प्रकार कवि ने पद को नए अर्थ से मण्डित कर दिया है।

"वरनै दीन दयाल सुनाट्य-कला सुर बाजा।
ह्वै है बन के फूल, मूल मति तू गुनि राजा॥"[4]

इसमे 'वन के फूल होना लाक्षणिक पद है। इसका लक्ष्यार्थ है तुम्हारे गुण का ग्राहक यहाँ कोई नही है। इस प्रकार कवि ने पद के अर्थ को नया आयाम दे दिया है।

"वरनै दीन दयाल परी यह तो सब कुंजन।:
कौड़ी याको मोल लाल नखि मूल न गुंजन॥"[5]

'इसमे 'कौड़ी मोल' लाक्षणिक पद है। इसका लक्ष्यार्थ है नगण्य मूल्य। इस तरह कवि ने इस पद को नए अर्थ से मण्डित कर दिया है।

साध्यवसाना गौणी लक्षणा:—

"देखो पथी उघारि कै नीके नैन विवेक।
अचरजमय यहि बाग में राजत है तरु एक॥

---

१. अन्योक्ति-कल्पद्रुम', दीनदयाल गिरि, तीसरी शाखा, पृ० ९० प० सं० १५३
२. वही पृ० १०२ प० सं० १८२
३. वही पृ० ९२ प० सं० १९०
४. वही पृ० ९३ प० सं० १९३
५. वही पृ० ९५ प० सं० १९७

राजत है तरु एक मूल ऊरध अध साखा ।
है खग तहां अचाह एक, इक वहु फल चाखा ॥
बरनै दीनदयाल खाय सो निबल विसेखो ।
जो न खाय सो पीन रहै अति अद्भुत देखो ॥" [1]

इसमे 'तरु' 'खग' तथा 'फल' पद लाक्षणिक है । ये क्रमश. सृष्टि, जीव तथा प्रत्यगात्मा' और 'वासना' के उपमान है । इनका आधार साधर्म्य है । कवि ने उपमानो के ही माध्यम से सृष्टि के स्वरूप को संवेदनशील बनाया है । [यह सृष्टि का रूपक है । मूल ऊपर सत्यलोक में, शाखा नीचे भूलोक में, फल चखने वाला पक्षी जीव है और निरीह साक्षी रूप पक्षी प्रत्यगात्मा है ।]

"फूली है सुखमामई नई लहलही जोति ।
छई ललित पल्लवनि तें लखि दुति दूनी होति ॥
लखि दूनी दुति होति चपल अलि या पै दो है ।
लगै गुच्छ द्वै बीच वहै जन को मन मोहैं ॥
बरनै दीन दयाल पथिक है कित मति भूली ।
ये तो मारक महा-छली विषबल्ली फूली ॥" [2]

इसमें 'पल्लवनि', 'अलि' गुच्छ' तथा 'विष वल्ली' लाक्षणिक पद है । ये क्रमशः हाथ-पैर, नेत्र, स्तन और नारी के उपमान है । इनका आधार सादृश्य एव साधर्म्य है । कवि ने उपमानो के ही माध्यम से वर्ण्य-विषय को सवेदनशील बनाया है ।

"चारों दिसि लहरी चलै बिलसै बनज विसाल ।
चपल मीन-गति लसति अति तापर सजे सिवाल ॥
तापर सजै सिवाल हंस–अवली सित सोहै ।
कोक जुगल रमनीय निरखि सरमै मति मोहै ॥
बरनै दीन दयाल मकरपति यामै भारो ।
मास मानि हे पथी ग्रास करिहै लखि चारो ॥" [3]

इसमे 'वनज', 'मीन', 'सिवाल', 'हंस अवली', 'कोक', 'सर', 'मकरपति' तथा 'चारो' लाक्षणिक पद है । ये क्रमशः मुख, नेत्र, केशपाश, मोतियो की माला, स्तन, नाभि, कामदेव तथा भोजन के उपमान है । इनका आधार सादृश्य है । कवि ने उपमानों द्वारा ही भाव बिंब को संप्रेषणीय बनाया है ।

---

१ अन्योक्ति कल्पद्रुम', दीनदयाल गिरि, तृ० शा०, पृ० ११४ प० सं० २०७
२. वही पृ० ११५ प० सं० २१०
३. वही पृ० ११६ प० सं० २१२

"तेरे ही अनुकूल पिय किन विनवै प्रिय बोलि।
घट में खटपट मति करै घूंघट को पट खोलि ॥
घूंघट को पट खोलि देख लालन की सोभा।
परम रम्य बुधगस्य जासु छबि जग लोभा ॥
बरनै दीनदयाल कपट तजि रहु प्रिय नेरे।
विमुख करावनि हार तोहि सनमुख बहुतेरे ॥"[1]

इसमे 'पिय' तथा 'घूंघट पट' लाक्षणिक पद हैं। ये क्रमशः अन्तरात्मा और माया के आवरण के प्रतीक है। इनका आधार सादृश्य है। कवि ने इन भाव बिंबो को प्रतीको के माध्यम से ही सवेदनीय बनाया है।

[यहाँ मति को स्त्री और अन्तरात्मा को पति मानकर यह अन्योक्ति कही गई है। माया का आवरण घूंघट पट है। काम क्रोधादि विकार और इन्द्रियों के विषय मति को अन्तरात्मा से हटाकर ससार मे लिप्त कर देते है।]

इनके लाक्षणिक प्रयोगो मे मुहावरो का बहुत कम प्रयोग हुआ है। भाषा के प्रवाह मे स्वाभाविक रूप से जो आ गए है, वही काव्य मे लाक्षणिक चमत्कार के हेतु हैं। कवि ने जहाँ-तहाँ शब्दो को नए अर्थों से भी मण्डित किया है। इन्होने अधिकतर अपने भावो की अभिव्यक्ति अप्रस्तुत-विधान और प्रतीको के द्वारा ही की है। ऐसी सभी अन्योक्तियाँ लक्षणा के चमत्कार से मण्डित है। इन अन्योक्तियो मे अन्योक्ति रूपकातिशयोक्ति, अप्रस्तुत प्रशसा, समासोक्ति, प्रस्तुताकुर आदि अलकारो का प्रयोग हुआ है। इन अलंकारों के मूल मे साध्यावसाना लक्षणा होती है। इनके अप्रस्तुत-विधान और प्रतीक केवल भाव-बिंब ही नही प्रस्तुत करते है, वल्कि उनसे भाव-चित्रों की श्री वृद्धि भी होती है।

'गिरधर कविराय'

गिरधर कविराय की कुण्डलियाँ हिन्दी भाषी समाज मे सामान्य रूप से प्रचलित हैं। इस लोकप्रियता का कारण यह है कि बोल-चाल की भाषा मे तथ्य का कथन किया गया है। इन्होने अपने कथन की पुष्टि के लिए इन कुण्डलियो मे दृष्टान्त का प्रयोग किया है और कही-कही अन्योक्तियो का सहारा लिया है। इनकी कुण्डलियों मे लोकोक्तियो और मुहावरो का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है। काव्य की विदग्धता तथा काव्य-कौशल की दृष्टि से इनकी कुण्डलियो का विशेष महत्व नही है, फिर भी लोक-व्यवहार आदि की दृष्टि से ये महत्वपूर्ण है। इसी कारण तो जन-मानस इन्हे अपनी सम्पत्ति समझकर सचित किए हुए है।

---

१. 'अन्योक्ति-कल्पद्रुम', दीनदयाल गिरि, चौथी शाखा, पृ० १२०, पद सं० २२२

कुण्डलियों में आए हुए लाक्षणिक प्रयोग भावो की स्पष्टता में सहायक है। मुहावरे, लोकोक्तियो तथा अन्योक्तियों मे लाक्षणिक मूर्तिमत्ता के दर्शन होते है । इन बिंबों की सहायता से कवि भावो का सम्प्रेषण करने मे समर्थ हुआ है । कुण्डलियो में आए हुए ऐसे ही कुछ लाक्षणिक प्रयोगों का यह दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

निरूढ़ा लक्षरणा: –

"साईं ऐसे पुत्र से बाँझ रहे वरु वारि।
बिगरी बेटा बाप से जाय रहे ससुरारि ॥
जाय रहे ससुरारि नारि के नाम बिकाने।
कुल के धर्म नशाय परिवार नशाने ॥
कह गिरधर कविराय मातु झंखे वहि ठाईं।
अस पुत्र नहिं होय बाँझ रहतिउं वरु साईं ॥"[1]

इसमें 'नारि के नाम बिकाने' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है पत्नी के नाम से प्रसिद्ध होना। यही लक्ष्यार्थी ही प्रचलन मे मुहावरे का मुख्यार्थ हो गया है।

"नदी छांड़िय तीर सों जो बरषा सरसाय।
बाढ़ बाढ़ बिन चारि को अपयश जन्म नशाय ॥
अपयश जन्म नशाय वही पाहन की रेखा।
बड़ी बड़ाई लहत सदा हम कबहु न देखा ॥"[2]

इसमे 'पाहन की रेखा' [पत्थर पर की लकीर] लोकोक्ति है । इसका लक्ष्यार्थ जो कभी न मिटे अर्थात् ध्रुव निश्चित। इसी अपने लक्ष्यार्थ को ही लोकोक्ति मुख्यार्थ बना लिया है।

"कह गिरधर कविराय अरे यह सब घट तौलत।
पाहुन निशिदिन चारि रहत सबही के दौलत ॥"[3]

इसमे 'पाहुन निशिदिन चारि रहत सब ही के दौलत' कहावत है । इसका लक्ष्यार्थ है सम्पत्ति अल्प-काल के लिए मिलती है। यही लक्ष्यार्थ ही इस कहावत का मुख्यार्थ हो गया है।

"साईं तहाँ न जाइए जहाँ न आप सोहाय।
घरन बिषे जाने नहीं गदहा दाखें खाय ॥

---

१. 'कुण्डलिया' गिरधरराय, बम्बई छापखाना कानपुर, पृ० २, पद सं० ५
२. वही पृ० ६ प० सं० २४
३. वही पृ० ६ प० सं० २५

गदहा दाखें खाय गऊ पर दृष्टि लगावै।
सभा बैठे मुस्क्याय यही सब नृप को भावै॥"[1]

इसमे 'गदहा दाखे खाय' तथा 'गऊ पर दृष्टि लगावै' कहावतें हैं। इनका लक्ष्यार्थ है अयोग्य को श्रेष्ठतम भोग प्राप्त हो और सीधे, सज्जन व्यक्ति को सताया जाए। इन कहावतो के लक्ष्यार्थ ही मुख्यार्थ हो गए हे।

शुद्धा लक्षण-लक्षणाः—

"चिन्ता ज्वाल शरीर की दाह लगै न बुजाय।
प्रगट धुआँ नहि देखिये उर अन्तर धुधुवाय॥
उर अन्तर धुधुवाय जरे जस काँच की भट्टी।
रक्त मास जरि जाय रहे पंजरि की टट्टी॥
कह गिरधर कविराय सुनो हो मेरे मिन्ता।
वे नर कैसे जियें जाहि व्यापी है चिन्ता॥"[2]

इसमे 'ज्वाल', 'दाह लगै न बुझाय', 'धुधुवाय', 'जरि जाय' तथा 'पंजरि की टट्टी' लाक्षणिक पद हैं। ज्वाला, दाह, बुझाना, धुधुवाना ये सभी आग के धर्म हैं पर यहाँ इनका प्रयोग चिन्ता के लिए किया गया है। इसी तरह रक्त-मांस का जलना भी जीवित रहते हुए सम्भव नही है। अतः इनका लक्ष्यार्थ है दुख, वेदना की वृद्धि, वेदना की समाप्ति भीतर ही भीतर घुटन और सूखना अथवा क्षीण होना। इसी प्रकार 'पजरि की टट्टी' का लक्ष्यार्थ है नर ककाल।

"सोना लादन पिय गये सूना करि गये देश।
सोना मिले न पिय मिले रूपा हो गए केश॥
रूपा होय गये केश रोय रंग रूप गंवाया।
सेजन को विश्राम पिया बिन कबहु न पावा॥
कह गिरधर कविराय नोन बिन सबै अलोना।
बहुरि पिया घर आव कहा करिहौं लै सोना॥"[3]

---

१. 'कुण्डलिया' गिरधरराय, बम्बई छापखाना, कानपुर, पृ० ७, पद सं० २८
२. वही पृ० ३ प० सं० १०
३. वही पृ० ५, पद २०

इसमें 'सूना करि गए देश' 'रूपा होय गये केश' तथा 'नोन विन सबै अलोना' पद लाक्षणिक है। इनका लक्ष्यार्थ है अकेली छोड़ना, वृद्धा होना तथा पति के विना कुछ भी अच्छा न लगना। इस प्रकार कवि ने इन पदो को नए अर्थो से मण्डित कर दिया है।

"मित्र बिछोहा अति कठिन मति दीजै करतार।
वाके गुण जब चढ़े चढ़ें वर्षत नयन अपार॥"[1]

इसमे 'गुण चढ़े' तथा 'बर्षत नयन' पद लाक्षणिक है। इनका क्रमश. लक्ष्यार्थ है गुणों की याद आना और लगातार आँसुओ की वर्षा। इस प्रकार कवि ने भावों को तीव्रता प्रदान की है।

साध्यवसाना गौणी लक्षणा :—

"सुवा एक दाड़िम के धोखे गयो नारियल खान।
कछु खोये कछु खान न पायो फिर लागो पछितान॥
फिर लागो पछितान बुद्धि अपनी को रोवा।
निर्गुणियन के साथ गुणन अपना गुण खोवा॥
कह गिरधर कविराय सुनो हे मेरे नोखे।
गयो फटकही टूटि चोच दाड़िम के धोखे॥"[2]

इसमे 'सुवा' पद लाक्षणिक है। यह लालची व्यक्ति का उपमान है। इसका आधार साधर्म्य है। कवि ने उपमान के माध्यम से ही उपमान का वोध कराया है।

"कोई भँवर गुलाब तजि गयो जो हुरहुर पास।
घरिक समान अवा रहै करकस आई बास॥
करकस आई बास आक पासहु से भागे।
अपने मन पछिताय फेर वाही संग लागे॥
कह गिरधर कविराय कुमति अस फजिहत होई।
जो बड़ेन को छोड़ि नीच घर आवै सोई॥"[3]

इसमें 'भँवर', 'गुलाव', तथा 'हुरहुर' लाक्षणिक पद है। ये क्रमशः व्यक्ति,

---

१. 'कुण्डलिया' गिरधरराय, बम्बई छापखाना, कानपुर, पृ० ७, पद सं० २७
२. वही पृ० ३४, पद १२
३. वही पृ० ९, पद ३८

श्रेष्ठ व्यक्ति और नीच व्यक्ति के प्रतीक हैं। इनका आधार साधर्म्य है। इस प्रकार कवि ने उपमानो के ही माध्यम से बिंब को सप्रेषणीय बनाया है।

"भँवर भटैया जाउ जनि कांट बहुत रस थोर।
आस न पूजे वासरा तासों प्रीति न जोर॥
तासों प्रीति न जोर तोर कुल कमल संघाती।
पपिहा रटे पियास बुन्द जल आवे स्वाती॥
कह गिरधर कविराय बैठु परमल की छैयां।
वरु मरु जिय तरसोइ जाहु जनि भँवर कटैया॥"[1]

इसमे 'भँवर' 'भटैया' तथा 'कमल' लाक्षणिक पद हैं। ये क्रमशः प्रतीक हैं नायक, पर नायिका तथा स्वनायिका। इनका आधार साधर्म्य है। कवि ने उपमान प्रतीको द्वारा वर्ण्य-विषय के भाव को सवेदनशील बना दिया है।

"कौवा कहै मराल से कहा जाति कहा गोत।
तुम ऐसे बहुरूपिया कहो न जग में होत॥
कहीं न जग में होत महा मैलो मलखाना।
बैठ कचहरी जाय वेद मरयाद न जाना॥
कह गिरधर कविराय सुनो हो पंछी हौवा।
धन्य मुल्क वह देश जहाँ के राजा कौवा॥"[2]

इसमे 'कौवा' तथा 'मराल' लाक्षणिक पद है। ये क्रमशः प्रतीक है अयोग्य और योग्य शासक अथवा व्यक्ति के। कवि ने इन्ही प्रतीको के माध्यम से ही भाव बिंब को सवेदनशील बनाया है।

"साईं घोड़े अछत ही गदहन आया राज।
कौवा लीजै हाथ में दूरि कीजिये बाज॥
दूर कीजिये बाज राज पुनि ऐसो आया।
सिंह कीजिये कैद स्यार गजराज चढ़ाया॥
कह गिरधर कविराय जहाँ यह बूझि बड़ाई।
तहाँ न कीजै भोर साँझ उठि चलिये साईं॥"[3]

---

१. 'कुण्डलिया' गिरधरराय, बम्बई छापखाना, कानपुर, पृ० १०, पद सं० ३९
२. वही पृ० १३, पद ५३
३. वही पृ० १४, पद ५८

इसमे 'घोड़ा', 'गदहा', 'कौवा', 'बाज', 'सिंह' तथा 'स्यार' सभी पद लाक्षणिक है। ये क्रमशः योग्य, अयोग्य, धूर्त, सच्चा, सबल और निर्बल के प्रतीक हैं। इनका आधार साधर्म्य है। इस प्रकार कवि ने प्रतीको के ही माध्यम से भाव को संप्रेषणीय बनाया है।

इनके लाक्षणिक प्रयोगो मे मुहावरे तथा कहावते सामान्यतः स्वाभाविक रूप मे ही प्रयुक्त है। इनके पदो मे इनका प्रयोग प्रायः दीनदयाल गिरि की अपेक्षा अधिक हुआ है। प्रतीक विधान द्वारा इन्होने अपने भावो को व्यक्त किया है। ये प्रतीक साधर्म्य के आधार पर ग्रहण किए गए है। इसलिए ऐसे सभी स्थलो पर साध्यवसाना गौणी लक्षणा का चमत्कार निहित है। इनके प्रतीकों द्वारा भाव बोध में स्पष्टता आई है, इनके लाक्षणिक प्रयोग सहृदयजनों के हृदयों को सवेदनशील बनाने में समर्थ है। इनकी चुभती हुई व्यंग्यात्मक, नीति परक शैली पाठक हृदय को चमत्कृत कर देती है।

पंचम अध्याय
प्रबन्ध काव्यों में लक्षणा

रीतिकालीन साहित्य मे मुक्तक-काव्य की परम्परा ही अधिकतर अपनाई गई। इसीलिए इस काल में प्रबन्ध काव्यों की विशेष उन्नति नही हो सकी। यद्यपि इस काल में अनेक कथा-प्रबन्ध भी लिखे गए, पर उनमे से दो-चार को ही काव्य की दृष्टि से उल्लेखनीय समझा जा सकता है। इन काव्यों का यदि वर्ण्य-विषय के आधार पर वर्गीकरण करें तो इन्हे चार भागो मे बाँट सकते है। प्रथम श्रेणी मे उन ग्रन्थो को रखा जा सकता है, जो पौराणिक प्रबन्ध काव्य हैं। ऐसे ग्रन्थो में ब्रजविलास, महाभारत, रामाश्वमेध जैमिनी पुराण आदि की गणना की जा सकती है। द्वितीय श्रेणी में वे ग्रन्थ आते है जो लौकिक ऐतिहासिक कल्पनात्मक कथा-काव्य है। ऐसे ग्रन्थो मे हम्मीर रासो, सुजान चरित्र आदि उल्लेखनीय हैं। तृतीय श्रेणी में उन ग्रन्थो की गणना होती है जो वर्णन प्रधान लघु प्रबन्ध है। इनमें दानलीला, मानलीला, वनविहार, जलविहार आदि ग्रन्थ आते हैं। चतुर्थ वर्ग है अनूदित प्रबन्ध काव्यों का। इस वर्ग मे नैषध आदि ग्रन्थो की गणना की जाती है।

पिछले अध्यायो मे रीतिकालीन मुक्तक काव्यो मे लक्षणा-शक्ति का प्रयोग दिखाया जा चुका है। इस अध्याय में इन प्रबन्ध काव्यो में आए हुए लाक्षणिक प्रयोगों का दिग्दर्शन कराया जाएगा। इसके साथ ही साथ इन लाक्षणिक प्रयोगो की चित्रात्मकता की सामर्थ्य का भी विवेचन किया जाएगा।

इस अध्याय में पौराणिक प्रबन्धो में महाभारत, ब्रजविलास और रामश्वमेध लौकिक ऐतिहासिक कल्पनात्मक कथा काव्यो में हमीररासो तथा सुजान चरित्र वर्णन प्रधान लघु प्रबन्धो मे दानलीला और अनूदित प्रबन्ध काव्यों मे नैषध के लाक्षणिक प्रयोगों का दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

'पौराणिक प्रबन्ध काव्य'

रीतिकालीन प्रबन्ध काव्यो मे कई पौराणिक प्रबन्ध काव्य भी है। इन पौराणिक प्रबन्ध काव्यो के रचयिताओ ने भी प्रबन्ध काव्य की प्राचीन प्रचलित दोहे-चौपाई वाली काव्य शैली को ही अपनाया। इन प्रबन्ध काव्यो मे सबल सिह चौहान का 'महाभारत', ब्रजवासीदास का 'ब्रजविलास' और मधुसूदन का रामाश्वमेध विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन कवियो ने जन-साधारण तक इन धार्मिक आख्यानो को पहुँचा देने के उद्देश्य से ही इन ग्रन्थो की रचना की। इसीलिए इन ग्रन्थो की भाषा बड़ी

सीधी-सादी और बोल-चाल की है। इसके अतिरिक्त इनका उद्देश्य विशेष रूप से कथा कहना था जिससे इनका ध्यान काव्य सौष्ठव की ओर न जा सका।

महाभारत में महाभारत की कथा, व्रजविलास मे कृष्ण जन्म से मथुरा गमन तक की कथा और रामाश्वमेघ मे अश्वमेघ यज्ञ से लेकर लव-कुश युद्ध के पश्चात् सीता एव लव-कुश के अयोध्या आने तक की कथा का वर्णन है। यहाँ पर क्रमशः 'महाभारत', 'व्रजविलास' एव 'रामाश्वमेध' मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोगों को दिखाया जा रहा है।

'महाभारत'

'महाभारत' पौराणिक प्रवन्ध काव्य है। इसके रचयिता सवल सिंह चौहान है। इस ग्रन्थ को सम्वत् १७१८ से १७८१ के मध्य इन्होने पूरा किया। यह ग्रन्थ दोहे-चौपाइयों मे लिखा गया है। यह ग्रन्थ भाषा के लालित्य अथवा काव्य के सौष्ठव की दृष्टि से उल्लेखनीय नही है। इसमे तो सीधी-सादी भाषा में महाभारत की कथा कही गई है। इसे पढ़ने से प्रतीत होता है कि कवि को कथा कहने से अवकाश नही था। इसी कारण से काव्य के कला पक्ष पर आवश्यक ध्यान नही दिया जा सका। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध मे आचार्य शुक्ल का मत द्रष्टव्य है:—

"उसमे (भारत मे) यद्यपि भाषा का लालित्य या काव्य की छटा नही है, पर सीधी-सादी भाषा मे कथा अच्छी तरह कही गई है।"[1]

इस कथन से यह तो स्पष्ट ही हो जाता है कि इस ग्रन्थ मे वचन भंगिमा की वक्रता, उक्ति-वैचित्र्य और लाक्षणिक मूर्तिमत्ता के लिये अधिक अवकाश नहीं था, फिर भी इस विशाल ग्रन्थ में यत्र-तत्र लक्षणा की चित्रात्मकता दिखाई पड़ती है। यहाँ ऐसे ही कुछ लाक्षणिक प्रयोगों का दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

निरूढ़ा लक्षणा :—

"अस कहि भीम क्रोध भरि आयो।
मानहु सोवत सिंह जगायो॥"[2]

इसमें 'सोवत सिंह जगायो' लाक्षणिक पद है। यह एक मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है सकट मे जान-बूझकर पड़ना। इसी लक्ष्यार्थ मे ही मुहावरा रूढ़ हो गया है।

"सवै वधू तहँ रोवती, घरे हाथ पर हाथ।"[3]

इसमें 'घरे हाथ पर हाथ' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है—विवश होकर अथवा निराश होकर। यही लक्ष्यार्थ ही मुहावरे का मुख्यार्थ हो गया है।

---

१. हि० सा० इति०, आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० परि० सं० २००२ पृ० २८४
२. महाभारत, सबल सिंह चौहान, नवल किशोर छा०, लखनऊ, पृ० १३
३. वही पृ० ७ स्त्री पर्व

"शिव सनकादि अन्त न जान्यो।
तुम पाण्डव के हाथ विकान्यो॥"[१]

इसमे 'पाण्डव के हाथ विकान्यो' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है पाण्डवो के वश मे हो गए हो। यही लक्ष्यार्थ ही मुहावरे का मुख्यार्थ हो गया है।

शुद्धा उपादान लक्षणा—

"आरतनाद नगर महँ, सबै वधू आनाथ।
सबै वधू तहँ रोवती, धरे हाथ पर हाथ॥"[२]

इसमे 'नगर' पद लाक्षणिक है। नगर आर्तनाद कर नही सकता। इसलिए मुख्यार्थ द्वारा अर्थ की सिद्धि नही हो पाती है। अतः इसका लक्ष्यार्थ 'नगर-निवासियो'।

"भीम सेन परतिज्ञा भाखत,
रे कलिङ्ग अब को तोहि राखत।"[३]

इसमे 'कलिङ्ग' पद लाक्षणिक है। इसका मुख्यार्थ देश विशेष है, किन्तु इससे अर्थ की सिद्धि नही होती है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है कलिंग-राज।

शुद्धा लक्षण-लक्षणाः—

"सुनि दमयन्ती हृदय जुड़ाना,
हंस वचन गुनि हर्षित प्राना।"[४]

इसमे 'हृदय जुडाना' पद लाक्षणिक है। इसका लक्ष्यार्थ है हृदय हर्षित हुआ। इस प्रकार कवि ने अर्थ को नया आयाम प्रदान कर दिया है।

"गये सकल प्रमुदित अधिक,
हिये राखि गोपाल॥"[५]

इसमे 'हिये राखि' पद लाक्षणिक है। गोपाल को हृदय मे रखना तो असम्भव है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है भगवान श्रीकृष्ण को स्मरण करके। इस प्रकार 'रखना' पद को अर्थ का नया आयाम प्राप्त हो गया है।

सारोपा गौणी लक्षणाः—

"हरि पद पंकज नाइ शिर, निज निज शिविर भुवाल।
गए सकल प्रमुदित अधिक, हिये राखि गोपाल।"[६]

---

१. महाभारत, सबल सिंह चौहान, न० कि० प्रा०, लखनऊ, ४६ भीष्म पर्व
२. वही पृ० ७ स्त्री पर्व
३. वही पृ० ४४ भीष्म पर्व
४. वही पृ० १४, वन पर्व
५. वही पृ० ५२, उद्योग पर्व
६. वही पृ० ५२, उद्योग पर्व

इसमें 'पद पंकज' लाक्षणिक पद है। इस पद मे, पद उपमेय और पंकज उपमान है। इसका आधार साहश्य है। कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके विंब को सवेदनीय वनाया है।

साध्यवसाना गौणी लक्षणाः—

"राजा कह रानी सुनहु, क्षुधावन्त मे प्रान।
परमहंस यह देह ते, चाहत कियो पयान॥"[1]

इसमे 'परमहंस' पद लाक्षणिक है। यह उपमान है प्राण का। इसका आधार साहश्य है। कवि ने उपमान द्वारा ही उपमेय को सवेदनीय बनाकर भाव मे तीव्रता ला दिया है।

"द्वारपाल भीतर भवन, देखि सरोरुह नैन।
कनक पलंग अर्जुन सहित, करत कृपानिधि शैन॥"[2]

इसमे 'सरोरुह नैन' लाक्षणिक पद है। यह पद भगवान् श्रीकृष्ण का विशेपण है, पर यहाँ उपमान की तरह प्रयुक्त हुआ है। कवि ने इसी उपमान के द्वारा ही उपमेय श्री कृष्ण का वोध कराया है।

"गात कम्प गहवर भये, कहि न सकत कछु वैन।
जो कछु कह्यो संदेश नृप, पीतम पंकज नैन॥"[3]

इसमे 'पकज नैन' लाक्षणिक पद है। यह पद भगवान् श्रीकृष्ण का विशेपण है, पर यहाँ उपमान की तरह प्रयुक्त हुआ है। कवि ने इसी उपमान के द्वारा ही उपमेय का विंव सवेदनीय बनाया है।

इन उदाहरणो से यह तो स्पष्ट ही हो जाता है कि—इनके लाक्षणिक प्रयोग वड़े स्वाभाविक हैं। इन प्रयोगों के द्वारा विंव तो गोचर हो जाते है, पर काव्य के सौष्ठव की अभिवृद्धि नही होती है। इनकी लाक्षणिक चित्रात्मकता द्वारा इनके भावों में सप्रेपणीयता और सवेदनीयता भी नही आ पाई है। वस्तुतः इन्होने अभिधा द्वारा ही चित्रों तथा भावो को संप्रेपणीय वनाया है।

'व्रज विलास'

व्रजवासी दास कृत 'व्रजविलास' दोहे-चौपाइयो मे लिखा हुआ एक प्रवन्ध-काव्य है। इसका रचना-काल संवत् १८२७ वि० है। 'इस ग्रन्थ की रचना विशुद्ध व्रज भापा में हुई है।'[4] इसमें श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का, जन्म से लेकर मथुरा

---

१. महाभारत, सवल सिंह चौहान, न० कि० छा०, लखनऊ, पृ० १८, वन पर्व
२. वही पृ० ५३, उद्योग पर्व
३. वही पृ० ५७, उद्योग पर्व
४. भाषा शुद्ध व्रज भाषा ही है। हि० सा० इति०, आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल सं० २००२ पृ० ३१९

गमन तक का वर्णन है। इसका कथा-क्रम इन्होने 'सूरसागर' से लिया है। अपने ग्रन्थ में स्वत· कवि ने इस वात को स्वीकार भी किया है। भापा सीधी-सादी चलती हुई और सुव्यवस्थित है। प्रवन्ध काव्यो के लिए दोहे चौपाई की जो काव्य-शैली प्रचलित थी, उसी का प्रयोग इन्होने भी अपने इस ग्रन्थ मे किया है। जीवन के विविध पक्षों के वर्णन मे ये तुलसी की सी गभीरता और मर्मस्पर्शिता नही ला सके है। इनका वर्ण्य-विपय श्रीकृष्ण की लीलाओ का चित्रण है।

व्रजविलास का अनुशीलन करने के पश्चात् ऐसा प्रतीत होता है कि कवि का उद्देश्य कथा कहना है। इसी कारण सपूर्ण ग्रन्थ मे काव्य-कौशल की ओर विशेष ध्यान नही दिया गया है। कवि ने अभिधा के द्वारा ही अपने भावो को सवेदनीय वनाया है। इसका अभिप्राय यह नही है कि लक्षणा का इस ग्रन्थ मे प्रयोग ही नही है। लक्षणा के प्रयोग भी यत्र-तत्र पाए जाते हैं, पर इनकी प्रचुरता नही है। उन लाक्षणिक प्रयोगो मे से कुछ यहाँ उदाहरण रूप मे दिए जा रहे है।

निरूढ़ा लक्षणा—

'सौत सहत कत नवल किसोरी।
लाज देहु जल ही में वोरी।।"[1]

इसमे 'लाज देहु जल ही मे वोरी' लाक्षणिक पद है। इसका लक्ष्यार्थ है लाज का परित्याग करो। इस प्रकार के कथन द्वारा कवि ने पद को संवेदनीय वना दिया है।

"विपकीरा विष खात, छाँड़ि छुहारा वाख फल।
मन मन कीजै वात, उद्धव कहिये काहि सों।।"[2]

इसमे 'विप कीरा विप खात' कहावत है। इसका लक्ष्यार्थ वुरा व्यक्ति सदैव वुराई ही करता है। इसी लक्ष्यार्थ मे ही यह कहावत रूढ हो गई है।

शुद्धा लक्षण-लक्षणा.—

"करहु सो मम उर ऐन, पीताम्बर वर वेणुधर।।"[3]

इसमे 'करहु उर ऐन' लाक्षणिक पद है। उर को घर तो वनाया नही जा सकता। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है मुझे सदैव आपका स्मरण वना रहे।

"कहत विकल सब कोय, हरि तुम व्रज सूनो कियो।।"[4]

इसमे 'व्रज सूनो कियो' पद लाक्षणिक है। इसका लक्ष्यार्थ है कृष्ण के विरह मे सभी व्रज के लोग व्यथित हो गए और उनके हृदय से अन्य विचार चले गए। इस प्रकार की उक्ति से भावो मे तीव्रता आ गई है।

---

१. व्रज-विलास, व्रजवासी वास, सं० १९५३ पृ० १९५
२. वही पृ० ६७ ५४४
३. वही पृ० ३ प० स० १.
४. वही पृ० १५७

"मुरझि परी तनु दशा भुलाई।
प्राण रह्यो हरि सुरति समाई ॥"[१]

इसमे 'मुरझि परी' तथा 'प्राण हरि सुरति समाई' लाक्षणिक पद है। यहाँ गोपी के लिए मुरझाना शब्द प्रयुक्त है जो असभव है क्योकि मुरझाना वृक्षादि का धर्म है। इसका लक्ष्यार्थ है वेसुध हो जाना। इसी प्रकार प्राण का सुरति मे समाना भी संभव नही है। अत. इसका लक्ष्यार्थ है प्राण भगवान कृष्ण की स्मृति में तल्लीन हो गए। इस प्रकार कवि ने भाव को तीव्र और विव को सवेदनशील वना दिया है।

"मनही मन सोचत हरि के गुन।
रह्यो काठ ज्यों भीतर ही घुन ॥"[२]

इसमे 'काठ भीतर घुन का होना' लाक्षणिक पद है। इसका लक्ष्यार्थ है भगवान कृष्ण के विरह की चिन्ता ने मन तथा तन को कुरेद कर क्षीण वना दिया है। 'घुन लगना' एक मुहावरा भी है। जिसका लक्ष्यार्थ है क्षीण होना। इस प्रकार कवि ने विव को संप्रेपणीय वनाया है।

"मृदु मुसकनि विष डारि कं, गये भुजंग लौ भाग ॥"[३]

इसमे 'विप डारि कै' लाक्षणिक पद है। इसका लक्ष्यार्थ है स्नेह से अभिभूत करके विरह जन्य वेदना दे गए। इस प्रकार की उक्ति से भावना मे तीव्रता आ गई है।

सारोपा गौणी लक्षणा:--

"श्रीगुरु कृपा निधान, बन्दौं पद महि माथ धरि।
जासु वचन जलयान, नर चढ़ि भव सागर तरहि ॥"[४]

इसमें 'वचन जलयान' लाक्षणिक पद है। इस पद मे वचन उपमेय और जलयान उपमान है। आधार गुण साम्य है। कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके भाव-विव को गोचर तथा सवेदनीय वना दिया है।

'प्रकटे गोकुलचंद, संत कुमुद वन मोदकर।
तम कुल असुर निकंद, व्रजजन चारु चकोर हित ॥"[५]

इसमें 'संत कुमुद' तथा 'व्रजजन चकोर' लाक्षणिक पद है। इनमें संत एव व्रज जन उपमेय और कुमुद तथा चकोर उपमान है। इसका आधार सादृश्य है। कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके विव को सवेदनीय बनाया है।

---

१. व्रज-विलास, व्रजवासी दास, सं० १९५३, पृ० १५८
२. वही पृ० १६९
३. वही पृ० ५४७
४. वही पृ० ५
५. वही पृ० २७

"बर्षत परमानंद जल नंद सदन जग माँहि ।
ध्यान भूमि दृग सरित मग, जन उर सिधु समाहि ।।"[1]

इसमे 'परमानद जल' 'ध्यान भूमि, 'दृग सरित' तथा जन उर सिधु लाक्षणिक पद हैं। इनका आधार साहश्य है। इन पदो मे परमानद, ध्यान, दृग एव जन उर उपमेय हैं और जल, भूमि, सरित तथा सिंधु उपमान हैं। इस प्रकार कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को सप्रेषणीय बनाया है।

'हरि हम सो ऐसी करी, कपट प्रीति विस्तार।
मई विरह विस बेल ब्रज, रस को ऊख उखार।।"[2]

इसमे 'विरह विष वेलि' पद लाक्षणिक है। इस पद मे विरह उपमेय और विष वेलि उपमान है। इसका आधार साहश्य है। इस प्रकार कवि ने बिंब को सवेदनशील बनाया है।

साध्यवसाना गौणी लक्षणा.—

"वन्दौं युगल किसोर, रूप राशि आनंदघन।
दोऊ चन्द चकोर प्रीति रीति रस वश सदा।।"[3]

इसमे 'चन्द' तथा 'चकोर' पद लाक्षणिक हैं। ये दोनो पद क्रमशः कृष्ण और राधा के उपमान हैं। इनका आधार गुण धर्म साम्य है। कवि ने इनमे उपमान के द्वारा ही उपमेय का बिंब सवेदनीय बनाया है।

"यह सुनि कह्यो और इक ग्वाली।
कहत कहा मधुकर सो आली।।"[4]

इसमे 'मधुकर' लाक्षणिक पद है। यह पद भगवान श्री कृष्ण का प्रतीक है। गुण साम्य के आधार पर यह प्रतीक ग्रहण किया गया है। यहाँ कवि ने मधुकर पद के द्वारा ही कृष्ण का भाव बोध कराया है।

इन उदाहरणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस ग्रन्थ मे लाक्षणिक प्रयोग हुए हैं। इन प्रयोगो द्वारा लाक्षणिक चमत्कार भी उत्पन्न हुआ है। इस चित्रात्मकता से कवि के भावो मे सप्रेषणीता भी आई है। इतने पर भी यह स्वीकार करना आवश्यक है कि इन प्रयोगो से काव्य की चारुता विशेष रूप से समृद्ध नही हो पाई है।

'रामाश्वमेध'

मधूसूदन दास ने गोविन्ददास के अनुरोध पर स० १८३९ वि० मे 'रामाश्व-

---

१. ब्रज-विलास, ब्रजवासी दास, सं० १९५३, पृ० २९
२. वही पृ० ५४६
३. वही पृ० २
४. वही पृ० ५४६

मेघ' प्रबन्ध-काव्य की रचना की। इस ग्रन्थ का कथा क्रम विस्तार के साथ पद्म-पुराण से लिया गया है। इस ग्रन्थ में प्रधानता दोहे-चौपाइयों की है, पर बीच-बीच मे गीतिका आदि छन्दो का प्रयोग भी हुआ है। इसकी भाषा मे शिष्टता और प्रबन्ध-कौशल को देखकर इनकी श्रेष्ठ कवित्व-शक्ति का परिचय मिलता है।

इन्होंने बोलचाल की भाषा को ही काव्य-भाषा स्वीकार किया। इसलिए इन्होने अभिधा द्वारा ही अधिकतर अपने भावों को संप्रेषणीय बनाया है। फिर भी इनके इस विशाल ग्रन्थ मे अनेक ऐसे स्थल आते है जहाँ लक्षणा शक्ति की इन्हें सहायता लेनी पड़ी है। यहाँ उनमे से कुछ लाक्षणिक प्रयोगों को उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है।

शुद्धा लक्षण-लक्षणा :—

"तिनहीं के पद पंकज माही।
मुनि मन बसहि भंग की नाही॥"[1]

इसमे 'बसहि' पद लाक्षणिक है। वास करना प्राणी मात्र का सम्भव है पर मन का नही। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है मन का स्थिर होना। इस प्रकार कवि ने बिंब को सप्रेषणीय बनाया है।

"रघुपति चरन तामरस फूला,
इमि मन चंचरीक तहँ झूला।"[2]

इसमे 'झूला' पद लाक्षणिक है। मन तथा चंचरीक दो में से किसी का भी झूलना सम्भव नही है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है आनन्दित होना। इस प्रकार यह वर्णनीय प्रसग ने गोचर रूप ले लिया है।

गौणी सारोपा लक्षणा—

"रावणारि जसु उदधि अपारा।
ब्रह्मादिक कहि सकै न पारा॥"[3]

इसमे 'जसु उदधि' लाक्षणिक पद है। इस पद मे यश उपमेय और उदधि उपमान है। इसका आधार सादृश्य है। कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके भाव को तीव्र एवं प्रेषणीय बनाया है।

"श्री रघुपति पद पद्म परागा।
निरभर प्रेम भरत मनु लागा॥"[4]

इसमे 'पद पद्म' लाक्षणिक पद है। इस पद मे पद उपमेय और पद्म उप-

---

१. रामाश्वमेध, मधुसूदनदास, हस्तलिखित प्रति, सभा-संग्रह ८८७, पन्ना ७१
२. वही प० १००
३. वही प० ३
४. वही प० ५

मान है। इसका आधार सादृश्य है। कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके भावोद्‌बोधकता एवं रमणीयता की श्रीवृद्धि कर दी है।

"उदर अनूप जघ मनुहारी,
पद पंकज निरषत सुषकारी।
रज पराग मह मुनि मन भंगा,
वसत रहे संतत रस रंगा॥"[१]

इसमें 'पद पंकज', 'रज पराग' तथा 'मन भ्रगा' लाक्षणिक पद है। इनमे पद, रज एव मन उपमेय और पकज, पराग तथा भ्रगा उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। इस प्रकार कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को सवेदनीय बनाया है।

"रघुपति चरन तामरस फूला,
इमि मन चंचरीक तहँ भूला।"[२]

इसमें 'चरन ताम रस' तथा 'मन चचरीक' लाक्षणिक पद है। इनमे चरन एवं मन उपमेय है और तामरस तथा चचरीक उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। इस प्रकार से कवि ने वर्णन को गोचर रूप प्रदान कर दिया है।

"सीता पति मुष पंकज देषी।
भए अचंचल पलक विशेषी॥"[3]

इसमे 'मुष पकज' लाक्षणिक पद है। इस पद मे मुख उपमेय और पकज उपमान है। इसका आधार सादृश्य है। कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके भाव-बिंब को सप्रेषणीय बनाया है।

गौणी साध्यवसाना लक्षणा—

"धर्म सिंधु दुष्टन कर काला।
ग्यारह सहस बरष श्रीरामा॥"[४]

इनमे 'धर्म सिंधु' और 'दुष्टन कर काला' लाक्षणिक पद हैं। ये दोनो पद श्रीराम के विशेषण है पर यहाँ इनका प्रयोग उपमान की तरह हुआ है।

इन उदाहरणो के आधार पर निश्चिन्त होकर कहा जा सकता है कि 'रामश्वमेध' के लाक्षणिक-प्रयोग पर्याप्त स्वच्छ और स्पष्ट है। इन प्रयोगो मे स्वाभाविकता के साथ ही साथ बिंब गोचरता की भी सामर्थ्य है। इनके द्वारा कवि के भावो मे तीव्रता तथा काव्य मे सवेदनशीलता का सन्निवेश हुआ है।

---

१. रामाश्वमेध. मधुसूदनदास, हस्तलिखित प्रति, सभा-संग्रह ८८७, पन्ना ७०
२. वही प० १००
३. वही प० १९६
४. वही प० १२

'लौकिक ऐतिहासिक कल्पनात्मक कथा-काव्य'

रीतिकालीन प्रबन्ध काव्यों के अन्तर्गत लौकिक ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य भी आते है। इन ग्रन्थों मे हम्मीर रासो और सुजान चरित्र उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं। हम्मीर रासो में हम्मीर देव का चरित्र वीर गाथा काल की छप्पय पद्धति मे लिखा गया है। सुजान चरित्र' मे सुजान सिंह के युद्धों का वर्णन है। दोनो ग्रन्थ ऐतिहासिक महापुरुषो की वीर गाथाएँ गाते हैं।

यहाँ पर क्रमशः हम्मीर रासो तथा सुजान चरित्र में आए हुए लाक्षणिक प्रयोगों को दिखाया जा रहा है।

'हम्मीर रासो'

'हम्मीर रासो' रीतिकालीन लौकिक ऐतिहासिक कल्पनात्मक कथा-काव्य है। इसके रचयिता जोधराज हैं। यह प्रबन्ध-काव्य संवत् १८७५ में लिखा गया। इस ग्रन्थ में रणथम्भौर के प्रसिद्ध वीर महाराज हम्मीर देव का चरित्र वीर गाथा-काल की छप्पय पद्धति मे लिखा गया है। यह एक वीर रसात्मक काव्य है। इन छन्दो में सर्वत्र ओजपूर्ण भावना दर्शनीय है। इस ग्रन्थ के अनुशीलन से पता चलता है कि जोधराज जी को ऐतिहासिक परम्परा की अच्छी जानकारी थी। इन्होने अपनी काव्य-प्रतिभा से वीर नायक हम्मीरदेव के चरित्र को प्रस्तुत करने मे उचित सफलता पाई है।

इस विशाल ग्रन्थ मे अनेक ऐसे स्थल आए हैं जहाँ कवि ने भाव बिंबो को गोचर कराने के लिए लक्षणा की सहायता ली है। इन प्रयोगों मे अवसरोचित भावों के संप्रेषण करने की पर्याप्त सामर्थ्य है। कही-कही पर मुहावरों तथा लोकोक्तियों द्वारा भी लाक्षणिक मूर्तिमत्ता स्थापित की गई है। यहाँ पर उनमें से कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं।

निरूढ़ा लक्षणा—

"अहि ज्यूँ गही छछूँदरी, यों हजरत की गथ्य।"[1]

इसमें 'अहि ज्यूँ गही छछूँदरी' लाक्षणिक पद है। यहाँ 'भइ गति साँप-छछूँदर केरी' लोकोक्ति को ही ग्रहण किया गया है। इसका लक्ष्यार्थ है किंकर्तव्य विमूढ़ होना। इसी लक्ष्यार्थ में ही लोकोक्ति रूढ़ हो गई है।

"जो दूजो सर छंडिहै, हनिहै बिस्वा बीस।"[2]

इसमे 'हनिहै बिस्वा बीस' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है–निश्चित रूप से मार डालेगे। यही लक्ष्यार्थ मुहावरे का मुख्यार्थ हो गया है।

---

१. हम्मीर रासो, कवि जोधराज कृत, सं० बाबू श्यामसुन्दरदास, तृ० सं०, पृ० ११३ पद सं० ६४५

२. वही पृ० ११३, पद सं० ६४४

शुद्धा लक्षण-लक्षणा—

"वर्षत रंग अनंग सुवाला । मनहुँ अनेक कमल की माला ।"[१]

इसमे 'वर्षत रग अनग' लाक्षणिक पद है । वर्षा करना बादल का धर्म है, यहाँ बाला के पक्ष मे प्रयुक्त है और साथ ही अनग रग की वर्षा कहकर मुख्यार्थ द्वारा अर्थ की प्रतीति को असम्भव बना दिया गया है । इसका लक्ष्यार्थ है सुन्दर युवती काम भावना को तीव्र कर रही है । इस प्रकार पद को अर्थ का नया आयाम मिल गया है ।

"महा मोद मन बढ्यौ परस्पर तन मन फुल्लिव ।"[२]

इसमें 'फुल्लिव' पद लाक्षणिक है । फूलना पुष्प धर्म है, यहाँ तन-मन के पक्ष में प्रयोग किया गया है । इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है प्रसन्न होना । इस प्रकार पद को नए अर्थ से मण्डित कर दिया गया है ।

"महिमा साह जु तुरत ही गए हवेली आप ।
देखत ही सब भाँति सुख मिटी सकल तन ताप ।।"[३]

इसमे 'ताप' पद लाक्षणिक है । ताप अग्नि अथवा सूर्य मे होता है । इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है दुख और 'मिटी' का इसी प्रकार लक्ष्यार्थ है समाप्त होना ।

सारोपा गौणी लक्षणा—

"अनार दंत कुंदयं, लसंत वज्र दंतयं ।
बुलंत बाणि कोकिला, विपंच की सुरं मिला ।।"[४]

इसमें 'बाणि कोकिला' लाक्षणिक पद है । इस पद मे वाणी उपमेय और कोकिला उपमान है । इसका आधार सादृश्य है । कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके भाव को तीव्रता प्रदान किया है ।

"दोऊ जंघ रंभ कंचन दिपत, धरी कमल हाटक तनें ।
गति हंस लखत मोहत जगत, सुर नर मुनि धीरज हनें ।।"[५]

इसमे 'जघ रभ कचन' तथा 'गति हस' लाक्षणिक पद हैं । इनमे जघ एवं गति उपमेय है और रंभ कचन तथा हस उपमान है । इनका आधार सादृश्य है । कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके भाव को सप्रेषणीय बना दिया है ।

---

१. हम्मीर रासो, कवि जोधराज कृत, स० बाबू श्यामसुन्दर दास, तृ० स० पृ० २६, प० सं० ४६
२. वही पृ० ४१ पद सं० २३०
३. वही पृ० ५३ पद सं० ३०५
४. वही पृ० २५, पद सं० १४१
५. वही पृ० २५, प० सं० १४२

"चंचल नैन चलै चहुँ आसा। रूप-सिंधु मनु मीन सुपासा।।"[१]

इसमे 'रूप-सिंधु' लाक्षणिक पद है। इस पद में रूप उपमेय और सिंधु उपमान है। इसका आधार सादृश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को सप्रेषणीय बनाया गया है।

साध्यवसाना गौणी लक्षणा—

"पंचानन मधि देस रहत सोभा हिय हारी।
मनहु कांम के चक्र उलटि दुंदुभि वोउ डारी।।"[२]

इसमे 'पंचानन' (शिव) पद लाक्षणिक है। यह पद उरोजों का उपमान है। इसके एकात्म्य का आधार सादृश्य है। यहाँ कवि ने उपमान के माध्यम से ही भाव को सवेदनशील बनाया है।

"अलक सलक अतिसै चटकारी। अमी पियत ससि नागिन कारी।।"[3]

इसमें 'ससि' तथा 'नागिन कारी' लाक्षणिक पद है। ये पद मुख और चोटियों के उपमान हैं। इनके एकात्म्य का आधार सादृश्य है। इस प्रकार कवि ने उपमान के ही माध्यम से बिंब को संवेदनीय बना दिया है।

इन प्रयोगों से यह भली भाँति स्पष्ट हो जाता है कि हम्मीररासो में आए हुए लाक्षणिक प्रयोग प्रसगानुकूल काव्य के सौष्ठव को समृद्ध करने में बड़े सहायक है। इनके प्रयोगो मे स्वाभाविकता है। इससे समर्थ लाक्षणिक चित्रात्मकता का प्रणयन इनके द्वारा सम्भव हो सका। इन प्रयोगों से काव्य जनित भावों की संवेदनशीलता तथा तीव्रता मे अभिवृद्धि हुई है। कवि की वीर भावना को सहज, स्वाभाविक एवं स्वच्छ संप्रेषणीयता इन बिंबो द्वारा प्राप्त हुई है।

'सुजान चरित्र'

सूदन कृत 'सुजान चरित्र' लौकिक ऐतिहासिक कल्पनात्मक कथा-काव्य है। इसमें भरतपुर के महाराज बदनसिंह कें पुत्र सुजानसिंह के पराक्रमपूर्ण चरित्र का वर्णन किया गया है। यह वीररसात्मक ग्रन्थ है। इसमें भिन्न-भिन्न युद्धो का वर्णन है। ऐसे अनेक स्थल इस ग्रन्थ में वर्तमान है जहाँ कवि साहित्यिक मर्यादा का अतिक्रमण कर दिया है। इसी कारण ऐसे चरित्र नायक को लेकर कवि निभा नही पाया है। इस ग्रन्थ के अनुशीलन से पता चलता है कि कवि मे युद्ध एव चित्त की उमंग की अभिव्यक्ति करने की पर्याप्त सामर्थ्य थी। इस ग्रन्थ का कवि भाषा के साथ भी न्याय नही कर पाया है क्योकि शब्दो को मनमाने ढंग से तोड़ा-मरोड़ा

---

१. हम्मीर रासो, कवि जोधराज कृत, सं० बाबू श्यामसुन्दर दास, तृ० सं० पृ० २६, प० सं० १४६

२. वही पृ० २५ प० सं० १४२

३. वही पृ० २६ प० सं० १४८

गया है। इसी के साथ ही साथ इनकी भाषा में पंजाबी और खड़ी बोली का भी पुट है।

इस विस्तृत ग्रन्थ मे कई बडे मार्मिक स्थल है, जहाँ कवि की वाणी मे वक्रता उक्ति मे वैचित्र्य तथा लाक्षणिक मूर्तिमत्ता की झलक दिखाई पड़ती है। इन प्रसङ्गों पर भाव में तीव्रता और काव्य मे पर्याप्त सवेदनशीलता भी आई है। इन्ही प्रसङ्गो से कुछ लाक्षणिक प्रयोग यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

निरूढ़ा लक्षणा--

"सूरन के मुखनूर कायरनु सूखि गयो मुख......।"[1]

इसमे 'सूखि गयो मुख' मुहावरा है। वृक्षादि का सूखना तो सभव है पर मुख का सूखना सभव नही है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है भयभीत होना अथवा चिन्तित होना। इसी अपने लक्ष्यार्थ मे ही मुहावरा रूढ हो गया है।

"तब ही वकसी के कटक खल भल परी अपार।
आए आए गज कहैं सूरज सुभट उदार॥"[2]

इसमे 'खल भल परी' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है घबरा जाना। इसी लक्ष्यार्थ को ही मुहावरा मुख्यार्थ बना लिया है।

शुद्धा लक्षण-लक्षणा--

"वसै वाँह की छाँह में छत्रधारी।
हिये साहि के साहि के संगधारी॥"[3]

इसमें 'वसै वाँह की छाँह' लाक्षणिक पद है। वृक्षादि की छाँह मे वसना तो संभव है पर वाँह की छाँह मे वसना असभव है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है आधीनता स्वीकार करना अथवा शरण मे आना। इस प्रकार के कथन द्वारा कवि ने बिंब का विधान किया है।

"मौला जिसे देहिगा रहैगा खेत मजबूत।"[4]

इसमे 'खेत मजबूत रहैगा' लाक्षणिक पद है। इसका लक्ष्यार्थ है 'युद्ध मे उसी की विजय होगी।' इस प्रकार के कथन द्वारा भाव मे तीव्रता उत्पन्न की गई है।

"हाथी हटि जात साथी संग न थिरात श्रौन भारती मे न्हात गंग कीरति तरंग में।"[5]

इसमे 'न्हात' पद लाक्षणिक है। इस पद मे कानो का नहाना कहा गया है जो असभव है क्योकि कानो के द्वारा वाणी सुनी जाती है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है कर्ण कुहर चीख-पुकार से भर जाते है।

---

१. सूदन कवि कृत, 'सुजान-चरित्र' सं० श्रीराधाकृष्णदास, सं० १९०२ ई०, पृ० १३ पद ३०
२. वही पृ० ५ पद ४६
३. वही पृ० १२ पद १०
४. वही पृ० १४
५. वही पृ० ३ पद १६

"वीर रस रंग में यों आनन्द उमंग में सो पगु-पगु प्राग होत जोधन के जंग में।"[१]

इसमे "पगु-पगु प्राग होत" लाक्षणिक पद है। इसका लक्ष्यार्थ है पग-पग पर योद्धा वीर गति को प्राप्त हो रहे थे। इस प्रकार कवि ने 'प्रयाग होना' कहकर अद्भुत लाक्षणिक चमत्कार पाठक के समक्ष प्रस्तुत कर दिया है।

"सूरज प्रताप के ताप मुव छीन सरोवर सम करिय।"[२]

इसमे 'ताप' लाक्षणिक पद है। सूर्य अथवा अग्नि मे ताप होना संभव है पर किसी व्यक्ति मे नही। इसलिए यहाँ ताप का लक्ष्यार्थ है धाक अथवा प्रताप। इस प्रकार भाव मे संप्रेपणीयता आ गई है।

"जैत के निधान तेज भान के समान मान,
आजु तौ जिहान में सुजान मुख रंग है।"[३]

इसमे 'मुख रंग है' पद लाक्षणिक है। इसका लक्ष्यार्थ है यशस्वी होना अथवा शान बढाना। इस प्रकार के कथन द्वारा कवि ने भाव को गोचर कर दिया है।

"यों कहि सफदर जंग ने लीने पाव उठाइ
अपने डेरन कूँ चल्यौ सूरज सौं सुख पाइ।"[४]

इसमे 'पाव उठाइ' तथा 'सुख पाइ' लाक्षणिक पद हैं। इनका क्रमशः लक्ष्यार्थ है युद्ध भूमि से पीछे हटना और हार स्वीकार करना। इस प्रकार के कथन द्वारा भाव-बिंब संप्रेपणीय हो गया है।

सारोपा गौणी लक्षणा—

"सब आनि मानि बदनेस पूत, सजि सैन चली सरिता अभूत।"[५]

इसमे 'सैन सरिता' लाक्षणिक पद है। इस पद मे सैन उपमेय और सरिता उपमान है। इसका आधार साहृश्य है। कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को सवेदनीय बनाया है।

"भुजन उसारि लीनी उर सो लगाइ प्यारी अरस परस अधरामृत को लीनो है।"[६]

इसमे 'अधरामृत' पद लाक्षणिक है। इस पद मे अधर उपमेय और अमृत उपमान हैं। इसका आधार साहृश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके भाव को सप्रेपणीय बनाया गया है।

---

१. सूदन कवि कृत 'सुजान-चरित्र,' सं० श्री राधाकृष्णदास, सं० १९०२ ई० पृ० ३ पद १९
२. वही पृ० १ पद ३७
३. वही पृ० १८ पद ५०
४. वही पृ० ३६ पद ६२
५. वही पृ० ३२ पद २७
६. वही पृ० ४४ पद १२६

गौणी साध्यवसाना लक्षणा—

'दोऊ जलजात मुख मानो मनजात जान
इन्दु अरविन्दु को मिलाप कर दीनो है ।"[1]

इसमें 'जलजात' पद लाक्षणिक है । यह पद दोनो नेत्रो का उपमान है। इसका आधार सादृश्य है । कवि ने उपमान के माध्यम से ही बिंब को सवेदनीय बनाया है ।

इन उदाहरणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'सुजान चरित्र' मे लाक्षणिकता का अभाव नही है । इन लाक्षणिक प्रयोगो मे लाक्षणिक मूर्तिमत्ता द्वारा कवि ने भावो को सवेदनीय बनाया है । यद्यपि ऐसे प्रयोग विरल ही है जिनसे लाक्षणिक चरुता की अभिवृद्धि होती है ।

'वर्णन प्रधान लघु प्रबन्ध'

रीतिकाल मे कथात्मक प्रबन्धो से भिन्न वर्णन प्रधान लघु प्रबन्धो की भी रचना हुई । इन ग्रन्थो मे बडे विस्तार के साथ वस्तु वर्णन के प्रसग आते है ।[2] वस्तुतः शृङ्गारिक काव्य से जिस प्रकार नख शिख, षड्ऋतु आदि को लेकर इस काल मे स्वतन्त्र ग्रन्थो की उद्भावना हुई, उसी प्रकार प्रबन्ध काव्यो से लेकर दान लीला, मानलीला, जलविहार, वन विहार आदि का प्रणयन भी हुआ । साहित्यिक दृष्टि से ये ग्रन्थ बहुत उल्लेखनीय नही है, क्योकि अधिकाश रूप मे वस्तुओ का परिगणन ही किया गया है ।

इन ग्रन्थो मे से अधिकाश अप्राप्य है । [नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, हि० सा० सम्मेलन, प्रयाग, मारवाड़ी पुस्तकालय, कानपुर, भारतीय विद्या-भवन पुस्तकालय, बम्बई, बी० एस० एस० डी० कालिज, कानपुर आदि पुस्तकालयो मे ढूँढने के पश्चात् भी केवल कर्तराम कृत 'दान लीला' ग्रन्थ ही प्राप्त हो सका । ध्रुवदास ग्रन्थावली मे लगभग ४२ लीलाओ का संग्रह है जो नागरी प्रचारिणी सभा, काशी मे प्राप्त है । इसे [भारत जीवन प्रेस, काशी ने प्रकाशित किया है । आचार्य शुक्लजी ने ध्रुवदास की गणना भक्तिकाल मे की है और उनका समय १६४० से १७०० वि० तक ठहराया है । अतः इन लीलाओ को यहाँ उद्धृत करना सीमा के बाहर जाना प्रतीत होता है । यद्यपि ध्रुवदास ग्रन्थावली में रचनाकाल सं० १६४०–१७४० वि० माना गया है] यहाँ पर कर्त्ताराम की कृति 'दानलीला' मे आए हुए कुछ लाक्षणिक प्रयोगो को उद्धृत किया जा रहा है ।

---

१. सूदन कविकृत, 'सुजान-चरित्र, सं० श्रीराधाकृष्णदास, सं० १६०२ ई० पृ० ४४ पद १३६

२. हि० सा० इति० आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० परि० सं० २००२, पृ० २८१

'दानलीला'

दानलीला के रचयिता कवि कर्ताराम है। इस ग्रन्थ की पूर्ति वि० सं० १८८२ अश्विन शुक्ला द्वादशी, दिन सोमवार को हुई। इस ग्रन्थ के सम्पादक श्री सुधाकर द्विवेदी है और श्रीकृष्ण छापाखाना उदयपुर से मुद्रित हुआ है। इस ग्रन्थ का वर्ण्य-विषय दधि दानलीला है। इसमें गोपियो और कृष्ण के संवाद की मधुर झाँकी प्रस्तुत की गई है। यहाँ इस ग्रन्थ में आए हुए लाक्षणिक प्रयोगों को दिखाया जारहा है।

निरूढ़ा लक्षणा—

"ज्यों बड़े वंस तें आपु छुटि, बड़े वंस ते और न हू को छुटावति।[1]

इसमें 'वंस ते 'छुटावति' (वंश छुडाना) मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है पाणिग्रहण के पश्चात् लड़कियाँ दूसरे वंश मे चली जाती है और पितृवंश छूट जाता है। इस पद मे गोपियो के कथन में इसी ओर सकेत किया गया है। कवि प्रौढ़क्ति से इसका प्रयोग प्रचलित होकर मुहावरे का रूप ग्रहण कर लिया है। अपने इसी अर्थ मे यह पद रूढ हो गया है।

शुद्धा लक्षण लक्षणा—

"बन्शी तू याहि ते फूँकि गई तुहि, फूँकि कै मैन की आगि जगावति।
ठौर छ सात के छेदि गई उर, छेदति तोहि दयानहिं आवत॥"[2]

इसमे 'आगि जगावति' तथा 'छेदि गई उर' लाक्षणिक पद है। इन पदों में क्रमशः मैन की अग्नि जगाना और उर का छेदना कहा गया है। यह कथन बाँसुरी के पक्ष मे कहा गया है जो असंभव है। अत. प्रथम पद मे अग्नि का लक्ष्यार्थ भावना है और द्वितीय पद छेदना का लक्ष्यार्थ तीव्राकर्षण द्वारा व्यथित करना है।

"कुंज-कुंज ठौरि-ठौरि दौरि-दौरि हेरति है,
बावरी भई है सब साँवरे की बन्शी सुनि॥"[3]

इसमे 'बावरी भई है' पद लाक्षणिक है। इसका लक्ष्यार्थ है कृष्ण के स्नेह मे विमुग्ध हो जाना। इस प्रकार कवि ने शब्द को अर्थ का नया आयाम दे दिया है।

"प्रात क्रिया करि मंजन कै, दृग अंजन खंजन रूप बनै ये।
आज चलौ दधि बेचन री, सिगरे ब्रज-मंडल माहि जनैये।
मोद करैं सुनि गोप-वधू अजु, होत विनोद महा सुख पैये।
साजहु अंग सँवारहु भूषन, वेगि चलो मथुरा पुर जैये॥"[4]

---

१. 'दानलीला, कर्ताराम, सं० सुधाकर द्विवेदी, मु० सं० सं० १९९४ वि० पृ० २४ पद ५६
२. वही पृ० २४ पद ५६
३. वही पृ० २३ पद ५५
४. वही पृ० १ पद २

इसमें 'दृग अंजन खंजन' लाक्षणिक पद है। इसमें दृग अजन उपमेय और खंजन उपमान है। इनके एकात्म का आधार रूप साम्य है। कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को गोचर बनाया है।

उपर्युक्त उदाहरणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि कर्तराम की इस रचना मे लाक्षणिक मूर्तिमत्ता का अभाव तो नही है। फिर भी यह कहना पडेगा कि इन लाक्षणिक प्रयोगों से काव्य की चारुता समृद्ध नही हुई है। कवि ने अपने अधिकांश भाव चित्रो को अभिधा द्वारा ही सवेदनीय बनाया है।

'अनूदित प्रबन्ध काव्य'

अनूदित प्रवन्ध काव्य भी रीतिकालीन प्रवन्धो के ही अन्तर्गत आते है। इन ग्रन्थो में गुमान मिश्र का नैपध विशेप रूप से उल्लेखनीय है। यह ग्रन्थ श्रीहर्प के नैपध का अनुवाद है। मार्मिक और जटिल स्थलो का अनुवाद सफलता पूर्वक मिश्र जी नही कर पाए है, इससे अर्थ मे अस्पप्टता आ गई है। यह दोप इन्ही का नही है, बल्कि निश्चिन्तता के साथ यह कहा जा सकता है कि जिन रीतिकालीन कवियो ने संस्कृत ग्रन्थो का अनुवाद करने का प्रयत्न किया उन्हे पूर्ण रूप से सफलता नही मिली। सभी रीतिकालीन आचार्यो ने सस्कृत के साहित्य-शास्त्र के ग्रन्थो का अनुवाद करने का प्रयास किया, पर सभी असफल रहे।

इस स्थल पर नैपध मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोगो की चित्रात्मकता की सामर्थ्य का दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

'नैषध'

गुमान मिश्र कृत 'नैपध' श्रीहर्ष कृत नैपध काव्य का पद्यानुवाद है। इस ग्रन्थ का रचना काल संवत् १८०० वि० है। मिश्र जी की साहित्यिक प्रतिभा का परिचय इनकी साहित्यक मर्मज्ञता, कला कौशल और छन्दो की विविधता से प्रकट हो जाती है। इस ग्रन्थ का अनुशीलन करने से यह निश्चित हो जाता है कि भापा पर भी इनका अच्छा अधिकार था। यहग्रन्थ मिश्रजी की स्वतत्र रचना नही है, इसी कारण का संस्कृत के जटिल श्लोको पद्यानुवाद करने मे इनकी वाणी उलझ गई है। इससे अर्थ की स्पष्टता नही हो पाती है।

इस ग्रन्थ मे ऐसे अनेक स्थल है जहाँ कवि को अपने विचारों को सहृदय-पाठक तक पहुँचाने के लिए लाक्षणिक मूर्तिमत्ता की सहायता लेनी पड़ी है। भावो को तीव्रता प्रदान करने के लिए, उन्हे—सवेदनीय बनाने के लिए कवि को लाक्षणिक प्रयोग करने ही पडते है। लाक्षणिक चित्रात्मकता काव्य की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है, इसके विना काव्य मे चारुता का समावेश नही हो पाता है। यहाँ 'नैपध' में आए हुए कुछ लाक्षणिक चमत्कारो का दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

निरूढ़ा लक्षणा—

"जीति लिये जग शत्रु घनेरे ।। सातौ द्वीपन के नृप चेरे ।।
गाइन में मिलि बाक बसै जू ।। चोरन में मिलि साह हँसे जू ।।[1]

इसमे 'गायो मे मिलकर वाघ का बसना' तथा चोरो मे मिलकर साह का हँसना कहावते हैं। इनका लक्ष्यार्थ है सबल निर्बल को अन्यायी सज्जन को सताते नही। अर्थात् राज्य मे भय नही रह गया है। यही लक्ष्यार्थ ही कहावतो का मुख्यार्थ हो गया है।

"जहँ फूल की साँट नही है लगी चित कोमल राजकुमारि सभागी ।।"[2]

इसमे 'फूल की साँट न लगना' मुहावरा है। इसका लक्ष्यार्थ है रंचमात्र कष्ट नही सहा है। यही लक्ष्यार्थ हो मुहावरे का मुख्यार्थ हो गया है।

"कीजै दौरि गोहारि, समर करन आयो समर।
लीजै याहि उबारि, याके जीवत जीवनो ।।"[3]

इसमे 'कीजै दौरि गोहारि' लाक्षणिक पद है। इसका लक्ष्यार्थ है सहायता के लिए लोगो को बुलाना। यही लक्ष्यार्थ ही मुहावरे का मुख्यार्थ हो गया है।

शुद्धा लक्षण-लक्षणा:—

"नरहू के परसंग में, कहै सखी नल कोइ ।।
सुनि सरीर पीरी परै, पल में पीरी होइ ।।"[4]

इसमे 'सरीर पीरी परै' लाक्षणिक पद है। इसका लक्ष्यार्थ है शरीर चिन्ता-ग्रस्त हो जाती है और निर्जीव सी प्रतीत होने लगती है। इस प्रकार कवि ने अर्थ को नया आयाम प्रदान कर दिया है।

"हौं प्रभु हो बलहीन पखेरू ।। हौ तुम राजन मांह सुमेरू ।।"[5]

इसमे 'सुमेरू' पद लाक्षणिक है। इसका मुख्यार्थ पहाड़ विशेप है. पर लक्ष्यार्थ सबसे श्रेष्ठ है। इस प्रकार के कथन द्वारा भाव मे तीव्रता आ गई है।

"आनन लोचन कर पग मोचन सजे कमल मे सरस बने।
ताप बढ़ावै ज्यों अकुलामैं रवि संयोग सो घामसने ।।

---

१. नैषध-काव्य गुमान मिश्र, सं० १९५२, द्वि० सर्ग, पृ० ९ प० सं० १७

२. वही पृ० ४२, प० सं० २०

३. वही पृ० ४३, प० सं० ३३

४. वही पृ० ११, प० सं० ४१

५. वही पृ० ४१, प० सं० १४

वाणनि मारै हियो विदारै निरदै मन्मथ वैर पर्‍यो।
अंगनि डाढ़ै त्यों त्यों बाढ़ै यहि अनीति सों फूलि फर्‍यो ॥"[1]

इसमे 'ताप वढामै', 'वाणनि मारै', अगनि डाढे' तथा 'फूलि-फलो' पद लाक्षणिक है। इनका क्रमश. लक्ष्यार्थ है—वेदना उत्पन्न करते है, काम भावना से व्यथित करते हैं, अग-अग मे तीव्र वेदना होती है और विकसित हो रहे हैं। इस प्रकार प्रत्येक पद को कवि ने नए अर्थ से मडित कर दिया है।

"फैलि गयो अंग अंगम में विष ज्यों मिसु कै हम नेकु निहारी।"[2]

इसमे 'फैलि गयो अग अगन मे विप' लाक्षणिक पद है। इसका लक्ष्यार्थ है सपूर्ण रूप से स्वरूप का प्रभाव छा गया अर्थात् स्वरूप के वशीभूत हो गए।

सारोपा गौणी लक्षणा —

"सुनि सुनि मदन पीर सरसानो तनु कदम्ब के तूल बने।"[3]

इसमे 'तनु कदव के तूल' लाक्षणिक पद है। इस पद मे तनु उपमेय और कदंव के तूल उपमान है। इनके एकात्म्य का आधार साद्दश्य है। कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके भाव को सप्रेपणीय वनाया है।

"कहूँ तरुवर पंडित से राजै।
फैले पत्र पुराण विराजै ॥"[4]

इसमे 'पत्र पुराण' लाक्षणिक पद है। इस पद मे पत्र उपमेय और पुराण उपमान है। इसका आधार साद्दश्य है। कवि ने उपमेय पर उपमान का आरोप करके विव को सवेदनीय वनाया है।

'तेरे स्वरूप सुधारस पान ते प्रीति न ओर वढ़ी जिय मेरे।"[5]

इसमे 'स्वरूप सुवारस' लाक्षणिक पद है। इस पद मे स्वरूप उपमेय और सुधारस उपमान है। इनके एकात्म्य का आधार साद्दश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके विंव को सवेदनीय वना गया है।

"नाभि सुधारस की सरसी लखि झपि पर्‍यो यहि मांह बुझान्यो।"[6]

इसमे 'नाभि सुधारस की सरसी' लाक्षणिक पद है। इसका आधार साद्दश्य है। इस पद मे नाभि उपमेय और सुधारस की सरसी उपमान है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके विंव को स्पष्ट किया गया है।

---

१. नैषध-काव्य, गुमान मिश्र, सं० १९५२, पं० सर्ग, प० सं० १६ पृ० ४१
२. वही अ० सर्ग, प० २९ पृ० ६८
३. वही द्वि० सर्ग, प० ४० पृ० ११
४. वही द्वि० सर्ग, प० ८३ पृ० १४
५. वही च० सर्ग, प० ४७ पृ० ३४
६. वही अ० सर्ग, प० ५० पृ० ७१

"उरज उतंग शृंग में रूपै उदित चंद्र वंक नख अंक लाल मालनि सराहि कै।"[१]

इसमे 'उरज उतगशृग' तथा 'रूपै उदित चन्द्र' लाक्षणिक पद हैं। इनमें उरज एवं रूप उपमेय और उतंग शृंग तथा उदित चन्द्र उपमान है। इनके एकात्म्य का आधार सादृश्य है। उपमेय का उपमान पर आरोप करके विंव को संवेदनशील वनाया गया है।

"लोचन कमल चढ़ाइ कमल आसन नित पूजै।"[२]

इसमे 'लोचन कमल' लाक्षणिक पद है। इसका आधार सादृश्य है। इस पद मे लोचन उपमेय पर कमल उपमान का आरोप करके विंव को सप्रेषणीय वनाया गया है।

साध्यवसाना गौणी लक्षणा—

'ताते कढ़ी यह धूम लता अति सूक्ष्म सुन्दर रूप वखान्यो।
सोई वरंगिनि की वरनी नव रोमावली मन हेठ हेरान्यो॥"[३]

इसमे 'धूमलता' लाक्षणिक पद है। यह पद रोमावली का उपमान है। इसके एकात्म्य का आधार सादृश्य है। कवि ने उपमान के द्वारा ही उपमेय के विंव को सवेदनीय वनाया है।

'ववली एक अकाश पै राजत कंचन तीनि सिढ़ाव सँवारी।
नील मणीन की राह लसै अति सूक्ष्म मानहु नागिन कारी।
कंचन कंज कली युग तापर है परमा रवि की छविवारी।
शारद इंदु समीप रहैं निशि वासर फैलि रहै उजियारी॥"[४]

इसमे 'वावली', 'कंचन तीन सिढ़ाव', 'कंचन कंज कली युग' और शारद इन्दु लाक्षणिक पद है। ये सभी पद क्रमशः नाभि, त्रिवली, उरोज तथा मुख के उपमान है। इनके एकात्म्य का आधार सादृश्य है। यहाँ उपमानों के ही द्वारा विंव को सवेदनशील वनाया गया है।

"कुल शील सुशैल ते छूटि चली उत लाज नदी उमड़ी अति भारी।
जहँ मज्जतु नाग अनंग वली लहरी जहँ सोच संकोच सँवारी॥"[५]

इसमे 'कुलशील सुशैल' तथा 'लाज नदी' लाक्षणिक पद है। इनमे कुलशील एवं लाज उपमेय है और सुशैल तथा नदी उपमान है। इनके एकात्म्य का आधार

---

१. नैषध-काव्य, गुमान मिश्र, सं० १९५२, उन्नीसवाँ सर्ग, प० ३१ पृ० १४१
२. वही तेईसवाँ सर्ग, प० ८० पृ० १७५
३. वही अ० सर्ग, प० ५० पृ० ७१
४. वही अ० सर्ग, प० ५१ पृ० ७१
५. वही चतुर्थ सर्ग, प० ५७ पृ० ३५

सादृश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को संवेदनशील बनाया गया है।

"तहँ काम के शूल सहे समुहे उर गाढ़ उरोज सरोजनि आगी।"[१]

इसमे 'उरोज सरोजनि' लाक्षणिक पद है। इस पद मे उरोज उपमेय और सरोज उपमान है। इनके एकात्म्य का आधार सादृश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके बिंब को सम्प्रेषणीय बनाया गया है।

"उपजी धराधर से तरगिनी है पियूष श्रृंगार की।
यह पूर यौवन को लसै कुच कोक लोक विहार की॥"[२]

इसमे 'कुच कोक' पद लाक्षणिक है। इस पद मे कुच उपमेय और कोक उपमान है। इसका आधार सादृश्य है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके भाव गोचर किया गया है।

"याके दृग मृग अति चपल, वोरन मिलत सप्रीति।
करण कूप की मीति इति, उतनासी की भति॥"[३]

इसमे 'दृग मृग' तथा 'करण कूप' पद लाक्षणिक है। इनका आधार सादृश्य है। इनमें दृग तथा कर्ण उपमेय और मृग एव कूप उपमान है। उपमेय पर उपमान का आरोप करके कवि ने भावो को तीव्रता प्रदान की है।

"ज्यों मुख चन्द सुधा चुहकी कुहकी बतियाँ त्यो भगी भय भारी।"[४]

इसमे 'मुखचन्द' लाक्षणिक पद है। इसका आधार सादृश्य है। इस पद में मुख उपमेय का चन्द उपमान पर आरोप करके भाव-बिंब को संवेदनीय बनाया गया है।

गुमान मिश्र के लाक्षणिक प्रयोग अपनी परम्परा से जकड़े हुए है। इनके लाक्षणिक प्रयोग स्वाभाविक होते हुए भी लक्षणा के क्षेत्र का विस्तार करने मे समर्थ नही हैं। कोई भी लाक्षणिक प्रयोग ऐसा नही हो सका है जो अनुपम या अनोखा कहा जा सके। इसके अतिरिक्त रीतिकालीन चमत्कारिक उक्तियो का भी इनके काव्य मे अभाव है। 'नैषध-काव्य' अनूदित प्रबन्ध काव्य है। संस्कृत ग्रन्थ 'नैषध' की शैली मे उसका अनुवाद करना कठिन कार्य था। मुख्य रूप से इनका उद्देश्य कथा

---

१. नैषध-काव्य, गुमान मिश्र, सं० १६५२, प० सर्ग, प० २० पृ० ४२
२. वही स० सर्ग, प० १० पृ० ६७
३. वही स० सर्ग, प० २४ पृ० ६८
४. वही अ० सर्ग, प० २६ पृ० ६८

कहना था। इस कथा के माध्यम से जहाँ कही सुन्दर काव्य का सृजन हो गया है वहाँ हो गया है। इस हिन्दी नैपध-काव्य को पढ़कर यह तो नही कहा जा सकता है कि संस्कृत 'नैपध' की भाव भंगिमा का अनुवाद ठीक तरह से हो पाया है। मुहावरे और लोकोक्तियो का प्रयोग विरल ही है। लक्षण-लक्षणा के प्रयोग प्रायः अधिक मिलते है, पर भावो को तीव्रता प्रदान करने मे बहुत समर्थ नही है। सारोपा गौणी तथा साध्यवसाना गौणी के प्रयोग कुछ अधिक समर्थ हैं। इनके अप्रस्तुत-विधान परम्परानुमोदित है। अप्रस्तुत की नई सम्भावनाओ के प्रति ये सावधान नही थे, साथ ही संस्कृत-काव्य परम्परा की विशाल अप्रस्तुत योजना का भी उचित रूप से उपयोग नही कर सके है।

षष्ठम् अध्याय

लक्षणा के प्रयोग की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन

पिछले अध्यायों मे रीतिकाल पूर्व कवियो के रीति-ग्रन्थों में, रीतिकालीन सम्पूर्ण काव्यागो का विवेचन करने वाले ग्रन्थो मे, रस संबधी ग्रन्थो मे, अलकार संबधी ग्रन्थो मे, रीति-सिद्ध कवियो के काव्य मे, रीतिमुक्त स्फुट काव्य में, सत, सूफी, राम तथा कृष्ण काव्य मे, वीर रसात्मक काव्य में, नीति व्यवहार सवधी सूक्ति तथा अन्योक्ति काव्य मे और प्रबन्ध-काव्यो मे लक्षणा-शक्ति के प्रयोगो को दिखलाया जा चुका है और उनकी विशेषताओं की भी विवेचना की जा चुकी है। अब इस अध्याय मे क्रमश: रीतिकाल और आदि कालीन साहित्य मे, रीतिकाल और भक्ति कालीन साहित्य मे एव रीतिकाल और आधुनिक साहित्य मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोगो का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। आधुनिककाल को छोड़कर लगभग हिन्दी साहित्य के सभी कालो की प्रमुख काव्य-कृतियो के लाक्षणिक प्रयोगो के उदाहरण पिछले अध्यायो मे दिखाए जा चुके है। अत: उन्ही उदाहरणो को पुन. यहाँ उद्धृत करना पिष्टपेषण मात्र होगा। इस दृष्टि से यहाँ आदिकाल और रीतिकाल तथा भक्तिकाल एव रीतिकाल के लाक्षणिक प्रयोगो की विशेषताओ को ही प्रस्तुत किया जा रहा है। इसके अनन्तर आधुनिक साहित्य मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोगो को देते हुए रीतिकालीन लाक्षणिक प्रयोगो की तुलना की जाएगी और अन्त मे रीतिकालीन साहित्य की उपलब्धियों तथा दोषो पर प्रकाश डाला जाएगा।

'रीतिकाल और आदिकालीन साहित्य'

आदिकाल को आचार्य शुक्ल जी ने वीर गाथा काल नाम से अभिहित किया है। इस काल की प्रमुख साहित्यिक कृतियाँ 'खुमाण रासो' वीसलदेव रासो और पृथ्वी राज रासो है। इनमे भी साहित्यिक दृष्टि से पृथ्वीराज रासो ही उल्लेखनीय है। यहाँ पृथ्वीराज रासो और रीतिकालीन साहित्य मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोगो की तुलनात्मक विवेचना की जा रही है।

संस्कृत और अपभ्रंश साहित्य का उत्तराधिकार लेकर 'रासो ग्रन्थ' अवतरित हुए थे। अत. थोडी बहुत इनकी विशेषताएँ पृथ्वीराज रासो में परिलक्षित होती है। संस्कृत एवं अपभ्रंश काव्यो का पर्याप्त विकास हो चुका था। इनमे वचन भंगिमा में वक्रता, उक्ति मे वैचित्र्य और अलंकरण की प्रवृति प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है।

इसका प्रभाव पृथ्वीराज रासो पर भी पड़ा है। पृथ्वीराज रासो का कवि वचन भंगिमा, उक्ति-वैचित्र्य और अलंकरण के प्रति जागरूक है। इसके अतिरिक्त तत्कालीन बोल-चाल की भाषा डिंगल को काव्य-भाषा के रूप मे स्वीकार करने के कारण लोकोक्तियाँ और मुहावरे भी काव्य-शोभा बढाने के प्रसाधन रूप मे प्रयुक्त हो गए हैं। इस तरह पृथ्वीराज रासो के अनुशीलन के पश्चात इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि इस ग्रन्थ मे भी पर्याप्त लाक्षणिक प्रयोग हुए हैं पर ये लाक्षणिक प्रयोग प्रायः— उन्ही स्थानो पर उपलब्ध होते हैं जहाँ रूप के अतिशयोक्ति आदि अलंकार है अथवा लोकोक्तियों और मुहावरो का प्रयोग है अथवा जहाँ कवि प्रतिभा ने शब्दों मे नए अर्थों का सन्निवेश करना चाहा है। सभी कवि अपने भाव चित्रो को स्पष्ट करने के लिए अप्रस्तुत योजना करते ही है उसी प्रकार चंदबरदायी ने भी अप्रस्तुत नियोजन किया है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि चंदबरदायी अपने उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकारो के लिए विशेप रूप से प्रसिद्ध हैं और उन्ही का उन्होंने बहुतायत से प्रयोग भी किया है। रूपक और अतिशयोक्ति का प्रयोग अपेक्षाकृत कम है। पृथ्वीराज रासो मे उपलब्ध होने वाले लाक्षणिक प्रयोगों के संदर्भ में अब रीति-कालीन लाक्षणिक प्रयोगों का तुलनात्मक दृष्टि से विवेचन करना समीचीन होगा। पृथ्वीराज रासो के लाक्षणिक प्रयोग चित्रात्मकता, संवेदनीयता और संप्रेषणीयता की विशेपताओ से मंडित है।

रीतिकाल मे लक्षणा के प्रयोगों में पर्याप्त विविधता प्राप्त होती हैं रीतिकालीन आचार्यो की शब्दशक्ति विवेचना, अलंकार और नायिका भेद के निरूपण के प्रसंग में शास्त्रीय लाक्षणिक प्रयोग आए है। रीति-सिद्ध कवियों के काव्यों में अलंकारों, लोकोक्तियों-मुहावरों के अतिरिक्त वाणी के सहज विकास में भी लाक्षणिक चित्रात्मकता आई है। रीति-मुक्त स्फुट काव्यों में आए हुए लाक्षणिक प्रयोग तो बहुत ही स्वाभाविक, स्वच्छ और निखरे हुए है। सूक्तयों तथा अन्योक्ति में नीति, व्यवहार एवं वैराग्य की अभिव्यक्ति के प्रसग में भी लाक्षणिक प्रयोग हुए हैं। पिछले खेवे के प्रबन्ध काव्यों में भी यत्र-तत्र लक्षणा के सुन्दर प्रयोग प्राप्त हो जाते हैं। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि रीतिकालीन साहित्यकार आदिकालीन साहित्यकार की अपेक्षा लाक्षणिक प्रयोग करने मे अधिक सावधान था। इसीलिए लाक्षणिक चित्रात्मकता के विविध रूप रीतिकालीन साहित्य में पाए जाते है।

'रीतिकाल और भक्तिकालीन साहित्य'

भक्तिकालीन साहित्य, जो सं० १३७५—१७०० वि० तक की साधना का स्वरूप है, अपने में अनेक अमूल्य साहित्यिक निधियों को समेटे हुए है। यह साहित्य का स्वर्णिम युग है। भक्तिकाल की धरती पर एक नही चार सूर्य—कबीर, जायसी, तुलसी और सूर अपना आलोक बिखेर रहे थे। इनके अतिरिक्त अनेक दीप्तमान

नक्षत्र भी वर्तमान थे। यह धार्मिक भावना के प्रखर प्रवाह का समय था। इस प्रवाह मे कर्म, ज्ञान और भक्ति का सगम हो रहा था। इन्ही भावनाओ की अभिव्यक्ति इस विशाल साहित्य मे मिलती है। सन्तो ने ज्ञान की, सूफियो ने प्रेम की, राम भक्तो ने राम भक्ति की और कृष्ण भक्तो ने कृष्ण भक्ति की सुधा प्रवाहित कर दी। जिससे तत्कालीन कोटि-कोटि मानवो को नव जीवन का सदेश प्राप्त हुआ। यहाँ इन्ही काव्यो मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोगो का रीतिकालीन लाक्षणिक प्रयोगो की चित्रात्मक सामर्थ्य की तुलना की जा रही है। पिछले अध्यायो मे पर्याप्त लाक्षणिक प्रयोगो के उद्धरण दिए जा चुके है। अत. यहाँ उनकी विशेषताओ की ही चर्चा की जाएगी।

रीतिकाल और सन्त साहित्य—

सन्त साधक थे। उनका उद्देश्य साहित्य सृजन नही था। साहित्य की वीथियों से उनका परिचय भी नही था। मूलतः उन्हे अपनी साधना सम्बन्धी अनुभूतियों और विचारो को अभिव्यक्त करना था। इस अभिव्यक्त के पीछे कविता स्वय चलने लगी। ऐसी परिस्थिति मे उनकी कविता से काव्य-सौष्ठव, चित्रात्मकता, उक्ति-वैचित्र्य आदि की माँग करना ठीक नही है। फिर भी इन सन्तो की वानियों मे चित्रात्मकता तथा उक्ति वैचित्र्य है, किन्तु एक विशेप प्रकार के सदर्भ मे है। इनके लाक्षणिक प्रयोग आत्मा, परमात्मा, माया, इन्द्रिय, ससार की असारता आदि को लेकर हुए है। ऐसे प्रसंगो के अतिरिक्त जहाँ ये आत्म-विभोर होकर प्रिय के गुणगान करते है, वहाँ भी लाक्षणिक प्रयोग बन गए है। वस्तुत. ये लाक्षणिक प्रयोगो के प्रति सावधान नही थे। इसलिए इनके लाक्षणिक प्रयोग प्रभावोत्पादक नही है। लाक्षणिक चित्रात्मकता वर्ण्य-विपय को तो स्पष्ट कर देती है, पर काव्य का सौष्ठव समृद्ध नही होता है। रीतिकालीन कवि साहित्य सृजन करने के लिए कविता करता था। उसे अपने वाणी वैदग्ध्य से आश्रयदाता और श्रोता को प्रभावित करना था। वे साधना के नाम पर साहित्य देवता की साधना कर रहे थे। ऐसी परिस्थिति में यह बड़ा स्वाभाविक है कि उनके काव्य में वचन भगिमा, उक्ति-वैचित्र्य और बिम्बात्मकता की प्रचुरता हो। इसलिए संतों के लाक्षणिक प्रयोग और रीतिकालीन लाक्षणिक प्रयोगो मे स्वर्ग-पाताल का अन्तर है। रीतिकालीन प्रयोग अत्यधिक समर्थ है।

रीतिकाल और सूफी साहित्य—

सूफी 'प्रेम पीर' के गायक थे। इनके काव्य मे सन्तो की अपेक्षा अधिक वाणी वैदग्ध्य और हार्दिकता है। इन्होने प्रस्तुत को प्राकृतिक अप्रस्तुतो की सहायता से स्पष्ट किया है। इसके परिणाम स्वरूप रूपको का इनके काव्य मे जमघट लग गया है। मुहावरो और लोकोक्तियों का प्रयोग कही-कही प्राप्त होता है। विरह प्रसगो मे अतिशयोक्ति अलकार का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है। इन सभी स्थलों पर बडे समर्थ और काव्य के सौष्ठव को बढ़ाने वाले लाक्षणिक प्रयोग हुए है। कही-कही जायसी

ने शब्दों को नए अर्थ के आयाम मे प्रस्तुत करके लाक्षणिक चमत्कार उत्पन्न कर दिया है।

रीतिकाल मे जो लाक्षणिक विविधता प्राप्त होती है, वह सूफियों के काव्य मे नही है। रीतिकालीन साहित्यकार ने बड़ी सावधानी से अपने काव्य में काव्य गुणो का सन्निवेश किया है। जायसी के कुछ लाक्षणिक प्रयोगो मे वीभत्सता भी देखी जा सकती है, पर रीतिकालीन प्रयोगो मे ऐसा नही पाया जाता है। जायसी के रूपक एवं अतिशयोक्ति अलंकार, जिनके मूल मे लक्षणा रहती है, शास्त्रीयता, स्वाभाविकता और स्वच्छता से सम्पन्न हैं, पर रीति सिद्ध और रीति-मुक्त काव्यो के लाक्षणिक प्रयोगो की स्वच्छता इनमे नही है।

रीतिकाल और राम-काव्य—

राम काव्य मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोग जीवन के विविध पक्षो को चित्रित करने की सामर्थ्य रखते है। गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में विशेपकर राम-चरित मानस मे रूपको की जैसी अधिकता, स्वाभाविकता और पूर्णता प्राप्त होती है वैसी अन्यत्र तो दुर्लभ ही हैं। इसके अतिरिक्त लाक्षणिक चमत्कार उत्पन्न करने वाले अन्य अलंकार जैसे रूपकातिशयोक्ति, परिकराकुर, समासोक्ति आदि भी इनकी रचनाओ मे पाए जाते है। लोकोक्तियाँ और मुहावरे भी प्रचुर मात्रा मे प्रयुक्त हुए हैं। इन सभी लाक्षणिक प्रयोगों मे सवेदनीयता की सामर्थ्य है, इनसे वर्ण्य-विषय मे स्पष्टता आई है और काव्य का सौष्ठव बढ़ा है।

रीतिकालीन लाक्षणिक प्रयोगो मे जीवन के विविध-पक्षो के चित्र तो नही हैं, पर शृंगार पक्ष के इतने विविध चित्र है कि वे राम काव्य में नही पाए जाते। जहाँ तक इन प्रयोगों की स्वाभाविकता का प्रश्न है, वहाँ भी रीति-मुक्त स्फुट काव्य के लाक्षणिक प्रयोग निम्न कोटि के नही कहे जा सकते है। लोकोक्तियो और मुहावरो की लाक्षणिक मूर्तिमत्ता दोनो मे समान है। घनानन्द के ऐसे प्रयोग जो विरोधाभास सा उत्पन्न करते है, राम-काव्य मे नही पाए जाते। जहाँ तक लाक्षणिक शास्त्रीयता की बात है, उसकी तो राम काव्य मे चर्चा ही नही हुई है।

रीतिकाल और कृष्ण-काव्य—

कृष्ण काव्य मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोग भक्ति और शृंगार के विविध पक्षों को प्रस्तुत करते है। इन रचनाओं मे जहाँ एक ओर अलकारिक लाक्षणिक प्रयोग प्राप्त होते है, वही दूसरी ओर रस-अवतारणा के लिए किए गए लाक्षणिक प्रयोग भी है। इनमें स्वाभाविकता, स्पष्टता तथा संप्रेपणीय भी प्रचुर मात्रा मे है। मुहावरे-लोकोक्तियो की लाक्षणिक मूर्तिमत्ता भी निखरी हुई है।

रीतिकालीन लाक्षणिक प्रयोगो में भी ऊपर कही गई सभी विशेपताएँ पाई जाती हैं। काव्य में वैदग्ध्य, उक्ति-वैचित्र्य, बिम्बात्मकता तथा वचन भंगिमा दोनो काव्यों मे मिलती है। रस-अवतारणा से सम्बन्धित लाक्षणिक प्रयोग रीतिकालीन

साहित्य में विविध रूपों मे वर्तमान है, उतनी स्वच्छता तथा स्पष्टता कृष्ण काव्य के प्रयोगो मे नही है। काव्यगत लाक्षणिक प्रयोगो की शास्त्रीयता तो समस्त हिन्दी साहित्य मे केवल रीतिकाल मे ही पाई जाती है। इस क्षेत्र मे रीतिकालीन साहित्यकार स्वय अपने आप मे अथ और इति है।

कुल मिलाकर भक्ति-कालीन साहित्य, जो भाव और कला पक्ष की दृष्टि से पर्याप्त समर्थ है, अपने लाक्षणिक प्रयोगो की दृष्टि मे रीति-कालीन साहित्य से उच्च-कोटि का नही है।

'रीतिकाल और आधुनिक साहित्य'

आधुनिक साहित्य के परिवेश मे ग्रन्थो का एक विशाल समूह सामने आता है। इन सब ग्रन्थो के लाक्षणिक प्रयोगो के सम्बन्ध मे कह सकना तो सम्भव नही है, पर इस विशाल साहित्य की विशिष्ट धाराओ के प्रतिनिधि कवियो की प्रतिनिधि रचनाओं मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोगो का रीतिकालीन लाक्षणिक प्रयोगो के प्रकाश मे परीक्षण किया जा रहा है। यहाँ भारतेन्दु-युग, द्विवेदी-युग, छायावादी काव्य और छायावादोत्तर काव्य मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोगो का विवेचन तथा परीक्षण किया जाएगा। भारतेन्दु-युग और द्विवेदी-युग लाक्षणिक प्रयोगो की दृष्टि से विशेष महत्व नही रखते है, किन्तु इनमे विकास-क्रम का पता अवश्य चलता है। छायावादी काव्य लाक्षणिक दृष्टि से अत्यधिक सम्पन्न है। इसके लाक्षणिक प्रयोगो की तुलना में रीतिकालीन प्रयोग पीछे रह जाते है। छायावादोत्तर काव्य मे भी प्रचुर मात्रा मे लाक्षणिक प्रयोग हुए है, पर कुल मिलकर अभी रीतिकालीन लाक्षणिक प्रयोगों से वे पीछे हैं।

'रीतिकाल और भारतेन्दु युग के लाक्षणिक प्रयोग'

हिन्दी साहित्य के इतिहास मे भारतेन्दु युग स० १९००-१९५० वि० तक माना जाता है। आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने इसे दो भागो मे विभक्त कर दिया है। प्रथम भाग को पुरानी काव्यधारा और द्वितीय भाग को नवीन काव्यधारा का प्रथम उत्थान नाम दिया है। इस नामकरण का आधार यह है कि—इस काल मे कुछ कवि कविता को रीतिकालीन परिपाटी पर ही रचना कर रहे थे और कुछ कवि भारतेन्दु जी के नेतृत्व मे रीतिकालीन सीमा का अतिक्रमण कर युग चेतना को व्यक्त करने मे लगे थे। रीतिकालीन कविता का वर्ण्य-विषय शृङ्गार तथा भक्ति-वैराग्य तक सीमित था, जब कि "नई धारा मे सबसे ऊँचा स्वर देशभक्ति की वाणी का था।"[1] इसी के साथ ही साथ लोक हित, समाज-सुधार और मातृभाषा का उद्धार आदि विषय भी काव्य क्षेत्र मे प्रविष्ट हो गए थे। गद्य लेखन मे तो खड़ी बोली का

---

१. इस नए रग मे सबसे ऊँचा स्वर देशभक्ति की वाणी का था।
हि० सा० इति आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० परि सं० २००२. पृ० ५११

प्रयोग अबाध गति से होने लगा था पर कविता ब्रजभाषा में ही लिखी जा रही थी भारतेन्दुजी ने कविता में उपर्युक्त ब्रजभाषा का भी परिष्कार करने का प्रयास किया। यद्यपि नई धारा के कवि खड़ी बोली में भी रचना करते थे। यहाँ तक कि भारतेन्दुजी ने स्वय खड़ी बोली मे कविता लिखकर खड़ी बोली का पथ-प्रशस्त किया। आचार्य शुक्लजी ने पुरानी परिपाटी पर रचना करने वाले कवियों में रीवाँ नरेश रघुराजसिंह, सरदार, बाबा रघुनाथदास रामसनेही, ललित किशोरी, राजा लक्ष्मणसिंह, लछिराम, गोविन्द गिल्लाभाई और नवनीत चौबे का नाम गिनाया है और नई धारा मे भारतेन्दु, बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्याम आदि के नाम का उल्लेख किया है।

रीति युग के अन्तिम चरण (सं० १८९०-१९०० वि०) का साहित्य वर्ण्य-विषय मे पुरातन परम्परा के पिष्टपेषण तथा कलागत पच्चीकारी या शिल्प की अतिरंजना में इतना सीमित और रूढ़ हो गया था कि उसमे नूतन भावभिव्यक्ति के लिए स्थान शेष नही रह गया था। अत. इस काल के पिछले खेवे के कवियों के लिए विलक्षण और मौलिक उद्भावना या कथन शैली के नवीन प्रकार के लिए अवकाश नही रह गया था। ये कवि खजन, चकोर, कामदेव के नगाडे, काम के गुम्मद, सेवार, त्रिवेणी, कदली, काम-सरोवर, तारे, चन्द्रमा, सूर्य, भँवर, प्रवाल, हस आदि परम्परा-प्राप्त गिने-चुने उपमानो एवं प्रतीको की सहायता से ही विविध रग के काव्य चित्र बनाते रहते थे। बात यही तक सीमित नही थी बल्कि कला की सीमाओं का उल्लंघन कर कविता को अलकृत करने का साग्रह एवं सचेष्ट प्रयत्न भी करते थे। इसके परिणाम-स्वरूप इनकी कविता मे कृत्रिमता और एक रसता बढती गई। शब्द चमत्कार के मोह में वाह्य-प्रसाधनो से भाराक्रान्त काव्य का प्रतिपाद्य इतना दब गया कि इससे केवल अभिव्यंजना सौदर्य ही नही श्रीहत हुआ, अपितु अभिव्यंग्य भी ठिठुर कर बौना हो गया। इनकी नायिका जौहरी की दूकान-सी प्रतीत होती है। इस सम्बन्ध में डा० केशरीनारायण शुक्ल ने अपना विचार इस प्रकार व्यक्त किया है—

"क्या भाषा, क्या भाव और क्या वृत्त सभी कुछ रूढ से जकड़ गया, संजीवनी शक्ति टिकी भी रहती तो किस आधार पर।"[1]

वस्तुतः इस काल की ब्रजभाषा एक ही तरह की अभिव्यंजना का बोझ ढोते-ढोते एक रस प्रतीत होने लगी थी। नव चेतना से प्रबुद्ध भारतीय युवक को अँग्रेजी भाषा और साहित्य की समृद्धि आकृष्ट कर रही थी। उस समय की पत्र-पत्रिकाओं में रीतिकालीन परिपाटी पर लिखी गई रचनाओ की टीका-टिप्पणी भी होने लगी थी। इस सम्बन्ध मे 'विहार बन्धु' समाचार पत्र मे प्रकाशित अधोलिखित अवतरण द्रष्टव्य है—

---

१. आधुनिक काव्यधारा, डॉ० केशरी नारायण शुक्ल, तृ० आ० पृ० ११

"हिन्दी के प्राचीन कवि अपने समय की भाषा मे रचना करते थे और केवल कविताई पर ध्यान देते थे। भाषा पर उनका कुछ भी ध्यान न था। उनकी रचना का क्योंकर अन्वय होगा, किसी पद का व्याकरण से कौन-सा रूप बनाया जायगा इसका उनको भान ही न था। जैसा वाक्य मुख से निकला वैसा ही लिख दिया। दीर्घ को ह्रस्व कर दिया, युक्ताक्षर को असयुक्त और असंयुक्त को युक्त बना दिया, जो किसी विभक्ति ने गड़बड़ किया तो उसे भी उड़ा दिया।[१]

सच तो यह है कि शृङ्गार के अतिशय्य के कारण ब्रजभाषा इतनी कोमल, मधुर एव मसृण हो गई थी कि उसमे युग की नवचेतना, से उद्‌बुद्ध ज्ञान-विज्ञान, धार्मिक आन्दोलन, समाज देशभक्ति आदि विषयो की अभिव्यजना सभव न रही। इसी कारण से नई धारा का उत्थान हुआ। इस युग मे हमारा सपर्क विदेशी भाव विचार तथा सस्कृति से बढ़ा। इसके फल स्वरूप नवयुवक कवि भारत की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति को लेकर सघर्ष एवं सामंजस्य के भावों को अभिव्यक्त करने लगा।

इस प्रवन्ध के पिछले अध्यायो मे रीतिकालीन लाक्षणिक प्रयोगो का प्रचुर मात्रा मे विवेचन हो चुका है इसलिए आधुनिक काल की पुरानी काव्यधारा का यहाँ पर विवेचन पिष्टपेषण ही होगा। इसी कारण से यहाँ पर आधुनिक काल की 'नई धारा' के कवियो की रचनाओ मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोगो का विवेचन किया जा रहा है और इनके आधार पर रीतिकालीन लाक्षणिक प्रयोगों से इनकी विभिन्नता और साम्यता का भी दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

काव्य भाषा मे बोलचाल का प्राधान्य होने के कारण लोकोक्तियो और मुहावरो का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे हुआ है, किन्तु इस काल मे भाषा पर प्रयोग हो रहा था। कभी सस्कृत की शब्दावली, कभी उर्दू की शब्दावली और कभी प्रचलित शब्दावली का सहारा लिया जा रहा था। इस कारण कहावतो तथा मुहावरो की शब्दावली मे भी हेर-फेर दिखाई पड़ता है। फिर भी यह निश्चित है कि इनके प्रयोग के कारण भाषा मे लाक्षणिक शक्तिमत्ता आ गई है।

"दिल में जो कुछ पकता उसको किस विधि किसे खिलाऊँ।"[२]

इस पद मे 'दिल पकना' मुहावरे का प्रयोग किया गया है। कवि ने दिल पकने के साथ खिलाऊँ क्रिया का प्रयोग किया है जो उपयुक्त नही है। इसके स्थान पर 'दिखाऊँ' क्रिया का प्रयोग उपयुक्त होता। इस मुहावरे का लक्ष्यार्थ है मन वेदनाओ से भर गया है। इसी प्रकार का एक दूसरा प्रयोग भी द्रष्टव्य है—

---

२. बिहार-बन्धु, पटना, १६ दिसम्बर सन् १८८६ ई०

१. प्रेमधन सर्वस्व भाग १—'बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन,' प्र० सं०, सं० १९९६ पृ० १९२

"अनुभव कर आनन्द ब्रह्म अपने में आप समाता।"[1]

इस पद मे 'अपने आप समाता' मुहावरा है। वाक्य के अर्थ पर ध्यान देने से ऐसा प्रतीत होता है कि आनन्द से व्यक्ति अपने आप में समाता है। इस अर्थ के आधार पर यह प्रयोग अनुचित लगता है क्योंकि व्यक्ति अपने आप में कैसे समाएगा? ब्रह्म मे समाना तो सभव है।

इन मुहावरो के यहाँ उद्धृत करने का उद्देश्य यही है कि शब्दों के हेर-फेर के कारण मुहावरो मे भद्दापन आ गया है। रीतिकालीन काव्य मे इस प्रकार के मुहावरो का प्रयोग नही मिलता। रीतिकाल की भापा मँजी हुई थी, इसलिए मुहावरो का रूप भी स्वच्छ और निखरा हुआ ही काव्य मे दिखाई पड़ता है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कालीन काव्य के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि—काव्य मे लाक्षणिक मूर्तिमत्ता का सन्निवेश इस युग के कवियो की सजग सचेष्टता का परिणाम न था। कवि के कथन मे लक्षणा द्वारा स्वतः ही भापा कही-कही चमत्कृत हो उठी हैं, उक्ति सौन्दर्य की दृष्टि से इन प्रयोगो को विशेप महत्व नही दिया जा सकता है। रीतिकालीन कवि अपने लाक्षणिक प्रयोगो के प्रति सजग और सचेष्ट था। उसके लाक्षणिक प्रयोग उक्ति-सौंदर्य की दृष्टि से महत्व पूर्ण हैं।

भारतेन्दु के पश्चात् हिन्दी काव्य जगत में श्रीधर पाठक और बालमुकुन्द गुप्त का उदय हुआ। कुछ विद्वान् सं० १९४२—६० वि० तक के समय को सन्धि-काल नाम देते है। इस सन्धिकाल काल मे प्रमुख रूप से श्रीधर पाठक और बालमुकुन्द का ही ये लोग उल्लेख करते है। इसका सन्धिकाल नाम इसलिए दिया जाता है कि भारतेन्दु काल और द्विवेदीकाल के मध्य का यह समय है। इन दोनो महानुभावो ने विपय और शैली दोनो मे स्वच्छन्दता दिखाकर परवर्ती कलाकारों कामार्ग प्रशस्त कर दिया। ये दोनो कवि विपय, शैली और रचनाकाल तीनो की दृष्टि से भारतेन्दु और द्विवेदी युग के बीच की कड़ी बन सकते है। आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में श्रीधर पाठक को ही स्वच्छन्दतावाद (Romanticism) का प्रवर्तक सिद्ध किया है।[2]

पाठकजी की कविता का परिशीलन करने पर यह ज्ञात होता है कि इस युग तक की कविता मे लाक्षणिक मूर्तिमत्ता का सन्निवेश नही हुआ था। पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव, रूढिग्रस्त रीतिकालीन साहित्य के प्रति उपेक्षा एव तत्कालीन परिस्थितियों के कारण इनके काव्य मे भाव-गांभीर्य न आ सका। अनुभूतियो की

---

१. प्रेमघन सर्वस्व भाग १, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', प्र० सं० सं० १९९६ पृ० ४१०

२. हि० सा० इति० आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० परि० सं० २००२, पृ० ५२५

तीव्रता के अभाव मे अधिकांश काव्य विषय प्रधान होकर रह गया और शब्द की पहुँच केवल अभिधा शक्ति तक रही। लक्षणा-शक्ति की दृष्टि से काव्यगत चमत्कार और सौन्दर्य मुहावरों और रूपक, अतिशयोक्ति आदि अलकारो तक ही सीमित पाठकजी मुहावरो के प्रयोग के पक्षपाती थे और भाषा की आत्मा समझकर उनका प्रयोग करते थे। इस प्रकार के मुहावरो के प्रयोग से काव्य की सवेदनशीलता की प्रचुर मात्रा मे श्रीवृद्धि हुई है। इसी प्रकार जहाँ रूपक, अतिशयोक्ति आदि अलकारो का प्रयोग हुआ है वहाँ पर बिंब गोचरता और भाव सप्रेषणीयता भी आई है, पर ऐसे प्रयोग थोड़े हैं। वस्तुत. पाठकजी रचना के नए-नए मार्गों की शोध, पद-विन्यास, वाक्य-विन्यास और छन्द मे नई बन्दिशे तथा नए वृत्त के सन्निवेश करने मे व्यस्त थे।

बालमुकुन्द गुप्त की काव्य भाषा मे बोल-चाल का प्रधान्य होने से मुहावरों का प्रचुर मात्रा मे प्रयोग हुआ है, किन्तु शब्द और अर्थ मे चमत्कार उत्पन्न करने वाले लाक्षणिक प्रयोगो का नितान्त अभाव है। उर्दू शब्दो के उपयोग से इनकी भाषा में स्वतः ही कहीं-कहीं लाक्षणिक पद योजना हो गई है। इनकी रचनाओ मे कहीं-कहीं ठेठ बोलचाल के ग्राम्य प्रयोग भी हैं। उन प्रयोगो मे यदा-कदा लाक्षणिक मूर्तिमत्ता के दर्शन हो जाते हैं।

रीतिकालीन काव्य की साधना मे राजनैतिक, सामाजिक परिस्थितियो को कभी भी स्थान न मिल सका। इस काल का कवि शृङ्गार और भक्ति की सीमा में ही परिबद्ध रहा। रीतिकालीन कवि के समक्ष भाषा, छन्द, वृत्ति तथा पद-विन्यास निर्माण का कार्य भी नहीं रहा, ब्रजभाषा के भक्त कवियो ने काव्य भाषा का समुचित परिष्कार और परिमार्जन कर दिया था। इसी कारण से रीतिकालीन लाक्षणिक मूर्तिमत्ता अधिक सुस्पष्ट और स्वच्छ है। श्रीधर पाठक और बालमुकुन्द गुप्त के समक्ष जहाँ एक ओर विषय के चुनाव की समस्या थी वहीं दूसरी ओर शैली की समस्या थी। इसी के साथ ही साथ विषय और शैली के निर्वाह के लिए उपयुक्त भाषा का चुनाव करना था। इन्ही कारणो से भाव-गाम्भीर्य के प्रति इन्हे उदास रहना पड़ा और इनकी रचनाओ मे लाक्षणिक मूर्तिमत्ता नहीं आ पाई।

'रीतिकाल और द्विवेदी युग के लाक्षणिक प्रयोग'

भारतेन्दु युग मे जहाँ एक ओर काव्य का बहुमुखी विकास हुआ, 'वहाँ दूसरी ओर काव्य-भाषा का उतना अधिक परिष्कार और परिमार्जन नहीं हो सका। भारतेन्दु युगीन काव्य-भाषा मे व्याकरण सबन्धी शिथिलता भी दृष्टि गोचर होती है। व्याकरण की उपेक्षा तथा अभिव्यजना-शैली की अपरिपक्वता युग के सामान्य कवि मे ही नहीं, अपितु विद्वान कवियो प्रेमघन और श्रीधर पाठक की रचनाओ मे भी उपलब्ध होती है। कहने का अभिप्राय यह है कि इस युग में भाषा संस्कार और कला-सौष्ठव का

बहुत अधिक उत्कर्ष नही हो सका। यह इसे ही प्रौढ़, सक्षम तथा संपन्न बनाने की आवश्यकता का अनुभव द्विवेदी युग मे किया गया। इस युग मे कवि, पाठक और आलोचक तीनो का ध्यान नव स्वीकृत पद्य-भाषा की ओर आकृष्ट हुआ। द्विवेदी युग मोटे तौर पर स० १९५७ से १९७७ वि० तक माना गया है। इस युग में पत्र-पत्रिकाओं और भाषणों द्वारा पद्य-भाषा की शब्द-संकरता, तुकबन्दी के आतिशय्य और व्याकरण सबधी दोषों की कटुआलोचना की गई। साथ ही नूतन विषय-वस्तु के लिए रीतिकालीन रूढ़ काव्य शैली का भी विरोध किया गया। इसके परिणामस्वरूप—व्याकरणीय उच्छृ खलता का तो अन्त हो गया, किन्तु भाषा के अत्यन्त व्याकरण-निष्ठ तथा काव्य शैली के अतिशय वर्णनात्मक हो जाने से भाषा उत्तरोत्तर गद्यात्मक होती गई। इस कारण से अभिव्यंजन-क्षमता मे व्यापकता का अभाव बना रहा। कवि की अनुभूतियों एवं भावमयी कल्पना की व्यंजना के लिए मार्दव दीप्ति, कान्ति आदि गुणों संगीत और चित्रामयता जैसे काव्योचित धर्मो का सन्निवेश नही हो पाया। इस युग के प्रतिभा सपन्न कवि आयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध', रामनरेश त्रिपाठी मुकुटधर पाण्डेय प्रभृति कवियो ने काव्य-भाषा में नादात्मक शब्दों द्वारा ध्वन्यर्थ-व्यजकता, विलक्षण विशेषणों की सहायता से अपूर्ण लाक्षणिक चापल्य, विशिष्ट अप्रस्तुतो तथा प्रतीकों द्वारा अभिनव मूर्तिमत्ता का विधान किया। इस काल की प्रवृत्ति का सक्षिप्त परिचय देने के पश्चात अब द्विवेदी युगीन कवियो के काव्य मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोगो का दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

आचार्य द्विवेदी की काव्य-भाषा स्वाभाविक एव सरल है। इनके काव्य में वाच्यार्थ के चमत्कार का साम्राज्य सर्वत्र छाया हुआ है। इसका कारण यह है कि द्विवेदी जी के मन में काव्य भाषा के जो आदर्श बने उनकी पृष्ठ-भूमि मे रीतिकाल की अत्यधिक अलंकृत अथक कृत्रिम और अस्वाभाविक शैली के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया थी। अतः मुहावरो तथा अलकारों आदि मे जहाँ अभिधेयार्थ को व्याहत करके लक्षणा अथवा व्यजना अर्थान्तर मे संक्रमित भी होती है, वहाँ भी केवल साधारण अर्थ ग्रहण ही होता है। और कोई विशेष काव्योचित लाक्षणिक चमत्कार दृष्टिगोचर नहीं होता है। इनके लाक्षणिक—प्रयोगों द्वारा केवल विषय स्पष्ट होता है, परन्तु काव्य सौन्दर्य की वृद्धि नही होती है। इनकी रचनाओ मे कवि कल्पना चमत्कारिणी है पर लक्ष्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ पर वाच्यार्थ छाया रहता है।

पं नाथूराम 'शंकर' शर्मा जी की रचनाएँ विषय-प्रधान हैं। बोल-चाल की भाषा को यथा शक्ति काव्य से दूर रखने के कारण इनकी रचनाओ में लोकोक्तियों एव मुहावरों का कम प्रयोग हुआ है, पर कही-कही इनका सुन्दर प्रयोग भी किया गया है। ऐसे प्रयोगो से निश्चित रूप से लाक्षणिक मूर्त्तिमत्ता अभिवृद्ध हुई है। कवि की कल्पना, प्रतिभा तथा अभिव्यंजना कौशल का उद्देश्य एकमात्र सहृदयजनो के हृदय पर प्रभाव डालना होता है। प्रभाव पैदा करने के लिए आवश्यक हो जाता है

कि कवि वर्ण्य-वस्तु को चित्रमयी भाषा मे मूर्त रूप दे। शब्द की लक्षणा शक्ति वर्णनीय गोचर रूप देने मे सर्वाधिक समर्थ होती है। मुख्यार्थ के व्याघात होने से विषय में चमत्कार उत्पन्न हो जाता है। शर्मा जी की भाषा इस दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध है। इनके लाक्षणिक प्रयोग प्रकृति के व्यापारो को लेकर भी हुए है। कही-कही विशेष्य पदो मे भी प्रयोग दिखाई पड़ जाते है। अन्त करण के सूक्ष्म भावो को व्यक्त करने और उनकी गंभीर व्यंजना के लिये शर्मा जी ने मूर्त-विधान किया है। इससे सूक्ष्म भाव साकार हो उठे हैं।

पं अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (सं० १९२२-२००४)

प० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का उदय भारतेन्दु युग मे ही हो गया था। अपने प्रारभिक रचना काल मे ये रीतिकालीन कला चातुर्य को लेकर कवित्त-सवैये लिखा करते थे। भारतेन्दु एव द्विवेदी युग के सन्धिकाल के साहित्य को देखकर इन्होने उर्दू छन्दो के सहारे बोलचाल की भाषा मे पद रचना की। इनकी अमर रचना 'प्रिय प्रवास' पाच वर्ष की गम्भीर साधना के पश्चात १९१३ ई० मे समाप्त हुई थी, जिसका प्रथमवार प्रकाशन १९१४ ई० मे हुआ। इस ग्रन्थ का रचना काल द्विवेदी-युग में पड़ता है, इसी कारण इनको भारतेन्दु युग मे न रखकर यहाँ द्विवेदी युग मे स्थान दिया जा रहा है।

'प्रिय प्रवास' की भाषा सामान्यतया सस्कृत गर्भित एव समास युक्त है, फिर भी इसमे अनेक ऐसे स्थल मिलते है, जहाँ कवि ने सुबोध एव सरल भाषा का प्रयोग किया है। ऐसे स्थलों पर सरस भावाभिव्यंजना की स्पष्टता के लिए मुहावरो और लोकोक्तियो का आश्रय लिया गया है। सस्कृत निष्ठता के आग्रह के कारण कही कही इन्होने मुहावरों की शब्दावली मे परिवर्तन कर दिया है, किन्तु इससे अर्थ मे व्याघात नही हुआ है। 'चुभते चौपदे' मे तो इन्होने मुहावरेदार भाषा लिखने मे बड़ी कुशलता दिखाई है। इन मुहावरों और लोकोक्तियो द्वारा प्रचुर मात्रा मे चमत्कार और सप्रेषणीयता आई है। ऐसे सभी प्रसग लक्षणा की शक्ति से मडित हैं।

'प्रिय प्रवास' के परिशीलन के पश्चात यह निश्चिन्त होकर कहा जा सकता है कि यह ग्रन्थ अभिधा-प्रधान ग्रन्थ है। 'प्रिय. प्रवास' मे वियोग भावना से ओत-प्रोत भावपूर्ण तथा मार्मिक प्रसगो का निर्वाह प्राय वाच्यार्थ द्वारा ही किया गया है। ऐसे अवसर पर वाच्यार्थ में प्रेषणीयता की पूरी शक्ति भी विद्यमान रहती है। इसमें आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन स्मरण हो जाता है.—

"प्रश्न यह है कि काव्य की रमणीयता किसमे है ? वाच्यार्थ मे अथवा लक्ष्यार्थ या व्यंग्यार्थ मे ? इसका बेधड़क उत्तर यही है कि वाच्यार्थ मे, चाहे वह योग्य और उत्पन्न हो अथवा आयोग्य और अनुपपन्न।"[1]

---

१. चिन्तामणि भाग २ आचार्य पं रामचन्द्र शुक्ल, च० आ० पृ० १६६

रामदेवी प्रसाद 'पूर्ण' का खड़ी बोली का समस्त साहित्य विषय प्रधान है। इस समस्त काव्य मे देश-भक्ति का स्वर गूँज रहा है। उन्होने विशेष प्रयोजन वश भावाभिव्यजन के लिए जन प्रचलित भाषा को ग्रहण किया था, इससे काव्य के भाषा प्रवाह मे कहावतें तथा मुहावरे स्वाभाविक रूप से अपने आप चले आए है। इनके उचित प्रयोग के कारण भाषा मे सजावट एवं कसावट दोनो आई हैं। अपने भावों को जन साधारण तक पहुँचाने के आग्रह के कारण इन्होने भाषा की प्रसादता तथा प्रेषणीयता को बनाए रखा। इसीलिए इनकी रचना मे भी अधिकांश में वाच्यार्थ का ही आधिपत्य है। इस दृष्टि से यह कहना पड़ता है कि इनकी रचनाओ में भी उल्लेखनीय लाक्षणिक वैचित्र्य का अभाव है। इनके लाक्षणिक प्रयोगों से भाव तो स्पष्ट हो जाते हैं, किन्तु काव्य की चारुता मे वृद्धि नही होती है।

प० रामचरित्र उपाध्याय जी के फुटकर पदो मे देशभक्ति, समाज सुधार और आचार-नीति का स्वर ऊँचा है। ये संस्कृत के प्रकांड पण्डित थे। इसलिए इन्हों-ने तत्सम शैली को ही अपनाया। ऐसी रचनाओं मे लाक्षणिक प्रयोगों का अभाव है। जहाँ तत्सम शब्दावली का प्रयोग नही है, वहाँ पर यदा-कदा लाक्षणिक प्रयोग देखे जाते है। अतः लाक्षणिक मूर्तिमत्ता की दृष्टि से इनका काव्य बड़ा निर्धन है।

लोचन प्रसाद पाण्डेय की रचनाओ में भाषा की दृष्टि से एक रूपता का नितान्त अभाव है। लक्षणाशक्ति की कसौटी पर यदि इनके काव्य को कसा जाए तो निराश ही होना पड़ता है। इनकी उक्तियाँ भावों और उद्वेगों को सहृदय जनो तक संप्रेषित करने में समर्थ नही है।

आचार्य द्विवेदी जी द्वारा जिन तरुण कवियों को प्रोत्साहन एव विकास का अवसर मिला उनमे गुप्तजी का स्थान सबसे प्रमुख है। यद्यपि इनका अधिकाश प्रौढ़ काव्य द्विवेदी युग के बाद प्रकाश मे आया है, किन्तु उसका सूत्रपात द्विवेदी युग में ही हो चुका था। भाषा, भाव, शैली आदि सभी दृष्टियों से गुप्त जी का वह काव्य जो द्विवेदी युग के बाद प्रकाश मे आया वह द्विवेदी-युग का ही विकास है।

लक्षणा की दृष्टि से इनके काव्य पर विचार करने से ज्ञात होता है कि गुप्त जी ने मुक्तक काव्यो की चलती भाषा मे तो लोकोक्तियो और मुहावरों का प्रचुर प्रयोग किया है, पर प्रबन्ध काव्यो में संयम और गांभीर्य अधिक आ जाने से मुहावरों का वैसा प्रयोग नही किया है। इसके प्रबन्ध काव्यो तथा इतिवृत्यात्मेक कविताओं में ऐसे स्थल तो आते है जहाँ लोकोक्तियों तथा मुहावरो का प्रयोग हुआ है, परन्तु वे मुहावरे अपने शुद्ध रूप से कुछ परिवर्तित कर दिए गए है। गुप्तजी ने अपने काव्य मे सूक्तियो का भी पर्याप्त मात्रा मे प्रयोग किया है। ये सभी लाक्षणिक चमत्कार उत्पन्न करने में समर्थ हती है।

समग्र रूप में गुप्त जी के काव्य का परिशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि भाव की सहज अभिव्यक्ति ही उनका उद्देश्य था। इसी कारण से अधिकांश स्थलो पर अभिधा का प्रभाव ही दिखाई पड़ता है। इनके विषय-प्रधान काव्य 'भारत भारती' मे वाग्वैचित्र्य और लाक्षणिक पदयोजना का सर्वथा अभाव है। गुप्त जी की प्रारम्भिक रचनाओं मे लाक्षणिक प्रभाव उत्पन्न करने का कार्य मुहावरे और लोकोक्तियाँ ही करती है। जैसे जैसे समय बीतता गया गुप्तजी की रचनाओ में वैदग्ध्य और वक्रता भी आती गई। इसलिए इनकी प्रौढ रचनाओ मे लक्षणा तथा व्यजना शक्तियाँ काव्य सौन्दर्य का अंग बन कर आती गईं। गुप्त जी की पिछली रचनाओ मे आई हुई लाक्षणिक मूर्तिमत्ता निश्चित रूप से सराहनीय है और उससे काव्य की श्रीवृद्धि हुई है।

गुप्तजी की द्विवेदी-युग तक की रचनाओ के आधार पर यही कहा जाएगा कि—अभिधा द्वारा ही कवि ने काव्य को संवेदनीय एवं प्रभावोत्पादक बनाया है। मुहावरे, लोकोक्तियो और कही-कही आए हुए लाक्षणिक प्रयोगों द्वारा ही काव्य की चारुता और चमत्कार देखकर संतोष करना पडता है। वस्तुत. द्विवेदी-युग विषय प्रधान काव्यो का युग था। इसमे सहज एव स्पष्ट उक्तियों की सजीवता पर ही बल दिया जा रहा था।

प० रामनरेश त्रिपाठी के काव्य मे देश-भक्ति का स्वर व्याप्त है। इसलिए आचार्य शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास मे यह सकेत किया है कि—"देश-भक्ति की जो भावना भारतेन्दु युग से चली आती थी उसे सुन्दर कल्पना द्वारा रमणीय और आकर्षक रूप त्रिपाठी जी ने ही प्रदान किया।"[1] त्रिपाठी जी हिन्दी काव्य-क्षेत्र मे प्रवेश करते ही भाषा की उपयुक्तता को पहचान गए थे। इसी कारण से इनकी काव्य-भाषा सामान्य रूप से शुद्ध और परिष्कृत है। इनकी रचना की स्फीत-वाग्धारा सस्कृत शब्दों से अलकृत होकर अवश्य प्रवाहित होती है, पर तत्सम शब्दो का वह आग्रह इनमें नही पाया जाता है जो हरिऔध जी मे पाया जाता है। इनकी रचनाओ मे लोकोक्तियो और मुहावरो का उपयोग बहुत थोड़ा हुआ है। जहाँ भाषा बहुत सरल है वहाँ संजीवनी शक्ति पैदा करने के लिए मुहावरों का प्रयोग हुआ है। इनका अप्रस्तुत विधान चित्रात्मकता और लाक्षणिक शैली का परिचायक है। इस काल के अन्य कवियो मे कलात्मक अभिव्यक्ति के चित्रण का प्रायः अभाव था। इनके काव्य मे प्राचीन उपमानों और नवीन उद्भावनाओ का श्रेष्ठ समन्वय हुआ है। यहाँ यह स्मरण रखना पड़ेगा कि त्रिपाठी जी की रचनाओ मे लाक्षणिकता का सन्निवेश तो हुआ, पर अभिधा के विविध प्रयोगो द्वारा इन्होने सक्षम एवं प्रभाव पूर्ण चित्रो की

---

१. हि० सा० इति०, आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० परि० सं० २००२ पृ० ५४०

अवतारणा करके अभिधा के महत्व को श्रेष्ठता प्रदान की है। इनकी रचनाओं के परिशीलन के पश्चात यह कहा जा सकता है कि—लाक्षणिक शैली का आगमन तो काव्य में हो गया था, पर बहुल प्रयोग नही हो पाया था। छायावादी लाक्षणिक शैली की पृष्ठ-भूमि निर्माण हो रही थी। रीतिकालीन काव्य की-सी लाक्षणिक प्रयोगों की चारुता का अभाव इनके काव्य मे भी है।

सियाराम शरण गुप्त की गणना भी की द्विवेदी युग के साहित्कारों मे ही की जाती है। युग-प्रवृत्ति के अनुसार इन्होने अपनी प्रारम्भिक रचनाओ मे देश की प्रशस्ति और तत्कालीन अवनति की ओर संकेत करके भारतीय आत्मा को जागरण का सन्देश दिया। कुछ समय के पश्चात ही शियाराम शरणजी काव्य-साधना में अन्तर्मुखी हो गए इसके परिणामस्वरूप वे वर्णन और उपदेश के क्षेत्र का अतिक्रमण कर भाव लोक में विचरण करने लगे। इस काल की ईश्वर-भक्ति संबंधी रचनाओं मे आत्मनिवेदन दैन्य एव चिन्तन का प्राधान्य है। और इसी के साथ ही साथ ऐतिहासिक वृत्तो को भी निरंतर छन्दोबद्ध करते रहे। इन ऐतिहासिक पद्य निबन्धों मे इन्होंने तत्सम-शब्द प्रणाली को अपनाया है। इन्ही रचनाओ मे यहाँ वहाँ मुहावरों का भी प्रयोग हो गया है। चिन्तन प्रधान काव्य मे विषय की गम्भीरता के कारण मुहावरों का प्रयोग तिरस्कृत हो गया है। यहाँ सामान्य बोलचाल की भाषा को इन्होंने अपनाया है वहाँ मुहावरे अभिप्रेत भाव को स्पष्ट करने मे पर्याप्त सहायक हुए है। इन्ही मुहावरो में लाक्षणिक मूर्तिमत्ता के भी दर्शन होते हैं। पक्षात्मक कथाओं में प्रचुर मात्रा में चित्रात्मकता पाई जाती है, पर यह अभिधा के द्वारा ही निर्मित है। इनके काव्य मे लक्षणाशक्ति के प्रयोग के गिने चुने स्थन है, उनमें भी कथन का विशेष सौष्ठव् एव वैचित्र्य नही दिखाई पड़ता। वस्तुतः इनके काव्य की प्रबल संचालिका शक्ति अभिधा ही है।

पं० मुकुटधर शर्मा पाण्डेय के भावुक व्यक्तित्व का उनकी काव्य-वस्तु तथा शैली दोनो पर पर्याप्त प्रभाव है। इनके समय तक आते-आते द्विवेदी युगीन कविता अपनी चरम सीमा पर जा पहुँची थी। इन्होंने आन्तरिक अनुभूतियों को काव्य मे प्रधानता दी। इसके परिणाम स्वरूप इन्होने प्रेम को जीवन का सर्वोपरि तत्व स्वीकार किया। वे प्रेम को चराचर जगत में व्याप्त एक विभु तत्व मानते थे। प्रेम के इसी उदात्तीकरण के कारण उनका व्यक्तिगत प्रेम, प्रकृति और विश्व-प्रेम से आगे बढ़कर संसार के कण-कण मे प्रतिभासित परोक्ष सत्ता की ओर झुकता हुआ लक्षित होता है। इन्हे काव्य-भाषा मे बोल-चाल का रूप ग्राह्य नही था। इस कारण से मुहावरो तथा लोकोक्तियो के उपयोग का अवसर इन्हे कम मिला है। यदि प्रसंगवश कही प्रयोग हुआ भी है तो प्रायः उस पद्यांश की आत्मा को पकड़कर पर्यायवाची शब्दो मे

नियोजित कर दिया है। ऐसे स्थलो पर इनके काव्य मे लाक्षणिक चमत्कार के दर्शन होते है। इनके काव्य मे युग-प्रवृत्ति के अनुसार ही लक्षणा का वैभव नही दिखाई पड़ता, बल्कि अभिधा द्वारा ही सप्रेपणीयता एव चित्रात्मकता उत्पन्न की गई है।

वस्तुत पाण्डेयजी सरल शब्द-विधान एव उसके वाच्यार्थ की सहायता से अपनी आत्मगत अनुभूतियो को प्रसाद पूर्ण अभिव्यक्ति करते रहे। इनकी रचनाओ मे छायावाद के अकुर स्पष्ट रूप से प्रस्फुटित हुए।

द्विवेदी-काल की समस्त काव्य रचनाओ को ध्यान मे रखकर यह स्वीकार करना पडता है कि इस काल मे लक्षणा-शक्ति का काव्य मे वैसा प्रयोग नही हुआ जैसा कि रीतिकाल मे हुआ था। रीतिकालीन आचार्यो के लक्षणा प्रयोगो मे यद्यपि स्वाभाविकता का अभाव है फिर भी चित्रात्मकता और सम्प्रेपणीयता की कमी नही है। रीति सिद्ध और रीति मुक्त कवियो मे तो अपार लाक्षणिक वैभव दिखाई पड़ता है। रीतिकालीन नीति व्यवहार सबधी सूक्तियो तथा अन्योक्तियो मे भी लक्षणा का प्रचुर चमत्कार पाया जाता है, पर वैसा लाक्षणिक चमत्कार एव चित्रात्मकता द्विवेदी युगीन काव्य मे नही पाई जाती है। इसके प्रमुख कारण रचना प्रणाली का विपय प्रधान होना, काव्य को सर्व सबोध बनाने की इच्छा एव नवीन काव्य-भापा के परिष्कार के प्रयत्न थे।

रीतिकाल और छायावादी-काव्य

उपर्युक्त पृष्ठो मे द्विवेदी युग के प्रमुख कवियों के काव्य मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोगो का विवेचन किया गया है। इस युग के समस्त काव्य के परिशीलन के पश्चात हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि—बीसवी सदी के प्रथम दो दशाब्द काव्य मे भापा, भाव और शैली की दृष्टि से युगान्तर उत्पन्न करने वाले थे। इस काल मे, कवि ने सामयिक विपयो को ही पद्यवद्ध नही किया, अपितु पुराण और इतिहास का मन्थन कर पुरातन कथाओं को भी नवीन रूप प्रदान किया। इस युग में काव्य के विविध रूप-मुक्तक, प्रबन्ध और खण्ड काव्यो का प्रणयन भी हुआ। इस युग के प्रारम्भिक काल मे भापा की असमर्थता के कारण अधिकाश कवि उच्चकोटि की काव्य-रचना मे सफल न हो सके, क्योकि उनकी समस्त कवित्व शक्ति भापा के परिमार्जन एवं स्थिरीकरण मे ही व्यय हो गई। इसी कारण अभिव्यंजना पक्ष की ओर इनका ध्यान न जा सका। लक्षणा-व्यंजना के सौन्दर्य से श्रीहीन काव्य केवल अप्रस्तुत योजना के आश्रय मे पनपता रहा।

द्विवेदी-युग का द्वितीय चरण (सन् १९१०-१९२० ई०) साहित्य में भापा भाव और कला के क्रान्तिकारी परिवर्तन का युग था। देश की राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियो की विपमता ने कवि की वहिर्मुखी भाव धारा को अन्तर्मुखी कर दिया। साथ ही प्राचीन भारतीय दर्शन, वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, कीट्स, स्विनवर्न आदि

पाश्चात्य रोमांटिक कवियों की काव्य धारा और बंगला कवियों की भावना प्रधान, विशेष रूप से रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओ के अध्ययन का भी इस काल के कवियो पर प्रभूत प्रभाव पड़ा। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविका था कि—कवि का ध्यान दर्शन, प्रेम, अध्यात्म और प्रकृति की ओर जाए। इसी समय यूरोप में प्रथम महायुद्ध भी छिड़ गया। युद्ध जनित निराशा ने सहृदयो को विवश कर दिया कि वे यान्त्रिकता के विरोध मे प्रकृति की ओर उन्मुख हो। इस काल के कवि ने अन्तर्मुखी होकर अपने प्रातिभ ज्ञान से सत्य का साक्षात्कार करने की चेष्टा की। इसके परिणाम-स्वरूप कवि वस्तु के वाह्य को नही वल्कि आन्तरिक अनुभूति तथा सौन्दर्य को वाणी देने लगा। इस प्रकार विषय प्रधान कविता भाव एव कल्पना प्रवण हो गई।

द्विवेदी युग के अन्तिम वर्षो मे हिन्दी काव्य जगत मे तीन महान प्रतिभाओं का आगमन हुआ। यद्यपि प्रसाद जी ने सं० १९७० मे ही हिन्दी काव्य क्षेत्र मे प्रवेश पा लिया था, पर इनकी प्रारम्भिक रचनाओ कानन कुसुम, करुणालय, महाराणा का महत्व एव प्रेम पथिक पर द्विवेदी-युगीन इतिवृत्यात्मक काव्य का पर्याप्त प्रभाव वर्तमान है। स० १९७५ मे कवि की अन्तर्भाव व्यंजक कविताओ का संकलन 'झरना' के रूप मे पाठक के समक्ष आया। झरना के प्रथम सस्करण की चौवीस कविताओं का नूतन भाव-विधान करके भी प्रसाद जी विम्व विधायिनी-चित्रात्मकता तथा लाक्ष-णिक-वैचित्र्य का विशेष चमत्कार नही उत्पन्न कर पाए।

प्रसाद कृत झरना (सं० १९७५) और आँसू (सं० १९८२) के प्रकाशन काल के अन्तराल मे सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला और सुमित्रा नन्दन पंत ने नूतन काव्य-शिल्प लेकर इस क्षेत्र मे पदार्पण किया। पत जी की प्रारम्भिक रचनाएँ वीणा मे सकलित है। उनका प्रसिद्ध प्रणय-काव्य 'ग्रन्थि' सन् १९२० मे प्रकाशित हुआ। निराला जी की सर्व प्रथम रचना 'जुही की कली' सन् १९१६ मे लिखी जा चुकी थी, पर उनकी रचना-प्रगति इन वर्षो मे मन्द रही। इन कवियों ने भावाभिव्यक्ति के लिए प्रकृति के उपकरणो को उपमान रूप मे ग्रहण किया। कवि पत ने छन्द के सङ्गीत को हृदयङ्गम किया, शव्द के नाद-सौन्दर्य को पहचाना और उसकी आत्मा (अर्थ) को नूतन कान्ति से मण्डित किया। निराला जी ने 'जुही की कली' मे प्रकृति के उपकरणो का मानवीकरण करके अपने हृदयगत भावो को मूर्तिमान कर दिया है। प्राकृतिक-उपकरणो के माध्यम से सूक्ष्माति सूक्ष्म अन्तर्भावो की अभिव्यक्ति और लाक्षणिक चित्रात्मका को लेकर हिन्दी साहित्य मे 'छायावाद' का प्रादुर्भाव हुआ। आगे चलकर श्रीमती महादेवी वर्मा, दिनकर, अचल, नरेन्द्र शर्मा प्रभृत्ति कवियों ने इस धारा को अत्यधिक समृद्ध बना दिया। छायावादी लाक्षणिक चित्रा-त्मकता का निखरा हुआ वैभव आँसू और पल्लव मे सर्व प्रथम दिखाई पड़ता है।

अँग्रेजी के अधिकतर अलकार लाक्षणिक है। छायावादी कवियों की पद योजना पर अँग्रेजी साहित्य का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। अँग्रेजी साहित्य-शास्त्र में

अलंकारो के अन्तर्गत लक्षणा और व्यंजना शक्तियो को स्वीकार कर लिया गया है। अँग्रेजी के अलकारों मे मैटोनिमी, सिनक्डकी, हाइपैलेज और परसोनीफिकेशन लक्षणा शक्ति से ही सम्बन्धित हैं। छायावादी काव्य मे इन चारो अलकारो का प्रचुर मात्रा मे प्रयोग हुआ है। इनके अतिरिक्त मेटाफर और हाइपरवोली अलकारो के मूल मे तो लक्षणा शक्ति होती ही है। यहाँ इन अलकारों के विपय मे थोड़ी चर्चाकर लेना अनुपयुक्त नही होगा। मैटोनिमी अलकार मे आधार के लिए आधेय, कर्ता के लिए कारण और लिगी के लिए लिग का प्रयोग होता है। सिनक्डकी मे अंग के लिए अगी, अगी के लिए अग, मूर्त के लिए अमूर्त, अमूर्त के लिए मूर्त व्यक्ति के लिए जाति तथा जाति के लिए व्यक्ति प्रयुक्त होता है। हाइपैलेज मे विशेपण का विपर्यय हो जाता है। परसोनी फिकेशन मे जड वस्तुओ अथवा गुणो का मानवीकरण हो जाता है। मेटाफर तो हमारा रूपक ही है और हाइपरवोली अतिशयोक्ति। छायावादी कवियो के काव्य मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोगो मे इनकी छटा दर्शनीय है। पत जी के लाक्षणिक प्रयोगों के सम्बन्ध मे आचार्य शुक्ल का मत द्रष्टव्य है:—

'"वीणा' और 'पल्लव' दोनो मे अँग्रेजी कविताओ से लिए हुए भाव और अँग्रेजी भापा के लाक्षणिक प्रयोग वहुत से मिलते है।"[1]

वस्तुतः भारतीय शिक्षित समाज अँग्रेजी साहित्य के निकट सम्पर्क मे आ गया था। ऐसी परिस्थिति मे यह वड़ा स्वाभाविक था कि हम पर अँग्रेजी साहित्य का प्रभाव पड़े।

कवि का सवसे वड़ा उत्तरदायित्व यह होता है कि यह सहृदय रसिको की हृदय वृत्तियो को उच्छ्वसित एव प्रवुद्ध करे। वर्ण्य-विपय को गोचर कराने के लिए चित्र भापा की आवश्यकता होती है। भापा मे रूपो और व्यापारो की योजना होती है। चित्रमय भापा मे वर्णनीय वस्तु मूर्त रूप धारण कर लेती है और वस्तु को ग्राह्य रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है। शब्द की लक्षणा-शक्ति मे ही यह सामर्थ्य है कि वह वर्णनीय को गोचर रूप दे सकती है। इस बात को भली भाँति समझकर ही छायावादी कवि ने अपने काव्य में लाक्षणिक प्रयोगो को ग्रहण किया है। यही कारण है कि छायावादी काव्य अपने इस रूप के लिए वहुत प्रशसित है।

लाक्षणिक चित्रात्मकता के कारण छायावादी काव्य के वाक्यो मे भावव्यंजकता एवं स्पष्टता और शैली मे सुचारुता तथा प्रभावोत्पादकता आई है। इसी कारण से भापा चित्ताकर्पक, हृदयद्रावक, भावप्रकाशक, विचार वोधक, रागात्मक तथा चित्रात्मक हो गई है। इससे सवेदन के स्वरूप को मूर्त एव ग्राह्य रूप मिल सका है और भाव प्रवणता से रागात्मक-वृत्तियो को उच्छ्वसित होने का अवसर प्राप्त हुआ है।

---

१. हि० सा० इति, आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० परि० सं० २००२, पृ० ६०७

यहाँ समस्त छायावादी ग्रन्थो मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोगो का दिग्दर्शन कराना तो प्रबन्ध के विषय का सीमातिक्रमण करना होगा। अतः छायावादी काव्य में लक्षणा शक्ति के जो विशिष्ट प्रयोग अँग्रेजी साहित्य के प्रभाव के कारण आ गए हैं, उन्हे स्पष्ट करने के लिए और कुछ रीतिकाल मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोगो से साम्यता रखने वाले उदाहरणो को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। इन उदाहरणों से काव्य में आई हुई नई प्रवृत्ति का स्पष्टीकरण हो जाएगा।

आधार के लिए आधेय के रूप में:—

"मर्म पीड़ा का है हास !
रोग का है उपचार; पाप का भी परिहार।"[१]

इसमें 'पीड़ा का है हास' लाक्षणिक पद है। इसका आधार है पीड़ित मन।

"सिड़ी का गूढ़ हुलास
बीनते हैं प्रसून दल; तोड़ते ही हैं मृदु फूल।"[२]

इसमे 'गूढ़ हुलास' पद लाक्षणिक है। इसका आधार आनन्दित मन ही है।

"चाँदनी रात का प्रथम प्रहर हम चले नाव लेकर सत्वर,
सिकता की सस्मित सीपी पर मोती की ज्योत्स्ना रही बिखर।"[३]

इसमे 'मोती पर सीपी की ज्योत्स्ना रही बिखर' पद लाक्षणिक है। इसका आधार है चन्द्र की ज्योत्स्ना।

मानवीकरण:—

कवि के सूक्ष्म भावो को अभिव्यक्त करने के लिए जब जड़ वस्तुओ और गुणों पर मानव कार्य-व्यापारो का आरोप करने लगता है अथवा उनमें हृदयगत भावो की छटा का दर्शन करने लगता है, तब कथन की अभिव्यक्ति के लिए जिस शैली का आश्रय लेता है उसे मानवीकरण कहते है। मानवीकरण की प्रवृत्ति हिन्दी साहित्य मे एक पुरानी प्रवृत्ति है। रीतिकालीन काव्य मे देव, मतिराम आदि की रचनाओं मे यथा स्थान इस प्रवृत्ति को दिखाया जा चुका है, पर छायावादी काव्य मे जिस रूप मे मानवीकरण का अधिकाधिक प्रयोग हुआ है उसके दर्शन अन्यत्र नही होते। रीतिकाल मे मानवीकरण की प्रवृत्ति सम्पूर्ण ग्रन्थ मे किसी एक स्थल पर दिखाई पड़ती है। इसके अतिरिक्त भाव वैदग्ध एव चित्रात्मकता की दृष्टि से भी वे इतने समर्थ

---

१. पल्लविनी, सुमित्रानन्दन पंत, पृ० १३३
२. वही द्वि० सं० पृ० १३४
३. वही नौका बिहार पृ० १०४

प्रयोग नही हैं जितने कि छायावादियो के मानवीकरण । यहाँ पर उनके कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं:—

"फटा हुआ था नील वसन क्या
ओ यौवन की मतवाली !
देख अकिंचन जगत लूटता
तेरी छवि भोली भाली ।"[1]

नीले आकाश मे जडे हुए तारो को देखकर मनु रजनी को एक मुग्धा नायिका मानकर पूछते है कि ओ यौवन की मतवाली रात्रि ! क्या तेरा नील वसन फटा हुआ है कि जिसमे से तेरे उज्ज्वल कान्ति युक्त भोले-भाले अङ्गो की छवि यह अकिंचन जगत लूट रहा है । इस पद मे 'नील वसन' और 'यौवन की मतवाली' पद लाक्षणिक हैं । इनके सहारे रजनी पर मुग्धा नायिका का आरोप किया गया है । इस कारण यहाँ मानवीकरण अलकार है ।

विशेषण विपर्यय:—

किसी कथन को विशेष अर्थ गर्भित करने के विचार से विशेषण का विपर्यय कर दिया जाता है । अभिधावृत्ति से विशेषण को जहाँ स्थान मिलता है वहाँ से हटाकर लक्षणा के सहारे उसे दूसरी जगह बैठा देने से काव्य का सौष्ठव बढ जाता है । भावाधिक्य की व्यजना के लिए विशेषण विपर्यय अलकार का व्यवहार बहुत सुन्दर होता है ।

"वेदी की निर्मम प्रसन्नता पशु की कातर वाणी ,
मिलकर वातावरण बना था कोई कुत्सित प्राणी ।"[2]

इसमे प्रसन्नता को निर्मम कहा गया है, जो सम्भव नही है । अतः निर्ममता पूर्वक की गई वलि से मनु प्रसन्न हुए है, यह चित्र इससे गोचर होता है ।

"बता कहाँ अब वह वंशो वट ?
कहाँ गए नटनागर श्याम ?
चल-चरणों का व्याकुल पनघट
कहाँ आज वह वृन्दाधाम ?"[3]

इसमें पनघट को व्याकुल कहा गया है जो सम्भव नही है । अतः इसका लक्ष्यार्थ है चपल चरणो वाली गोपियाँ व्याकुल है ।

---

१. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, पृ० ४०, पद ७६
२. 'कामयिनी', जयशंकर प्रसाद, कर्म पृ० ११६
३. अपरा, सूर्यकान्त त्रिपाठी, 'निराला' 'यमुना के प्रति'

कार्य कारण के रूप मे —

"कल्पना में है कसकती वेदना अश्रु में जीता सिसकता गान है,
शून्य आहों में सुरीले छन्द हैं मधुरलय का क्या कहीं अवसान है।"[१]

इसमे एक प्रेम ही कारण है जिसके अवस्था विशेष के प्रभाव दिखाए गए हैं। यहाँ कार्य-कारण भाव से लक्षणा है।

"कैसे कहती हो सपना है अलि उस मूक मिलन की बात।
भरे हुए अब तक फूलों में मेरे आंसू उनके हास ॥"[२]

फूल खिले हैं, जिनसे प्रसन्नता व्यक्त होती है और उनमें ओस की बूँदें भी वर्तमान है। मेरे आंसू उनके हास का यह अर्थ लक्षणा-शक्ति द्वारा ही स्पष्ट होता है।

विशेषण रूपक के रूप में:—

"ओ चिन्ता की पहली रेखा अरे विश्व वन की व्याली;
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण प्रथम कंप सी मतवाली।"[३]

इसमे व्याली लाक्षणिक पद है। इसका लक्ष्यार्थ है सर्पिणी जिस प्रकार अपनी विषज्वाला से प्राणियों को मार डालती है उसी प्रकार चिन्ता भी व्यक्तियों को घुट-घुट कर मरने को विवश कर देती है।

"हम सागर के धवल हास हैं,
जल के धूम, गगन की धूल,
अनिल फेन, ऊषा के पल्लव,
वारि वसन, वसुधा के मूल,
नभ में अवनि, अवनि में अंबर,
सलिल भस्म, मारुत के फूल,
हम ही जल में थल, थल में जल,
दिन के तम, पावक के तूल।"[४]

इसमें 'सागर के धवल हास', जल के धूम, ऊषा के पल्लव, वारि वसन, वसुधा के मूल, नभ मे अवनि मे अम्बर, सलिल भस्म, मारुत के फूल, जल में थल, थल मे जल, दिन के तम और पावक के तूल सभी लाक्षणिक पद है। इनका क्रमशः

---

१. आधुनिक कवि, पं० सुमित्रानन्दन पंत, छठा सं० पृ० १५
२. 'यामा', महादेवी वर्मा, सं० १९३९
३. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, 'चिन्ता', पद १०
४. पल्लविनी, सुमित्रानन्दन पंत, द्वि० सं० 'बादल', पृ० ३०-३१

लक्ष्यार्थ है सागर के जल से बादल बनते हैं और उनका रंग श्वेत होता है, जल का वाष्पी भवन होता है, गगन मे धूल तरह उड़ते है, जल का फेन श्वेत होता है बादल भी स्वेत होता है और हवा बादल और फेन दोनो की उत्पत्ति का कारण है, प्रात:-कालीन सूर्य की किरणें बादल को अरुणिमा प्रदान करती है, बादल से जल धार का वसन बनता है, जल से नव सृष्टि का सृजन होता है, बादल गगन मे उड़ते रहते हैं। और धरती के ऊपर उड़ते है। इसी प्रकार अन्य विशेषण पदो का भी लक्ष्यार्थ कार्य कारण जन्य-जनक भाव से होता है। इन सभी पदो मे लक्षणा का चमत्कार है।

प्रतीकों के रूप में:--

> "झंझा झकोर गर्जन था बिजली थी नीरव माला
> पा कर इस शून्य हृदय मे सबने आ डेरा डाला ॥"[1]

इसमें संघर्षो के लिए झंझा, दुख की अनुभूति के लिए बिजली, आँसुओं को नीरद माला कहा गया है। ये क्रमश: सघर्षो, दुखो की अनुभूति और आँसुओ के प्रतीक रूप मे ग्रहण किए गए हैं। इनका आधार प्रभाव साम्य है।

साम्य के रूप में:—

> "मधु मंगल की वर्षा होती कांटों ने भी पहना मोती।
> जिसे बटोर रही थी रोती आशा, समझ मिला अपना धन ॥"[2]

इसमे दुष्ट हृदय के लिए कांटे का प्रयोग किया गया है और अश्रु बिन्द के लिए मोती शब्द ग्रहण किया गया है। इनमे गुण तथा रूप साम्य है।

मूर्त के लिए अमूर्तः—

> "मधुर विश्रान्त और एकान्त जगत का सुलझा हुआ रहस्य,
> एक करुणामय सुन्दर मौन और चंचल मन का आलस्य ॥"[3]

इसमें 'रहस्य,' 'मौन' और 'आलस्य' पद' लाक्षणिक हैं। ये सभी श्रद्धा के लिए आए हुए है। रहस्य को सुलझा हुआ कहकर यह व्यक्त किया गया है कि श्रद्धा सामने उपस्थित है। कामायनी करुणामयी सुन्दरी है जो चुपचाप खड़ी है। मन के आलस्य से अभिप्राय है श्रद्धा को पाकर मन स्थिर हो जाता है। छायावादी वाक्य मे कही-कही पूरे वाक्य मे लक्षणा पाई जाती है.—

> "तरंगों में डूबे दो कुसुमों पर हँसता था एक कलाधर।"[4]

इसमें 'दो कुसुमो,' 'एक कलाधर' और' तरगों' पद लाक्षणिक है। इनका-क्रमश. लक्ष्यार्थ है नायिका के दो उरोज, मुख एव यौवन कांति अर्थात् सौन्दर्य से

---

१. आँसू, जयशंकर प्रसाद, पृ० १५
२. लहर जयशंकर प्रसाद, द्वि० बार, पृ० १८
३. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, 'श्रद्धा' पृ० ४५
४, अनामिका, 'निराला' सं० द्वि, सं० २००५ पृ० ५०

व्याप्त प्रसन्नता । पद का भावार्थ है-वयः सन्धि की अवस्था में उरोजों को देखकर सुकुमार मुख प्रसन्नता मे निमग्न है ।

"विद्युत के चल स्वर्णपास में बँध हँस देता रोता जल घर ।
अपने मृदु मानस की ज्वाला गीतों से नहलाता सागर ।
दिन निशि को देती निशि दिन को रजत कनक के—
मधु प्याले हैं ।"[1]

'सागर ज्वालागीतो से नहलाता' पद में वाक्यगत लक्षणा है। सागर की लहरे गर्जन करती हुई उठती गिरती रहती हैं, इसीलिए उन्हे कवि ने ज्वालागीत कहा है। इस पद का भावार्थ है 'प्रकृति अपने मानस के स्नेह-सागर की लहरों से प्रियतम को आप्लावित कर देती है।

क्रिया पदों में लाक्षणिकता:—

"युद्ध का उन्माद संक्रम शील है
एक चिनगारी कहीं जागी अगर--
तुरत बह उठते पवन उनचास है
दौड़ती हँसती उवलती आग चारों ओर से ।"[2]

इसमे 'दौडती,' 'हँसती' तथा 'उवलती' क्रियाएँ लाक्षणिक है। इन तीनों का अर्थ वाधित है। इनका क्रमशः लक्ष्यार्थ है फैलना, धधकना और विकहालता धारण करना। इस प्रकार इन क्रिया पदो से युद्ध विस्तार और उसकी भयानकता से सवधित चित्र पाठक के समक्ष उपस्थित हो जाते है। चिनगारी, उनचास पवन एवं आग मे सादृश्य के आधार पर साध्यावसाना गौणी लक्षणा है।

विशेषण पदों में लाक्षणिकता

' उनकी सिहराई कंपन में
किरणों के प्यासे चुम्बन में ।"[3]

इसमे 'सिहराई' तथा 'प्यासे' (क्रियावाचक विशेपण) लाक्षणिक-पद है। कंपन और चुवन की विविध अवस्थाएँ एवं स्वरूप हो, सकते हैं, किन्तु यहाँ कपन के साथ सिहरन और चुवन के साथ प्यासे होने का प्रयोग करके लाक्षणिक चित्रात्मकता पैदा कर दी गई है। इस प्रकार कपन एवं चुंवन का मूर्त रूप सामने आ जाता है। इस प्रकार के लाक्षणिक प्रयोगो, जैसे-ठिठुरता प्रातः, विहँसती पीड़ा आदि का छायावादी काव्य मे आधिक्य है।

---

१. 'यामा' महादेवी वर्मा सं० १९३७, पृ० १९६
२. कुरुक्षेत्र, रामधारीसिंह 'दिनकर' सं० १९६२, पृ० १८
३. यामा, महादेवी वर्मा सं० १९३९, पृ० १३

विरोध मूलक शब्दों के प्रयोग में लाक्षणिकता

"मणिदीपों के अन्धकार मय अरे निराशा पूर्ण भविष्य !"[1]

इसमें मणिदीपो और अन्धकार लाक्षणिक पद है। इनका लक्ष्यार्थ क्रमश: है वैभव विलास एवं अज्ञान है।

उपर्युक्त उदाहरणों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि छायावादी काव्य लक्षणा शक्ति के प्रयोग की दृष्टि से अत्यधिक समृद्ध है। जिस प्रकार छायावादी काव्य मे विषय की व्यापकता आई, उसी प्रकार अभिव्यक्ति मे भी विविधता आई। कवि मूर्त प्रत्यक्षीकरण की योग्यता और प्रभविष्णुता की वृद्धि के लिए निर्जीव वस्तुओ या सूक्ष्म भावो की गंभीर अभिव्यजना मे उन पदो का प्रयोग करता है, जिनका प्रयोग सजीव प्राणी या मनुष्य के सबध मे किया जाता है। इस प्रकार काव्य का सौष्ठव तो समृद्ध होता ही है और साथ ही साथ लाक्षणिक चित्रात्मकता का मनोहर स्वरूप भी पाठक के समक्ष उपस्थित होता है। रीतिकालीन मानवीकरण के प्रयोग न तो छायावादी काव्यों की तरह व्यापक पृष्ठ भूमि पर है और न ही उनसे काव्य में इतनी प्रभविष्णुता की वृद्धि ही होती है।

विशेषण विपर्यय तो छायावादी काव्य की संपत्ति है। रीति कालीन काव्य मे इस प्रकार के लाक्षणिक प्रयोग नही हुए है। उस काल के कवि की अभिव्यक्ति इस साधन से परिचय नही थी, फिर भी घनानन्द मे कही कही विशेषण-विपर्यय का प्रयोग पाया जाता है।

क्रिया पदों की लाक्षणिकता रीतिकाल और छायावादी दोनो काव्यो मे पाई जाती है। अन्तर यह है कि रीतिकालीन प्रयोग चलते-चलते घिस गए थे, इसलिए उनके चमत्कार सहृदय रसिक को इतना आनन्द नही दे पाते है, जितना छायावादी क्रिया पदो के प्रयोग। वास्तविकता यह है कि क्रिया पद तो वही है, पर छायावादी कवियो ने उन्हे नए संदर्भ में प्रस्तुत करके जीवन्त बना दिया है।

विशेष्य पदों द्वारा दोनों कालों में लाक्षणिक प्रयोग हुए है। इनका प्रयोग दोनो कालो में विरल है। रीति-काव्य में घृणा और छायावादी काव्य मे करुणा उत्पादन के प्रसंग में प्राय: इस प्रकार के प्रयोग हुए है।

विशेषण पदो द्वारा लाक्षणिक चित्रात्मकता उत्पन्न करना भी नव युग की चेतना है, जैसे:—अलसाई आँख, सिहराई कपन, प्यासे चुम्बन, ललचाई पलक, विस्मित अधर, निद्रित स्वप्न आदि। इनके द्वारा सहज ही बिंब ग्राह्य हो जाते हैं। छायावादी कविता मे विशेषणो का रूपक के रूप मे भी प्रयोग मिलता है। इस प्रकार की अप्रस्तुत योजना सचित्र होती है जैसे.—'बिजली की दिवा रात्रि,'भूले हृदय की खोज आदि। कवि के ऐसे लाक्षणिक प्रयोगो को देखकर यह प्रतीत होता है कि

---

१. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, चिन्ता, पृ० ७

ये किन्ही भावुक क्षणों की सृष्टि है। इस प्रकार की कल्पना प्रधान अप्रस्तुत योजनाओं की सीमा नही निर्धारित की जा सकती।

रीति कालीन काव्य में लक्षणा की शक्ति पद गत है किन्तु छायावादी काव्य में कही-कही वाक्य गत लक्षणा के भी दर्शन होते है। प्रतीक योजना दोनो कालो में हुई है और प्रतीको के माध्यम से लाक्षणिक चित्रात्मकता का काव्य मे अवतरण हुआ है। दोनो काल के प्रतीको की प्रकृति भिन्न है। छायावादी कवि अपने प्रतीको को प्रकृति से ग्रहण करता है इसलिए ये अधिक सशक्त प्रतीत होते है। मूर्त के लिये अमूर्त का विधान भी दोनों कालो की विशिष्टता है पर रीतिकाल मे ऐसे लाक्षणिक प्रयोग विरल है जब कि छायावादी काव्य की यह स्वाभाविकता है। विरोध मूलक शब्दों के द्वारा भी लाक्षणिकता की योजना की गई है। रीतिकालीन कवियो ने परंपराओ मे बँधकर ही इस प्रकार के प्रयोग किए है। इसलिए उनकी वाणी का इस क्षेत्र मे ऐसा विकास न हो पाया जैसा कि छायावादी कवि की वाणी का।

छायावादी कवि अप्रस्तुत योजना करने में अधिक सावधान है। इसी के परिणामस्वरूप इस काव्य मे प्रेषणीयता, भावोद्बोधकता और रमणीयता भी अधिक है। उपमानों के चयन मे इस काल में नवीनता तो है ही और साथ ही साथ उनमे सामर्थ्य भी अधिक है। रीतिकालीन काव्य में उपमा अलंकार में लक्षणा की चित्रात्मकता नही दिखाई पड़ती, छायावादी काव्य मे ऐसे भी अनेक प्रयोग मिलते है जो उपमा अलंकार तो हैं, पर उपमेय का उल्लेख न करके केवल उपमान का उल्लेख किया गया है। ऐसी परिस्थिति मे वे साध्यवसाना लक्षणा के क्षेत्र मे आ जाते है।

इसके अतिरिक्त रूपक, अतिशयोक्ति परिकरांकुर-समासोक्ति, अप्रस्तुत प्रशंसा और मुहावरे-लोकोक्तियो में तो दोनो काल में बडे समर्थ प्रयोग हुए है। इस क्षेत्र मे रीतिकालीन लाक्षणिक चमत्कार किसी भी दशा मे छायावादी लाक्षणिक प्रयोगो से निम्नकोटि के नही है। इतना अवश्य सत्य है कि रीति कालीन कवि के पास उसका अप्रस्तुत विधान था और छायावादी कवि के पास अपना यदि दोनों काव्य धाराओं के लाक्षणिक प्रयोगों का उनकी परिस्थितियो और प्रवृत्तियों मे प्रवेश करके मूल्यांकन किया जाए तो अपने-अपने युगों का दोनो श्रेष्ठतम प्रतिनिधित्व करते है। दोनो प्रकार के काव्यो में आए हुए लाक्षणिक प्रयोगो को देखकर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि लक्षणा का बड़ा व्यापक क्षेत्र है। कवि प्रतिभा निरंतर इसका विस्तार करती रहती है। इन लाक्षणिक स्वरूपों को देखकर तो यह कहना पड़ता है कि-कहीं-कही लक्षणा का चमत्कार व्यंजना से भी अधिक समर्थ हो जाता है।

'रीतिकाल और छायावादोत्तर कविता'

उपर्युक्त पक्तियों में छायावादी काव्य के लाक्षणिक प्रयोगो की सामर्थ्य की विवेचना की जा चुकी है। छायावादी काव्य के बाद भी काव्य में लाक्षणिक प्रयोग

होते रहे हैं, उन्ही के संबध में यहाँ विचार किया जा रहा है। छायावादोत्तर काव्य की तीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ—प्रगतिवाद प्रयोगवाद और नई कविता है। इनके विकास का संक्षिप्त परिचय देकर यहाँ इनमें आए हुए लाक्षणिक प्रयोगो का दिग्दर्शन कराया जायेगा।

गाँधीवाद में नवयुग की प्रतिष्ठा का स्पष्ट आवाहन वर्तमान था फिर भी आन्तरिक मूल्यों को प्रधानता देने के कारण, वह जन-जीवन को प्रेरणा देने मे असमर्थ-सा प्रतीत होने लगा। सन् १९३४ मे समाजवादी दल की स्थापना, 'मेरठ षडयन्त्र केस' और श्रमिकों की 'ट्रेड यूनियन' की स्थापना आदि मार्क्सवाद की आधारभित्ति पर ही टिकी थी। १९३६ ई० का सार्वजनिक निर्वाचन जन मानस की जागृति और प्रगतिशील लेखकों का सम्मेलन पूंजीवाद के प्रति घोर अनास्था एव समाजवाद के प्रति गहन आकर्षण का ज्वलन्त सत्य उदघाटित करते है। प्रगतिशील लेखको के सम्मेलन का मूल उद्देश यह था कि साहित्य मे रुग्णनैराश्य, पलायन एव मुमूर्षा की भावनाओ को न आने दिया जाए। पंत का कोमल कवि भो 'युगान्त' मे जीर्ण पुरातन के 'नष्ट-भ्रष्ट' होने तथा नवल मानवता के 'पल्लवित' होने का स्वप्न देखने लगा था। मधुशाला (१९३८ ई०) मधुवाला (१९३६ ई०) 'मधुकलश' (१९३७ ई०) तथा निशानिमंत्रण (१९३८ ई०) में वच्चन ने वैयक्तिक प्रेम का मादक स्वरूप चित्रित किया था। छायावाद की सर्व श्रेष्ठ रचना कामायनी भी १९३७ ई० मे प्रकाशित हुई। नरेन्द्र की 'शूल-फूल तथा कर्ण-फूल' अचल की 'मधूलिका' एव 'अपराजिता' और भगवती चरण वर्मा का 'प्रेम सगीत' ग्रन्थ इसी समय प्रकाशित हुए। इसी वीच १९३७ ई० मे विश्वमहायुद्ध छिड़ गया। इस समय राष्ट्रीयता का स्वर और भी ऊँचा हो गया। इस काल की प्रकाशित रचनाओ मे—कृषको के प्रति सहानुभूति, सामाजिक असंगतियो की व्यंजना, समाज की वर्तमान व्यवस्था मे परिवर्तन की माँग, राष्ट्रीयता का उद्बोधन, साम्यवादी विचारधारा,युद्ध का विरोध आदि अनेक तत्व प्रतिष्ठित हो गए। अतएव यह कहा जा सकता हे कि दोनो विश्वमहायुद्धो के मध्य छायावाद का उत्थान एवं पतन घटित हुआ। सन् १९४० ई० के आस-पास से प्रगतिवादी धारा का प्रवाह नियमत: प्रारभ हो गया। इस धारा के कवियों का दृष्टिकोण मुख्यतया वौद्धिक रहा जिसमे छायावाद की भावनात्मक दृष्टि के प्रति विरोध स्पष्ट रुप से परिलक्षित हुआ।

प्रगतिवाद युग-चेतना को वाणी देना है। उसमे साम्राज्य एव पूँजी के प्रति विद्रोह और जन साधारण के प्रति सहानुभूति वर्तमान थी। स्वदेश-प्रेम,धर्म एव ईश्वर के प्रति विक्षोभ,सामाजिक विषमता की कटु प्रतीति,कृषको तथा श्रमिको मे नवचेतना का सचार, विदेशो मे भी पद-दलित मानवता के उद्धारके प्रति कामना,अन्तरराष्ट्रीय दृष्टिकोण, विश्वशान्ति की स्थापना की भावना और नव-युग एवं नव-निर्माण की प्रतिष्ठा के प्रति

गहन आस्था—ये सभी प्रगतिवाद के पोषक तत्व है। बौद्धिक धरातल पर कार्लमार्क्स का 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' का सिद्धान्त इसका प्रधान प्रेरणा स्तोत है और जनक्रान्ति के द्वारा श्रमिक वर्ग को शासनारूढ़ करना प्रमुख उद्देश्य है। अतः प्रगतिवादी कवि न तो 'स्वान्तः सुखाय' लिखता है और न कला के परिष्कृत सौन्दर्य-संसार मे ही विचरण करता है। वस्तुत. लोक-हिताय उसका मंत्र वाक्य है और सीधी स्पष्ट व्यंजना ही उसका अमोघ अस्त्र है।

प्रगतिवादी काव्य चेतना को जाग्रत करने वाले कवियों में निराला, पंत, सुमन, केदारनाथ अग्रवाल, भगवती चरण वर्मा, दिनकर, नरेन्द्र शर्मा, अंचल, नीरज प्रभृति का योग था। प्रगतिवाद का शिल्प-विधान अशक्त एवं अरुचिर था। जन-जीवन की सामान्य विपन्नता मे काव्यत्व नही रहता, इसी कारण प्रगतिवाद काव्यत्व विहीन ही रहा। कल्पना ने जितनी ही रंगीनी एवं सुकुमारता छायावाद मे दिखाई थी, उतनी रुक्षता तथा शुष्कता इस जनवादी काव्यधारा में आ गई। शैली की अलंकार हीनता का स्पष्ट रूप से आख्यान करते हुए पंत जी ने इस प्रकार कहा है—

वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलकार,
तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार।[१]

सन् १९४० ई० के आस-पास राष्ट्रीय जीवन में संघर्ष, दमन, गतिरोध, महँगी, भ्रष्टाचार इत्यादि की विभीषिकाएँ मध्यवर्ती बुद्धिजीवी समुदाय को विक्षुब्ध करने लगी थी। समाज के सबसे अधिक संवेदनशील कवि (नए कवि) तीव्र असंतोष एव गहन पराजय-वृत्ति से आक्रान्त होकर अपनी स्थिति को समाज मे 'त्रिशंकु' के समान समझने लग गए। क्योकि "सामाजिक अनुपयोगिता की अनुभूति" के विरुद्ध उनका विद्रोह सफल न हो सका, इस कारण से उनका सम्बन्ध मध्यवर्ग और निम्न वर्ग से भी समाप्त हो गया। ऐसे ही कवियो का नेतृत्व ग्रहणकर, अज्ञेय ने प्रयोगवादी काव्य-धारा का इसी समय प्रवर्तन किया।

छायावादी कवि जीवन को निर्झर मानता था। प्रयोगवादी कवि जीवन को बैलगाड़ी मानता है जो स्वय नही चलती अपितु उसे चलाया जाता है। इस दृष्टि से जीवन को देखने के कारण प्रतीक, बिंब आदि सभी बदल गए। यह काव्य छायावाद की रगीनियों और प्रगतिवाद की दिग्भ्रांतियों से सर्वथा मुक्त है। यह प्रयोगवादी काव्य नई चेतना देश-विदेश की परिवर्तमान तथा उलझन भरी समस्याओं मे परिस्नात होकर अटपटे वेश मे अभिव्यक्त होने लगा। मूल रूप से अधोलिखित विशेषताओं को लेकर प्रयोगवादी काव्य धारा आगे बढी।

---

१. आधुनिक कवि सुमित्रानन्दन पंत, सं० २०१२, भूमिका पृ० १७

(क) अवसादग्रस्त व्यक्तिवाद जो अस्वस्थ रूप से अन्तर्मुखी है; (ख) विवृत अहंवाद (ग) मनोविश्लेषण की यौन कुंठाओ एव वर्जनाओ की अभिव्यक्ति (घ) आस्था-अनास्था तथा आशा-निराशा का मिला-जुला चित्रण (ङ) व्यंग्य-विद्रूप एवं असंतुलित रोष की विज्ञप्ति (च) लघुतम एवं हीनतीम विचारो एवं अनुभूतियो का अङ्कन, (छ) नागरिक मादकता के स्थान पर ग्राम्य जीवन तथा प्रकृति की शान्त-स्निग्ध छवियो का उन्मीलन, (ज) एक प्रकार की विचित्र बौद्धिकता जो भावक की भावयित्री प्रतिभा को चुनौती देती हुई प्रतीत होती है; और (झ) रूप गठन के नवीन प्रयोग जिनमे प्रायः लय संगीत की रक्षा के प्रति उदासीनता है। तथा चमत्कार जनन के प्रति प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष आकर्पण है। इसमे किसी स्पष्ट दार्शनिक दृष्टिकोण या मतवाद का प्रतिफलन भी दृष्टि गोचर नही होता है। इन्ही समस्त विशेपताओ का प्रतिफलन 'तारसप्तक' मे रूपायित हुआ है। इसमे गजानन मुक्तिवोध, नेमिचन्द्र, भारत भूपण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे के गिरजा कुमार माथुर, रामविलास शर्मा और अज्ञेय की कविताएँ सग्रहीत है। सन् १९४३ ई० मे यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। 'तार सप्तक' के पाँच कवियो—गजानन माधव 'मुक्तिवोध' नेमिचन्द्र, भारत भूपण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, और रामविलास शर्मा मे समाजवादी दृष्टिकोण स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है।

इस सक्षिप्त परिचय के पश्चात यहाँ तार 'सप्तक' मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोगो को दिया जा रहा है।

"तार सप्तक"

तार-सप्तक की कविताओ मे समाजवादी यथार्थवाद के अन्तर्गत पूँजीवादी व्यवस्था, दलित तथा निम्न मध्यवर्ग, कृपक जीवन और नवयुग के अभ्युदय का, व्यक्ति-वादी प्रवृति मे आत्मरति; आत्मोन्मीलन, अन्तर्द्वन्द, सूक्ष्म अन्तरानुभूति, निराशा एव मनो भग्नता एव जीवन का दार्शनिक चिन्तन है। इसमे व्यक्तिगत चेतना (अह) और वर्गगत चेतना (समूह) से सवद्ध अन्तर्द्वन्द, सौन्दर्य वोध और मौन कुंठाएँ तथा यथार्थ प्रतीति जन्य वर्जनाएँ सौन्दर्याकर्पण अथवा सौन्दर्यानुभूति को व्यक्त करने वाली कविताएँ हैं। प्रेम चित्रण के प्रसग मे वियोग वेदना का निर्व्याज निवेदन आशा एवं निराशा तथा वासना और विवेक की लुका छिपी वाला प्रेम निवेदन, रग, रस तथा रोमास की अभिव्यक्ति भी 'तार-सप्तक' मे हुई है। वस्तु-तत्व के क्षेत्र मे इन कवियो ने जो नवीन प्रयोग किए उन पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि परिवर्तमान संदर्भ पर उनकी दृष्टि पहुँची और अह के साथ-साथ इद को भी वाणी मिली। मूलतः उनकी दृष्टि वस्तु परक थी मुक्तिबोध की रचनाएँ मन· परक थी। रूप तत्व की दृष्टि से भी नए प्रयोग हुए है। अभिव्यक्ति को सटीक एव प्राजल वनाने के लिए इन कवियो ने नए उपमान एव प्रतीक नियोजित किए। जीवन के लिए अश्वत्थ, अहं भाव के लिए कुकुरमुत्ता, दीन नयनो के लिए लालटेन, चाँदनी के लिए चंदन,

रूढियों के लिए सघन बर्फ की कड़ी पर्ते, बादलों के लिए श्वेत गरमीला रुआ आदि प्रतीक कवियों की नई दृष्टि का संकेत करते हैं। संपूर्ण 'तार-सप्तक' में—जीवन की भट्ठी मे भावो के जी चाहे 'रूप' बना लेने का कवि संकल्प सर्वत्र प्रत्यक्ष दीखता है।

कुल मिलाकर इन कवियों की भाषा सीधी, सरल, दैनिक बोलचाल के निकट तथा कल्पना के वायवी रङ्गों से मुक्त है। तार-सप्तक मे लाक्षणिक प्रयोग भी कम मिलते है, किन्तु उनका अभाव नही है जैसा कि उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है। मुक्तिबोध की पंक्तियाँ "दिन के बुखार रात की मृत्यु, के बाद हृदय पुंसत्व-हीन" जैसे लाक्षणिक प्रयोग इसमे दिखाई पड़ते है। लाक्षणिक प्रयोगो की दृष्टि से तार-सप्तक के कवियों के काव्य में लक्षणा का समृद्ध प्रयोग नही हो पाया है। इसकी तुलना रीतिकालीन लाक्षणिक प्रयोगो से क्या की जा सकती है। रीतिकाल मे लक्षणा के प्रयोगों में शास्त्रीयता, स्वाभाविकता, एव सम्प्रेषणीयता के उच्चकोटि के उदाहरण पर्याप्त मात्रा मे पाए जाते हैं, किन्तु इन प्रयोगो मे कहीं-कही प्रतीको अथवा उपमानो के माध्यम से लाक्षणिक प्रयोगो के दर्शन हो जाते है। ये प्रयोग नए प्रतीकों और उपमानों के कारण चित्त को अवश्य तीव्रता के साथ अपनी ओर आकर्षित करते हैं।

'दूसरा-सप्तक'

'तार-सप्तक' की परिधि के बाहर भी नई कविता का सृजन हो रहा था। इनमे नरेन्द्र शर्मा, अंचल, सुमन, तथा राङ्गेय राघव की प्रगतिवादी कविताएँ और शमशेर बहादुर सिह के मुक्त-छन्द (फ्री वर्स) मे प्रतीक चित्र तथा मनोविज्ञान के मुक्त आसङ्ग (Free Associations) के तकनीक पर लिख रहे थे। त्रिलोचन शास्त्री ग्राम्य जीवन पर तथा भवानी प्रसाद मिश्र बोल-चाल की भाषा में गीतो और वैलेडों की रचना कर रहे थे। अन्त में ६ वर्षो के बाद अज्ञेय ने सन् १९५१ ई० मे 'दूसरा-सप्तक' प्रकाशित किया। इसमे दो पिछली पीढी के—भवानी प्रसाद मिश्र तथा शमशेर बहादुर और पाँच नई पीढी के—शकुन्त माथुर, हरिनारायण व्यास, नरेशकुमार महता, रघुवीर सहाय तथा धर्मवीर भारती की रचनाएँ संग्रहीत है। तार-सप्तक और दूसरे-सप्तक का अनुशीलन करने पर कुछ मुख्य बातें ये सामने आती हैं कि तारसप्तक के अधिकाश कवियो का आग्रह साम्यवाद की ओर था जबकि दूसरे-सप्तक का कवि इससे मुक्त है। प्रथम सप्तक मे कवियों की काव्य दृष्टि मे आन्तरिक सघर्ष, मानसिक उलझन यौन कुंठाओ की प्रमुखता और एक प्रकार की सोद्देश्यता की गम्भीरता एवं जटिलता से आक्रान्त है जबकि 'दूसरे-सप्तक' मे ये प्रश्न ही नही उठते और काव्य दृष्टि अपेक्ष्या उन्मुक्त, प्रसन्न एव उत्साह गर्भा दिखलाई देती है यहाँ दूसरे सप्तक मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोगों का दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

'दूसरा-सप्तक' की भाषा सरल स्पष्ट तथा यथार्थवादी है। नरेश मेहता और भवानीप्रसाद मिश्र की रचनाओ में मुहावरो का प्रयोग भी मिलता है। नरेश मेहता की रचनाओं मे कुछ नवीनता का मोह, कुछ क्लासिकल शैली का मोह तथा अँग्रेजी शब्दों अथवा मुहावरो को अपनाने की प्रवृत्ति दिखाई पडती है। भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर तथा रघुवीर सहाय ने लोकभाषा की पदावली और मुहावरो के प्रयोग किए हैं। रूप-शिल्प का दूसरा तत्व कविता की अप्रस्तुत योजना है। इसी से कविता शैली मे चमत्कार एव लालित्य का अवतरण होता है। प्रकृति चित्रण तथा नारी सौन्दर्य के लिए नियोजित उपमान दैनिक अनुभव से ग्रहण किए गए हैं। भवानीप्रसाद मिश्र ने 'नभ से एक बूँद टपकी' मे—झरोखो से किसी का हँसना, हँस रही आँख, नूपुर ध्वनि, झमक कर आदि उपमानो की सहायता से विव को संप्रेपणीय वनाया है। 'वर्षा के वाद' कविता मे व्यास ने "गगन मे नील मेघ फट गया मानो पय की गगरी फूट गई हो" कहकर लोक-परिचित व्यजना की है। इससे आषाढ़ की पहली संध्या मे नीले वादलो के वरस जाने का चित्र मानसिक नयनो के सम्मुख साफ-साफ उतर आता है। रघुवीर सहाय ने वादल को जामुन से उपमित किया है। इन्होने वसन्त शीर्षक कविता मे चैत मास के हल्के जाडे को तरुणी की गरम गुलावी शरमाहट के समान और उस जाड़े के धीरे-धीरे फैल जाने को चिकने गेहुए गालों पर कानो तक व्याप्त हो जाने वाली स्वाभाविक लालिमा वतलाया है। रघुवीर सहाय ने छाया के नीचे धीरे-धीरे ढलते हुए दिन को पलको के भीतर शरमाने वाले नेत्रो से उपमित किया है। 'असाधारण' शीर्षक में भवानी प्रसाद मिश्र ने 'काई का फटना, मुगे का रटना' उपमान रूप मे नियोजित किए हैं।

नारी-सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने वाले उपमानो मे शमशेर "मकई से लाल गेहुए तलुए, नरेश मेहता—चीकने चीड-सी वाँह तथा सेव-सी लाली और श्वेत आँचल के हवा मे फडफड़ाने को चिड़ियो का उडना कहते है। धर्मवीर भारती प्रेयसी के "फिरोजी होठो" को देखकर गुलाबी पाँखुरी पर दिखाई पड़ने वाली 'हल्की सुरमई आभा' की प्रतीति से स्पन्दित होते हे और कभी थोड़ी-सी छायावादी ढग की कल्पना कर लेते हैं—"कि ज्यो करवट वदल लेती कभी वरसात की दुपहर।" (कोई सोई स्त्री विस्तरे पर करवट वदल रही है) भारती जी जव "आदिम गुनाहो के इन्द्र-धनुषी स्वाद" की वात करते है तव वे वहके से प्रतीत होते है क्योकि स्वाद के इन्द्र-धनुषी होने का कोई अर्थ ही नही होता है। इन्होने पाँवो के लिए नरद् का चाँद, नाचते कमल की छाँव, दो मासूम वादल, सोन-जूही की पखुरियो पर पले मदन के दो वाण, दो नाजुक और मृदुल तूफान, शलभ के गोद मे सोई हुई दो शमाएँ, फरिश्तो के परो की छाँह मे दुबकी हुई दो पूर्णिमाएँ, चुम्वनों की पाँखुरी के दो जवान गुलाव, सात रगो की महावर से रचे महताव, स्वर्ग के दो गान तथा रश्मि पखो पर अभी उतरे हुए वरदान—उपमानो की योजना की है। इनमे मूर्त अमूर्त

दोनों प्रकार के उपमान सम्मिलित है। इनके अतिरिक्त वे होठ के पाटल, नैन के बादल, गुलाबी तन, कली-सा मन, साँस की पुरवाइयाँ आदि की चर्चा करते हैं। साँसो मे पुरवाई हवा की मस्ती एवं अलसता व्यजित करने मे कितनी सार्थक कल्पना है। इन उपमानों एव प्रतीकों में रग, मसृणता, प्रभाव आदि को सादृश्य का आधार बनाया गया है। भारती की अप्रस्तुत योजना मे रोमानियत भरी है, किन्तु एक दो के अतिरिक्त सभी उपमान उपमेय की सरस एवं अर्थ भरी व्यजना करने में ही सहयोग प्रदान करते हैं।

नरेश मेहता ने 'किरन धेनुएँ' शीर्षक कविता में क्षितिज से प्रसारित होने वाली किरणों को गायों से तथा प्रभात को ग्वाला से उपमित किया है और पूरी कविता में सांग रूपक का निर्वाह किया है। उषा-विषयक कविताओं में अधिकांश मे रूपक का प्रयोग हुआ है। कही-कही चित्र बडे मनोरम बन पड़े हैं यथा कही नीद का फूल मृदुल बाहो मे मुसकाता ही होगा।' इसी प्रकार संध्या का चित्र भी रूपक के माध्यम से नितान्त सुन्दर चित्रित हुआ है। रूपको की भीड़ खड़ी करने में नरेश मेहता सिद्धहस्त हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि बिंब विधान की दृष्टि से 'दूसरा-सप्तक' पर्याप्त समर्थ है। रीति कालीन बिंब-विधान अपनी एक अलग छटा रखते है। उनमे पूज्यभाव और आभिजात्य संस्कार है जबकि दूसरे-सप्तक के बिंब-विधानो मे यथार्थता और परिचित रग अधिक है। नया कवि नई दृष्टि से अप्रस्तुतों की योजना करता है इससे एक प्रकार का बौद्धिक-चमत्कार उत्पन्न होता है।

'तीसरा-सप्तक'

'तीसरा-सप्तक' सन् १९५९ ई० मे प्रकाशित हुआ है। इसमें प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, कुँवर नारायण, विजयदेव नारायण साही और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की रचनाएँ सग्रहीत हैं। ये सभी कवि अपने-अपने विकास-क्रम मे अधिक परिपक्व और मँजे हुए रूप मे पाठक के सम्मुख आए हैं। भाषा-तत्व, रूप-तत्व, सप्रेष्य तत्व और शिल्प की दृष्टि से ये समर्थ रचनाएँ हैं।

'तीसरे-सप्तक' मे भी प्रचुर मात्रा मे लाक्षणिक प्रयोग हुए है। इन प्रयोगों से वस्तु की संप्रेषणीयता तथा संवेदनीयता मे वृद्धि हुई है और काव्य का सौष्ठव भी समृद्ध हुआ है। 'सप्तको' के कवि शास्त्रीयता के कायल नही है। इसलिए इनके लाक्षणिक प्रयोगो मे शास्त्रीयता का अभाव है, पर स्वाभाविकता सर्वत्र वर्तमान है। मुहावरो द्वारा भी लाक्षणिक-चित्रात्मकता उत्पन्न की गई है। इन कवियों की दृष्टि व्यापक है। इसलिए जीवन के विविध क्षेत्रो की अभिव्यक्ति नूतन उपमानों मे सज-

धज कर नई संवेदना का उपहार लिए हुए आई हैं और हृदय से अधिक बुद्धि को भाई है।

'उर्वशी'

श्री रामधारीसिंह दिनकर हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ कवि है। १९६१ ई० मे 'उर्वशी' और १९६२ ई० मे 'परशुराम की प्रतीक्षा' इनकी नवीन कृतियाँ हिन्दी पाठक के समक्ष आई। कवि ने उर्वशी मे पुरुरवा और उर्वशी के स्नेह सम्बन्ध के पौराणिक कथानक के आधार पर, स्नेह तथा मातृत्व अधुनातन स्वरूप को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। 'परशुराम की प्रतीक्षा' मे चीन के आक्रमण की प्रतिक्रिया का उद्घाटन है। यहाँ पर उर्वशी से कुछ उद्धरण दिए जा रहे है, जिनमे लाक्षणिक चमत्कार है।

"जाल फेंकती फिरतीं अपने रूप और यौवन का।
हँसी हँसी में करती है आखेट नरों के मन का।"[1]

इसमे 'जाल फेकती' तथा 'आखेट करती' लाक्षणिक पद है। जाल फेंकना तो सम्भव है, पर रूप और यौवन का जाल फेकना अवश्य असम्भव है। अत. इसका लक्ष्यार्थ है रूप तथा यौवन से आकर्षित करना। इसी प्रकार 'आखेट करना' पक्षी एव जानवरो के पक्ष मे सम्भव है, पर यहाँ नरो का आखेट करना कहा गया है। इसलिए इसका लक्ष्यार्थ है वशीभूत करना। इस प्रकार कवि ने इन पदो को अर्थ का नया आयाम दे दिया है।

"और वक्ष के कुसुम-कुंज सुरभित विश्राम भवन ये,
जहाँ मृत्यु के पथिक ठहर कर श्रान्ति दूर करते हैं।"[2]

इसमे 'कुसुम-कुंज' तथा 'विश्राम भवन' लाक्षणिक पद है। ये दोनों पद उरोजो और वक्षस्थल के उपमान है। इनका आधार सादृश्य है। कवि ने उपमानो के माध्यम से ही बिंब को सप्रेषणीय बनाया है।

"कामना तरंगों से अधीर
जब विश्व पुरुष का हृदय-सिन्धु
आलोड़ित, क्षुभित, मथित होकर,
अपनी समस्त वड़वाग्नि
कण्ठ मे भर कर मुझे बुलाता है।"[3]

---

१. उर्वशी, रामधारीसिंह 'दिनकर', प्र० सं० पृ० ३३
२. वही पृष्ठ ६१
३. वही पृ० ६५

इसमें 'कामना तरंगों', 'हृदय-सिंधु' आलोड़ित, क्षुभित, मथित और वड़वाग्नि लाक्षणिक पद हैं। प्रथम दो पदो मे कामना एवं हृदय उपमेय है और तरंगों तथा सिंधु उपमान हैं। इनका आधार सादृश्य है। आलोड़ित, क्षुभित, मथित हृदय विभिन्न अवस्थाओ को व्यक्त करते हैं। वड़वाग्नि सागर मे होती है पुरुष उसका मे होना असभव है, पर यहां इसका लक्ष्यार्थ पुरुष की शक्ति है। इस प्रकार कवि ने इन पदों का विव सप्रेपित किया है।

"तुम पन्थ जोहते रहो,
अचानक किसी रात में आऊँगी।
अधरों में अपने अधरों की मदिरा उँडे़ल,
मैं तुम्हें वक्ष से लगा
युगों को संचित तपन मिटाऊँगी।"[1]

इसमे 'मदिरा उँडे़लना' तथा 'संचित तपन' लाक्षणिक पद है। इनका क्रमशः लक्ष्यार्थ है—मादक चुम्बन और नियन्त्रित, अपूर्ण आकाक्षा की उष्मा। इस प्रकार कवि ने इन पदो को नए अर्थ से मण्डित कर दिया है।

उर्वशी मे आए हुए लाक्षणिक प्रयोग पर्याप्त सम्वेदनशील और संप्रेषणीय हैं। स्थानाभाव के कारण इन थोड़े से उद्धरणो को ही यहाँ उद्धृत किया जा सका है।

'चांद का मुँह टेढ़ा है'

'चाँद का मुँह टेढा है' मुक्तिबोध की कविताओ का संकलन है। इस ग्रन्थ का संकलन समशेर वहादुरसिह ने किया है। गजानन माधव मुक्तिवोध हिन्दी-साहित्य में एक विलक्षण प्रतिभा थे। इनकी कवितायें इनका इतिहास है। यहाँ उनमें से कुछ एक उदाहरण जिनमे लाक्षणिक प्रयोग हुए है दिए जा रहे है। इस ग्रन्थ की लाक्षणिकता तो शीर्षक से ही प्रमाणित है।

"भूल गलती
आज बैठी है जिरह वख्तर पहन कर
तख्त पर दिल के,[2]
... ...
खड़ी है सिर झुकाए
सब कतारें
बेजुबां बेवस सलाम में,[3]

इसमें 'जिरह वख्तर' तथा 'सब कतारे' लाक्षणिक पद हैं। इनका लक्ष्यार्थ

---

१. 'उर्वशी' रामधारीसिंह 'दिनकर' प्र० सं०, पृ० १००
२. 'लोकायतन' पं० सुमित्रा नन्दन पंत, प्र० सं०, पृ० २४८
३. 'चांद का मुंह टेढ़ा है' मुक्ति बोध प्र० सं० पृ० १

क्रमशः सुरक्षित और सभी कतारों के व्यक्ति है। इस प्रकार कवि ने इन बिंबों को संप्रेषणीय बनाया है।

> "रात्रि की कांखों में दबी हुई
> संस्कृति-पाखी के पंख है सुरक्षित !!"[1]

इसमें 'संस्कृति-पाखी' लाक्षणिक पद है। इसमे संस्कृति उपमेय और (पक्षी) उपमान है। इसका आधार सादृश्य है। इस प्रकार कवि ने बिंब को गोचर कराया है।

> "मानव के सपने
> गड़ गए, गाड़े गए !!
> ईसा के पंख सब
> झड़ गए झाड़े गए !!
> सत्य की
> देवदासी-चोलियाँ उतारी गई
> उघारी गई,
> सपनों की आँतें सब
> चीरी गई फाड़ी गई !!"[2]

इसमे 'सपनों का गड़ना', ईसा के पंख झड़ना,' 'सत्य की देवदासी की चोलियाँ उतरना' और 'सपनो की आँते चीरी-फाड़ी जाना' लाक्षणिक पद हैं। इनका क्रमश. लक्ष्यार्थ है आकाक्षायें समाप्त हो गई, दया, स्नेह आदि समाप्त हो गए हैं, सत्य की दुर्दशा हो गई है और कामनाएँ बल-पूर्वक विनष्ट कर दी गई। इस तरह कवि ने भावो को सम्प्रेपणीय बनाया है।

इस तरह के अनेक प्रयोग इस सकलन मे प्राप्य हैं। इनको सर्वत्र लक्षणा-शक्ति का चमत्कार वर्तमान है। कवि ने नए प्रतीकों और उपमानो के सहारे भावो को संप्रेषित करने का सफल प्रयत्न किया है।

'लोकायतन'

लोकायतन प० सुमित्रा नन्दन पत की १९६४ ई० की प्रकाशित नवीनतम रचना है। इसमें कवि ने सक्रान्ति कालीन युग गाथा को प्रस्तुत किया है। युग जीवन

---

१. 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' 'मुक्तिबोध, प्र० सं०, पृ० २३

२. वही पृ० ३८

की सत्यता को स्पर्श करती हुई यह 'भागवत कथा' हिन्दी पाठक के समक्ष आई है। यहाँ पर कुछ ऐसे उदाहरण दिए जा रहे हैं जिनमे लक्षणा के प्रयोग हुए है।

"सुनते हो आह्वान देश का
प्रकट हुए जन नायक गांधी
घायल रुँधी हवा गढ़हों की
वनने को अव पागल आंधी।"[1] (जीवन द्वार)

इसमे 'घायल रुँधी हवा गढहो की' तथा 'पागल आँधी' लाक्षणिक पद हैं। इनका लक्ष्यार्थ है त्रस्त, दलित एव क्षुब्ध विचार फूट पड़ना चाहते हैं और सभी वाधाओ को दूर कर देना चाहते है। इस प्रकार इन पदो के अर्थ को कवि ने नया आयाम दे दिया है।

"मुँह विचका गुरु, व्यंग्य हँसी हँस
वोले तीखा कर कडुवा स्वर,
राजनीति का फेर न यह रघु,
साढ़े साती आई सिर पर।"[2]

इसमे 'साढ़े साती आई' मुहावरा है इसका लक्ष्यार्थ है विपत्तियाँ आ पड़ी हैं। इसी लक्ष्यार्थ में मुहावरा रूढ हो गया है।

"वज्रपात अघटित न अनभ्र गगन से,
जीवित रावण कंस अचेतन मन में,"[3]

इसमें 'रावण तथा कंस' लाक्षणिक पद हैं। इनका लक्ष्यार्थ है वुरे विचार। इस प्रकार कवि ने विंव को गोचर कराया है।

'जव दहक रहा हो उर में, फट ज्वालामुखी भयंकर,
तब कैसे लोग सुनेंगे, कोलाहल में अन्तः स्वर।"[4]

इसमे 'ज्वालामुखी फटना' लाक्षणिक पद है। उर में ज्वालामुखी फटना असम्भव है। अत. इसका लक्ष्यार्थ है क्रोधाग्नि का भड़क उठना।

उर्वशी, लोकायतन तथा चाँद का मुँह टेढ़ा है इन कृतियों का अनुशीलन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि इन ग्रन्थो मे भी लक्षणा के पर्याप्त प्रयोग हुए है और ये प्रयोग वड़े ही समर्थ है। इन प्रयोगो की संवेदनशीलता और

---

१. 'लोकायतन' पं० सुमित्रा नन्दन पंत, प्र० सं०, पृ० ५१
२. वही पृ० ७७
३. वही पृ० ११५
४. वही पृ० १२७

संप्रेषणीयता अत्यधिक सक्षम है। मुक्ति बोध की रचना में लक्षण-लक्षणा का अत्यधिक विस्तार से प्रयोग हुआ है। इससे कवि की जागरूक प्रतिभा और बदलते हुए नए प्रतिमानो के अभिव्यजन कौशल का पता चलता है।

रीतिकालीन साहित्य की उपलब्धियाँ

रीतिकालीन साहित्य की परम्परा का प्रारम्भ ही आचार्य चिन्तामणि से माना गया है। हिन्दी साहित्य मे शब्द-शक्तियो का विवेचन भी उन्ही से प्रारम्भ हुआ। उनकी यह परम्परा निरन्तर आगे बढती हुई भारतेन्दु युगीन आचार्य लछिराम तक पहुँच गई है। यहाँ पहुँचकर यह परम्परा समाप्त हो गई। अत: यह कहा जा सकता है कि शब्द-शक्तियो के विवेचन के क्षेत्र मे रीतिकालीन आचार्य अपने आप मे ही आदि-अन्त है। इससे यह तो स्पष्ट ही हो जाता है कि लक्षणा के शास्त्रीय प्रयोग मात्र रीतिकाल मे ही उपलब्ध है। इन शास्त्रीय लाक्षणिक प्रयोगो की श्रीवृद्धि करने का श्रेय प्रमुखतया आचार्य चिन्तामणि, आचार्य कुलपति, आचार्य देव, आचार्य भिखारीदास, आचार्य प्रताप साहि प्रभृति को है। इन शास्त्रीय प्रयोगो मे नूतनता कम अस्पष्टता अधिक है। ये प्रयोग शास्त्रीयता की चौखट मे जकड़े है। वर्ण्य-विषय की स्पष्टता तो करते हैं, पर काव्य सौष्ठव को समृद्ध नही करते।

रीतिकालीन साहित्य मे स्वतन्त्र रूप से अलकार ग्रन्थ लिखे गए। इन ग्रन्थो में अलंकारो के लक्षण और उदाहरण छन्दो मे प्रस्तुत किए गए। रूपक, परिकराकुर, समासोक्ति, अतिशयोक्ति, अन्योक्ति, गूढोक्ति, व्याज निन्दा, व्याज-अस्तुति आदि अलकारो के माध्यम से बडे सुन्दर, शास्त्रीय एव स्वच्छ लाक्षणिक प्रयोग हुए। सम्पूर्ण अलंकार ग्रन्थो मे लक्षणा का वैभव बिखरा है। इससे एक ओर तो काव्य मे सौष्ठव आया और दूसरी ओर उक्ति-वैचित्र्य एव बिंबात्मकता। इन लाक्षणिक प्रयोगो द्वारा कवि ने अपने भाव-चित्रो को भावक के समक्ष प्रस्तुत किया है। इन काव्यो मे पर्याप्त वैदग्ध्य और भंगिमा की वक्रता है। इन प्रयोगो पर यदि कोई 'चार्ज' लग सकता है तो वह यह है कि आलकारिको ने स्वाभाविकता को कम और शास्त्रीयता को अधिक महत्व दिया है।

इस काल मे स्वतन्त्र रूप से नायिका भेद ग्रन्थ भी लिखे गए। इनकी सख्या भी एक बड़ी मात्रा मे है। इन ग्रन्थो मे नायिका के विविध रूपो, भावो, गुणो, लक्षणों और अवस्थाओं को काव्य की सामग्री बनाया गया। इन छन्दो मे भी प्रचुर मात्रा मे लाक्षणिक प्रयोग पाए जाते हैं। ये लाक्षणिक प्रयोग शास्त्रीय, सुस्पष्ट तथा निखरे हुए है। इनमे भी कवियो की वाणी का विकास हुआ है। इनमें सप्रेषणीयता की शक्ति और बिंबो को गोचर कराने की सामर्थ्य है। इनसे काव्य सौष्ठव अथवा लालित्य बढता है। इन प्रयोगो मे कवि शब्दो मे अर्थ के नए आयामो की सम्भावनाओ का अन्वेषण करता है। इन प्रयोगो द्वारा भावों मे तीव्रता भी उत्पन्न हो गई है।

रीति-सिद्ध कवियों ने शास्त्रीयता के बन्धन ढीले किए। इसके परिणाम स्वरूप लाक्षणिक प्रयोगो में स्वाभाविकता आई। इसके अतिरिक्त इनके भाव बिंब अधिक सवेदनशील हो गए। रीति-सिद्ध कवियो के काव्य में भी लाक्षणिक प्रयोगो की धूम है। इन प्रयोगो में लाक्षणिक मूर्तिमत्ता की सामर्थ्य बढ गई। इनमे अर्थ के नए आयाम की शोध है। विरोधी शब्दो के प्रयोग द्वारा भी लाक्षणिकता की वृद्धि की गई है। इन लाक्षणिक प्रयोगो द्वारा कवि की अन्तरानुभूतियो के समर्थ चित्र भी मूर्तिमन्त हुए है। इनमे वैदग्ध्य और भगिमा की वक्रता अधिकांश स्थलो पर वर्तमान है। इस प्रकार लाक्षणिक प्रयोगो तथा भाव चित्रों को प्रस्तुत करने की दिशा में विकास हुआ है।

रीति-मुक्त स्फुट काव्य तो रीतिकालीन लाक्षणिक प्रयोगों की चरमावस्था है। इतनी बिम्बात्मकता, वैदग्ध्य, भगिमा की वक्रता, भावों की मनोहारी छटा, स्वाभाविकता, स्पष्टता, सवेदनीयता और संप्रेषणीयता लाक्षणिक प्रयोगों द्वारा रीति-काल के किसी वर्ग मे नही दिखाई पड़ती। लोकोक्तियो और मुहावरो की लाक्षणिक मूर्तिमत्ता भी निखरकर भावक के सम्मुख उपस्थित हुई है। इस समय के लाक्षणिक प्रयोगों को सभी दृष्टियो से श्रेष्ठ कहा जा सकता है। इनमे मात्र कमी यह है कि—ये लाक्षणिक प्रयोग भी जीवन के विविध पक्षो की झांकी नही प्रस्तुत कर सके।

इन लाक्षणिक प्रयोगो का दामन पकड़कर कवियों ने नीति, वैराग्य तथा व्यवहार के पक्ष को भी प्रस्तुत किया है। इन प्रयोगो मे भी लाक्षणिक मूर्तिमत्ता है, पर इनके द्वारा वर्ण्य-विषय ही अधिक स्पष्ट हुआ है।

रीतिकालीन प्रबन्ध काव्यो मे भी यत्र-तत्र लाक्षणिक प्रयोग पाए जाते है, पर प्रबन्धो का कवि लाक्षणिक प्रयोगो के प्रति सावधान नही था। इसलिए इन काव्यो मे आए प्रयोगो से काव्य की श्री वृद्धि अधिक नही हो पाई।

कुल मिलाकर इन लाक्षणिक प्रयोगो के माध्यम से कई अलंकारो की शोभा बढ़ती है, नायिकाओ के रूप, गुण, भाव, अवस्था आदि की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति होती है, हृदय की अमूर्त सूक्ष्म अनुभूतियों को मूर्तिमत्ता मिलती है, भावक की सवेदन-शीलता में वृद्धि होती है, भावो मे तीव्रता आती है, वाणी का विकास होता है, बिम्बो की गोचर सामर्थ्य बढती है, काव्य में वैदग्ध्य उत्पन्न होता है और छन्दों मे सौष्ठव का सन्निवेश होता है। यही रीतिकालीन साहित्य की लाक्षणिक उपलब्धियाँ है।

इसी लाक्षणिक वैभव के कारण समस्त रीति साहित्य हिन्दी वाङ्मय का एक गौरव पूर्ण अध्याय बन सका है।

सहायक ग्रन्थ सूची

संस्कृत ग्रन्थ-सूची—

अष्टाध्यायी	पाणिन
अभिधावृत्तिमातृका	मुकुल भट्ट (काव्य माला)
अभिनव भारती	अभिनव भारती अभिनव गुप्त
ऋग्वेद	
काव्य प्रकाश	मम्मट (विश्वेश्वर डा० नगेन्द्र)
काव्य-प्रकाश	वामनी टीका सं० १९३३
काव्य-प्रकाश	डा० सत्यव्रतसिंह सं० १९५५ ई०
काव्य-मीमांसा	राजशेखर
कात्यायन भाष्य	कारिकावली मुक्तावली, रामरुद्री दिनकरी सहित, चौखम्बा, सं० सिरीज, काशी
कैयट भट्टाभाष्य	प्र० स०, निर्णय सागर, बम्बई सन् १९५१
गोविन्द ठक्कुर प्रदीप	आनन्दाश्रम, पुणे, सन् १९२९
चन्द्रालोक	जयदेव
छान्दोग्य उपनिषद्	
तर्क-संग्रह	अन्नभट्ट (न्यायबोधिनी तथा दीपिका सहित)
तैत्तिरीयारण्यकम	सं० बाबा शास्त्री फड़के, आनन्दाश्रम पुणे सन् १८९८ ई०
तंत्रवार्तिक	
दशरूपक	धनन्जय (धनिक अवलोक सहित)
ध्वन्यालोक	आनन्दवर्धन (विश्वेश्वर भूमिका डा० नगेन्द्र)
नाट्य शास्त्र	भरत मुनि (भारती सहित, बड़ौदा सस्करण)
न्याय सूत्र	गौतम (वात्स्यायन भाष्य सहित)
न्याय रत्न माला	पार्थ सारथि मिश्र
न्याय दर्शन	गौतम

प्रताप रुद्रीय	विद्यानाथ (रत्नायण टीका सहित) के० पी० त्रिवेदी स० १६०६
ब्रह्म सूत्र	'वेदव्यास'
मीमांसा भाष्य	शबर स्वामी, स० अभिजन सुब्बा शास्त्री, आनन्दाश्रम, पुणे
महाभाष्य	पतजलि (म. म, शिवदत्त द्वारा संपादित
यास्क निरुक्त	(दुर्गाचार्य टीका सहित)
रस-गंगाधर	पण्डितराज जगन्नाथ (निर्णयसागर)
वक्रोक्ति जीवितं	कुन्तक (डा० एस० के० डे द्वारा संपादित १६२५
वाक्य पदीय	(ब्रह्मकाड) भर्तृहरि (सूर्यनारायण व्याकरणाचार्यकृत टीका सहित)
विनोदिनी	(शक्तिवाद टीका)
वैयाकरण सिद्धान्त मंजूषा	नागेश भट्ट (सं० सभापति शर्मा उपाध्याय स० १६८६)
व्यक्तिविवेक	महिमभट्ट (त० गणपतिशास्त्री संपादित त्रिवेन्द्रम १६०६)
व्यक्ति विवेक	महिमभट्ट (मधुसूदनी विवृत्ति सहित, काशी १६२६)
बृहदारण्यक उपनिषद	
बृहती टीका ऋजुविमला	शलिकनाथ मिश्र
शुक्ल यजुः प्रातिशाख्य	स० पंडित श्री जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता सरस्वती यंत्रालय
शतपथ ब्राह्मण	
शक्तिवाद	परि० श्रीदामोदर शास्त्री, सं० सिरीज, चौखम्बा, काशी
शब्द शक्ति प्रकाशिका	श्रीकृष्णकान्त वागीश भट्टाचार्य, टीकोपेत श्री जयचन्द टिप्पणी सहित, प्र० सं०
श्लोकवार्तिक	कुमारिलभट्ट (उम्वेककृत टीका सहित मद्रास १६४०)
साहित्य दर्पण	विश्वनाथ (हरिदास टीका सहित)
साहित्य दर्पण	शालिग्राम शास्त्री द्वि० आ० सं० १६६१

हिन्दी ग्रन्थ—

अलंकार दर्पण	महाराज रामसिंह प्र० बार, भारत जीवन प्रेस, काशी
अब्दुर्ररहीम खानखाना	डा० समरसिंह प्र० स० चिरगाँव, झाँसी
अन्योक्ति कल्पद्रुम	दीनदयाल गिरि तीसरी शाखा
अनाथ	सियाराम शरण गुप्त सम्वत् २०१२, चिरगाँव, झाँसी
अपरा	सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला' (साहित्यकार संसद की ओर से प्रयाग महिला विद्यापीठ प्र० आ० २००३)
आधुनिक काव्यधारा	डा० केशरीनारायण शुक्ल तृ० आ० सरस्वती मदिर बनारस, स० २००७
आलमकेलि	लाला भगवानदीन सं० १९७९ प्र० आवृत्ति, आदर्श प्रेस, काशी
इश्कनामा	बोधाकृत प्र० बार १८९३ ई०
कवित्त रत्नाकर	सं० उमाशंकर शुक्ल, प्र० हि० परि० विश्वविद्यालय प्रयाग १९४९
कविकुल कल्पतरु चिन्तामणि	नवलकिशोर पाषाण यन्त्रालय लखनऊ, जनवरी १८७५ ई०
कविकुल कंठाभरण	सं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर' प्र० बार भारतजीवन प्रेस, काशी
कबीर ग्रन्थावली	बाबू श्यामसुन्दरदास सं० १९२८ ई०
काव्य-विलास	प्रतापसिंह, हस्त० प्र० ना० प्र० सभा, काशी
काव्य कलाधर	रघुनाथ, सं० १८०२
काव्यादर्श	
काव्य कल्पतरु	चिन्तामणि, मु० नवल किशोर यन्त्रालय, लखनऊ सं० १८७५ ई०
काव्य-निर्णय	भिखारीदास, सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्र० स० ना, प्र० सभा काशी,
काव्य में अप्रस्तुत योजना	प० रामदहिन मिश्र, प्र० सं० सम्वत् २००५ ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना
कामायनी	जयशंकर प्रसाद

किसान — बाबू मैथिलीशरण गुप्त प्र० सं० १९१२ ई०, चिरगाँव, झाँसी

कुण्डलिया — गिरधरराय (बम्बई छापाखाना कानपुर)

केशव ग्रन्थावली खण्ड १ — सम्पादक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हि० एकेडमी, उ० प्र०, इलाहाबाद

खड़ी बोली का पद्य — अयोध्याप्रसाद खत्री सं० १८८९ ई०

गीतावली — गो० तुलसीदास, गीताप्रेस, गोरखपुर

गुप्त निबन्धावली — बालमुकुन्द गुप्त प्र० सं० सं० २००७ स्मारक ग्रन्थ प्रकाशन समिति कलकत्ता

घनानन्द-कवित्त — सं० पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र चतुर्थ सं० वाणी वितान, काशी

चिन्तामणि भाग २ — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

जयद्रथ-वध — मैथिलीशरण गुप्त सं० २०१३, चिरगाँव, झाँसी

जायसी ग्रन्थावली — सं० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तृ० सं०

ठाकुर-ठसक — लाला भगवानदीन प्र० आ० १९८३, सुलेमान प्रेस, काशी

ठाकुर-शतक — बाबू काशीप्रसाद सं० १९६१

तार सप्तक — 'अज्ञेय'

तीसरा सप्तक — 'अज्ञेय' ज्ञान पीठ काशी, तृ० सं०

तुलसीदास और उनका युग — डा० राजपति दीक्षित प्र० बार

दान लीला — कर्त्ताराम (सं० सुधाकर द्विवेदी तृ० सं० सम्वत् १९१४)

द्विवेदी काव्य माला — पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी प्र० बार १९४० इण्डियन प्रेस, प्रयाग

पूर्वादल — सियारामशरण गुप्त सं० २०१२, चिरगाँव, झाँसी

दूसरा सप्तक — अज्ञेय, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली

देवदूत — पं० रामचरित उपाध्याय प्र० आ० हि० ग्र० रत्नाकर कार्यालय

देव और उनकी कविता — डा० नगेन्द्र

ध्वनिसम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त — भोलाशंकर व्यास, ना० प्र० सभा, काशी

नन्ददास-ग्रन्थावली — सं बाबू व्रजरत्नदास; ना० प्र० सभा, काशी

नवरस तरंग — स० प० कृष्णविहारी मिश्र प्र० सं० १९२५ प्राचीन कविमाला कार्यालय, काशी

नख-शिख — सं० गो० श्री गोवर्धनलाल सं० १६६० लक्ष्मीनारायण यन्त्रालय, मुरादाबाद

नैषध-काव्य — गुमानमिश्र सं० १६५२, श्रीवेंकटेश्वर यन्त्रालय बम्बई

परिमत — सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' 'गगा ग्रन्थागार स० २००७

पल्लविनी — सुमित्रानन्दन 'पन्त' द्वि० सं०

पथिक — रामनरेश त्रिपाठी, हिन्दी मदिर प्रयाग, १६५६ ई०

पत्रावली — मैथिलीशरण गुप्त सम्वत् २०१२ चिरगाँव, झाँसी

पद्य-प्रबन्ध — मैथिलीशरण गुप्त प्र० सं० १६१२ ई० चिरगाँव, झाँसी

पद्य पुष्पांजलि — लोचनप्रसाद पाडेय प्र० वार १६१४ ई० स्टार प्रेस, कानपुर

पद्माकर-ग्रन्थावली — सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र प्र० स० ना० प्र० सभा, काशी

प्रिय-प्रवास — पं० अयोध्याप्रसादसिंह उपाध्याय 'हरिऔध' च० स० हि० सा० कुटीर, बनारस स० २००२

पूर्ण-संग्रह — रामदेवीप्रसाद 'पूर्ण' प्र० स०

प्रेमघन सर्वस्व भाग १ — बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' प्र० स० स० १६६६ हि० स० स० प्रयाग

प्रतापलहरी — प्रतापनारायण मिश्र प्र० बार, नारायण प्रसाद अरोडा १६३६ ई०

पृथ्वीराज रासो — स० मो० ला० वि० पड्या, राधा० और श्यामसुन्दरदास, मेडिकल हाल प्रेस, बनारस १६०६

पृथ्वीराज रासउ — डा० माताप्रसाद गुप्त, प्र० वार, चिरगाँव, झाँसी

बिहारी — स० पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र तृ० सं०, वाणी वितान, काशी

बिहारी रत्नाकर — सं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर' गगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ

बरवै रामायण — गो० तुलसीदास, गीताप्रेस, गोरखपुर

भाषा-विज्ञान	बाबू श्यामसुन्दरदास, इण्डियन प्रेस इलाहाबाद सं० २००६
भाषा विज्ञान	बाबूराम सक्सेना
भाषा भूषण	स० ब्रजरत्नदास, लक्ष्मीनारायण प्रेस, बनारस
भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग १, २, ३	
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	सं० ब्रजरत्नदास द्वि० सं०, हि० एकेडमी, इलाहाबाद
भारत गीत 'कान्हा'	श्रीधर पाठक द्वि० स० गंगा पुस्तक माला, कार्यालय, लखनऊ
भारत-भारती	मैथिलीशरण गुप्त सं० २००३, चिरगाँव, झाँसी
भारत-गीत 'बिछड़ने वाले'	श्रीधर पाठक द्वि० सं० गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ
भिखारीदास ग्रन्थावली प्रथम खण्ड	सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र प्र० सं० नागरी प्रचारिणी सभा, काशी,
भिखारीदास ग्रन्थावली द्वितीय खण्ड	सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र प्र० सं० नागरी प्रचारिणी सभा काशी
भ्रमर गीत-सार	सं० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल नवम् सं०, सं० २०१८ साहित्य सेवा सदन, वाराणसी
मतिराम कवि और आचार्य	डा० महेन्द्रकुमार, भारतीय साहित्य मन्दिर दिल्ली
मतिराम ग्रन्थावली	सं० पं० कृष्णबिहारी मिश्र प्र० सं० गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ
महाकवि मतिराम	डा० त्रिभुवनसिंह प्र० सं०, हि० प्र० पु०, वाराणसी
महाभारत	सबलसिंह चौहान (नवलकिशोर छापाखाना लखनऊ)
मिलन	रामनरेश त्रिपाठी सं० २०१० हि० मंदिर, प्रयाग
यामा	महादेवी वर्मा, (किताबिस्तान इलाहाबाद स० १६२६)
रस मीमांसा	आ० रामचन्द्र शुक्ल
रस-रहस्य	स० बलदेवप्रसाद, ज्वालाप्रसाद सं० १६५४ इण्डियन प्रेस, प्रयाग

रस प्रकाश-रामकृत	वावू जो० प्र०, वेनी प्र० हरिप्रकाश यन्त्रालय काशी १८८७
रस-पीयूष निधि	सोमनाथ, हस्त० प्रति० ना० प्र० स० काशी
रामचरित मानस	गीताप्रेस, गोरखपुर
रामचरित चन्द्रिका	प० रामचरित उपाध्याय, प्र० आ०
रामाश्वमेध	मधुसूदनदास, हस्त० प्रति० सभा सग्रह ८८७
रीतिकाव्य की भूमिका	डा० नगेन्द्र तृ० स
विद्यापति की पदावली	सं० रामवृक्ष वेनीपुरी च० सं० १९९६ वि० पुस्तक भण्डार लहरिया सराय
विनयपत्रिका	गो० तुलसीदास एकादश स०, गीताप्रेस गोरखपुर
व्यंग्यार्थ कौमुदी	प्रतापसाहि, स० रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन प्रेस, काशी प्र० वार, सं० १९५७
व्रजविलास	व्रजवासीदास कृत, श्री वेंकटेश्वर छापखाना, वम्वई, स० १९५३
शब्द-रसायन	स० जानकीनाथसिंह 'मनोज' हि० सा० स० प्रयाग प्र० सं० सम्वत् २०००
शंकर-सर्वस्व	सं० हरिशकर शर्मा, निराला प्रेस आगरा सं० २००८ प्र० सं०
शंकर सरोज	पं० नाथूराम शर्मा, च० स० प्र० आर्यसमाज, वरोटा, हरदुआगज, अलीगढ
शिवराज भूषण	भूषण स० १९०५ ई०
शिवा बावनी	प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र प्र० स०, सा० से० कार्यालय, काशी।
श्री गोपिकागीत	श्रीधर पाठक, पद्मकोट प्रयाग सं० १९७३ वि०
संस्कृत साहित्य की रूपरेखा	ले० पाण्डेय तथा व्यास, सप्तम् सं०
सन्त-काव्य	पं० परशुराम चतुर्वेदी प्र० स० १९५२ ई०
सतसई सप्तक	डा० श्यामसुन्दरदास स० १९३१ ई० हि० ए० सयुक्त प्रान्त इलाहाबाद
साहित्य नवनीत	पं० अम्बिकादत्त व्यास द्वि० स०।
सुख-सागर 'तरंग'	स० वालदत्त मिश्र सं० १८९८ ई० सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचन्द, बम्बई।
सुजान-चरित्र	सूदन कवि कृत स० श्रीराधाकृष्णदास सं० १९०२ ई०

सूर के सौ-कूट — सं० चुन्नीलाल 'शेष'
सूक्ति मुक्तावली — पं० रामचरित उपाध्याय प्र० आ०
सूफी काव्य संग्रह — पं० परशुराम चतुर्वेदी प्र० सं० १९५१, हि० सा० सम्मेलन प्रयाग।
हम्मीर रासो — कवि जोधराज कृत सं० बाबू श्याम-सुन्दरदास तृ० सं०
हिन्दी साहित्य का इतिहास — आ० रामचन्द्र शुक्ल सं० परि० स० २००२ ना० प्र० स० काशी
महाकाव्य का स्वरूप और विकास — डा० शम्भूनाथसिंह प्र० सं०
हित तरंगिनी — सं० जगन्नाथदास रत्नाकर प्र० बार०, सं० १९५२, भारत जीवन प्रेस काशी
श्री गोपिका गीत — श्रीधर पाठक, पद्मकोट प्रयाग

पत्रिकाएँ

इन्दु — सन् १९१३ कला ४, किरण १, लोचन-प्रसाद पाण्डेय
इन्दु — १९१३ अक्टूबर कला ४, सं० २, किरण ४
'बिहार-बन्धु', — पटना, १६ दिसम्बर १८८६ ई०
सरस्वती १९१३ भाग १३ सं० ९
सरस्वती १९१३ भाग १५ सं० ४
सरस्वती १९१४ भाग १५ सं० ३
सरस्वती १९१७ भाग १८ सं० ६
सरस्वती १९२० भाग २१ सं० १

अँग्रेजी ग्रन्थ

प्वयटिक्स — अरस्तू
रेटॉरियस — अरस्तू
प्रिन्सिपिल्स ऑव लिटरेरी क्रिटिसिज्म — आई० ए० रिचार्डस
दि मीनिंग ऑव दि मीनिंग — आगडेन एण्ड रिचार्डस (८ वाँ संस्करण १९१४ ई०)
ए स्यस्टम ऑव लाजिक — जे० एस० गिल
आइविड